प्रकाशक :

पं. अमृतलाल ताराचन्द दोशी, व्याकरणतीर्थ
मन्त्री, जैन साहित्य विकास मण्डल
११२, घोडबंदर रोड, इरला ब्रीज
विलेपारले, मुंबई—५६ (A S)

प्रथम आवृत्ति
१०००
ईस्वीसन् १९६२
विक्रमसंवत् २०१९
मूल्य रु. १५

मुद्रक :

वि. पु. भागवत
मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, खटाववाडी
गिरगाव, मुंबई ४



पुरुषादानीय (पुरिसादाणीय) श्रीपार्श्वनाथ प्रभुः (

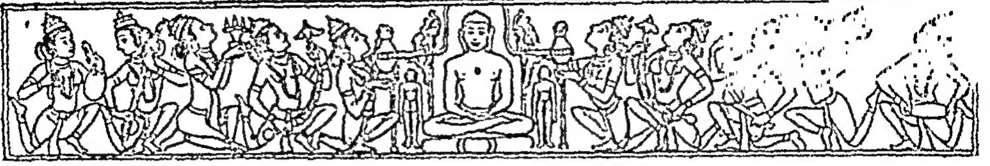
अनुक्रमणिका

विषयानुक्रम

नोंध:—प्रत्येक स्तोत्रनो अनुवाद तथा तेनो टूंक परिचय साथे आप्यो छे। जेनो अनुवाद नथी आप्यो तेनी आगळ * आवुं चिह्न मूक्युं छे।



पद्मावती देवी (नालन्दा स्थापत्यना आधारे)



महाकविगुणपालविरचित 'जंबुचरिय' संस्थितं

।। मङ्गलपञ्चकम् ।।



जम्मजरमरणभवजलहिउत्तारए,
सिद्धिपुरगमणसुहसंपयागारए ।
असुरसुरमणुयपरिवंदिए जे जिणे,
मंगलं पढमयं हुंतु ते बुहयणे ।। ८१४ ।।

सयलसंसारपरिमुक्कसंवासए,
भवियलोयाण सद्दिन्नसुहवासए ।
कम्मवणगहणयं सोसिउं सिद्धए,
मंगलं बीययं हुंतु तुह सिद्धए ।। ८१५ ।।

कुमयवाईकुरंगाण पंचाणणे,
ससमयपरसमयसब्भावपंचाणणे ।
पंचहायारपडिपुन्नसंधारए,
मंगलं तइययं हुंतु तह सुहयरे ।। ८१६ ।।

सव्वसाहूण उवएससंपदायए,
उभयसुत्तत्थकयपवरसज्झायए ।
धम्मसुक्काण झाणाण सज्झायए,
मंगलं चोत्थयं हुंतुवज्झायए ।। ८१७ ।।

नाणतवचरणसम्मत्तगुणपुन्नए,
कोहमयमाणभयलोहसंचुन्नए ।
सयलसावज्जवावारकयसंवरे,
मंगलं पंचमं हुंतु तह मुणिवरे ।। ८१८ ।।



निवेदन

नमस्कार-स्वाध्यायना प्राकृत विभाग (प्रथम भाग)नो दलदार ग्रंथ आजथी एक वर्ष पहेलां बहार पाडवामां आव्यो हतो। एने समाजे अत्यन्त आदरथी वधावी लीधो हतो। सारा सारा विद्वानोए ए ग्रंथनी मुक्तकंठे प्रशंसा करी हती। तेनी बधी नकलो तरत ज उपडी गई हती अने हजु तेनी माग चालु छे। विदेशमांथी पण मागणीओ आवी रही छे।

हवे एज ग्रंथना **बीजा (संस्कृत) विभागने** प्रगट करता अमने अत्यन्त आनंद थाय छे। आ बीजा विभागमां नवकार संबंधी कुल ४३ महत्त्वपूर्ण संदर्भो लेवामां आव्या छे। प्रथम भागनी माफक ज आ संस्कृत विभागमां पण नवकार संबंधी जुदी जुदी दृष्टिए विशेषता धरावता प्रकाशित तेमज अप्रकाशित स्तोत्रो चूटवामां आव्या छे।

ॐकारविद्यास्तवन, ह्रींकारविद्यास्तवन, मायाबीजस्तुति, मायाबीजह्रींकारकल्प, ऋषिमण्डलस्तवयन्त्रालेखन, आ स्तोत्रो ॐकार अने ह्रींकारनुं स्वतंत्र महत्त्व बतावनारा स्तोत्रो छे। **ऋषिमण्डलस्तवयन्त्रालेखनने** अमे जुदा पुस्तकरूपे पण बहार पाड्यु छे।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित **श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासनना शब्दमहार्णवन्यासमांथी** अमे अर्हंना विस्तृत न्यासने अहीं रजु करेल छे। एनो अनुवाद अहीं प्रथम ज वार प्रकाशित थाय छे। एमां अर्हंनो स्वरूप, अभिधेय, तात्पर्य, क्षेम, योग, प्रणिधान अने तात्त्विक नमस्कार, ए सात द्वारो वडे सुंदर विचार करवामां आव्यो छे। ते पछीना संदर्भमां कलिकालसर्वज्ञकृत **संस्कृत द्व्याश्रय महाकाव्यना** प्रथम श्लोकनी टीकामां **श्रीअभयतिलकगणिनु** अर्हं उपरनु विवेचन छे।

ते पछीना संदर्भमा **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य** कृत **श्रीवीतरागस्तोत्रना** प्रथम छ श्लोको उपर **श्रीप्रभानंदसूरिए** करेल सुंदर विवरण छे। तेमा प्रत्येक पद उपर सुंदर प्रकाश नाखवामा आव्यो छे।

ते पछी **तत्त्वार्थसारदीपक** ग्रंथनो संदर्भ आवे छे। तेमा पदस्थ ध्याननी सुंदर भावना छे। तेमां नवकारमांथी उत्पन्न थयेल अनेक मंत्रो, ते मंत्रोनी आराधनाना प्रकारो तथा फलश्रुति छे।

ते पछी **श्रीसिंहतिलकसूरिए** रचेल **मन्त्रराजरहस्य** नामना हस्तलिखित ग्रंथमांथी **पंचपरमेष्ठिस्वरूप संदर्भ** लेवामा आव्यो छे। **मन्त्रराजरहस्यना** विषयमां भविष्यमां बधु साहित्य प्रकाशित करवानी अमारी उत्कट भावना छे। मंत्रजगतमा आ ग्रंथनु स्थान अनेरु छे। ए ग्रंथने वांचता **श्रीसिंहतिलकसूरिनी** अगाध विद्वत्ता स्पष्ट देखाई आवे छे। प्रस्तुत संदर्भमा ॐ, ह्रीं, अर्हं वगेरे मंत्रबीजोनां अ अ आ उ म् वगेरे अंगोना रहस्यनु सुंदर वर्णन छे।

ते पछी **मन्त्रराजरहस्यमांथी 'परमेष्ठिविद्यायन्त्रकल्प'** लेवामां आव्यो छे। एमां पण परमेष्ठिओना ध्यानादिना जुदा जुदा प्रकारो वर्णववामां आव्या छे। एमां सरस्वतीना मन्त्रध्याननु वर्णन सौथी बधु महत्त्वनु छे। सरस्वतीना मन्त्रनु ध्यान मूलाधारादि चक्रोमा केवी रीते करवु, तेनी विशिष्ट प्रक्रिया, कुण्डलिनी शक्ति, वगेरेनु अहीं रहस्यमय वर्णन छे। ए वर्णन परथी ए स्पष्ट देखाय छे के **श्रीसिंहतिलकसूरिनो** ध्यानविषयक अनुभव बहु ज उच्च भूमिकानो हतो। प्रस्तुत संदर्भ पछीना **लघुनमस्कारचक्रस्तोत्रसंदर्भमां** शान्त्यादिकर्मोने साधवानी प्रक्रिया छे।

त्यारपछी **श्रीसिद्धसेनसूरिप्रणीत श्रीनमस्कार माहात्म्य** अनुवाद सहित आपवामा आव्युं छे; एमां नवकार अने तेना प्रत्येक वर्णनु सुंदर विवेचन छे तथा नवकारना स्मरणथी थता लाभो, नवकारनो प्रभाव वगेरे दर्शाववामा आव्या छे। एमा सप्तम प्रकाशथी जे चतुःशरणनुं वर्णन शरू थाय छे, ते तो अजोड छे।

ते पछीना संदर्भोमा पण नवकारविषयक विविध सामग्री छे।

ते पछी **परमात्मपंचविंशति** संदर्भ छे। एमा उपा० **श्रीयशोविजयजीए** परमात्माना शुद्ध स्वरूपनुं संक्षेपमां सुंदर वर्णन करेल छे।

ते पछी **पञ्चनमस्कृतिदीपक**मांथी बे संदर्भो तारववामां आव्या छे। एमांथी प्रथम संदर्भमां साधनामां उपयोगी एवा दिग्, आसन, मुद्रा, काल, क्षेत्र, द्रव्य, भाव, पल्लव, कर्म, गुण, सामान्य, विशेष वगेरेनुं वर्णन छे। **पंचनमस्कृतिदीपक**ना बीजा संदर्भमां नवकारना पदोमांथी नीकळेला अनेक मंत्रो आपवामां आव्या छे। एमां केटलाक मंत्रोना ध्याननी विशिष्ट प्रक्रियाओ पण बतावबामां आवी छे।

ते पछी **लक्ष नमस्कार गुणनविधि** नामक संदर्भमां लाख नवकारना जपनो सुंदर विधि छे। एमां बतावबामां आव्युं छे के जे विधिपूर्वक भावथी लाख नवकार गणे छे तेनी जो एकाग्रता वधी जाय तो ते **श्रीतीर्थंकर नामकर्म** उपार्जे छे।

ते पछी **तत्त्वानुशासन** संदर्भ छे। ए ग्रंथ अमारी संस्था तरफथी पूर्वे प्रकाशित थयेल छे। ए संपूर्ण ग्रंथना अनुवादक पू. मु. श्री **तत्त्वानंदविजयजी** म. छे। ए अनुवादमांथी प्रस्तुत संदर्भ अहीं लेवामां आव्यो छे। आ संदर्भमां नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव ध्येयनुं सुंदर वर्णन छे। एमां व्यवहारध्यान तथा निश्चयध्यान पण दर्शावेल छे। ए ज संदर्भमां अर्हँना ध्याननी विशिष्ट प्रक्रिया तथा अर्हत्ना अभेद ध्यानादिनुं सुंदर वर्णन छे। आत्मसंवेदननुं वर्णन पण ए ग्रन्थमां अद्भुत छे। ग्रंथने रचनार **दिगम्बर सम्प्रदायना ख्यातनाम आचार्य श्रीमान् नागसेन** छे। एमनी अद्भुत प्रतिमा आ ग्रंथमां तरी आवे छे। ध्यानना प्रत्येक अभ्यासी माटे ए संपूर्ण ग्रंथ मननीय छे कारण के ए स्वानुभवनी उच्च भूमिका उपरथी लखाएल छे।

ते पछी **मातृका प्रकरण** संदर्भमां प्रणवादि मंत्रबीजोना प्रत्येक अंगनुं वाच्य (अभिधेय) दर्शाववामां आव्युं छे।

ते पछीना **अर्हन्नामसहस्रसमुच्चय** संदर्भ अने **जिनसहस्रनामस्तवन** संदर्भमां श्रीअरिहंत परमात्माना एक हजार आठ नामोनी अनुष्टुप् छंदमां गुंथणी छे।

ते पछी **श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्र** संदर्भ आवे छे, जे गावामां आह्लाद दायक छे। एमां अरिहंत परमात्माना व्यापक स्वरूपनुं वर्णन छे तथा तेमनी जन्मथी मांडीने निर्वाण सुधीनी अनेक अवस्थाओने नमस्कार करवामां आवेल छे। एमां अतीत-अनागत-वर्त्तमान चोवीशीना तीर्थंकरो, आ भूमिना वर्त्तमान तीर्थो, शासन, संघ, नवकारमन्त्र, सिद्धान्त, दर्शनादिशुद्धि, क्रिया, साधुधर्म, श्रावकधर्म, श्रुतदेवता वगेरेने पण नमस्कार करवामां आव्यो छे। ए संदर्भमांना **जगज्जन्तुजीवातुजन्म** (श्लो. ४), **अवतीर्णाय विश्वोपकृत्यै** (श्लो. १५), **प्रकृत्या जगद्वत्सलाय** (श्लो. १५), **विश्वदारिद्र्यनिस्तर्जनाय** (श्लो. ५०), **पुनानाय कालत्रयेऽस्मान्** (श्लो. ११७) वगेरे विशेषणो वाचनारनुं खास ध्यान खेंचे छे।

ते पछीना **षोडशक प्रकरण** संदर्भमां सालंबन तथा निरालंबन योगनुं सुंदर वर्णन छे।

ते पछीना **शक्रस्तव** संदर्भमां पण परमात्माना स्वरूपनी भाववाही स्तुति छे। ए मंत्रपदोथी गर्भित छे। एना पठनादिना फळोनुं वर्णन पण ए संदर्भना प्रांत भागमां छे, जे खास ध्यान आपवा लायक छे। आचार्यशिरोमणि श्री **सिद्धसेन दिवाकर** एना रचयिता छे।

ते पछी **सिद्धभक्त्यादि संग्रहमां** आत्मा अने मुक्ति विषयक अन्यदर्शनीओनी मान्यतानुं खण्डन करी जैन दर्शनसम्मत आत्मा अने मुक्तिनी सिद्धिनुं प्रतिपादन कर्युं छे तथा पंचपरमेष्ठिना गुणोनुं सुंदर वर्णन छे।

ते पछी **श्राद्धविधिसंदर्भमां** श्रावकनुं प्राभातिककृत्य, स्वरोदयसंबंधी सुंदर वर्णन तथा नवकारना जपना प्रकारोनुं वर्णन छे।

उपर कहेल बधा संदर्भोनो परिचय अहीं बहु ज संक्षेपमां करावेल छे। विशेष परिचय ते ते संदर्भना अंतमां आपवामां आवेल छे।

आम संपूर्ण ग्रन्थ नवकारनी विविध विशेषताओने बतावनारो अने नवकारसंबंधी विपुल साहित्य एक ज स्थळे प्राप्त थई शके तेवो बन्यो छे। तेथी नवकारना अभ्यासीओने ते बहुज उपयोगी नीवडशे।

जैन साहित्य विकास मंडळे छेल्ला दश वर्षोमां प्रतिक्रमण, योग, ध्यान वगेरे विषयोनुं महत्त्वपूर्ण साहित्य प्रकट कर्युं छे।

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यविरचित 'योगशास्त्र'ना आठमा प्रकाश उपर श्री जैन साहित्य विकास मंडळना संचालक शेठ श्री अमृतलाल कालिदास दोशी विस्तारथी विवेचन लखी रह्या छे। तेमां श्री शास्त्रकार भगवंते ध्याननी विविध प्रणालिकाओ अने ध्याननी एक आखी सम्पूर्ण पद्धति केवी निगूढ करेली छे, तेनुं समन्वयपूर्वक निदर्शन छे। ए कृति अमे आ ग्रंथमां लेवाना हता, परन्तु तेनुं विवेचन हजु संपूर्ण थयुं न होवाथी अमे अहीं प्रकाशित करी शक्या नथी।

प्रथम भागनी माफक ज आ ग्रंथने सर्वांग सुन्दर बनाववानुं भगीरथ कार्य तो प. पू. मुनिराज श्रीतत्त्वानंदविजयजी महाराजे करेल छे। अमारी विनंतिने मान आपीने जेओए आ ग्रंथनुं कार्य प. पू. मुनिवर्य श्रीतत्त्वानंदविजयजी महाराजने सोंप्युं ते सिद्धान्तमहोदधि पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्रीविजय-प्रेमसूरीश्वरजी म. सा., प. पू. पं. श्रीभद्रंकरविजयजी गणिवर्य अने प. पू. पं. श्रीभानुविजयजी गणिवर्यना अमे अत्यन्त ऋणी छीए।

प्रस्तुत ग्रंथना अनुवादनादिमां विद्वद्वर्य प. पू. पं. श्री धुरंधरविजयजी गणिवर्य, न्यायादि शास्त्रोमां निष्णात प. पू. मु. श्री जंबूविजयजी म. अने प. पू. श्री तत्त्वानंदविजयजी ए अमने घणी ज सारी सहाय करेल छे।

आ उपरांत आगमप्रभाकर प. पू. मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराज तथा पू. मुनिश्री यशो विजयजी महाराज वगेरेनो हस्तप्रतो तथा चित्रसामग्री वगेरे आपवा बदल खास आभार मानीए छीए।

प्रथम भागनी माफक आ बीजा भागमां पण अनेक चित्रो तथा यन्त्रो आपवामां आव्या छे। अने ए बधुं कार्य डभोईना सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीरमणलाले खूब परिश्रमपूर्वक कर्युं छे। ते बदल संस्था तरफथी तेमने धन्यवाद आपीए छीए।

संशोधन अने संग्रहना आ कार्यमां खास करीने हस्तप्रतो पूरी पाडवामां अनेक संस्थाओ, ज्ञानभण्डारो, अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तिओ तेम ज विद्वानो तरफथी अमने सारो सहकार मळ्यो छे। तेमां नीचे जणावेल ज्ञानभंडारो तथा संस्थाओना अमे अत्यन्त ऋणी छीए।

(१) जैन सिद्धान्त भवन हस्तलिखित ग्रन्थसंग्रह ... . . आरा
(२) रॉयल एशियाटिक सोसायटी .. .. कलकत्ता
(३) श्रीविजयमोहनसूरीश्वरजी हस्तलिखित शास्त्रसंग्रह .. .. .. पालीताणा
(४) भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट . . . . पूना
(५) श्री केसरबाई ज्ञान मंदिर .. .. पाटण
(६) श्री जीवराज जैन ग्रन्थालय . . ... . सोलापुर
(७) श्री मुक्तिकमल ज्ञानमंदिर .. . .. वडोदरा
(८) प. अमृतलाल मोहनलाल भोजकनो संग्रह . . . पाटण
(९) श्री अमरविजयजी ज्ञानभण्डार . . .. . . डभोई
(१०) श्री तपगच्छ जैन भण्डार ... . जयपुर
(११) श्री मोहनलाल भगवानदास झवेरीनो संग्रह .. .. मुंबई
(१२) श्री हंसविजयजी शास्त्रसंग्रह जैन ज्ञानमंदिर ... . वडोदरा
(१३) श्री शान्तिनाथजी जैन मंदिर हस्तलिखित संग्रह . . . .. मुंबई
(१४) शेठ श्रीआणंदजी कल्याणजीनी पेढी हस्तक
श्री जैन श्वे. ज्ञानभण्डार .. .. लींबडी

(१५) श्री वर्धमान जैन आगममंदिर ... ... पालीताणा
(१६) श्री मुक्ताबाई जैन ज्ञानमंदिर ... ... डभोई
(१७) श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, भुलेश्वर ... ... मुंबई
(१८) श्री जैनधर्मप्रसारक सभा ... ... भावनगर
(१९) श्री आत्मानंद जैन सभा ... ... ,,
(२०) श्री भारतीय ज्ञानपीठ ... ... काशी
(२१) श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर ... ... अमदावाद

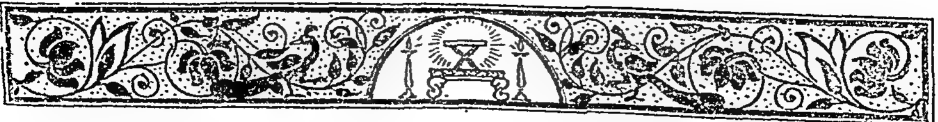
आना पछी अमे नमस्कार-स्वाध्यायनो त्रीजो विभाग पण प्रकट करवाना छीए। जेमां संस्कृत अने प्राकृत सिवायनी भाषाओमां रचायेला प्रकाशित तथा अप्रकाशित महत्त्वपूर्ण संदर्भोनो, समावेश थशे।

आ प्रकारे आ त्रणेय भागो पंचमंगलमहाश्रुतस्कन्धसूत्रना स्वाध्यायमां महार्य, अपूर्वार्थ, परमार्थ गर्भार्थसद्भाव, समासार्थ, विस्तरार्थ, सारार्थ वगेरेनां अवधारण माटे, एक विज्ञानचक्रनी (एनसाईक्लोपीडियानी) गरज सारशे एवी अमे आशा सेवीए छीए अने प्रस्तुत ग्रंथमां छद्मस्थता, अनुपयोग, प्रेसदोष आदि कारणोथी जे कांई शास्त्रविरुद्ध लखायुं होय, तेनो अमे 'मिच्छामि दुक्कडं' दईए छीए।

आ ग्रंथनुं निमित्त पामीने भव्य आत्माओमां सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यनी निर्मलता सदा वृद्धिने पामती रहे, ए ज मंगल कामना।

भाद्रपद वद, १३ वि. सं. २०१८
विलेपारले, मुंबई, ५६ (A S)
ता. २६-९-६२

निवेदक
पं. अमृतलाल ताराचंद दोशी
मंत्री, श्री जैन साहित्य विकास मंडळ



यन्त्र-चित्र-सूचि

ग्रंथनी शरुआतमां आपेल प्रथम छ चित्रोनो अनुक्रमः—

ग्रंथमांथी सूचित थता तथा अन्य यंत्र-चित्रोनो अनुक्रमः—

पंचमंगलमहासुयक्खंधो

卐 (नमुक्कारो) 卐

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाण
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व-साहूणं
एसो पंच- नमुक्कारो
सव्व-पाव-प्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसि
पढमं हवइ मंगलं





मथुरास्तूपद्वारसुशोभनविभूपितपञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धसूत्रम्

यन्त्र-चित्र परिचय

ग्रंथनी शरूआतमां आपेल प्रथम छ चित्रोनो क्रमानुसार परिचयः—

(१) पुरुषादानीय प्रभु श्रीपार्श्वनाथः [नीलवर्णीय]

आ कलामय अने मनोहर चित्र चित्रकार श्रीरमणलाले अहीं संस्था (जैन साहित्य विकास मंडळ मुंबई) मां पोतानी कल्पनाथी दोरेल छे। चित्रनी मुखाकृति अत्यन्त भाववाही अने आकर्षक होवाथी अत्रे रजू करवामां आवेल छे।

(२) श्री पद्मावती देवी

नालन्दा (विहार) ना एक देवीना चित्र उपरथी चित्रकार पासे योग्य फेरफार करावी अहीं पद्मावती देवीरूपे रजू करवामां आवेल छे।

(३) परितोमधुरास्तूपद्वारसुशोभनविभूषितपञ्चमङ्गलमहाश्रुतस्कन्धसूत्रम्

विन्सेन्ट ए. स्मिथ रचित "The Jaina Stupa and other Antiquities of Mathura (Archaeological Survey of India, New Imperial Series Volume XX: published in 1901) नामना परिचयात्मक ग्रंथनी प्लेट नं. XII परथी आ चित्र तैयार करवामां आव्युं छे। जेवुं छे एवुं ज प्रवेशद्वार दोरवामां आव्युं छे, फक्त नीचे तेनी बे बाजुए बनावेल रक्षिकाओ आ प्लेटमां नथी। स्तूपना आ प्रवेशद्वारनी उपर तोरण छे अने तेनी उपर बन्ने बाजु 'तिलकरत्न' छे, जे 'अष्टमंगल' पैकी एक मंगल छे। आवुं 'तिलकरत्न' आ सिवाय बीजी घणी प्लेटोमां (दा. त. VI, VII, X, XI) जोवा मळे छे। बे 'तिलकरत्न'नी वच्चे 'श्रीवत्स' मूकवामां आवेलुं छे। प्रवेशद्वारनी वच्चे नमस्कारनो मूल पाठ सुशोभित रीते स्थापित कर्यो छे। आ चित्रनी प्लेटने मथाळे नीचे प्रमाणे लखेलुं छे :—

"Āyāgapata or 'Tablet of Homage' The gift of Śivayaśā the wife of the Dancer Phaguyaśā"

(४) श्री श्रेयांसनाथ भगवान्

संस्थाना माननीय प्रमुख शेठ श्रीअमृतलाल कालिदास दोशीना विलेपार्लेना गृहमंदिरमां श्री श्रेयांसनाथ भगवाननी १३ इंच प्रमाण पंच धातुनी सुशोभित अने भव्य प्रतिमा मूलनायक तरीके विराजमान छे। तेनो परिकर अत्यन्त मनोहर अने कलापूर्ण छे। तेनुं समग्र चित्र अत्रे रजू करवामां आवेल छे। ते प्रतिमानी पाछळनो लेख नीचे प्रमाणे मळे छे :—

संवत् १५७९ वर्षे वैशाख सुदि ६ सोमे श्रीपत्तनवास्तव्य श्रीश्रीमालीज्ञातीय श्रे. ठाकरसी भार्या खीमाई सुत वाधाकेन श्रीश्रेयांसनाथ बिम्बं कारापितं। प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः ॥ श्रीः * ॥

---

* नोट—परिकरना उपरना भागनो पाछलो (१) लेख अने नीचेना भागनो पाछलो (२) लेख नीचे प्रमाणे छे :—

(१) संवत् १५७९ वर्षे वैशाख सुदि ६ सोमे श्रीपत्तनवास्तव्य श्रीश्रीमालीज्ञातीयपूर्वज श्रे. सूरा श्रे. सांगण श्रे. मुलासी। श्रे. देपालान्वयनभो. नमोमणि पुण्यपुण्यकार्यकारण दक्ष श्रे. ठाकरसी भार्या खीमाई सुतश्रे. वाधाकेनात्मजभ्रातृ श्रे. सिंहा श्रे. मेवा भ्रातृव्य श्रे. मुजवळ श्रे. नाकरखुसा सुत श्रे. हीरजी वीरा प्रमुख कुटुंबयुतेन श्रीश्रेयांसनाथबिम्बं कारापितं स्वश्रेयसे। प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः ॥ श्रीः ॥

(२) संवत् १५७९ वर्षे वैशाख सुदि ६ सोमे श्रीपत्तनवास्तव्य श्रीश्रीमालीज्ञातीय श्रे. ठाकरसी भार्या खीमाई सुत वाधाकेन भार्या मनाई सुत हीरजी वीरजी प्रमुख कुटुम्बयुतेन श्री श्रेयांसनाथस्य सिंहासनं कारापितं निर्भरभक्तिभरेण प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीः ॥

(५) मथुरायागपटमध्यस्थापितमङ्गलसूत्रपाठः

आ चित्र पण उपर्युक्त विन्सेन्ट ए. स्मिथना ग्रंथमांनी प्लेट VII परथी तैयार करवामां आव्युं छे। आ आयागपट छे, जेमां वच्चेनी जग्याए श्री अरिहंत भगवन्त पद्मासने स्थित छे। तेओ ध्यानमुद्रामां दीन ■ अने शिरपर छत्र शोभी रह्यु छे। तेमनी आजुबाजु चार तिलकरत्न हता ते न होवां तेनी जगाए अहीं 'चत्तारि मंगल' आदिनो मूळ पाठ मूकेल छे।

आ आयागपटनी उपरनी बाजुए चार अने नीचेनी बाजुए चार—एम मळी कुल आठ मंगल आपेलां छे। खूब ज प्रचलित एवा आ 'अष्टमंगल' जैन रीतिनां अति प्राचीन प्रतीको छे। आनाथी प्राचीन अने आवी सारी रीते एक साथे जळवायेल 'अष्टमंगल' हजु सुधी मीजे क्याय मळ्या नथी। डॉ. उमाकान्त पी. शाहे पोताना 'Studies in Jaina Art' नामक कलाग्रन्थमां आ मंगलोनु नीचे प्रमाणे नामकरण कर्युं छे:—

उपरनी हरोळ (जमणी बाजुएथी)—

(१) A pair of Fish (मत्स्ययुगल-मत्स्ययुग्म)

(२) A heavenly Car (पवनशावदी)

(३) A Srivatsa Mark (श्रीवत्स)

(४) A Powder Box (शरावसंपुट)

नीचेनी हरोळ (जमणी बाजुएथी)—

(५) A Tilakaratna (तिलकरत्न)

(६) A Full Blown Lotus (पुष्पचंगेरिका-पुष्पगुच्छ)

(७) An Indrayasti or Vaijayanti (इन्द्रयष्टि व वैजयन्ती)

(८) A Mangal-Kalaśa (Auspicious Vase) (मंगल-कलश)

मूलपाठनी बे बाजु आपेल लांबो "Persian Achaemenian" रीतिना छे अने प्रत्येक स्तम्भनी उपर तथा नीचे भिन्न भिन्न प्रतीको आपेल छे। जमणी बाजुना स्तंभनी सौथी उपर 'धर्मचक्र' छे अने डाबी बाजुना स्तम्भनी उपर 'कुंजर' (हाथी) कडारेल छे। बन्ने स्तंभोनी नीचे पण जुदां जुदां बे प्रतीको छे। आ चारे प्रतीकोनी भिन्नता शिल्पनी दृष्टिए विचारणीय लागे छे।

जे परथी आ चित्र तैयार कर्युं छे ते प्लेट न. VII ने मथाळे नीचे प्रमाणे लखेलुं छे:—

"Ayagapata or 'Tablet of Homage or of Worship', Set up by Sihanandika for the Worship of the Arhats."

(६) पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारप्रथितरम्यसूत्रपटी

श्रीनमस्कारमंत्रना पांच पदोना पडिमात्रानो पाठ गूथणीमां आवे तेवी रीते अति मनोहर रंगीन पाटी गूथी छे, एनु आ चित्र छे। ते संवत १७३९ ना भादरवा वदि पांचमना दिवसे गूथी छे एवुं तेमां दर्शाव्युं छे। आ पाटी चार फूट लांबी अने पोणो इंच पहोळी छे अने तेमां अक्षरो सिवाय आगळ पाछळ सुशोभनो छे। ते सुशोभनो शाना संकेत छे ए समजातु नथी।

ग्रंथमांथी सूचित थता तथा अन्य ओगणीस यंत्र-चित्रोनो परिचयः—

(७) ॐकारवाचककलापरमेष्ठिपञ्चकस्वरूप. (पृ. ४ A)

शेठ श्री अमृतलाल कालिदास दोशीना जामनगरना संग्रहमांनी एक पाटलीना चित्र उपरथी योग्य फेरफार साथे आ चित्र चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(८) सरस्वतीदेवी (पृ. १२ A)

'Epics Mythes and Legends of India' by P. Thomas नामक पुस्तकना पृ. १०२ पर आवेल सरस्वती देवी (Plate No. LXII) ना आधारे संस्थामां योग्य फेरफार साथे चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे।

चित्रनी नीचे British Museum एम लखेल छे।

(९) ॐ ह्रीँ वाच्यार्थस्वरूपदर्शकचित्रम् [ॐ ह्रीँ अर्हँनी पाटली] (पृ. १६ A)

आ पण उपर्युक्त जामनगरनी पाटलीना चित्र उपरथी योग्य फेरफार साथे चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(१०) कलामय 'अर्हँ' मङ्गलपाठः (पृ. २४ A)

आ चित्रकारनी पोतानी कल्पनानुसार चितरावी ने अहीं रजू करेल छे।

(११) संभेदप्रणिधानदर्शको अर्हँकारः (पृ. ३४ A)

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत सिद्धहेमशब्दानुशासनना मंगलाचरणमां अर्हँ उपरना स्वोपज्ञशब्दार्णवन्यासमां निर्दिष्ट संभेद प्रणिधाननी व्याख्यानुसार आ चित्र संस्थामां चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे। जुओ-प्रस्तुत ग्रंथ पृ. ३५ नो छेल्लो पॅरेग्राफ।

(१२) ऋषिमण्डलयन्त्रम् (पृ. ४० A)

श्रीसिंहतिलकसूरिए निर्दिष्ट करेल आम्नायानुसार तेमज बीजा अनेक यन्त्रो सामे राखी जे फेरफार **पू. पं. श्री धुरंधरविजयजी गणिवरने** आवश्यक जणायो ते अनुसार संस्थामां चितरावी आ चार रंगवाळुं चित्र प्रेस प्रोसेस स्टुडीओमां तैयार करावी अहीं रजू करवामां आवेल छे। आ भव्य चित्र अतीव मनोहर बनी शक्युं छे।

(१३) समवसरणरचनास्थित ॐ ह्रीँ अर्हँ स्वरूपम् (पृ. ७४ A)

शेठ श्री **अमृतलाल कालिदास दोशीना** अंगत संग्रहमांना एक यन्त्र-चित्र उपरथी योग्य फेरफार साथे चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(१४) उपासनादर्शकपञ्चपरमेष्ठिचित्रम् (पृ. ९४A)

श्री पञ्चपरमेष्ठि भगवंतोनी विविध उपासना तथा आराधनाना चित्रो तथा अष्टमंगलना चित्रो सहित श्री नमस्कारनो मूलपाठ संस्थामां चित्रकार पासे वे रंगमां चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(१५) परमेष्ठि विद्यायन्त्रम् (पृ. ११० A)

श्रीसिंहतिलकसूरिविरचित '**परमेष्ठिविद्यायन्त्रकल्प**' मां निर्दिष्ट आम्नायानुसार संस्थामां चितरावीने अहीं रजू करवामां आवेल छे। जुओ प्रस्तुत ग्रन्थ पृ. १११ थी १२६ सुधी।

आलेखन पंचक

समयज्ञता, दृढचारित्र्य वगेरे गुणसपद्वाळा गुरुओना स्वहस्ताक्षररूपे पंचमगल महाश्रुतस्कन्ध सूत्र अने तेनी साथे तेओश्रीनी प्रतिकृति—आ बन्ने एक सुदर कलामय पत्रिका के जेमा अरिहंतदेवनी प्रतिकृति चित्रित होय तेमा जो रजू करवामा आवे तो ग्रथनी शोभामा घणी ज अभिवृद्धि थाय अने ग्रन्थ विशेष आदरणीय बने तथा ए प्रकारे चित्रमा देव, गुरु अने धर्मनो सुमेळ सधाय—अेवो विचार आ ग्रथना **प्रयोजक शेठ श्री अमृतलालभाईना** मनमा स्फुर्यो अने ते विचारने अमल्मां मूकवाने शेठ श्री स्वयं पूज्य गुरुवर्योने मल्या अने विनति करी। जे उपरथी आलेखन पचक रजू करवामा आवेल छे। तेनो सामान्य परिचय नीचे मुजब छे :—

(१६) सिद्धान्तमहोदधि पूज्यपाद आचार्य भगवंत श्री विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराज अने तेओश्रीना हस्ताक्षरमा '**पंचमंगल महासुयक्खंध सुत्तं**' (पृ. १२६ A)

सकलागमरहस्यवेदी, कर्मसाहित्यना परम अभ्यासी, परमशान्तविभूति वात्सल्यमूर्ति, करुणासिंधु, स्वय पचाचारनु सर्वांगसुदर परिपालन करनारा अने अनेक भव्य आत्माओने तेमा जोडवानी अद्भुत सिद्धिने वरेला, श्रीजिनशासनगगनदिवाकर, सुगृहीतनामधेय, प्रात स्मरणीय परमाराध्यपाद आचार्य शिरोमणि श्रीविजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजनी प्रतिकृति तथा तेओश्रीए कृपा करीने लखी आपेलो 'पंचमंगलमहाश्रुतस्कन्ध'सूत्रनो ते ज स्वरूपे पाठ। ए आचार्य भगवतनी मरथा उपरनी महान् कृपाना कारणे प्रस्तुत ग्रंथने वर्तमानरूपमा लाववामा पू. मुनिवर्य श्री तत्त्वानंदविजयजीनी अमने घणी ज सारी सहाय मळी छे।

(१६) आगमप्रभाकर पू. मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराज अने तेओश्रीना हस्ताक्षरमा '**पचमंगलमहासुयक्खंध सुत्तं**' (पृ. १८२ A)

प्राचीन ज्ञानभण्डारोना महान् उद्धारक, सरक्षक अने सशोधक, जैनागमनिष्णात, समयज्ञ महापुरुष मुनिराज श्री पुण्यविजयजी महाराजनी प्रतिकृति तथा तेओश्रीए कृपा करीने लखी आपेलो 'पचमगलमहासुयक्खधसुत्तं' नो ते ज स्वरूपे पाठ।

(१८) विद्वद्वर्य पू. पन्न्यासप्रवर श्रीधुरंधरविजयजी गणिवर अने तेओश्रीना हस्ताक्षरमां '**श्रीनवकार महामंत्रः**' नो पाठ (पृ. १८८ A)

परम पूज्य आचार्य श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराजना प्रशिष्य संस्कृत प्राकृतना प्रौढ विद्वान् तथा अनुष्ठानकुशल पू. पन्न्यासप्रवर श्रीधुरधरविजयजी गणिवर्यनी प्रतिकृति तथा तेओश्रीए कृपा करीने लखी आपेलो 'श्रीनवकार महामत्र'नो ते ज स्वरूपे पाठ।

(१९) षड्दर्शननिष्णात पू. मुनिराज श्रीजंबूविजयजी महाराज अने तेओश्रीना हस्ताक्षरमा '**श्रीपञ्चपरमेष्ठिनमस्कारमहामन्त्रः**' (पृ. १९२ A)

प. पू. मुनिराज श्रीभुवनविजयान्तेवासी, भारतीय दर्शनोना प्रखर अभ्यासी, भोट भाषाना मर्मज्ञ, प्रखर मेधावी मुनिराज श्रीजंबूविजयजी महाराजनी प्रतिकृति तथा तेओश्रीए कृपा करीने लखी आपेलो 'श्रीपञ्चपरमेष्ठिनमस्कार-महामत्र'नो ते ज स्वरूपे पाठ।

(२०) प. पू. पंन्यासप्रवर श्रीभानुविजयजी गणिवर्यना हस्ताक्षरमा '**सिरिपंचमंगलमहासुय-क्खंधसुत्त**' तथा **पू. मुनिराज श्रीतत्त्वानंदविजयजी महाराजना** हस्ताक्षरमा '**अरिहंत**' मत्रनो लेखित जाप (पृ. १९८ A)

प. पू. पन्न्यासजी महाराज श्री भानुविजयजी गणिवर्ये कृपा करीने लखी आपेलो 'सिरिपंचमगलमहासुय-क्खध सुत्त' नो तेज स्वरूपे पाठ अने तेओश्रीना अन्तेवासी संस्कृत अने प्राकृतना परम उपासक, ध्यान विषयना अभ्यासी मुनिराज श्री तत्त्वानदविजयजी महाराजे कृपा करीने लखी आपेलो '**अरिहंत**' मन्त्रनो लेखित जाप।

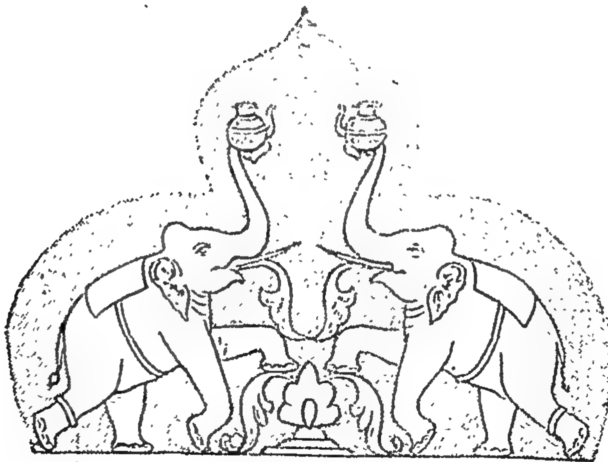
(२१) सिद्धचक्रम् (दिगम्बरीय नवदेवतानी धातु प्रतिमा) (पृ. २२० A)
आ एक प्राचीन दिगम्बरीय चित्र उपरथी योग्य फेरफार साथे चितरावी अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(२२) नंदीश्वरद्वीपपटः (पृ. २४० A)
राणकपुरना धरणविहार प्रासादमां रहेला नंदीश्वरपटना एकचित्र उपरथी संस्थामां चित्रकार पासे योग्य फेरफार करावी चितरावीने अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(२३) श्रीमहावीर स्वामी (काउस्सग्गध्यानमां) (पृ. २५० A)
तालध्वज (तळाजा-सौराष्ट्र) गिरि उपर मुख्य देरासरनी बाजुए एक उभी काउस्सग्गीया भगवाननी मूर्ति छे। पगनी नीचे जमणी बाजु एक यक्ष तथा डाबी बाजु अंबिका देवी छे। प्रभुनी मूर्ति नीचे लांछन नथी परन्तु बन्ने बाजु सिंहनी आकृति होवाथी चित्रकारे वच्चमां सिंहनी आकृति लांछन तरीके मूकी महावीर स्वामीनी मूर्ति कल्पीने ते प्रमाणे चितरी छे। जे अहीं रजू करवामां आवेल छे।

(२४) श्रीबाहुबलिजी (काउस्सग्गध्यानमां) (पृ. २९२ A)
श्रीगोमटेश्वर बाहुबलिना चित्र उपरथी योग्य फेरफार साथे चित्रकार पासे चितरावीने अहीं रजू करेल छे।

(२५) श्रीचतुर्विंशतिजिनरम्यपटः (पृ. २९८ A)
प्रभासपाटणना चिन्तामणि पार्श्वनाथना देरासरमां डाबी बाजुना एक चोवीसीना चित्र उपरथी चित्रकारनी कल्पनानुसार चितरावीने अहीं रजू करेल छे।



अमारां प्रकाशनो

(प्रयोजक : अमृतलाल कालिदास दोशी, बी. ए.)

१	श्रीप्रतिक्रमण–सूत्र प्रबोधटीका, भाग पहेलो (बीजी आवृत्ति)	रू.	५=००
२	श्रीप्रतिक्रमण–सूत्र प्रबोधटीका भाग बीजो	रू.	५=००
३	श्रीप्रतिक्रमण–सूत्र प्रबोधटीका भाग त्रीजो	रू.	५=००
४	श्रीप्रतिक्रमणनी पवित्रता (बीजी आवृत्ति–अप्राप्य)	रू.	०=३७
५	श्रीपंचप्रतिक्रमण–सूत्र (प्रबोधटीकानुसारी) शब्दार्थ, अर्थसंकलना, तथा सूत्र–परिचय साथे (अप्राप्य)	रू.	२=००
६	सचित्र सार्थ सामायिक–चैत्यवन्दन (प्रबोधटीकानुसारी—अप्राप्य)	रू.	०=५०
७	योगप्रदीप (प्राचीन गुजराती बालावबोध अने अर्वाचीन गुजराती अनुवादसहित)	रू.	१=५०
८	तत्त्वानुशासन (गुजराती अनुवादसहित)	रू.	१=००
९	ध्यानविचार (गुजराती अनुवादसहित)	रू.	......
१०	नमस्कार स्वाध्याय (प्राकृत विभाग) (अप्राप्य)	रू.	२०=००
११	नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग)	रू.	१५=००
१२	A Comparative Study of the Jaina Theories of Reality and Knowledge	रू.	१०=००

—: छपाय छे :—

१३ मातृका प्रकरण

१४ नमस्कार–स्वाध्याय (अपभ्रंश–हिंदी–गुजराती विभाग)

१५ योगसार

१६ मन्त्रराज रहस्य

जैन साहित्य विकास मंडळ

इरला ब्रीज, ११२ घोडबंदर रोड

विलेपारले, मुंबई–५६ (A.S.)



श्री श्रेयांसनाथ भगवान (गृहमंदिर, 'ज्योत' विलेपार्ले)

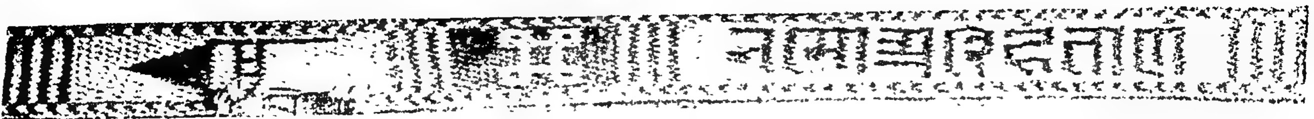
चत्तारि मंगलं – अरिहंता मंगलं,
सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं,
केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं॥

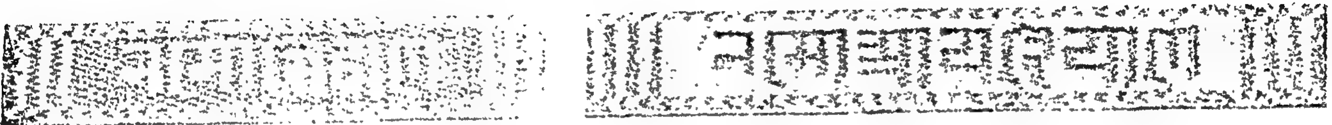
चत्तारि लोगुत्तमा –
अरिहंता लोगुत्तमा,
सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा,
केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो॥

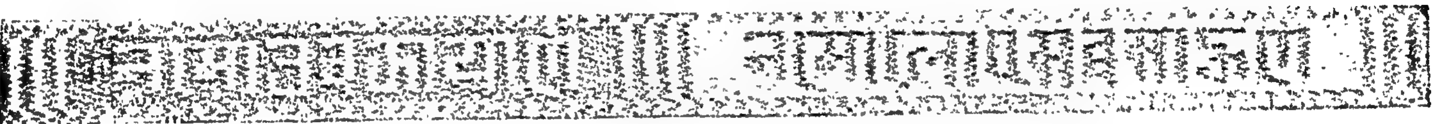


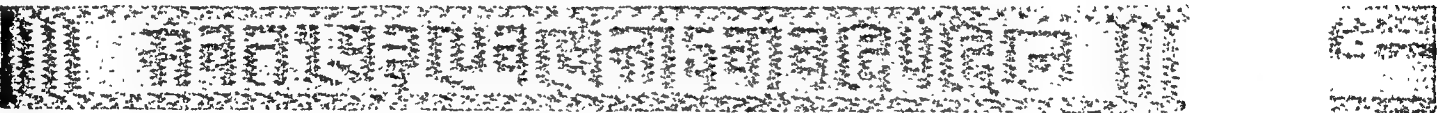
चत्तारि सरणं पवज्जामि –
अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि॥

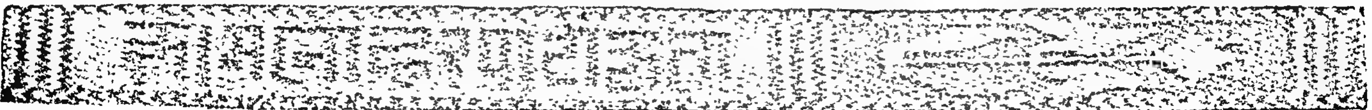
मथुरायागपटमध्यस्थापितमङ्गलपाट.











पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारग्रथितरम्यसूत्रपटी
(शेठ कान्तिलाल ईश्वरलालना सौजन्यथी)

॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

नमस्कार स्वाध्याय

(संस्कृत विभाग)

[४६-१]*

नमस्कारमन्त्रस्तोत्रम्

(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

विश्लिष्यन् घनकर्मराशिमशनिः संसारभूमिभृतः
स्वर्निर्वाणपुरप्रवेशगमने निष्प्रत्यवायः सताम् ।
मोहान्धावटसङ्कटे निपततां हस्तावलम्बोऽर्हतां,
पायाद् वः[1] सचराचरस्य जगतः सञ्जीवनं मन्त्रराट् ॥ १ ॥

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

एकत्र पञ्चगुरुमन्त्रपदाक्षराणि, विश्वत्रयं पुनरनन्तगुणं परत्र ।
यो धारयेत्[2] किल तुलानुगतं तथापि, वन्दे महागुर्वरं[3] परमेष्ठिमन्त्रम् ॥ २ ॥
ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ताः ।
तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वाऽमुमेव हि गता शिवमत्र लोकाः ॥ ३॥

अनुवाद

घनघाति कर्मना समूहने विखेरी नाखनार, भवरूपी पर्वतने (भेदवा) माटे वज्र समान, सत्पुरुषोने स्वर्ग अने मोक्षपुरीमां प्रवेश करवाना मार्गमां रहेला विघ्नोने दूर करनार, मोहरूप अंधकारमय कूवाना संकटमां पडेलाओने माटे हाथना टेकारूप अने सचराचर जगतने माटे संजीवनरूप अर्हतोनो मंत्रराज (नमस्कार महामंत्र) तमारुं कल्याण करो ॥ १ ॥

एक पल्लामां 'पंचगुरुमंत्र' (नमस्कार मंत्र)ना पदना अक्षरो अने बीजा पल्लामां अनंतगुण करेला एवा त्रणे लोक, एम बंनेने जो त्राजवामां धारण करवामां आवे, तो पण जेनो भार घणो वधारे थाय एवा परमेष्ठिमंत्रने हुं नमस्कार करुं छुं ॥ २ ॥

जे कोई पण सुषमादि अनन्त आराओ अने उत्सर्पिणी (अवसर्पिणी) वगेरे कालचक्रो व्यतीत थया, ते बधामां पण आ मंत्रराज सर्वोत्तम अने विस्तृत—प्रख्यात प्रभाववाळो हतो। आ मंत्रने प्राप्त करीने ज भव्य लोको मोक्षमां गया छे ॥ ३ ॥

---

१. पायान्नः । २. धारयेदिव । ३. महागुरुतरं ।

* आ पहेलां प्रकट थयेल "नमस्कार स्वाध्याय—प्राकृत विभाग"मां कुल ४५ स्तोत्रो आपवामां आव्यां हतां अने सळंग क्रम जाळवी राखवानी दृष्टिए तेना अनुसंधानमां आ "नमस्कार स्वाध्याय—संस्कृत विभाग"मां नं. ४६ थी शरुआत करवामां आवी छे ।

(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

उत्तिष्ठन् निपतन् चलन्नपि धरापीठे लुठन् वा स्मरे-
ज्जाग्रद् वा प्रहसन् स्वपन्नपि वने बिभ्यन्निषीदन्नपि ।
गच्छन् वर्त्मनि वेश्मनि प्रतिपदं कर्म प्रकुर्वन्नमुं
यः पञ्चप्रभुमन्त्रमेकमनिशं किं तस्य नो वाञ्छितम् ॥ ४ ॥

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

सङ्ग्राम-सागर-करीन्द्र-भुजङ्ग-सिंह-
दुर्व्याधि-वह्नि-रिपु-बन्धनसम्भवानि ।
चौर-ग्रह-भ्रम-निशाचर-शाकिनीनां
नश्यन्ति पञ्चपरमेष्ठिपदैर्भयानि ॥ ५ ॥

(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

यो लक्षं जिनबद्धलक्ष्यहृदयः सुव्यक्तवर्णक्रमः
श्रद्धावान् विजितेन्द्रियो भवहरं मन्त्रं जपेच्छ्रावकः ।
पुष्पैः[4] श्वेतसुगन्धिभिः सुविधिना लक्षप्रमाणैरमुं
यः सम्पूजयते स विश्वमहितस्तीर्थाधिनाथो भवेत् ॥ ६ ॥

ऊठतां, पडतां, चालतां, भूमि पर आळोटतां, जागतां, हसतां, सूतां, वनमां भय पामतां, बेसतां, मार्गमां के घरमां जतां प्रत्येक डगले अने प्रत्येक काम करतां जे आ पंचपरमेष्ठिमंत्रनुं निरंतर स्मरण करे, तेना कया मनोरथनी सिद्धि न थाय? ॥ ४ ॥

पञ्चपरमेष्ठिना पदो वडे रण-संग्राम, सागर, गजेन्द्र, सर्प, सिंह, दुष्टव्याधि, अग्नि, शत्रु अने बंधनथी उत्पन्न थता भयो तथा चोर, ग्रह, भ्रम, राक्षस अने शाकिनीना भयो दूर भागी जाय छे ॥ ५ ॥

श्री जिनेश्वर भगवानने विषे बद्धलक्ष्य छे हृदय जेनुं (अर्थात् श्री जिनेश्वर भगवंतरूप ध्येयमां एकाग्र मनवाळो), सुस्पष्ट वर्णक्रमवाळो (अर्थात् जेनो नमस्कार महामंत्रना वर्णोना उच्चारादिनो क्रम सूत्रोच्चारणना गुणोथी युक्त छे एवो), श्रद्धावान अने जितेंद्रिय एवो जे श्रावक भवनाशक एवा आ मंत्रनो एक लाख श्वेत सुगंधी पुष्पोवडे सुंदर विधिपूर्वक जाप करे अने पूजा करे, ते विश्वपूज्य तीर्थंकर थाय। (श्रीपार्श्वनाथ अथवा श्री शांतिनाथ भगवंतनी प्रतिमानी एक लाख श्वेत सुगंधी पुष्पोवडे पूजा करे; एक एक पुष्प प्रभु पर चढावती वखते एक एक नवकारनो जाप करे, एवुं विधान छे। आ विधाननुं वर्णन प्रस्तुत ग्रंथना त्रीजा भागमां आवशे) ॥ ६ ॥

---

१. प्रकुर्वन्निमान् । २. लक्ष्यहृदय । ३. स्वव्यक्तवर्णक्रमम् । ४. श्वेतैः पुष्प सुगन्धिभिः ।

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

इन्दुर्दिवाकरतया रविरिन्दुरूपः
पातालमम्बरमिला सुरलोक एव ।
किं जल्पितेन बहुना भुवनत्रयेऽपि
यन्नाम तन्न विषमं च समं च न स्यात् ॥ ७ ॥

जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं तदैवं
विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनाऽस्मात् ।
तत् सर्वलोकभुवनोद्धरणाय धीरै-
र्मन्त्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदत्र ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

हिंसावाननृतप्रियः परधनाऽऽहर्ता परस्त्रीरतः
किश्चान्येष्वपि लोकगर्हितमतिः पापेषु गाढोद्यतः ।
मन्त्रेशं यदि संस्मरेच्च सततं प्राणात्यये सर्वदा
दुष्कर्मार्हितदुर्गतिक्षतचयः स्वर्गीभवेन्मानवः ॥ ९ ॥

आ महामंत्रना प्रभावथी चंद्र सूर्यरूपे अने सूर्य चंद्ररूपे, पाताल आकाशरूपे (अने आकाश पातालरूपे) अने पृथ्वी देवलोकरूपे (अने देवलोक पृथ्वीरूपे) थई शके। वधारे कहेवाथी शुं ? त्रण जगतमां एवी कई वस्तु छे के जे ए मंत्रथी विषमनी सम के समनी विषम न थई शके ? (अर्थात् आ पंचपरमेष्ठि-मंत्रना प्रभावथी वस्तुने जे रूपे वदलाववी होय ते रूपे वदलावी शकाय.) ॥ ७ ॥

ज्यारे श्री जिनेश्वर भगवंतो मोक्षमां गया त्यारे, "अमारा विना अहीं विचारा आ जगतनुं शुं थशे ?", (एवी करुणाथी) धीर एवा तेओ सर्व जगतना जीवोना उद्धार माटे पोताना मंत्रात्मक शरीरने अहीं मूकता गया छे ॥ ८ ॥

हिंसा करनार, असत्यप्रिय, पारकुं धन हरण करनार, परस्त्रीमां आसक्त तथा बीजा पण पापोमां अत्यंत तत्पर अने लोकोए जेनी बुद्धिनी निंदा करी छे एवो पुरुष पण जो मरण वखते आ मंत्रनुं सर्वदा सतत स्मरण करे तो ते दुष्कर्मथी प्राप्त करेल दुर्गतिना संचयनो (दुर्गति प्रायोग्य कर्म समूहनो) क्षय करीने देव थाय छे ॥ ९ ॥

---

१. सदैव। २. अशेष्वपि।

(शिखरिणीवृत्तम्)

अयं धर्मः श्रेयानयमपि च देवो जिनपति-
र्व्रतं चैतन् श्रीमानयमपि च यः सर्वफलदः।
किमन्यैर्वाग्जालैर्बहुभिरपि संसारजलधौ
नमस्कारात्तत् किं यदिह शुभरूपं न भवति ॥ १० ॥

स्वपञ्¹ जाग्रन् तिष्ठन्नपि पथि चलन् वेश्मनि सरन्²,
भ्रमन् क्लिश्यन् माद्यन् वन-गिरि-समुद्रेष्ववतरन्।
नमस्कारान् पञ्च स्मृतिखनिखातानिव सदा
प्रशस्तैर्विन्यस्तानिव वहति यः सोऽत्र सुकृती ॥ ११ ॥

आ नमस्कार कल्याणकारी धर्म छे, जिनेश्वरदेव पण ए छे, व्रत पण ए छे अने जे सर्व फळोने आपे छे ते श्रीमान पण ए छे। बीजा घणा वाक्प्रपंचोथी शुं¹ आ संसारसमुद्रमां एवुं शुं छे के जे आ नमस्कारमंत्रथी* शुभरूप न थतुं होय? ॥ १० ॥

जे सूता, जागता, ऊभा रहेता, रस्तामां चालतां, घरमां पेसतां, (स्खलना पामतां) फरतां, दुःखी थतां, प्रमाद आवी जतां, अथवा जंगल, पर्वत के समुद्रोने पार करतां, पूज्य पुरुषोए उपदेशेला पांच नमस्कारोने जाणे स्मृतिना आंतरिक नादवडे मनमां कोराई गया होय (?) तेम धारण करे छे ते अहीं भाग्यशाळी छे ॥ ११ ॥

परिचय

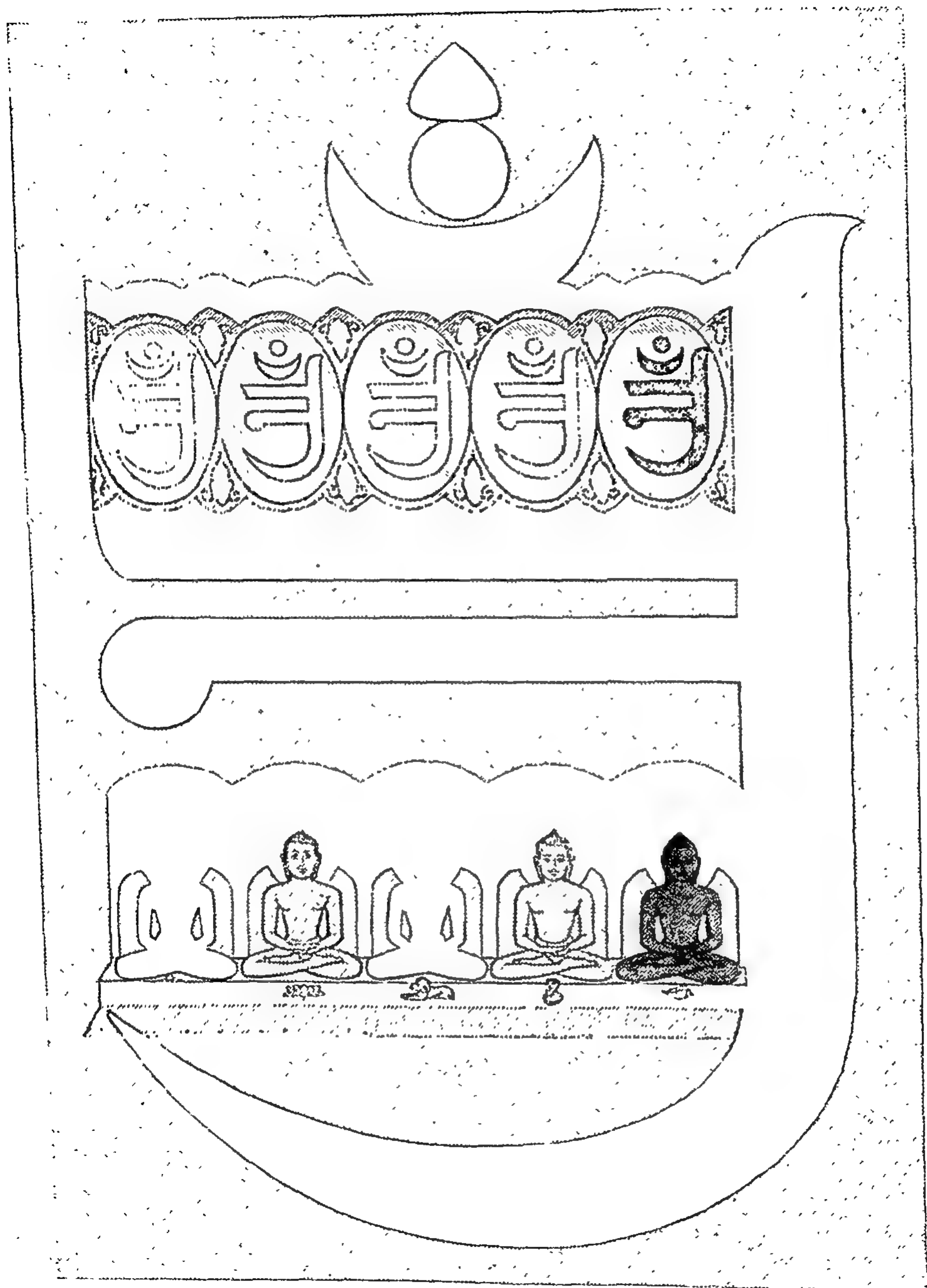
आ स्तोत्रनी बे प्रतिओ अमने मळी छे। एक आरा जैन सिद्धांत भवनना हस्तलिखित ग्रंथसंग्रहना नं० २५/१ मांथी मळी हती; ज्यारे बीजी रॉयल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ताना संग्रहमांथी 'पंचनमस्कृतिदीपक' नामना ग्रंथमांथी संग्रहरूपे मळेली हती; ते बे प्रतिओ उपरथी मूळपाठ अने पाठभेदो लईने अनुवाद साथे आ कृतिने अहीं प्रगट करी छे।

'पंचनमस्कृतिदीपक'मां आ स्तोत्रना कर्ता तरीके वाचकवर्य श्री उमास्वातिनो उल्लेख कर्यो छे। संभव छे के आ कृति तेमनी होय, छतां बीजो पुरावो न मळे त्यां सुधी आ स्तोत्रना कर्ता विशे निश्चितपणे कही न शकाय।

आ स्तोत्र प्रस्तुत ग्रंथना केटलाक स्तोत्रना सारसमुच्चयरूप जणाय छे। खास करीने आ स्तोत्रनुं आठमुं पद्य आपणुं ध्यान खेंचे छे के, "आ नमस्कार मंत्र, ते जगतना उद्धार माटे श्री अरिहंत भगवंतनो मंत्रात्मक शाश्वत देह छे।" श्री नमस्कार महामंत्रनी महान शक्तिनुं वर्णन करतां आ स्तोत्रमां कहेवामां आव्युं छे के, "ए मंत्रनी सहायथी चंद्रने सूर्य, सूर्यने चंद्र के पृथ्वीने देवलोक वगेरे बनावी शकाय।" सारांश के नमस्कारमंत्रना प्रभावादिने आ स्तोत्रमां सुंदर रीते रजू करवामां आवेल छे।

---

१. नमस्कारस्तत्तत् यदिह शुभरूपञ्च भवति। २. स्वपन्। ३. स्खलन्।
* आ संसारमां जे जे शुभरूप छे, ते ते बधुं नवकार(ना प्रभावे) ज छे।



ॐकारः परमेष्ठिपञ्चकवाचककलापञ्चकस्वरूपः

[४७-२]

'ॐ'कारविद्यास्तवनम्

प्रणवस्त्वं ! परब्रह्मन् ! लोकनाथ ! जिनेश्वर !
कामदस्त्वं मोक्षदस्त्वं 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ १ ॥
पीतवर्णः श्वेतवर्णो रक्तवर्णो हरिद्वरः ।
कृष्णवर्णो मतो देवः 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ २ ॥
नमस्त्रिभुवनेशाय रजोऽपोहाय भावतः ।
पञ्चदेवाय शुद्धाय 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ ३ ॥
मायादये नमोऽन्ताय प्रणवान्तर्मयाय च ।
बीजराजाय हे देव ! 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ ४ ॥
घनान्धकारनाशाय चरते गगनेऽपि च ।
तालुरन्ध्रसमायाते सप्रान्ताय नमो नमः ॥ ५ ॥
गर्जन्तं मुखरन्ध्रेण ललाटान्तरसंस्थितम् ।
पिधानं कर्णरन्ध्रेण प्रणवं तं वयं नुमः ॥ ६ ॥

अनुवाद

हे परमब्रह्म, लोकनाथ, जिनेश्वर ! तमे प्रणव ('ॐ'कार) स्वरूप छो। हे 'ॐ' कार ! तुं सर्व शुभ इच्छाओने पूर्ण करनार छे अने मोक्ष आपनार पण तुं ज छे; तेथी हुं तने पुनः पुनः नमस्कार करुं छुं ॥ १ ॥

जे (इष्ट) देव ('ॐ'कार)नुं ध्यान पीतवर्णमां, श्वेतवर्णमां, रक्तवर्णमां, हरितवर्णमां अथवा कृष्णवर्णमां कराय छे, ते 'ॐ'कारने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ २ ॥

जे त्रणे भुवननो स्वामी छे, जेनुं भावपूर्वक ध्यान करतां रज-कर्मनो नाश थाय छे, जे पंचदेव (पंचपरमेष्ठि) मय छे अने जे शुद्ध छे एवा 'ॐ'कारने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ ३ ॥

हे देव ! जे माया एटले 'ह्रीँ'कारनी आदिमां छे, जेना अंतमां नमः छे, जे सर्व बीजोमां अंतर्गत छे—व्याप्त छे अने जे बीजराज छे एवा प्रणवस्वरूप 'ॐ'कारने नमस्कार थाओ ॥ ४ ॥

मंत्र—'ॐ ह्रीँ नमः'

(अज्ञानरूप) गाढ अंधकारनो नाश करवा माटे गगनमां संचरता अने त्यांथी तालुरंध्रमां आवता 'स्'नी नजीकमां रहेला 'ह'कारने (?) ('ॐ'कारने) वारंवार नमस्कार थाओ ॥ ५ ॥

वळी मुखरंध्रमां गर्जता, ललाटना मध्यमां स्थिर थता अने कर्णरंध्रथी ढंकाता (?) एवा ते प्रणव-'ॐ'कारने अमे वारंवार नमस्कार करीए छीए ॥ ६ ॥

श्वेते शान्तिक-पुष्टयाख्याऽनवद्यादिकराय च।
पीते लक्ष्मीकरायापि 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ ७ ॥
रक्ते वश्यकरायापि कृष्णे शत्रुक्षयकृते।
धूम्रवर्णे स्तम्भनाय 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ ८ ॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवो देवो गणेशो वासवस्तथा।
सूर्यश्चन्द्रस्त्वमेवातः 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ ९ ॥
न जपो न तपो दानं न व्रतं संयमो न च।
सर्वेषां मूलहेतुस्त्वं 'ॐ'काराय नमो नमः ॥ १० ॥
इति स्तोत्रं जपन् वाऽपि पठन् विद्यामिमां पराम्।
स्वर्गं मोक्षं पदं धत्ते विद्येयं फलदायिनी ॥ ११ ॥
करोति मानवं विज्ञमज्ञं मानविवर्जितम्।
समानं स्यात् पंचसुगुरोर्विद्यका सुखदा परा ॥ १२ ॥

॥ इति ॐकारविद्यास्तवनम् ॥

जे श्वेतवर्णथी ध्यान करतां निर्दोष एवा शांति, तुष्टि, पुष्टि वगेरे कार्यो करे छे अने पीतवर्णथी ध्यान करतां लक्ष्मी आपे छे ते 'ॐ'कारने वारंवार नमस्कार थाओ। जे लालवर्णथी ध्यान करतां वशीकरण करे छे, कृष्णवर्णथी ध्यान करतां शत्रुनो क्षय करे छे अने धूम्रवर्णथी ध्यान करतां स्तम्भन करे छे ते 'ॐ'कारने वारंवार नमस्कार थाओ ॥७-८॥

हे प्रणव! तुं ज ब्रह्मा छे, तुं ज विष्णु छे, तुं ज शिव देव छे, तुं ज गणेश छे, तुं ज इंद्र छे, तुं ज सूर्य छे अने चंद्र पण तुं ज छे, तेथी तने वारंवार नमस्कार थाओ ॥९॥

सर्व सिद्धिओ (सुखो) नुं मूळ कारण जप नथी, तप नथी, दान नथी, व्रत नथी अने संयम पण नथी[1]; किन्तु हे प्रणव! तुं छे। तने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ १० ॥

आ स्तोत्रने जपतो अथवा आ परम विद्यानो पाठ करतो मनुष्य स्वर्ग अथवा मोक्षनी पदवी पामे छे। आ 'ॐ'कार विद्या (श्रेष्ठ) फळने आपनारी छे ॥ ११ ॥

ए अज्ञान मनुष्यने विद्वान करे छे। एनाथी मानविनानो पुरुष मानवाळो (लोकप्रिय) थाय छे। पचसुगुरुओना प्रथमाक्षरोमांथी निष्पन्न थएली आ विद्या अद्वितीय अने परम सुखदायक छे ॥ १२ ॥

---

१. अहीं व्रतादिनी हीनता बतावाई नथी किन्तु 'ॐ'कारनी श्रेष्ठता बताववा माटे व्रतादिने गौणता आपवामां आवी छे।

२. अहीं श्लोकमां दोष लागे छे.

परिचय

आ स्तोत्र ‘पंचनमस्कृतिदीपक’ नामक ग्रंथमां संग्रहीत छे अने तेमां तेनो दिगंबर जैनाचार्य ‘पूज्यपाद’ (अपरनाम श्री समंतभद्रसूरि) नी कृतिरूपे उल्लेख थयो छे। ए स्तोत्रने अहीं अनुवाद साथे प्रगट कर्युं छे।

श्रीपंचपरमेष्ठिओनो वाचक आ ‘ॐ’कार ‘अ+अ+आ+उ+म्’ ए वर्णोना योगथी बनेलो छे। तेनुं वर्णन आ स्तोत्रमां करेलुं छे।

‘ॐ’कारना ध्यान विशे अने तेना फळ विशेनी माहिती आ स्तोत्रमां आपेल छे। आ स्तोत्र ‘ॐ’कारनी व्यापकतानो सुंदर रीते ख्याल करावे छे। ॐकार परमेष्ठिभगवंतोनो एकाक्षरी मंत्र होवाथी आ ‘ॐ’कार-स्तवनने अहीं प्रकट कर्युं छे।

एक जैन ‘बीजकोश’कारे ‘ॐ’कारने आत्मवाचक मूलभूत बीज बताव्युं छे। एने तेजोबीज, कामबीज पण मानवामां आव्युं छे। पंचपरमेष्ठिनो वाचक होवाथी ‘ॐ’कारने समस्त मंत्रोनुं सारतत्त्व कहेवामां आवे छे। मात्र ‘ॐ’नो जप अथवा चिंतन करवाथी आत्मा निर्मल बने छे अने स्वानुभव थवा लागे छे। आ स्तोत्रनो पाठ अनेक रीते फलदायक छे।



श्रीजिनप्रभसूरिविरचितः

मायाबीज('ह्रीँ'कार)कल्पः

मायाबीजबृहत्कल्पात्, श्रीजिनप्रभसूरिभिः।
लोकानामुपकाराय, पूर्वविद्या प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥
सुप्रकाशे ताम्रमये, पट्टे मायाक्षरं गुरु।
कारितं परमात्मत्वममलं लभते स्फुटम् ॥ २ ॥
ध्यानाश्रयो यथाम्नायं, शुभाशुभफलोदयः।
तथाऽयं वर्णभेदेन, कार्यकाले प्रजायते ॥ ३ ॥
पूर्णायां सतिथौ शुक्लपक्षे चन्द्रबले तथा।
कारयेत् सर्वनैवेद्यं, पञ्चामृतसमन्वितम् ॥ ४ ॥
पक्वान्नान् विविधान् चान्यानानयेत् सुमनांसि च।
सर्वैः कणैः फलैः सर्वैः, सर्ववस्त्रैः क्रयाणकैः ॥ ५ ॥
सुवर्ण-रत्न-रूप्यैश्च, कर्पूरादिसुगन्धिभिः।
प्रतिष्ठादिवसे पूज्यो, मन्त्रराजः शुभाशयैः ॥ ६ ॥

अनुवाद

आचार्य भगवान श्रीजिनप्रभसूरिवडे 'मायाबीजबृहत्कल्प'माथी लोकोना उपकार माटे पूर्वविद्या कहेवाय छे ॥ १ ॥

जे सुप्रकाशित तांबाना पट उपर मोटो 'ह्रीँ'कार करावे ते निर्मल एवा परमात्मपणाने निश्चयथी पामे छे (?) ॥ २ ॥

कार्यकाले आम्नायने अनुसारे (विधिपूर्वक) जुदा जुदा वर्णोथी ध्यान करातो आ (मन्त्रराज) शुभाशुभ फलना (?) उदयने करनारो थाय छे ॥ ३ ॥

शुक्लपक्षनी शुभ एवी पूर्णा (५, १०, १५) तिथिओमां तेमज उत्तम प्रकारना चंद्रबलमां पञ्चामृतथी सहित सर्व प्रकारनु नैवेद्य, विविध प्रकारना पक्वान्नो करावतां तथा सुंदर पुष्पो मगावतां ते सर्व वडे, अने सर्व धान्यो वडे, सर्वफळो वडे, सर्ववस्त्रो वडे, सर्वक्रयाणको वडे (?), सोनुं, रत्न अने चांदी वडे, कपूर वगेरे सुगंधी द्रव्यो वडे प्रतिष्ठाना दिवसे शुभ आशयोसहित मन्त्रराज 'ह्रीँ'कारनी पूजा करवी ॥ ४–६ ॥

---

१ दूध, दहीं, घी, साकर (इक्षुरस) अने गंधोदक (केसर, कपूर वगेरे सुगंधी द्रव्योथी मिश्रित जल) ने पंचामृत कहेवाय छे.

आम्नायदायकं नत्वा, दानैः सत्कृत्य तं गुरुम् ।
प्रतिष्ठाप्यः परो मन्त्रेणानेनैव विपश्चिता ॥ ७ ॥

सर्वमन्त्रमयत्वाच्च, सर्वदेवमयत्वतः ।
नान्यमन्त्रस्य संन्यासमयमर्हति तीर्थराट् ॥ ८ ॥

कृतस्नानेन सद्धर्म(ब्रह्म)चारिणा चैकभोजिना ।
साधकेन सदा भाव्यं, विजने भूमिशायिना ॥ ९ ॥

षट्कर्मणां विधानार्थं, जागर्ति यस्य मानसम् ।
प्रत्येकं पूर्वसेवायां, लक्षस्तेन विधीयते ॥ १० ॥

सितश्रीखण्डलुलितः, सितवस्त्रः सिताशनः ।
सितसद्ध्यानजापस्रक्, सितजापाङ्गसंयुतः ॥ ११ ॥

सितपक्षे सुधाश्वेते, गृहे फलमयं(मिदं) भवेत् ।
विपद्-रोगहर्तिं शान्तिं, लक्ष्मीं सौभाग्यमेव च ॥ १२ ॥

बन्धमोक्षं च कान्तिं च, क्रमात् काव्यं नवं तथा ।
पुरक्षोभं सभाक्षोभमाज्ञैश्वर्यमभङ्गुरम् ॥ १३ ॥

आम्नाय आपनार गुरुने नमस्कार करीने अने उचित दानथी तेमनो सत्कार करीने विद्वान् पुरुषे आ ज ('ह्रीँ'कार) मंत्रथी श्रेष्ठ एवा 'ह्रीँ'कारनी प्रतिष्टा कराववी ॥ ७ ॥

आ 'ह्रीँ'कार स्वयं तीर्थराज, सर्वमंत्रमय अने सर्वदेवमय होवाथी प्रतिष्ठा माटे कोई पण बीजा मंत्रोना न्यासनी एने अपेक्षा नथी ॥ ८ ॥

साधक सदा (उचित रीते) स्नान करनार, सद्धर्मने आचरनार, एक वखत भोजन करनार अने भूमिपर शयन करनार होवो जोईए। तेणे विजन (एकान्त) प्रदेशमां साधना करवी जोईए ॥ ९ ॥

षट्कर्मना विधान माटे जेनुं मन उत्साहित छे तेणे पूर्वसेवामां प्रत्येक कर्म माटे ('ॐ ह्रीँ नमः' ए मंत्रनो) एक लाख वार जाप करवो जोईए ॥ १० ॥

साधके श्वेत चन्दनथी देहनुं विलेपन करवुं। श्वेत वस्त्र, श्वेत (धान्यनुं) भोजन, श्वेत (वर्णमां) ध्यान अने जाप माटे श्वेत माला एम जापनुं प्रत्येक अंग पण श्वेत होवुं जोईए ॥ ११ ॥

शुक्लपक्षमां कळीचूनाथी रंगेल श्वेत घरमां जाप करवाथी विपत्ति अने रोगोनो नाश, लक्ष्मी अने सौभाग्यनी प्राप्ति, बंधनथी मुक्ति, नवीन काव्य, पुरक्षोभ अने सभाक्षोभ करवानी शक्ति अने आज्ञानुं चिरकालीन ऐश्वर्य वगेरे फळोनी प्राप्ति थाय छे ॥ १२-१३ ॥

किं बहूक्तैर्निरालम्बं सितध्यानं करोत्यदः ।
सर्वपापक्षयं पुंसां नात्र कार्या विचारणा ॥ १४ ॥

मोहाकृष्टिवशाक्षोभमित्थं रक्तः करोत्ययम् ।
पीतः स्तम्भं रिपोर्वक्त्रबन्धं सम्यक् करोत्ययम् ॥ १५ ॥

नीलो विद्वेषणं चैवोच्चाटनं तु प्रयोगतः ।
कृष्णवर्णो गुरोर्वाक्यादेर्मृत्युविधायकः ॥ १६ ॥

भ्रुवोर्मध्ये तु साध्यस्य चिन्तनीयो गुरुः क्रमात् ।
गृहीतस्य च चन्द्रस्याकृष्ट्या प्राणप्रयोगतः ॥ १७ ॥

सालम्बाच्च निरालम्बं निरालम्बात् पराश्रयम् ।
ध्यानं ध्यायन् विलोमाच्च साधकः सिद्धिमान् भवेत् ॥ १८ ॥

क्षीरपूर्णां महीं पश्येत् सितकल्लोलमालिनीम् ।
अवृक्षपर्वतामेकामर्णवात्माद्वितीयकाम् ॥ १९ ॥

बाध-संबाधरहितां, शान्तामानन्ददायिनीम्
चिन्तयेदेकमेवात्रामलं कुसुममुत्तमम् ॥ २० ॥

बहु कहेवाथी शुं ! आ 'ह्रीँ'कारनुं बाह्य आलंबन रहित एवुं निरालंबन श्वेत (शुक्ल !) ध्यान मनुष्यना सर्व पापनो क्षय करे छे, वळी विशिष्ट ध्यानना प्रयोगथी रक्तवर्णवाळो (आ मंत्रराज) सम्मोहन, आकर्षण, वशीकरण अने आक्षोभ करे छे, पीतवर्णवाळो स्तंभन अने शत्रुनुं मुख (वचन) बंध करे छे, नीलवर्णवाळो विद्वेषण अने उच्चाटन करे छे अने कृष्णवर्णवाळो शत्रुनु मारण करे छे। ए निःसंदेह छे, एमां विचार (विकल्प) करवो नहीं. ॥ १४-१६ ॥

चन्द्रनाडीद्वारा प्राणायमना प्रयोगपूर्वक ग्रहण करायेल श्वासनो कुंभक करीने (साधके) साध्यना भ्रूमध्यमां 'ह्रीँ'कार क्रमे क्रमे मोटो चिंतववो (?) ॥ १७ ॥

सालंबनं[1] ध्यानमांथी निरालंबन ध्यान करवुं, निरालंबन ध्यानमांथी पराश्रित ध्यान करवु। ते पछी विलोमथी—उलटा क्रमथी (पराश्रितमांथी निरालंबन अने निरालंबनमांथी सालंबन) ध्यान करवुं। ए रीते ध्यान करनार साधक सिद्धिने प्राप्त करे छे. ॥ १८ ॥

(साधक) वृक्षो अने पर्वतो विनानी, बाधा अने संबाधाथी रहित (निरुपद्रव), शांत, आनंद आपनार, अद्वितीय, क्षीरथी परिपूर्ण, क्षीरना श्वेतकल्लोलना समूहथी शोभती अने जाणे केवळ एक क्षीरनो

---

१. सालंबन—नासाग्र आदि आलंबनसहित ध्यान. निरालंबन—बाह्य आलंबन विना केवळ मनद्वारा 'ह्रीँ'कारनी आकृतिनुं ध्यान. पराश्रित—'ह्रीँ'कारथी वाच्य एवा परमात्माना गुणादिनुं ध्यान.

पत्राष्टकैस्तु ह्रींकारं स्फाटिकं वर्णकोपरि (कर्णिकोपरि) ।
स्मरेदात्मानमत्रैवोपविष्टं धवलत्विषम् ॥ २१ ॥

चतुर्मुखं चतुर्भेदगतिविच्छेदकारकम् ।
सर्वकर्मविनिर्मुक्तं सर्वसत्त्वाभयावहम् ॥ २२ ॥

निरञ्जनं निराबाधं सर्वव्यापारवर्जितम् ।
पद्मासनसमासीनं श्वेतवस्त्रविराजितम् ॥ २३ ॥

'ह्रीं'कारेण शिरःस्थेन स्फाटिकेनोपशोभितम् ।
क्षरद्भिरमृतैर्माया(?) मायाबीजाक्षराङ्कैः(जैः) ॥ २४ ॥

इति ध्यानमयो ध्याता सम्यक्संसारभेदकः ।
भवैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा मोक्षमार्गं(?) च गच्छति ॥ २५ ॥

चतुर्विंशतितीर्थेशैर्जैनशक्त्या विभूषितः ।
परमेष्ठिमयश्चैष सिद्धचक्रमयो ह्ययम् ॥ २६ ॥

त्रयीमयो गुणमयः सर्वतीर्थमयो ह्ययम् ।
पञ्चभूतात्मको ह्येष लोकपालैरधिष्ठितः ॥ २७ ॥

महासागर होय तेवी पृथ्वीने जुए। तेमां वच्चे अष्टदल कमल छे, दरेक दल उपर 'ह्रीं' कार छे अने वच्चे कर्णिकामां उज्ज्वल कांतिवाळो पोते पद्मासने बेठेल छे, एम चिंतवे। त्यां ते पोताने (समवसरणमां बेठेला श्री तीर्थंकरनी जेम) चतुर्मुख, चारे गतिनो विच्छेद करनार, सर्व कर्मोथी रहित, पद्मासने बेठेल अने श्वेतवस्त्रोथी शोभतो जुए। ते पछी ब्रह्मरंध्रमां स्थापन करेला स्फटिक वर्णना 'ह्रीं' कारनी वच्चे विराजमान पोताना आत्माने जुए। ते पछी 'ह्रीं' कारना दरेक अंगमांथी झरता अमृतथी सिंचातो पोताना आत्माने चिंतवे ॥ १९-२४ ॥

आ प्रकारे 'ह्रीं'कारना ध्यानमां परिणमेलो ध्याता संसारनो सारी रीते विच्छेद करनार थाय छे। ते त्रीजा अगर चोथा भवे मोक्षने अवश्य पामे छे ॥ २५ ॥

'ह्रीं'कारने चोवीश तीर्थंकरोए जैनशक्तिथी (?) विभूषित करेल छे। ए परमेष्ठिमय, श्रीसिद्धचक्रस्वरूप, त्रयी (देव-गुरु-धर्म)मय, ज्ञानदर्शनचारित्रगुणात्मक, सर्वतीर्थमय, पंचभूतात्मक अने लोकपालोथी

चन्द्रसूर्यादिग्रहयुग् दशदिक्पालपालितः ।
गृहे तु पूज्यते यस्य तस्य स्युः सर्वसिद्धयः ॥ २८ ॥

इयं कला सिद्धिकला बिन्दुरूपमिदं मतम् ।
स्वरूपं सर्वसिद्धानां निराबाधपदात्मकम् ॥ २९ ॥

करजापं लक्षमितं होमं च तद्दशांशतः ।
कुर्याद् यः साधको मुख्यः स सर्वं वाञ्छितं लभेत् ॥ ३० ॥

अधिष्ठित छे। ए चंद, सूर्य वगेरे नवे ग्रहोथी युक्त अने दश दिक्पालोथी सुरक्षित छे। एवा आ 'ह्रीँ'कार-बीजनुं जेना घरमां पूजन थाय छे तेने बधी सिद्धिओ मळे छे ॥ २६–२८ ॥

'ह्रीँ'कार उपर आ कला छे ते सिद्धिनी कला (सिद्धशीला) छे अने आ बिंदु ते सर्व सिद्धोनुं निराबाधपदात्मक स्वरूप छे, एम कहेवाय छे ॥ २९ ॥

जे साधक विधिपूर्वक एक लाख प्रमाण करजाप अने दशमा भागनो (दश हजारनो) होम करे छे ते सर्वदा सर्व वांछितोने प्राप्त करे छे ॥ ३० ॥

परिचय

श्री जिनप्रभसूरिनी आ कृतिनी नकल आ० श्रीविजयप्रतापसूरिजी पासेथी मळी हती। तेने भाषानी दृष्टिए सुधारी अनुवाद साथे अहीं प्रगट करी छे।

श्री जिनप्रभसूरिए आ 'ह्रींकारकल्प'नो 'मायाबीज-बृहत्कल्प'मांथी उद्धार कर्यो होवानुं प्रथम पद्यमां जणाव्युं छे, एटले ए 'बृहत्कल्प'नी कृति प्राप्त थाय तो ह्रींकार विशेनी केटलीये अद्भुत हकीकतो प्रकाशमां आवे। श्री जिनप्रभसूरि चौदमा सैकाना समर्थ विद्वान हता।

त्रीश अनुष्टुप् श्लोकोमां आ कल्पनी रचना छे, तेमां ह्रींकारयंत्र, तेनी साधनानी बाह्य सामग्री, साधकनुं लक्षण, जापना प्रकारो अने तेनी साधनानुं फळ जणावीने ध्यानविधिनी समजण आपी छे।

आ स्तोत्रमां कहेवामां आव्युं छे के 'ह्रीँ'कार सर्वमंत्रमय, सर्वदेवमय, जिनचतुर्विंशतिमय, परमेष्ठिमय, सिद्धचक्रमय, रत्नत्रयमय अने सर्वतीर्थमय छे, ए रीते एनुं माहात्म्य सारुं गवायुं छे। आ स्तोत्रमां ह्रींकारना श्वेतध्याननुं वर्णन सुंदर रीते करवामां आव्युं छे। श्रीजिनप्रभसूरिनी आ रचना स्वानुभवपूर्वकनी होवाथी ह्रींकारना विषयमां सुंदर प्रकाश पाडे छे।

'ह्रीँ'कारने समजवामां विशेष उपयोगी थाय एवी बीजी बे कृतिओ अमने प्राप्त थई छे। आ कृतिओना कर्ता विशे कई माहिती मळी नथी; परंतु तेनी भाषाशैली अने आम्नायनी रीतिने लक्षमां लेतां ते "जैनेतर" कृतिओ होय एम लागे छे। तेथी ए बन्ने कृतिओ हवे पछी परिशिष्टरूपे आपी छे।



सरस्वतीदेवी (ब्रिटिश म्युझियममांना चित्रपरथी)



परिशिष्ट १

' ह्रीँ ' कारविद्यास्तवनम्

सवर्णपार्श्वं ल-यमध्यसिद्धमधीश्व(स्व)रं भास्वररूप[1]भासम्।
खण्डेन्दुबिन्दुस्फुटनादशोभं, त्वां शक्तिबीजं(ज!) प्रमनाः प्रणौमि ॥ १ ॥

[2]' ह्रीँ 'कारमेकाक्षरमादिरूपं, मायाक्षरं कामदमादिमन्त्रम्।
त्रैलोक्यवर्णं परमेष्ठिबीजं, विज्ञाः स्तुवन्तीश! भवन्तमित्थम् ॥ २ ॥

शिष्यैः[3] सुशिक्षां सुगुरोरवाप्य, शुचिर्वशी धीरमनाश्च मौनी।
तदात्मबीजस्य तनोतु जापम(मु)पांशु नित्यं विधिना विधिज्ञः ॥ ३ ॥

अनुवाद

' ह्रीँ 'कारनुं स्वरूप—

जेनी पार्श्वमां ' स 'वर्ण छे (एवो ' ह '), जे ' ल ' अने ' य ' ना मध्यमां सिद्ध (निष्ठित) छे (एवो र्), जेनी वच्चे ' ई ' स्वर छे, जेनी कांति देदीप्यमान सूर्यना जेवी छे अने जे अर्धचन्द्र (कला), बिन्दु अने स्पष्ट नादथी शोभी रहेल छे, एवा हे शक्तिबीज! हुं तने प्रोल्लसित मनथी (भावपूर्वक) स्तवुं छुं. ॥ १ ॥

हे ईश! आपने विद्वान पुरुषो ' ह्रीँ 'कार, एकाक्षर, आदिरूप, मायाक्षर, कामद, आदिमंत्र, त्रैलोक्यवर्ण अने परमेष्ठिबीज—एवा विशेषणोथी[4] स्तवे छे. ॥ २ ॥

' ह्रीँ 'कारना साधकनुं कर्तव्य—

सद्गुरु पासेथी समुचित शिक्षा प्राप्त करीने विधिना जाणकार शिष्ये पवित्र थईने, इन्द्रियोने वशमां राखीने, मनमां अडग धैर्य धारण करीने अने मौन राखीने ते ' आत्मबीज—ह्रीँ 'कारनो विधियुक्त उपांशु[5] जाप हंमेशां करवो जोईए ॥ ३ ॥

---

१. भास्वरभानुरूपम् N.।

२. त्रैलोक्यवर्णं परमेष्ठिबीजं, मायाक्षरं कामदमादिमन्त्रम्।
ह्रीँकारमेकाक्षरमादिरूपं, तज्ज्ञाः स्तुवन्तीश भवन्तमित्थम् ॥ २ ॥ N.।

३. शैक्षः N.।

४. हस्तलिखित ' ब्रह्मविद्याविधि ' नामक ग्रंथमां ह्रीँकारना प्रकरणमां आ रीते वर्णन छे—
" सान्तान्तं रेफमारूढं, चतुर्थस्वरयोजितम्।
नाद-बिन्दु-कलोपेतं, धर्मकामार्थसाधनम् ॥
नादो विश्वात्मकः प्रोक्तो, बिन्दुः स्यादुत्तमं पदम्।
कलापीयूषनिःष्यन्दीत्याहुरेवं जिनोत्तमाः ॥
नाद-बिन्दु-कलायुक्तं, पूर्णचन्द्रकलाधरम्।
त्वनुस्वारं भवेद् बिन्दुस्त्वर्धमात्रं विशेषतः ॥
हृल्लेखा, लोकराज, जगद्विपः; लोकपतिः, भुवनेश्वरी, माया, त्रिदेहं, तत्त्वं, शक्तिः, शक्तिप्रणवमित्यादि ॥ ' ह्रीँ ' ॥ "

५. " ईषत्कर्णोपसेव्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥ "—ह० लि० ' ब्रह्मविद्याविधि '

त्वां चिन्तयन् श्वेतकरानुकारं, ज्योत्स्नामयीं पश्यति यस्त्रिलोकी(म्)।
श्रयन्ति तं तत्क्षणतोऽनवद्यविद्याकलाशान्तिकपौष्टिकानि ॥ ४ ॥
त्वामेव बालारुणमण्डलाभं, स्मृत्वा जगत् त्वत्करजालदीप्रम् ।
विलोकते यः किल तस्य विश्वं, विश्वं भवेद् वश्यमवश्यमेव ॥ ५ ॥
यस्तप्तचामीकरचारुदीप्रं, पिङ्गप्रभं त्वां कलयेत् समन्तात् ।
सदा मुदा तस्य गृहे सहेलिं, करोति केलिं कमला चलाऽपि ॥ ६ ॥
यः श्यामलं कज्जलमेचकाभं त्वां वीक्षते वा तुषधूमधूम्रम् ।
विपक्षपक्षः खलु तस्य वाताहताऽभ्रवद् यात्यचिरेण नाशम् ॥ ७ ॥
आधारकन्दोद्गततन्तुसूक्ष्मलक्ष्योर्द्ध्वं ब्रह्मसरोजवासम् ।
यो ध्यायति त्वां स्रवदिन्दुबिम्बामृतं स च स्यात् कविसार्वभौमः ॥ ८ ॥
षड्दर्शनी स्वस्वमतावलेपैः स्वे दैवते त(त्व)न्मयबीजमेव ।
ध्यात्वा तदाराधनवैभवेन भवेदजेयः परवादिवृन्दैः ॥ ९ ॥

श्वेतवर्णी 'ह्रीँ'कारना ध्याननुं फळ—

चंद्रसमान उज्ज्वळ वर्णथी तारुं ध्यान करतो जे त्रणे लोकने प्रकाशमय जुए छे तेने निर्दोष एवी विद्याओ, कलाओ तथा शांतिक अने पौष्टिक कर्मो तत्क्षण सिद्ध थाय छे. ॥ ४ ॥

रक्तवर्णी 'ह्रीँ'कारना ध्याननुं फळ—

ऊगता सूर्यना मंडल जेवी कांतिवाळा तने स्मरीने जे तारा किरणोना समूहथी देदीप्यमान जगतने जुए छे तेने खरेखर समग्र विश्व अवश्यमेव वश थाय छे. ॥ ५ ॥

पीतवर्णी 'ह्रीँ'कारना ध्याननुं फळ—

जे पीळी कांतिवाळा तने तप्तसुवर्णनी जेम सुंदर रीते सर्वतः प्रकाशमान जुए तेना घरमां चल एवी लक्ष्मी पण आनंद अने लीलासहित क्रीडा करे छे ॥ ६ ॥

श्यामवर्णी 'ह्रीँ'कारना ध्याननुं फळ—

जे (साधक) काजळ के मेचकमणिसदृश श्यामवर्णरूपे अथवा फोतरांना धूमाडा जेवा धूम्रवर्ण रूपे तने जुए छे (तारुं ध्यान धरे छे), तेनो शत्रुसमूह पवनथी विखेरायेलां वादळांनी जेम खरेखर क्षणवारमां नाश पामे छे. ॥ ७ ॥

कुंडलिनीस्वरूपे ध्याननुं फळ—

जे मूलाधार कंद (चक्र)मांथी नीकळती तन्तुसमान सूक्ष्म सुषुम्णा-नाडीमां रहेला लक्ष्यो (चक्रो)ने भेदीने उपर जता अने अंते सहस्रारकमलमां रहीने (स्थिर थईने) [1]त्यां चंद्रना बिंबसमान अमृत झरावता तारुं ध्यान करे छे ते कविओमां चक्रवर्ती (श्रेष्ठ) थाय छे ॥ ८ ॥

फलश्रुति—

षड्दर्शननो जाणकार पोताना इष्टदेवतामां 'ह्रीँ'कार बीजनुं ध्यान करीने ते आराधनाना वैभवथी, पोतपोताना मतमां गर्विष्ठ एवा वादीओना समूहोथी अजेय बने छे ॥ ९ ॥

---

१. हेल N. ।

किं मन्त्रयन्त्रैर्विविधागमोक्तैः दुःसाध्यसंशीतिफलाल्पलाभैः ।
सुसेव्यः सद्यः (सद्यः सुसेव्यः) फलचिन्तितार्थाधिकप्रदश्चेद(त)सि चेत्त्वमेकः ॥ १० ॥[1]

चौरारि-मारि-ग्रह-रोग-लूता-भूतादिदोषानल-बन्धनोत्थाः ।
भियः प्रभावात् तव दूरमेव नश्यन्ति पारीन्द्ररवादिवेभाः ॥ ११ ॥

प्राप्नोत्यपुत्रः सुतमर्थहीनः, श्रीदायते पत्तिरपीशतीह ।
दुःखी सुखी चाऽथ भवेन्न किं किं त(त्व)द्रूपचिन्तामणिचिन्तनेन ॥ १२ ॥

पुष्पादिजापामृतहोमपूजाक्रियाधिकारः सकलोऽस्तु दूरे ।
यः केवलं ध्यायति बीजमेव, सौभाग्यलक्ष्मीर्वृणुते स्वयं तम् ॥ १३ ॥

त्वत्तोऽपि लोकाः सुकृतार्थकाम-, मोक्षान् पुमर्थांश्चतुरो[2] लभन्ते ।
यास्यन्ति याता अथ यान्ति ये ते[3] श्रेयःपदं त्वन्महिमालवः सः ॥ १४ ॥

विधाय यः प्राक् प्रणवं नमोऽन्ते, मध्यैकबीजं[4] ननु जञ्जपीति ।
तस्यैकवर्णा वितनोत्यवन्ध्या, कामार्जुनी कामितमेव विद्या ॥ १५ ॥

सुखे सेवी शकाय एवो अने चिंतव्या करतां पण विशेष तेमज शीघ्र फळ देनारो तुं एक जो चित्तमां विद्यमान छे तो पछी भिन्न भिन्न आगमोए निर्देशेला दुःसाध्य तेमज संदिग्धफलवाळा अने अल्प लाभवाळा अन्य मंत्रो अने यंत्रोथी शुं ? ॥ १० ॥

सिंहनी गर्जनाथी हाथीओ जेम दूरथी ज नासी जाय छे तेम तारा प्रभावथी चोर, शत्रु, मरकी, ग्रहो, रोग, लूता रोग, तथा भूत वगेरेना दोष, तथा अग्नि अने बंधनथी उत्पन्न थता भयो दूर चाल्या जाय छे ॥ ११ ॥

चिंतामणि समान तारा रूपनुं चिंतन करवाथी शुं शुं प्राप्त थतुं नथी ? जेने पुत्र नथी तेने पुत्रनी प्राप्ति थाय छे, जेनी पासे पैसो नथी ते कुबेर समान बने छे, सेवक पण स्वामी बने छे अने दुःखी सुखी थई जाय छे ॥ १२ ॥

पुष्पो वगेरेथी जाप, घीनो होम, पूजा वगेरे क्रियानो समग्र अधिकार दूर रहो, पण केवळ तारा बीजनुं ध्यान करनारने सौभाग्यलक्ष्मी स्वयं वरे छे ॥ १३ ॥

महिमा—

तारा प्रभावथी लोको धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षरूप चार पुरुषार्थोने प्राप्त करे छे। जेओ श्रेयनुं स्थान (मोक्ष) प्राप्त करशे, प्राप्त करी गया अने प्राप्त करी रह्या छे ते तारा महिमानो अंश मात्र छे ॥ १४ ॥

जे मनुष्य पहेलां प्रणव 'ॐ' अने अंते 'नमः' तेमज मध्यमां अनुपमबीज 'ह्रौँ'कार (वडे बनेल मंत्र) नो पुनः पुनः जाप करे छे, तेनां वांछितोने एकवर्णवाळी, अवंध्य अने कामधेनु समान 'ह्रौँ'कारविद्या विस्तारे छे ॥ १५ ॥

मंत्रः—'ॐ ह्रीं नमः'

---

१. सुसाध्यः सद्यःफलचिन्तितार्थाऽधिकप्रदश्चेतसि चेत् त्वमेकः N. ।
२. °श्च नरा ल° N. । ३. वा N. । ४. मध्ये च N. ।

मालामिमां स्तुतिमयीं सुगुणां[1] त्रिलोकी-
बीजस्य यः स्वहृदये निधयेन्[2] क्रमात् सः ।
अष्टेऽष्टसिद्धिरवशा लुठतीह तस्य,
नित्यं महोत्सवपदं[3] लभते क्रमात् सः ॥ १६ ॥

॥ इति 'ह्रीँ'कारविद्यास्तवनम् ॥

जे मनुष्य त्रैलोक्यबीजनी सारा गुणवाळी स्तुतिरूपी आ मालाने त्रणे संध्याए पोताना हृदयमां धारण करे छे तेना खोळामां आठे सिद्धिओ अवश बनीने नित्य आळोटे छे अने ते क्रमे करीने मोक्षपदने पामे छे ॥ १६ ॥

परिचय

आ स्तोत्र 'पञ्चनमस्कृतिदीपक' नामक ग्रंथमां संग्रहीत छे। 'ह्रीँकारविद्यास्तव'नी जेम 'पूज्यपाद'नी कृति तरीके तेनो कर्ताए संग्रह कर्यो छे, छतां स्तोत्रना कर्ता विशे बीजा पुरावानी अपेक्षा रहे ज छे।

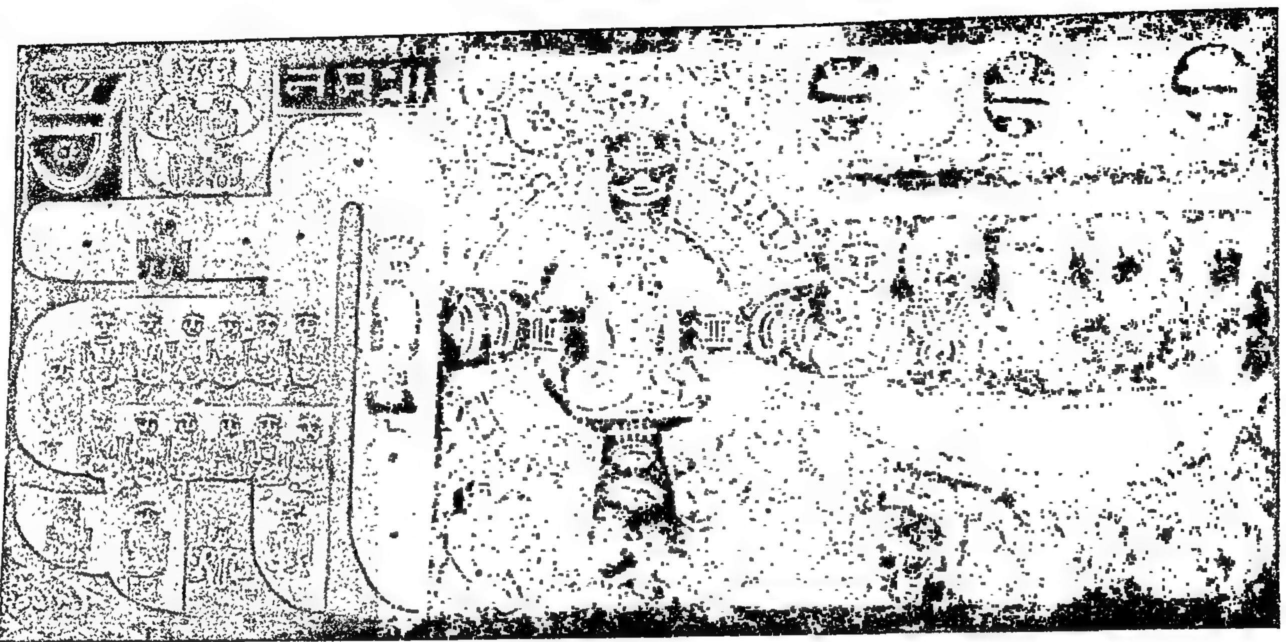
आ स्तोत्रमां १६ पद्यो छे, ते पैकी १५ पद्यो उपजातिवृत्तमां छे अने छेल्लुं १६ मुं पद्य वसंततिलकावृत्तमां छे।

ह्रीँकारविद्याने अन्य तंत्रोए पण खूब महत्त्व आप्युं छे। तंत्रनो कोई पण ग्रंथ प्रायः एना उल्लेख विनानो नहीं होय। आ स्तोत्रनी रचना उपरथी एम लागे छे के आ स्तोत्र कोई जैनेतर संप्रदायनुं होवुं जोईए। तेथी अमे एने परिशिष्ट तरीके प्रगट कर्युं छे। अभ्यासीओने ए उपयोगी थशे।

जुदा जुदा वर्णोमां तेम ज आधारादि चक्रोमां ह्रीँकारना ध्याननो निर्देश पण आ स्तोत्रमां छे।



१. सगुणा N । २. कुरुते त्रिसंध्य N । ३. महोदयपदं N. ।



ॐ ह्रीँ वाच्यार्थस्वरूपदर्शक चित्रम् (ॐ ह्रीँ अर्हँनी पाटली)

परिशिष्ट २

मायाबीजस्तुतिः

'स'वर्णपार्श्वं ल-यमध्यसिद्धमधीश्व(स्व)रं भास्वरवर्णभासम्।
खण्डेन्दुनादस्फुटबिन्दुयुक्तं, त्वां शक्तिबीजं (ज!) प्रमनाः प्रणौमि ॥ १ ॥

श्वेतं रक्तं तथा पीतं, नीलं ध्यानं चतुर्विधम्।
विधिना ध्यायमानं च, फलं भवति नान्यथा ॥ २ ॥
श्वेते मुक्तिर्भवेत् पुंसो, रक्ते वश्यं परं स्मृतम्।
पीते लक्ष्मीर्भवत्येव, नीले च शत्रुमारणम् ॥ ३ ॥
मन्त्राः सहस्रशः सन्ति, शिवशक्तिनिवेदिताः।
अन्यथा ते च विज्ञेया, मायाबीजाग्रतो यथा ॥ ४ ॥
लक्षसंख्ये कृते जापे, दशांशेन तु होमयेत्।
पृथ्वीपतित्वं जायेत, सत्यं सत्यं च नान्यथा ॥ ५ ॥
रणे राजकुले वह्नौ, दुर्ग-शस्त्रविसङ्कटे।
शतमष्टोत्तरं जापं, कणवीर-सगुग्गुलम् ॥ ६ ॥
जयमाप्नोति शत्रुभ्यः, पृथिवीपतिवल्लभः।
अपुत्रो लभते पुत्रान्, सौभाग्यं दुर्भगो लभेत् ॥ ७ ॥
अष्टम्यां चतुर्दश्यां वा, पर्वणि ग्रहणेषु च।
हूयते वाऽनले सम्यग्, नात्र कार्या विचारणा ॥ ८ ॥

अनुवाद

प्रारंभिक मंगल—

जेनी पार्श्वमां 'स' वर्ण छे (एवो 'ह'), जे 'ल' अने 'य'ना मध्यमां सिद्ध (निष्टित) छे (एवो 'र्'), अंतमां 'ई' स्वरवाळा, देदीप्यमान वर्णनी कांतिवाळा, अर्धचंद्र(कला), नाद अने स्पष्ट एवा बिन्दुथी युक्त एवा हे शक्तिबीज! ('ह्रीँ' कार!) हुं तने उल्लासमेर (भावपूर्वक) स्तवुं छुं ॥ १ ॥

वर्णोमां ध्यान अने तेनुं फळ—

श्वेत, रक्त, पीत अने नील ए चार प्रकारनुं ध्यान छे अने ते विधिपूर्वक कराय तो इष्टफळ आपे छे, अन्यथा (विधि विना) ते फळ आपतुं नथी ॥ २ ॥

श्वेतध्यानथी मुक्ति थाय छे, रक्तध्यानथी वशीकरण थाय छे, पीतध्यानथी लक्ष्मीनी प्राप्ति थाय छे अने नील ध्यानथी शत्रुनुं मारण थाय छे—एम (मन्त्रशास्त्रमां) कह्युं छे ॥ ३ ॥

माहात्म्य—

शिवे पार्वतीने कहेला तो हजारो मंत्रो छे; परंतु मायाबीजनी आगळ ते बधा कंई ज नथी, एम जाणवुं ॥ ४ ॥

एक लाख जाप कर्या पछी (लाखना) दशमा भागे होम करवो। एम करवाथी राजवीपणुं मळे छे, ए खरेखर सत्य छे, खोटुं नथी। युद्ध, राजकुल अने अग्नि तेमज दुर्ग, शस्त्र वगेरेथी उत्पन्न थता संकटमां कणेरना फूलो अने गूगळ (ना धूप) वडे विधिपूर्वक एकसो ने आठ वार जाप करवो। एना प्रभावथी साधक शत्रुओ उपर जय मेळवे छे, राजाने प्रिय बने छे, पुत्र विनानो पुत्रोने मेळवे छे अने दुर्भागी सौभाग्यने पामे छे। (ए माटे) आठम, चौदश, अन्य पर्वदिवसोमां अने ग्रहणना दिवसोमां विधिपूर्वक अग्निमां होम करवो जोईए। एमां बीजो विचार न करवो ॥ ५–८ ॥

निर्मलं सलिलं स्वच्छं, गालितं जन्तुवर्जितम् ।
पूर्वस्यां दिग्विभागे तु, मन्त्रयुक् स्नपनं स्मृतम् ॥ ९ ॥

स्नानमन्त्रः—"ॐ प्राँ प्रीँ प्रूँ प्रः अमले विमले अशुचिः शुचिर्भवामि स्वाहा" ॥

पश्चाद् भूमिं शुचिं कृत्वा, पृथ्वीबीजेन सर्वदा ।
ॐ भूरसि भूतधात्रीयं (भूतधात्रि), विश्वाधारे नमस्तथा ॥ १० ॥
कौसुम्भं रक्तवस्त्रं वा, पट्टकूलं सहाञ्चलम् ।
परिधाय श्वेतवस्त्रं, ततः पूजनमारभेत् ॥ ११ ॥
विशालचतुरस्रे च, पट्टे शैवलि(लि)के शुचौ ।
ऊर्णामये पवित्रे वा, आसनं क्रियते बुधैः ॥ १२ ॥
कर्पूरागरुकस्तूरीचन्दनैर्यक्षकर्दमैः ।
केसरैर्मिश्रितैः सम्यग् लेपनं युज्यतेऽन्वहम् ॥ १३ ॥
शतपत्रैश्चम्पकैः पुष्पैर्जातिपुष्पैः श्रीखण्डकैः ।
अष्टोत्तरशतं संख्यं, पूजनं तत्र कारयेत् ॥ १४ ॥
देवपूजा प्रकर्तव्या, चैकचित्तेन सर्वदा ।
नैवेद्यं धूपनं पूगसुपत्राणि च ढौकयेत् ॥ १५ ॥
एवं कृतविधानेन, पश्चाद् होमं च कारयेत् ।
गोमयेन भुवं लिप्त्वा, स्थण्डिलं तत्र कारयेत् ॥ १६ ॥

हवनविधान अने तेनुं फळ—

(साधके) गाळेला, जन्तुओथी रहित, निर्मळ अने स्वच्छ एवा जलथी पूर्वदिशामां (मुख करीने ?) मन्त्रपूर्वक स्नान करवु, एम कहेलुं छे ॥ ९ ॥

स्नानमंत्रः—"ॐ प्राँ प्रीँ प्रूँ प्रः अमले विमले अशुचिः शुचिर्भवामि स्वाहा" ॥

ए पछी हमेशां पृथ्वीबीजथी भूमिने पवित्र बनाववी ।

भूमिशुद्धिमंत्रः—"ॐ भूरसि भूतधात्रीय (धात्रि) विश्वाधारे नमः ॥" ॥ १० ॥

ए पछी कसुम्बाथी रंगेल के लाल वस्त्र, पटोळ के रेशमी पीताम्बरादि वस्त्र अथवा श्वेत वस्त्र पहेरीने पूजननो आरंभ करवो ॥ ११ ॥

विशाळ अने चोरस एवा शैवल (पद्म) काष्ठना बनावेला पवित्र पाटला उपर अगर पवित्र ऊनना आसन उपर बेसवु ॥ १२ ॥

कपूर, अगरु, कस्तूरी, चंदन, यक्षकर्दम (गोरोचन) अने केसरना मिश्रणवडे प्रतिदिन सारी रीते (पूर्वोक्त पटनु ?) विलेपन करवु ॥ १३ ॥

शतपत्र-कमळो, चंपाना फूलो, जाईनां फूलो अथवा चंदनना पुष्पोथी त्यां एकसो ने आठ वार पूजा कराववी ॥ १४ ॥

देवनी पूजा हमेशां एकचित्तथी करवी अने नैवेद्य, धूप, सोपारी, सुंदर पत्रो वगेरे सामे मूकवा ॥१५॥

आ प्रकारनी विधि करीने पछी होम करवो। (ते माटे) गोमय(छाण)थी भूमिने लींपीने त्यां स्थंडिल (होम माटे मांडलुं) बनाववु ॥ १६ ॥

चतुरस्रं त्रिकोणं वा, शान्तिकर्मणि युज्यते ।
अष्टाम्बुजं वर्तुलं च, काम्यकार्ये प्रशस्यते ॥ १७ ॥
अग्निं संवेश्य तत्रादौ, वरद नाम एव च ।
समिधः शोधयित्वा तु, आहूयेद् मन्त्रविश्रुतः ॥ १८ ॥

अग्निस्थापनमंत्रः—"ॐ छागस्थ-तनुपाद् वरद एहि एहि आगच्छ आगच्छ हूं फट् स्वाहा" ॥ इति ॥

क्षीरान्न-नालिकेरैश्च, द्राक्षयाऽगरुचन्दनैः ।
शर्करा चोत्तती चैव, लवङ्गैर्घृतमिश्रितैः ॥ १९ ॥
प्रथमं गुग्गुलैः सार्धं, कलिं कणवीरस्य च ।
सम्मील्य घृतयुक्तेन, हवनं तत्र कारयेत् ॥ २० ॥
शान्तिकं पौष्टिकं चैव, वश्यमाकर्षणं तथा ।
उच्चाटनं च स्तम्भं च, सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ २१ ॥
चतुष्षष्टिर्महादेव्यो, विख्याता भूतले सदा ।
ताः सर्वाः संस्थिता नित्यं, मायाबीजे वरे परे ॥ २२ ॥
एवं विधानमात्रेण, सर्वास्तुष्यन्ति देवताः ।
सुश्रेयो योगिनां मुख्यो, नृपतुल्यो नरो भवेत् ॥ २३ ॥
विसर्जनं तु कर्तव्यं, मायाबीजेन सर्वदा ।
ॐमिति ह्रीँ फट् स्वस्थानं, गम्यतां च स्वकं तथा ॥ २४ ॥

शांतिकर्म माटे चोरस अथवा त्रिकोण अने काम्यकर्म माटे आठ कमळवाळो (अष्टदलकमलाकार ?) अने वर्तुळाकार स्थंडिल प्रशस्त कहेल छे ॥ १७ ॥

मांत्रिके सौथी प्रथम ते मांडलामां अग्नि पधराववो, ए पछी समिधोनुं शोधन करीने 'वरद' नाम मंत्रथी (?) आहूति आपवी ॥ १८ ॥

अग्निस्थापनमंत्रः—"ॐ छागस्थ-तनुपाद् वरद एहि एहि आगच्छ आगच्छ हूं फट् स्वाहा ॥"

खीर, नाळियेर, द्राक्ष, अगरु, चंदन, साकर, तज अने घीथी मिश्रित एवा लविंग ए बधाने प्रथम गूगळ साथे मेळववुं, पछी तेमां कणेरनी कळीओ मेळववी अने ए बधानो घीसहित होम कराववो ॥ १९-२० ॥

ए पछी मांत्रिके शांतिक, पौष्टिक, वश्य, आकर्षण, उच्चाटन, स्तंभन वगेरे सर्व कार्यो साधवां ॥ २१ ॥

समग्र विश्वमां सदा प्रसिद्ध एवी चोसठ योगिनी महादेवीओ छे, ते सर्वे आ उत्कृष्ट एवा मायाबीज 'ह्रीँ'कारमां सदा विराजमान छे ॥ २२ ॥

आ प्रकारना विधानमात्रथी बधा देवता संतुष्ट थाय छे। तेथी साधक ख्यातिमान थाय छे, योगीओमां प्रधान योगी बने छे अने राजा समान ऐश्वर्यवाळो थाय छे ॥ २३ ॥

विसर्जन पण सर्वदा मायाबीज 'ह्रीँ'कारथी (विसर्जनमुद्रापूर्वक) करवुं।

विसर्जनमंत्रः—"ॐ ह्रीँ फट् स्वस्थानं गच्छ गच्छ (स्वाहा) ॥" ॥ २४ ॥

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं, मन्त्रहीनं च यत्कृतम् ।
तत् सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ॥ २५ ॥

एतद् गुह्यं समाख्यातं, मायावीजस्य जीवनम् ।
न देयं यस्य कस्यापि, मन्त्रविद्भिः कदाचन ॥ २६ ॥

॥ इति मायाबीजस्तुति-पूजास्तवनम् ॥

(उपसंहारमां क्षमापनादि माटे 'आज्ञाहीनं....' इत्यादि श्लोक बोलवो ।)

मन्त्रनी आराधना करतां कंई पण आज्ञाविरुद्ध थयुं होय, क्रियाहीन—क्रियामां कंई पण खामी आवी होय, मन्त्रहीन—मंत्र बोलवामां कंई पण हीन अथवा विपरीत बोलायुं होय, अथवा एवी बीजी कोई पण खामी आवी होय तो हे देवि ! तेनी क्षमा करो । हे परमेश्वरि ! मारा उपर प्रसन्न थाओ ॥ २५ ॥

आगमोमां आ विधानने मायाबीजनुं रहस्य अथवा जीवन कहेवामां आव्युं छे । मंत्रविद् पुरुषोए जेने तेने (अयोग्यने) ते कदी पण न आपवुं ॥ २६ ॥

परिचय

आ स्तुतिनी एक नकल आ० श्रीविजयप्रतापसूरिजी पासेथी अमने प्राप्त थई हती । तेने भाषानी दृष्टिए सुधारी अनुवाद साथे प्रगट करी छे ।

मायाबीज ए ह्रींकारनुं ज बीजुं नाम छे एटले आ स्तुति 'ह्रींकारविद्या' उपर प्रकाश नाखे छे । एनी बीजा प्रकारनी साधना—खास करीने होमविषयक साधना अने महत्ता बतावनारी आ कृति छे । तेथी एम लागे छे के आ स्तोत्र कोई जैनेतर संप्रदायनुं हशे । आना कर्त्ता विशे कोई माहिती मळी नथी ।

आ स्तोत्रमां प्रथम पद्य उपजाति वृत्तमां अने पछीनां २५ पद्यो अनुष्टुप् वृत्तमां छे । ह्रींकारनुं स्वरूप, ध्यान, आराधना अने फळ विशे आ कृतिमां वर्णन छे ।



श्रीजयसिंहसूरिविरचितः 'धर्मोपदेशमाला'न्तर्गतः 'अर्हँ' अक्षरतत्त्वस्तवः

प्रणम्य तत्त्वकर्त्तारं महावीरं सनातनम् ।
श्रुतदेवीं गुरुं चैव परं तत्त्वं ब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥
शान्ताय गुरुभक्ताय विनीताय मनस्विने ।
श्रद्धावते प्रदातव्यं जिनभक्ताय दिने दिने ॥ २ ॥
अकारादि-हकारान्ता प्रसिद्धा सिद्धमातृका ।
युगादौ या स्वयं प्रोक्ता ऋषभेण महात्मना ॥ ३ ॥
एकैकमक्षरं तस्यां तत्त्वरूपं समाश्रितम् ।
तत्रापि त्रीणि तत्त्वानि येषु तिष्ठति सर्ववित् ॥ ४ ॥

'अ' तत्त्वम्—

अकारः प्रथमं तत्त्वं सर्वभूताभयप्रदम् ।
कण्ठदेशं समाश्रित्य वर्तते सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥

अनुवाद

तत्त्व (मोक्षमार्ग) ना कर्ता (आद्य उपदेशक) अने सनातन एवा श्री महावीर प्रभु, श्रुतदेवी अने श्री सद्गुरुने नमस्कार करीने हुं परतत्त्व 'अर्हँ'कारने कहुं छुं ॥ १ ॥

आ तत्त्व-'अर्हँ'कार शान्त, गुरुभक्त, विनीत, स्वाधीनचित्तवाळा, श्रद्धावान् अने प्रतिदिन जिनभक्तिमां वधता एवा योग्य पुरुषने ज आपवुं ॥ २ ॥

'अ'थी शरु थती अने 'ह'मां अंत पामती एवी (ते) सिद्ध-मातृका (अनादिसिद्ध बाराक्षरी-बाराखडी) प्रसिद्ध छे के जेने युगना प्रारंभमां परमात्मा श्री ऋषभदेव भगवंते स्वयं कही हती ॥ ३ ॥

ते(सिद्धमातृका)मांनो एक एक अक्षर तत्त्वरूपने समाश्रित (प्राप्त) छे (अर्थात् प्रत्येक अक्षर तत्त्वरूप छे)। तेमां पण 'अ', 'र्' अने 'ह्' ए त्रण तत्त्वो एवां (विशिष्ट) छे के जेमां सर्वज्ञ परमात्मा रहेला छे ॥ ४ ॥

'अ' तत्त्वनुं वर्णन :—

तेमां अकार प्रथम तत्त्व छे, सर्व प्राणीओने अभय आपनारुं छे अने सर्व देहधारीओना कंठस्थानने आश्रीने रहेलुं छे ॥ ५ ॥

सर्वात्मानं (सर्वात्मकं) सर्वगतं सर्वव्यापि सनातनम्।
सर्वसत्त्वाश्रितं दिव्यं चिन्तितं पापनाशनम् ॥ ६ ॥
सर्वेषामपि वर्णानां स्वराणां च धुरि स्थितम्।
व्यञ्जनेषु च सर्वेषु ककारादिषु संस्थितम् ॥ ७ ॥
पृथिव्यादिषु भूतेषु देवेषु समयेषु च।
लोकेषु च (चैव) सर्वेषु सागरेषु सु(स्र)रेषु(सरित्सु) च ॥ ८ ॥
मन्त्र-तन्त्रादियोगेषु सर्वविद्याधरेषु च।
विद्यासु च (चैव) सर्वासु पर्वतेषु वनेषु च ॥ ९ ॥
शब्दादिसर्वशास्त्रेषु व्यन्तरेषु नरेषु च।
पन्नगेषु च सर्वेषु देवदेवेषु नित्यशः ॥ १० ॥
व्योमवद् व्यापिरूपेण सर्वष्वेतेषु संस्थितम्।
नातः परतरं ब्रह्म विद्यते भुवि किञ्चन ॥ ११ ॥
इदमाद्यं भवेद् यस्य कलाऽतीतं कलाश्रितम्।
नाम्ना परमदेवस्य ध्येयोऽसौ मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ १२ ॥

'र' तत्त्वम्—

दीप्तपावकसङ्काशं सर्वेषां शिरसि स्थितम्।
विधिना मन्त्रिणा ध्यातं त्रिवर्गफलदं स्मृतम् ॥ १३ ॥

ते तत्त्व सर्वस्वरूप, सर्वगत, सर्वव्यापी, सनातन अने सर्व प्राणीओने आश्रीने रहेलु छे। तेनुं 'दिव्य चिंतन' (सर्व) पापनो नाश करे छे ॥ ६ ॥

ते तत्त्व (अकार) बधाय वर्णो अने स्वरोमा अग्रस्थाने रहेलु छे अने ककारादि सर्व व्यञ्जनो(ना उच्चारण)मा रहेलु छे। ते तत्त्व पृथिवी आदि पाच महाभूतो (पृथिवी, जल, तेजस्, वायु अने आकाश), देवो, समयो, सर्वलोको, समुद्रो, नदीओ, मंत्रो अने तन्त्रादि योगो, सर्व विद्याधरो, सर्व विद्याओ, पर्वतो, वनो, व्याकरण आदि सर्व शास्त्रो, व्यन्तरो, मनुष्यो, सर्पो अने सर्व देवाधिदेवो—ए बधामा आकाशनी जेम सर्वव्यापीरूपे रहेलु छे। विश्वमा एनाथी श्रेष्ठ बीजु कोई ब्रह्म विद्यमान नथी ॥ ७–११ ॥

कलारहित अथवा कलासहित एवुं आ (परम) तत्त्व नामवडे जे परमदेवनी आदिमा छे, ते-(परमदेव)नु मोक्षनी आकाङ्क्षावाळा पुरुषोए ध्यान करवुं जोईए ॥ १२ ॥

'र' तत्त्वनुं वर्णन—

सर्व प्राणीओना मस्तकमा रहेल प्रदीप्त अग्निसमान आ तत्त्वनुं मंत्रधारकवडे जो विधिपूर्वक ध्यान कराय तो ते धर्म, अर्थ अने काम ए त्रिवर्गनी प्राप्ति रूप फळने आपनारु छे, एम कह्यु छे ॥ १३ ॥

यस्य देवाभिधानस्य मध्ये ह्येतद् व्यवस्थितम् ।
पुण्यं पवित्रं म(मा)ङ्गल्यं पूज्योऽसौ तत्त्वदर्शिभिः ॥ १४ ॥

'ह्' तत्त्वम्—

सर्वेषामपि भूतानां नित्यं यो हृदि संस्थितः ।
पर्यन्ते सर्ववर्णानां सकलो निष्कलस्तथा ॥ १५ ॥
हकारो हि महाप्राणः लोकशास्त्रेषु पूजितः ।
विधिना मन्त्रिणा ध्यातः सर्वकार्यप्रसाधकः ॥ १६ ॥
यस्य देवाभिधानस्य पर्यन्त एष वर्तते ।
मुमुक्षुभिः सदा ध्येयः स देवो मुनिपुङ्गवैः ॥ १७ ॥

बिन्दुः—

सर्वेषामपि सत्त्वानां नासाग्रे परिसंस्थितम् ।
बिन्दुकं सर्ववर्णानां शिरसि सुव्यवस्थितम् ॥ १८ ॥
हकारोपरि यो बिन्दुर्वर्तुलो जलबिन्दुवत् ।
योगिभिश्चिन्तितस्तस्थौ मोक्षदः सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥
त्रीण्यक्षराणि बिन्दुश्च यस्य देवस्य नाम वै ।
स सर्वज्ञः समाख्यातः 'अर्हँ' त इ(दि)ति पण्डितैः ॥ २० ॥

पुण्य, पवित्र अने मंगल एवुं आ तत्त्व जे परमात्मा (अर्हँ) ना नामनी मध्यमां रहेलुं छे, ते परमात्मा तत्त्वदर्शिओने पूज्य छे ॥ १४ ॥

'ह्' तत्त्वनुं वर्णन :—

सर्व प्राणीओना हृदयमां सदा रहेल, सर्व वर्णोनी अंते रहेल, कलासहित, कलारहित अने लौकिक शास्त्रोमां 'महाप्राण' तरीके पूजित (बहुमत) एवा 'ह'कारनुं मंत्रधारकवडे जो विधिपूर्वक ध्यान कराय तो ते सर्व कार्योनो साधक छे ॥ १५–१६ ॥

जे देवना नामनी अंतमां आ ('ह'कार) रहे छे ते (अर्हँ) देवनुं मुमुक्षु मुनिवरोए सदा ध्यान करवुं जोईए ॥ १७ ॥

बिंदुनुं वर्णन :—

जे सर्व प्राणीओनी नासिकाना अग्रभागने विषे रहेल छे, जे सर्व वर्णोना मस्तके सुव्यवस्थित छे, जे 'ह'कार उपर जलबिंदुनी जेम वर्तुलाकारे रहेल छे अने जे योगीओवडे सदा चिन्तित छे, ते बिंदु सर्व जीवोने मोक्ष आपनार छे ॥ १८–१९ ॥

त्रण अक्षरो अने बिंदु मळीने जे देवनुं नाम थाय छे ते देव पण्डितो वडे सर्वज्ञ परमात्मा 'अर्हँ' (अरिहंत) कहेवाया छे ॥ २० ॥

उपसंहारः—

एतदेव समाश्रित्य कला ह्यर्धचतुर्थिका।
नाद-बिन्दु-लयाश्चेति कीर्तिताः परवादिभिः ॥ २१ ॥
मूर्तो ह्येष अमूर्तश्च कलातीतः कलान्वितः।
सूक्ष्मश्च बादरश्चेति व्यक्तोऽव्यक्तश्च पठ्यते ॥ २२ ॥
निर्गुणः सगुणश्चैव सर्वगो देशसंस्थितः।
अक्षयः क्षययुक्तश्च अनित्यः शाश्वतस्तथा ॥ २३ ॥

॥ इति 'अर्हं' अक्षरतत्त्वस्तवः ॥

उपसंहारः—

आ 'अर्हं' नो आश्रय लईने परवादीओए साडी त्रण मात्रावाळी कला (कुंडलिनी ?), नाद, बिंदु अने लय कह्या छे। (तात्पर्य के परोक्ष कुडलिनी योग, नादानुसंधान योग, लययोग वगेरे 'अर्हं' ना ध्याननी प्रक्रियामांथी नीकळ्या छे) ॥ २१ ॥

आ 'अर्हं' रूप सर्वज्ञ परमात्मा (स्याद्वादशैलीए) मूर्त–अमूर्त, कलारहित–कलासहित, सूक्ष्म–स्थूल, व्यक्त–अव्यक्त, निर्गुण–सगुण, सर्वव्यापी–देशव्यापी, अक्षय–क्षयवान् अने अनित्य–नित्य छे ॥ २२–२३ ॥

परिचय

श्रीधर्मदास गणिए रचेला 'धर्मोपदेशमाला' नामना ५४१ प्राकृतगाथाओना प्राचीन प्रकरण-ग्रंथ ऊपर अनेक जैनाचार्योए व्याख्याओ अने विवरणो रच्यां छे, ते पैकी श्री जयसिंहसूरिनुं 'धर्मोपदेश-माला-विवरण' सिंघी जैन ग्रंथमाला, मुंबईथी वि. सं. २००५ मा प्रगट थयेल छे। आ ग्रंथना पृष्ठ १७८-१७९ मांथी 'अर्हं अक्षरतत्त्वस्तव' नी संस्कृत भाषाना २३ अनुष्टुप् पद्योवाळी रचना अनुवाद साथे अहीं प्रगट करी छे।

श्री जयसिंहसूरिए पोतानी कृतिना अंते ३१ प्राकृत गाथाओमां प्रशस्ति आपेली छे, तेमां २८–२९ मी गाथामां आ ग्रंथनी रचना वि० सं० ९१५ मां थयानुं जणाव्युं छे। एटले आ स्तव पण ए समयनु छे ए निर्विवाद छे।

आ स्तोत्रमां 'अर्हं' नुं सुंदर वर्णन छे। एमां अ, र, ह अने बिंदुनी विशेषताओ सुंदर रीते दर्शाववामां आवी छे अने ए अक्षरोनी व्यापकतानुं पण सुंदर निरूपण छे। इतर दर्शनोमां रहेली नाद बिंदु, कला, लय वगेरेनी साधना आ 'अर्हं' मांथी नीकळी छे, एम आ स्तोत्र कहे छे। अंतमां 'अर्हं'-ने मूर्तामूर्तादि विशेषणोथी वर्णववामां आवेल छे। स्तोत्रनी रचना काव्यनी दृष्टिए पण मनोहर छे।

अर्हँ

'अर्हं' इत्येतदक्षरम्, परमेश्वरस्य परमेष्ठिनो वाचकम्, सिद्धचक्रस्यादिबीजम्, सकलागमोपनिषद्भूतम्, अशेषविघ्नविघातनिघ्नम्, अखिलदृष्टादृष्टफलसंकल्पकल्पद्रुमोपमम्, आशास्त्राध्ययनाध्यापनावधि प्रणिधेयम्। प्रणिधानं चानेनात्मनः सर्वतः संभेदस्तदभिधेयेन चाभेदः। वयमपि चैतच्छास्त्रारम्भे प्रणिदध्महे। अयमेव हि तात्त्विको नमस्कार इति ॥१॥

कलामय 'अर्हँ' मङ्गलपाठः

[५०–५]

अर्हँ

श्रीहेमचन्द्रसूरिरचितश्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनस्य मङ्गलाचरणसूत्रम्
स्वोपज्ञ तत्त्वप्रकाशिकाटीका-शब्दमहार्णवन्याससंवलितम् ॥

अर्हँ । १ । १ । १ ॥

तत्त्वप्रकाशिका टीका—

(स्वरूपम्) ....'अर्हँ' इत्येतदक्षरम् ।
(अभिधेयम्) ....परमेश्वरस्य परमेष्ठिनो वाचकम् ।
(तात्पर्यम्) ....सिद्धचक्रस्यादिवीजम् ।
सकलागमोपनिषद्भूतम् ।
(क्षेमम्) ....अशेषविघ्नविघातनिघ्नम् ।
(योगः) ....अखिलदृष्टाऽदृष्टफलसंकल्पकल्पद्रुमोपमम् ।
(प्रणिधानम्) ....आशास्त्राध्ययनाऽध्यापनावधि प्रणिधेयम् ।
(प्रणिधानस्य द्वैविध्यम्)...प्रणिधानं चानेनात्मनः सर्वतः संभेदस्तदभिधेयेन चाभेदः।
(विशिष्टप्रणिधानम्) ......वयमपि चैतच्छास्त्रारम्भे प्रणिदध्महे ।
(तत्त्वम्) ....अयमेव हि तात्त्विको नमस्कार इति ॥ १ ॥

अनुवाद

'अर्हँ' ए अक्षर, परमेश्वर परमेष्ठिनो वाचक, सिद्धचक्रनुं आदि बीज, सकल आगमोनुं रहस्य, सर्व विघ्नोनो नाश करवामां समर्थ अने सकल दृष्ट के अदृष्ट फळोना संकल्पने पूरवा माटे कल्पवृक्षसमान छे। एनुं शास्त्रना अध्ययन अने अध्यापन वखते प्रणिधान करवुं जोईए। एनी साथे आत्मानो सर्वतः संभेद अने एना अभिधेय (प्रथम परमेष्ठी) साथे आत्मानो अभेद, एम बे प्रकारनुं प्रणिधान छे। अमे (शब्दानुशासनकार) पण एनुं शास्त्रना आरंभमां प्रणिधान करीए छीए। 'अर्हँ' ए ज तात्त्विक नमस्कार छे ॥ १ ॥[1]

---

१. विशेषार्थ माटे जुओ 'शब्दमहार्णवन्यास'।

शब्दमहार्णवन्यासः—

अर्हँ' इत्यादि-वाक्यैकदेशत्वात् साध्याहारत्वादध्याह्रियमाणप्रणिधानलक्षणक्रियाकर्मण उक्तत्वात् "नाम्न प्रथमैक-द्वि-बहौ" [२-२-३१] इत्युत्पन्नाया प्रथमाया 'अर्हँ' इयेनस्मात् सूत्रत्वाल्लुक्।

तदर्थं व्याचष्टे—व्याख्या च स्वरूपा-ऽभिधेय-तात्पर्यभेदात् त्रेधा। ता च 'अर्हँ' इत्यादिना दर्शयति —तत्र 'अक्षरम्' इति स्वरूपम्। 'परमेष्ठिनो वाचकम्' इत्यभिधेयम्। 'सिद्धचक्रस्य' इत्यादिना तात्पर्यम्।

(स्वरूपम्-'अर्हँ' इत्येतदक्षरम्।)

अक्षरमिति—अक्षरं बीजम्। तदेवाह—**आदिबीजमिति।**

कस्य तदादिबीजम्?

सिद्धचक्ररूपस्य तत्त्वस्य, सबीज-निर्बीजभेदेन तत्त्वस्य द्वैविध्यात्।

अनुवाद

'अर्हँ' एटलु—एकलु ज एमने एम होय तो तेनो कोई अर्थ संगत थतो नथी। ए एकलु पूर्ण वाक्य बनतुं नथी, एटले कोई पण क्रियानो अध्याहार करवो आवश्यक छे, तेथी 'अर्हँ' ए वाक्यनो एक भाग थयो। जे क्रियानो अध्याहार करवानो छे ते बीजो भाग थयो। अहीं प्रकृतमां प्रणिधानक्रियानो अध्याहार करवानो छे, तेथी 'अर्हँ' ए प्रणिधानक्रियानुं कर्म छे। क्रियापदनो प्रयोग कर्मणि-प्रत्यय लावीने कर्यो छे, एटले कर्म उक्त थाय छे ने तेथी तेने "नाम्नः प्रथमैक-द्वि-बहौ" [२-२-३१] ए सूत्रथी प्रथमा विभक्ति प्राप्त थाय छे; ए प्रथमा विभक्तिनो अहीं सूत्रपणाने कारणे 'लुक्'-लोप करवामां आव्यो छे।

व्याख्याना त्रण प्रकारो छे :—(१) स्वरूप (२) अभिधेय अने (३) तात्पर्य। तेमां 'अक्षर' थी स्वरूप, 'परमेष्ठिनो वाचक' थी अभिधेय अने 'सिद्धचक्रनुं आदिबीज' वगेरेथी तात्पर्य कहे छे। (आ प्रकारे विस्तारथी समजावे छे।)

(१. स्वरूप)

अक्षर एटले बीज। अक्षरनो अर्थ बीज थाय छे, ए ज वात 'आदिबीजम्' ए पदथी जणावी छे।

प्रश्न—ए कोनुं आदिबीज छे?

उत्तर—सिद्धचक्ररूपी तत्त्वनुं ए आदिबीज छे; तत्त्वना सबीज अने निर्बीज एवा बे प्रकारो छे। (तेमां सिद्धचक्ररूपी जे सबीज तत्त्व छे तेनुं आ आदिबीज छे।)

---

१. 'न्याससारसमुद्धारः' इत्याख्यन्यासानुसारी तत्तच्छब्दोपरि विशिष्टोऽर्थनिर्देश स एवोद्ध्रियते।

अर्हतीति पूजामित्यर्हँ—'अर्हः' [उणा० २.] इत्यः। पृषोदरादित्वात् सानुनासिकत्वम्। 'अर्हम्' इति मान्तोऽप्यस्ति निपातः। ननु 'अर्हम्' इत्यव्ययं स्वरादौ पाठे च न दृष्टम्, तत् कथमव्ययम्? सत्यम्—

'इयन्त इति संख्यानं, निपातानां न विद्यते।
प्रयोजनवशादेते, निपात्यन्ते पदे पदे॥'

अनुवाद :—'न्याससारसमुद्धार'मां 'शब्दमहार्णवन्यास'ना ते ते शब्दना विशिष्ट अर्थनो निर्देश छे (आ अने पछीनी टिप्पणीओमां आपेल संस्कृतपाठ 'न्याससारसमुद्धार'नो छे)।

पूजाने योग्य ते 'अर्हँ' कहेवाय। पृषोदरादि सूत्रथी 'अर्ह' शब्दने अनुनासिक लगाडतां 'अर्हँ' बने छे। वळी 'अर्हम्' एवो 'म'कारान्त निपात पण छे। अहीं ए प्रश्न थाय छे के, स्वरादिगण के च्वादिगणमां 'अर्हम्' अव्यय आवतुं नथी तो पछी ते कई रीते अव्यय छे? तेनो खुलासो ए छे के—

"निपातो (अव्ययो) आटला ज छे एवी संख्या नियत नथी। प्रयोजन प्राप्त थतां स्थळे स्थळे निपातित कराय छे।"

यद् धर्मसारोत्तरम्—

"अक्षरमनक्षरं वै द्विविधं तत्त्वमिष्यते।
अक्षरं बीजमित्याहुर्निर्बीजं चाप्यनक्षरम्॥"

यद्वा न क्षरति—न चलति स्वस्मात् स्वरूपादक्षरं तत्त्वं ध्येयं ब्रह्मेति यावत्, वर्णं वा।

द्विविधो हि मन्त्रः, कूटरूपोऽकूटरूपश्च। संयुक्तः कूट इति व्यवह्रियते, इतरोऽकूट इति।

अत एव चास्माद् 'वर्णाव्ययात् कारः' [७-२-१५६] इति कारं कुर्वते वृद्धाः, 'क्षकारः' इति, 'ॐकारः' इति, 'ह्म्ल्व्र्यूँकारः' इति, 'अकारः' इतिवत्। कूटेष्वेकस्यैवाक्षरस्य मन्त्रत्वात्, शेषस्य तु परिकरत्वात्।

'**धर्मसारोत्तर**' मां कह्युं छे के—

"अक्षर अने अनक्षर एम बे प्रकारनुं तत्त्व छे, तेमां जे बीज छे ते अक्षरतत्त्व कहेवाय छे अने जे बीजरहित छे ते अनक्षरतत्त्व कहेवाय छे।" (आ अक्षरतत्त्वनो एक अर्थ थयो। हवे बीजो अर्थ—)

पोताना स्वरूपथी जे चलित न थाय ते अक्षर। एटले अक्षर शब्दथी तत्त्वध्येय रूप ब्रह्म लेवुं, अथवा वर्णात्मक अक्षर लेवो।

प्रश्न—('अ आ' वगेरे जे एक ज वर्ण होय तेने तो वर्ण के अक्षर कही शकाय, पण अहीं तो 'अर्हँ' मां घणा अक्षरो भेगा थयेला छे एटले एने वर्ण के अक्षर शी रीते कही शकाय? 'अक्षराणि' एम कहेवुं जोईए, पण अहीं तो 'अक्षरं' कहेलुं छे।)

उत्तर—मंत्रो बे प्रकारना छे: (१) कूट अने (२) अकूट। संयुक्त होय तेने 'कूट' कहे छे अने संयुक्त न होय तेने 'अकूट' कहेवामां आवे छे। (कूट मंत्रमां अक्षरो जो के घणा होय छे तो पण तेमां मंत्र तो एक ज अक्षर होय छे, बाकीना अक्षरो ते मंत्रना परिकर—परिवाररूप होय छे।)

कूट मंत्रमां घणा अक्षरो होवा छतां एक ज अक्षर मंत्रस्वरूप होवाथी 'वर्णाव्ययात् कारः' [७-२-१५६] ए सूत्रथी क्षकार, ॐकार, ह्म्ल्व्र्यूँकार वगेरे शब्दोने वृद्धो सिद्ध करे छे; कारण के आ सूत्रनो अर्थ एवो छे के जे एकेक वर्ण होय तेना पछी (तथा अव्यय पछी) 'कार' प्रत्यय लगाडवो; जेम के—अकार, इकार, उकार। परंतु अहीं तो कूट मंत्रमां घणा अक्षरो छे एटले शी रीते 'कार' प्रत्यय लगाडाय? छतां वृद्ध पुरुषो क्षकार(क्+ष्+अ), ह्म्ल्व्र्यूँकार वगेरे शब्दोमां 'कार' प्रत्यय लगाडे छे, तेनुं कारण ए छे के, आ कूट मंत्रोमां घणा अक्षरो देखाता होवा छतां पण वस्तुतः एमां एक ज अक्षर मंत्रस्वरूप होय छे बाकीना अक्षरो तो तेना परिवारभूत छे, माटे आवा कूट मंत्रोने पण एकाक्षरी मंत्र ज मानीने वृद्ध पुरुषो 'कार' प्रत्यय लगाडे छे। ते ज न्याये अहीं 'अर्हँ' शब्द अनेकाक्षरी देखातो होवा छतां एमां मंत्राक्षर तो एक ज ('ह्') होवाने लीधे अमे 'अक्षराणि' एवो बहुवचननो प्रयोग न करतां 'अक्षरं' एवो एकवचननो प्रयोग कर्यो छे।

प्रश्न—(कूट मंत्रोमां अनेक अक्षरो होवा छतां मंत्र तो एक अक्षर जेटलो ज जो होय छे तो बाकीना अक्षरोनी शी जरूर छे?)

सपरिकरो हि वर्णो मन्त्रो भवति, केवलस्यार्थक्रियाविरहात्। तस्य च बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वैविध्यात्। मण्डल-मुद्रादेर्बाह्यत्वात्, नाद-बिन्दु-कलादेरान्तरत्वात्, तेषामेवोद्दीपकत्वात्, तथाभूतानामेव क्रियाजनकत्वात्। मण्डल-मुद्रादीनां केवलानामपि फलजनकत्वात्। विशेषतः समुदितानां ग... ....वाचकम्।'

(अभिधेयम्—परमेश्वरस्य परमेष्ठिनो वाचकम्।)

"देवतानां गुरूणां च नाम नोपपदं विना।
उच्चरेन्नैव जायायाः कथञ्चिन्मनस्तथा॥"

इति वचनाद् निरुपपददेवतानामोच्चारणस्य प्रतिषेधात्, प्रतिषिद्धाचरणे च प्रायश्चित्तोपदेशात्, सोपपददेवतानामोच्चारणस्यैव प्राप्तत्वात्। अन्यस्य च श्रीप्रभृतेरुपपदस्य तुच्छत्वेन तथाविधवैशिष्ट्याप्रतिपादकत्वाद् वैशिष्ट्यप्रतिपादनार्थं तस्य परमेश्वरस्यं इत्युपपदमुपन्यस्यति। परमं यदैश्वर्यमणिमादि यच्च

उत्तर—परिकर सहित वर्ण ज मंत्रनुं कार्य करी शके छे। एकलो वर्ण ते कार्य करी शकतो नथी। ते परिकर बे प्रकारे छे: (१) बाह्य अने (२) आभ्यन्तर। आ बन्ने प्रकारना परिकर सहित जो मंत्र होय तो ज ते परिपूर्ण फळने आपे छे।

मण्डल-मुद्रा वगेरे बाह्य परिकर छे, नाद-बिन्दु-कला वगेरे आभ्यन्तर परिकर छे। मंडलमुद्रादि अने नादबिन्दुकलादि ज उद्दीपक छे। उद्दीपक एवा तेओ ज अर्थक्रियाना जनक छे। मंडल—मुद्रा वगेरे एकलां पण फळ तो आपे छे परंतु ते सामान्य प्रकारनुं फळ होय छे; पण ज्यारे बधां भेगां थाय त्यारे विशेष फळ आपे छे।

(२. अभिधेय)

अर्हं ते परमेश्वररूप परमेष्ठीनो वाचक छे। परमेष्ठी देवता छे। (शास्त्रमां कह्युं छे के—) "देवताओ अने गुरुओनुं नाम उपपद विना कदापि बोलवुं न जोईए; अने बन्ने त्यां सुधी पत्नीनुं तेम ज पोतानुं नाम पण उच्चारवुं न जोईए।"

शास्त्रना ए वचनने अनुसारे देवतानुं नाम उपपद विना उच्चारण करवुं शास्त्रथी निषिद्ध छे। निषिद्ध कार्य करवाथी प्रायश्चित्त लागे एवो उपदेश छे, तेथी देवतानुं नाम उपपदपूर्वक ज बोलवुं योग्य छे। बीजा जे 'श्री' वगेरे साधारण शब्दो उपपद तरीके अगर तो विशेषण तरीके वापरवा ए तुच्छपणुं दाखवे छे, माटे विशिष्ट गुणो प्रतिपादन करे तेवुं विशेषण 'परमेश्वर' पद छे अने ते पदनो अहीं विशेषण तरीके उपयोग सुयोग्य रीते थयो छे। सर्वोत्तम ऐश्वर्य जे अणिमा आदि सिद्धिरूप छे अने जे परम योग अने

---

१. अहीं मूळ ग्रंथमां साठ पंक्ति जेटलो महत्त्वनो पाठ अनुपलब्ध छे।

२. परमेष्ठिनः पञ्च, ततः शेषचतुष्टयव्यवच्छेदायाऽऽह—परमेश्वरस्येति। चतुस्त्रिंशदतिशयरूपपरमैश्वर्यभाजो जिनस्येत्यर्थः। ननु 'परमेष्ठी'ति सामान्यं पद तथापि 'अर्हं' इति भणनाद् 'अर्हन्' एव लभ्यते, किं परमेश्वरस्येति! सत्यम्—"देवतानां गुरूणां च" इति (इत्यादि)।

अनुवादः—परमेष्ठिओ पांच छे, तेथी बाकीना चारने अलग करवा 'परमेश्वर' एवुं परमेष्ठीनुं विशेषण बताववामां आव्युं छे।—अर्थात् चोत्रीश अतिशयरूप परम ऐश्वर्यथी शोभता एवा श्रीजिनेश्वर (अरिहंत) एवो अर्थ उद्दिष्ट छे; त्यारे ए प्रश्न थाय छे के, परमेष्ठी ए सामान्य पद छे छतां 'अर्हं' कहेवाथी 'अर्हन्' ज समजाय छे त्यारे 'परमेश्वर' एवुं विशेषण मूकवानुं प्रयोजन शुं? एना उत्तरमां कहे छे के—'देवता अने गुरुनुं नाम उपपद विना कदापि बोलवुं न जोईए, तेम ज पत्नीनुं अने पोतानुं नाम पण बने त्यांसुधी उच्चारवुं न जोईए।'

परमयोगर्द्धिरूपं तद्वान् परमेश्वरः, यथा महाराज इति, अत्र हि महत्त्वं गुणं विशिंषद् द्रव्यं विशिनष्टीति **परमेष्ठिन** इति। परमे पदे तिष्ठति यः सः परमेष्ठी, अनेन च सविशेषणेन सकलरागादिमलकलङ्कविकलो योग-क्षेमविधायी शस्त्राद्युपाधिविरहितत्वात् प्रसत्तिपात्रं ज्योति(ती)रूपं देवाधिदेवः सर्वज्ञः पुरुषविशेषः। यदाह—

"रागादिभिरनाक्रान्तो, योग-क्षेमविधायकः।
नित्यं प्रसत्तिपात्रं यस्तं देवं मुनयो विदुः॥"

मन्त्रकल्पे हि मन्त्रवर्णानां वाचकत्वेन कीर्त्तनाद् वाचकमित्युक्तम्। यथा 'अ-सि-आ-उ-सा' इति बीजपञ्चकं पञ्चानामर्हदादीनाम्, 'ड-र-ल-क-श-ह-य'मिति आधारादिसप्तदेवीनाम्[1] तथा अकारादिभिः षोडशस्वरैर्मण्डलेषु षोडश रोहिण्याद्या देवता अभिधीयन्ते, ततस्तासां प्रतीतेरिति।

(तात्पर्यम्—सिद्धचक्रस्यादिबीजम्।)

तात्पर्यस्य चाभिधानपृष्ठभावित्वात् **सिद्धचक्रस्यादिबीजमि**[2]**त्यादिना** पश्चादुच्यते।

ऋद्धिरूप छे ते ऐश्वर्यवाळा परमेश्वर समजवा; जेम के 'महाराज' शब्दमां महत्त्व राजाना (राजापणारूपी) गुणमां विशेषता दर्शावे छे, छतां वस्तुतः ए राजारूपी पुरुषनी विशेषता छे; ते प्रमाणे 'परमेश्वर' शब्द पण गुणनी (सामर्थ्यनी–ऐश्वर्यनी) विशेषता दर्शाववापूर्वक कोई द्रव्यनी ज (व्यक्तिनी ज) विशेषता दर्शावे छे। ए व्यक्ति कई ते स्पष्ट करवा माटे 'परमेष्ठिनः' पद छे। परमेश्वर एवा विशेषण सहित 'परमेष्ठी' शब्दथी देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा लेवाना छे। परम पद पर स्थित होय ते 'परमेष्ठी' कहेवाय। आ पद साथे 'परमेश्वर' विशेषण तरीके मूकीए तो ज सकल रागादि मलरूप कलङ्कथी रहित, सर्व जीवोना योग अने क्षेमने वहन करनारा, शस्त्रादि उपाधिथी रहित होवाथी प्रसन्नताना पात्र, ज्योतिरूप, देवाधिदेव अने सर्वज्ञ एवा ते पुरुषविशेष (परमात्मा-अरिहंत) समजाय। कह्युं छे के—

"जेओ राग वगेरेथी आक्रान्त नथी, योग अने क्षेमना करनारा छे अने सदा प्रसन्नताना पात्र छे तेमने मुनिओ 'देव' कहे छे।"

'**मंत्रकल्प**' मां मंत्रना वर्णो 'वाचक' तरीके ओळखाववामां आव्या छे (माटे ज 'अर्हँ' ते परमेश्वर एवा परमेष्ठीनो वाचक छे एम कह्युं छे।) ते प्रमाणे 'अ सि आ उ सा' रूप बीजपंचक अर्हत् वगेरे पांच परमेष्ठीना वाचक छे। तथा 'ड र ल क श ह य' ते देहगत मूलाधार वगेरे चक्रोनी देवीओनां नामना प्रथमाक्षरो अनुक्रमे ते देवीओना वाचक छे, तथा 'अकार' वगेरे सोळ स्वरो यंत्रोमां रोहिणी वगेरे सोळ विद्यादेवीओना वाचक छे, कारण के तेमनी तेथी (ते ते स्वरोथी) प्रतीति थाय छे।

(३. अ. तात्पर्य)

व्याख्यामां अभिधान पछी तात्पर्यने रजू करवानी पद्धति होवाथी 'सिद्धचक्रना आदिबीज' वगेरे तात्पर्यनो हवे पछी निर्देश करे छे।

---

१. आधारादिसप्तदेव्यो डाकिनी–राकिनी–लाकिनी–काकिनी–शाकिनी–हाकिनी–याकिनीरूपाः॥
अनुवादः— आधार वगेरे चक्रोनी सात देवीओनां नाम आ प्रकारे छे—
(१) डाकिनी (२) राकिनी (३) लाकिनी (४) काकिनी (५) शाकिनी (६) हाकिनी अने (७) याकिनी.

२. सिद्धेति–सिद्धाः विद्यासिद्धादयस्तेषां चक्रमिव चक्रं, तस्य पञ्चबीजानि तेषु चेदमादिबीजम्।
अनुवादः—सिद्धो एटले विद्यासिद्धो तेमनो समूह जेमां होय ते। तेनां पांच बीजो छे। तेमां आ बीज प्रथम छे।

समयप्रसिद्धस्य चक्रविशेषस्य निरूढमभिधानम्।

यद्वा सिद्ध्यन्ति निष्ठितार्था भवन्ति, लोकव्यापिसमये (¹) कलारहितमिदमेव तत्त्वं ध्यायन्तोऽस्मादिति "बहुलम्" [५-१-२] इति क्ते, ततो विशेषणसमासे सिद्धचक्रम्।

एतच्च तत्र तत्र व्यवस्थितपरमाक्षर ध्यानाद् योगर्द्धिप्राप्ता यस्मात् (योगर्द्धिप्राप्तावस्मात्) सिद्धिरित्युच्यते (²) इति सूत्रपाद सिद्धत्वमस्य चक्रस्येति।

तस्येदम्, अर्हंकारं प्रथमं बीजम्। बीजसाधर्म्याद् बीजम्। यथाहि—बीजं प्रसव-प्ररोह-फलानि प्रसूते, तथेदमपि पुण्यादिप्ररोह भुक्ति-मुक्तिफलजनकत्वाद् बीजमुच्यते।

सन्ति पश्चात्यन्यान्यपि ह्रॉंकारादीनि बीजानि, तदपेक्षयाऽस्य प्राथम्यम्, प्रथमं साधूनामितिवत्। प्रथमतमग्रीभूत व्यापकमित्यर्थः। व्यापकत्वं चास्य सर्वबीजमयत्वात्।

इदमेव हि बीजम्—'अधोरेफ-आ-ई-ऊ-औं-अं-अः' एतैर्युक्तं बीजं भवतीति व्यापकत्वं अस्य।

यदि वा, परसमयसिद्धानां त्रैलोक्यविजया-घण्टार्गल-स्वाधिष्ठान-प्रत्यङ्गिरादीनां चक्राणामिदमेव हकारलक्षणं प्रधानं बीजम्।

अथवा, अकारादि-क्षकारान्तानां पञ्चाशतः सिद्धत्वेन प्रसिद्धानां यच्चक्रं समुदायस्तस्य प्रधानमिदमेव बीजम्।

---

(१) सिद्धचक्र ते सिद्धान्तमां प्रसिद्ध एवा चक्रविशेषनुं रूढ नाम छे।

(२) अथवा तो ए ज तत्त्व (अर्हं) नुं लोकव्यापिसमयमां (¹) कलारहित ध्यान करनारा महात्माओ एथी सिद्ध थाय छे माटे 'सिद्ध' कह्युं, पछी विशेषण समासथी 'सिद्धचक्र' शब्द बन्यो छे।

(३) अथवा ए चक्रमां रहेला परमाक्षरोना ध्यानथी योगनी ऋद्धिओ प्राप्त थतां 'सिद्धि थई' एम कहेवाय छे, तेथी ए चक्रनुं सिद्धपणुं स्पष्ट ज छे।

ते सिद्धचक्रनुं आ अर्हंकार प्रथम बीज छे। बीजनी साथे साधर्म्य होवाथी ए बीज कहेवाय छे। जेम बीजमांथी फणगो, अंकुरो अने फळ निपजे छे तेम आ 'अर्हं'कार बीजमांथी पण पुण्यानुबंधि-पुण्य, भुक्ति अने मुक्ति उत्पन्न थाय छे, तेथी ते पण 'बीज' कहेवाय छे।

आदिबीज कहेवानुं तात्पर्य ए छे के, ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ए प्रमाणे बीजा पण पांच बीजो छे तेनी अपेक्षाए ह्रूं बीज प्रथम छे माटे तेने आदिबीज कह्युं छे। जेमके अमुक व्यक्ति साधुओमां प्रथम छे, ते रीते आ 'अर्हं' पण बधां बीजोमां प्रथम छे। अहीं प्रथम एटले अग्रगीभूत (अग्रेसर) अथवा व्यापक, एम अर्थ करवो। 'अर्हं' ए बीजने व्यापक एटला माटे कह्युं छे के, ते सर्व बीजमय छे।

तात्पर्य आ प्रमाणे छे—'नीचे रेफ तथा आ—ई—ऊ—औ—अं—अः' थी युक्त (वर्ण) होय ते बीज थाय छे; जेमके—ह्+र्+आ+म्=ह्रॉं, ह्+र्+ई+म्=ह्रीं, ह्+र्+ऊ+म्=ह्रूं, ह्+र्+औ+म्=ह्रौं, ह्+र्+अ+म्=ह्रं अने ह्+र्+अः=ह्रः। ए रीते आ बीज (ह्रूं) व्यापक छे।

अथवा तो जैनेतर शास्त्रोमां प्रसिद्ध त्रैलोक्यविजया, घण्टार्गल, स्वाधिष्ठान, प्रत्यङ्गिरा वगेरे चक्रोमां पण आ ज 'ह'कार (सपरिकर) मुख्य बीज होय छे।

अथवा तो अकारथी क्षकार सुधीना पचास वर्णो सिद्धाक्षररूपे प्रसिद्ध छे (एटले के सिद्धमातृका कहेवाय छे) तेओनुं जे चक्र (समुदाय, वर्णमाला) ते सिद्धचक्र तेनुं आ 'हकार' ज मुख्य बीज छे।

(तात्पर्यम्—सकलागमोपनिषद्भूतम्।)

पुनर्विशेषणद्वारेण तस्यैव प्राधान्यमाह—सकलागमोपनिषद्भूतम्—सकलस्य द्वादशाङ्गस्य गणिपिटकरूपस्यैहिकामुष्मिकफलप्रदस्यागमस्योपनिषद्भूतं रहस्यभूतं, पञ्चानां परमेष्ठिनां यानि 'अ-सि-आ-उ-सा' लक्षणानि पञ्चबीजानि, यानि च अरिहन्तादिषोडशाक्षराणि तान्येव द्वादशाङ्गस्योपनिषदिति। यदाह **पञ्चपरमेष्ठिस्तुतौ**—

"**सोलसपरमक्खरबीयबिंदुगब्भो जगुत्तमो जोओ।**
सुअबारसंगबाहिरमहत्थ-ऽपुव्वत्थ-परमत्थो॥"

यदि वा, सकला ये आगमाः पूर्व-पश्चिमाम्नायरूपास्तेष्वपि परमेश्वरपरमेष्ठिवाचकं 'अर्हँ' इति तत्त्वं उपनिषद्रूपेण प्रणिधीयत इति, सकलानां स्वसमय-परसमयरूपाणामागमानामुपनिषद्भूतं भवतीति।

(३. व. तात्पर्य)

वळी बीजा विशेषणद्वारा ते बीजनुं ज मुख्यपणुं बतावे छे। आ 'अर्हँ' सकल आगमोना उपनिषद्भूत छे—एटले के इहलौकिक—पारलौकिक सर्व फळो आपनार गणिपिटकरूप समग्र द्वादशांग आगमनुं आ 'अर्हँ' रहस्य छे। पांच परमेष्ठिओना 'अ-सि-आ-उ-सा' रूप पांच बीजो अने जेमां **अरिहंत** आदि सोळ अक्षरो ('**अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहु**') पण द्वादशांग-आगमनुं रहस्य छे। '**परमेष्ठिस्तुति**' मां कह्युं छे के—

"सोळ परमाक्षररूप बीजो अने बिंदुओ जेना गर्भमां छे ते (मंत्राक्षरोनो) योग जगतमां उत्तम छे अने द्वादशांगरूप (अंगप्रविष्ट) श्रुतनो तथा (उत्तराध्ययनादि) अंगबाह्यश्रुतनो महार्थ, अपूर्वार्थ अने परमार्थ छे।"

अथवा प्राचीन आम्नाय अने ते पछीना आम्नायरूप सर्व आगमोमां पण परमेश्वरपरमेष्ठिना वाचक 'अर्हँ' तत्त्वनुं उपनिषद्रूपे प्रणिधान कराय छे, तात्पर्य ए छे के ते (अर्हँ) स्वपरसमयरूप सर्व आगमोनुं रहस्य छे।

---

१. सर्वपार्षदत्वाच्छब्दानुशासनस्य समग्रदर्शनानुयायी नमस्कारो वाच्यः। अयं चाऽर्हँ अपि तथा। तथाहि—

"अकारेणोच्यते विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः।
हकारेण हरः प्रोक्तस्तदन्ते परमं पदम्॥"

इति श्लोकेन 'अर्हँ'शब्दस्य विष्णुप्रभृतिदेवतात्रयाभिधायित्वेन लौकिकागमेष्वपि 'अर्हँ' इति पदमुपनिषद्भूतमित्यावेदितं भवति। तदन्त इति तुरीयपादस्यायमर्थः—तस्य 'अर्हँ'शब्दस्यान्त उपरितने भागे परमं पदं सिद्धिशिलारूपं तदाकारत्वादनुनासिकरूपा कलाऽपि परमं पदमित्युक्तम्।

अनुवादः—शब्दानुशासन-व्याकरण सर्व समाजनो माटे होय छे, तेथी सर्व दर्शनोने मान्य एवो नमस्कार कहेवो जोईए। एवो प्रश्न थाय तो तेनो जवाब आपतां कहे छे के—आ 'अर्हँ' शब्द पण ए ज प्रकारनो छे। अन्य शास्त्रोमां कह्युं छे के—

"अकारथी विष्णु कहेवाय छे, रेफमां ब्रह्मा रहेला छे, हकारथी शिव जणाव्या छे अने पछी ँ अनुस्वार ए परम पदनो वाचक छे।"

आ श्लोकथी 'अर्हँ' शब्द विष्णु वगेरे त्रणे देवताओनो वाचक होवाथी लौकिक आगमोमां पण आ 'अर्हँ' पद रहस्यरूप छे, एम जणाव्युं छे। आ श्लोकमां 'तदन्ते' एवुं जे चोथुं पाद छे तेनो अर्थ ए छे के—'अर्हँ' शब्दनी अंते उपरना शिरोभागमां सिद्धशिलारूप परमपद छे, अनुनासिकरूप कला पण सिद्धशिलाना आकारवाळी होवाथी ते परमपद छे, एम कह्युं छे।

फलार्थिनां सेवाप्रवृत्त्यङ्गभूतां योग-क्षेमशालितामस्योपदर्शयन् लब्धपरिपालनमन्तरेण, अलब्धलाभस्याकिञ्चित्करत्वात् क्षेमोपदर्शनपूर्वकं योगमुपदर्शयति—

(क्षेमम्—अशेषविघ्नविघातनिघ्नम्।)

[अशेषाः–] कृत्स्ना ये विघ्नाः सत्क्रियाव्याघातहेतवस्तेषां विशेषेण हननं समूलकाषं कषणम्, तथाऽसौ विघ्नान् विहन्ति यथैते न पुनः प्रादुःष्यन्ति; 'वि'शब्देन घातविशेषणादयमर्थलाभः, 'अशेष'शब्देन तद्विशेषणाद् वेति, तत्र [निघ्नम्–] परवशम्।

यथा मदजलधौतगण्डस्थलो मदपारवश्यादगणितस्वपरविभागो गजः समूलवृक्षाद्युन्मूलने लम्पटो भवति, एवमयमपि परमाक्षरमहामंत्रो ध्यानावेशविवशीकृतो विघ्नोन्मूलने प्रभविष्णुर्भवति।

(योगः—अखिलदृष्टाऽदृष्टफलसंकल्पकल्पद्रुमोपमम्।)

अखिलानि समग्राणि यानि दृष्टानि च चक्रवर्तित्वादीनि चाऽदृष्टानि स्वर्गापवर्गरूपाणि फलानि, तेषां संकल्पे-संपादने कल्पवृक्षेणोपमीयते यत् तत् तथा। व्यवहारसंदृष्ट्याऽयमुपमानोपमेयभावः लोके तस्य कल्पितफलदातृत्वेन प्रसिद्धत्वात्, अस्य तु संकल्पातीतफलप्रदायित्वात्।

फळना अर्थिओनी सेवा अने प्रवृत्तिमां कारणभूत एवी आ 'अर्हं' नी योगक्षेमशालिता बतावतां, लब्धना परिपालनरूप क्षेम विना अलब्धना लाभरूप योग निरर्थक होवाथी प्रथम क्षेमने बतावीने पछी योगने बतावे छे:—

(४. क्षेम)

शुभ क्रियामां व्याघात करनारां सर्व विघ्नोनुं समूल उच्छेदन करवाने माटे ते (अर्हंबीज) समर्थ छे। आ (अर्हं बीज) विघ्नोनो एवी रीते नाश करे छे के जेथी ते पुनः उत्पन्न थई शकतां नथी। आवा अर्थनी प्राप्ति 'घात' शब्दनी पूर्वे 'वि' उपसर्ग जोडवाथी थाय छे, अथवा 'अशेष' शब्द ते (विघ्न)नुं विशेषण होवाथी पण एवो अर्थ करी शकाय छे।

जेम जेनुं मदना जलथी गंडस्थल धोवाई रह्युं छे एवो मदोन्मत्त हाथी मदना आवेशथी परवश थतां स्व के परना विभागना भेदने गणकार्या विना वृक्षोने मूलथी उखेडी नाखे छे तेम ध्यानना प्रभावथी विवश करायेल आ–परमाक्षर महामंत्र विघ्नोनुं समूल उच्छेदन करवामां समर्थ बने छे (एटले ते क्षेमंकर छे)।

(५. योग)

वळी, जे दृष्ट फळो–चक्रवर्तिपणुं वगेरे, अने अदृष्ट फळो–स्वर्ग अने मोक्ष, ते प्राप्त करावतामां आ(अर्हं) कल्पवृक्ष समान छे (एटले ते योजक छे)। व्यवहारदृष्टिए आ उपमानउपमेय भाव छे कारण के जगतमां कल्पवृक्ष इच्छित (इच्छा करी होय तेटलुं ज) फळ आपे छे ए वात प्रसिद्ध छे; ज्यारे आ (अर्हं महामंत्र) तो संकल्प करतां पण वधारे फळ आपे छे।

यद्वा, दृष्टात् क्रियाविशेषाद् यत् फलम्—"क्रियैव फलदा पुंसाम्।" इत्युक्ते(क्तेः) तथैव दर्शनत्वे-(नाच्च), न हि क्रियाविरहिता एवमेवोदासीनाः फलानि समश्नुवते; यच्चादृष्टात् पुण्यविशेषाद्, अखिलं फलं, तस्य संकल्पः, शेषं पूर्ववत्।

त्रिविधं हि फलम्—किञ्चित् क्रियाजं मनुष्यादीनां व्यापारविशेषात् कृषि-पशुपाल्य-राज्यादि, किञ्चिद्धि पुण्यादेव व्यापाराभावशालिनां कल्पातीतदेवानाम्, किञ्चिदुभयजं व्यन्तरादीनाम्।

यदि वा, दृष्टानां प्रत्यक्षेणोपलब्धानां मनुजादीनाम्, अदृष्टानां चानुमानगम्यानाम्, अखिला ये फले संपूर्णाः कल्पा एकहेलयैव समुदिता ईषदूनास्ते[ते]षां कल्पो वा विधानं स एव प्रसरणशीलत्वेन द्रुमः—पादपः स उप सामीप्येन मीयते परिच्छिद्यतेऽनेनेति। एवं हि तस्य परिच्छेदो भवति—यदेकहेलयैव तत्संकल्पानां संपादनं भवति, तत् समर्थं चेदं बीजमिति, माहात्म्यविशेषश्चान्येभ्यो महामन्त्रेभ्योऽस्य मन्त्रराजस्यानेन विशेषणेन ख्याप्यते।

अथवा दृष्ट एटले क्रियाविशेष, तेथी उत्पन्न थतुं फळ। "पुरुषोने क्रिया ज फळदायक बने छे।"—एवा वचनथी अने ते प्रमाणे अनुभव थतो होवाथी क्रियारहित एम ने एम (जेम थवानुं हशे तेम थशे एम मानी निष्क्रिय पडी रहेनारा) उदासीन माणसो फळने सारी रीते मेळवी शकता नथी; अने अदृष्ट एटले पुण्यविशेषथी (पुण्यानुबंधिपुण्यनी प्राप्ति करावीने) ए सर्व फळोना संकल्पने पूरवामां कल्पवृक्ष समान छे।

फळ त्रण प्रकारनां छे—(१) केटलांक क्रियाथी उत्पन्न थतां, (२) केटलांक पुण्यथी ज उत्पन्न थतां अने (३) केटलांक क्रिया अने पुण्यथी उत्पन्न थतां।

(१) क्रियाथी उत्पन्न थतां फळ ते मनुष्य वगेरेने होय छे। कृषि, पशुपालन अने राज्य वगेरे व्यापारविशेषोथी ते फळो मळे छे। (२) पुण्यथी उत्पन्न थतां फळ ते (पूर्वोक्त) व्यापारविशेष विना मळे छे अने ते कल्पातीत (नव ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमानना) देवोने होय छे। (३) क्रिया अने पुण्यथी उत्पन्न थतां फळ ते व्यंतर वगेरे देवोने मळे छे।

अथवा मनुष्य वगेरेने जे प्रत्यक्ष जणाय ते 'दृष्ट' अने जे अनुमानथी जणाय ते 'अदृष्ट'। एवा दृष्ट अने अदृष्ट फळविषयक (अर्हँ सिवायना अन्य) सर्व कल्पोने जो एकी साथे एकत्र समुदित करवामां आवे तो पण तेओ जे कल्प (विधान)थी कंइक न्यून (फळ आपनारां) बने तेवो कल्प (विधान) 'अर्हँ' नो छे। ते 'कल्प' प्रसरणशील (समुदित अन्य कल्पो करतां वधु विस्तृत फळ आपनार) होवाथी अहीं 'वृक्ष' कहेवायो छे। तेथी अर्हँ ने 'कल्पवृक्ष'नी उपमा आपवामां आवे छे। ए रीते (उपमाथी) तेनुं विशिष्ट ज्ञान थाय छे। तात्पर्य ए छे के जो इतर सर्व कल्पोना समुदित फळनुं एकी साथे संपादन थतुं होय तो ते करवा माटे आ अर्हँ बीज समर्थ छे। ए रीते "अखिल दृष्टा...." इत्यादि विशेषण वडे अन्य महामन्त्रो करतां 'अर्हँ'नुं माहात्म्य विशेष छे ए बतावाय छे।

---

१. दृष्टं राज्यादि।
अनुवादः—दृष्ट फळ एटले राज्य वगेरे।
२. अदृष्टं स्वर्गादि
अनुवादः—अदृष्ट फळ एटले स्वर्ग वगेरे।

स्वरूपा-ऽर्थ-तात्पर्यैः स्वरूपमुक्त्वा प्रकृते योजयति—

(प्रणिधानम्—आशास्त्राध्ययनाऽध्यापनावधि प्रणिधेयम् ।)

'आङ् अभिव्याप्तौ; स च शास्त्रेण संबध्यते। अध्ययनाऽध्यापनाभ्यां संबद्धोऽवधिर्मर्यादार्थः। तेनायमर्थः—शास्त्रमभिव्याप्य येऽध्ययना-ऽध्यापने ते मर्यादीकृत्य प्रणिधेयमित्यर्थः।

प्रणिधानं व्याचष्टे—

(प्रणिधानस्य द्वैविध्यम्—प्रणिधानं चानेनात्मनः सर्वतः संभेदस्तदभिधेयेन चाभेदः।)

प्रणिधानं चेत्यादिना—अनुवादमन्तरेण स्वरूपस्य व्याख्यातुमशक्यत्वात् प्रणिधानं चेति स्वरूपमनूदितम्, 'पुनरर्थः' च शब्दनिर्देशात्। अनेनेति 'अर्हं' इति बीजेन। प्रणिधानस्य च संभेदा-ऽभेदरूपेण द्वैविध्यात्।

स्वरूप, अर्थ (अभिधेय) अने तात्पर्य (एम त्रण प्रकारो) वडे स्वरूप जणावीने चालु विषयमां तेनी योजना करे छे।

(१. प्रणिधान)

शास्त्रनु अध्ययन के अध्यापन शरू थाय त्यांथी ते पूरुं थाय त्यांसुधी (आ मन्त्रराजनुं) प्रणिधान करवु जोईए।

हवे प्रणिधान विशे जणावे छे—

(प्रणिधानना बे प्रकारो)

प्रणिधान बे प्रकारे छे—१. आ मन्त्रराज साथे (पोताना) आत्मानो चारे तरफथी संभेद अने २. तेना अभिधेय प्रथम परमेष्ठिनी साथे अभेद।

अनुवाद विना स्वरूप कही शकातु नथी—तेथी 'प्रणिधानं च' वडे पुनरर्थक 'च' शब्दना निर्देशथी स्वरूपनो अनुवाद कर्यो छे। अनेन=आ 'अर्हं' बीजवडे (प्रणिधान कराय छे)। तेना बे प्रकारो छे (१) संभेद प्रणिधान अने (२) अभेद प्रणिधान।

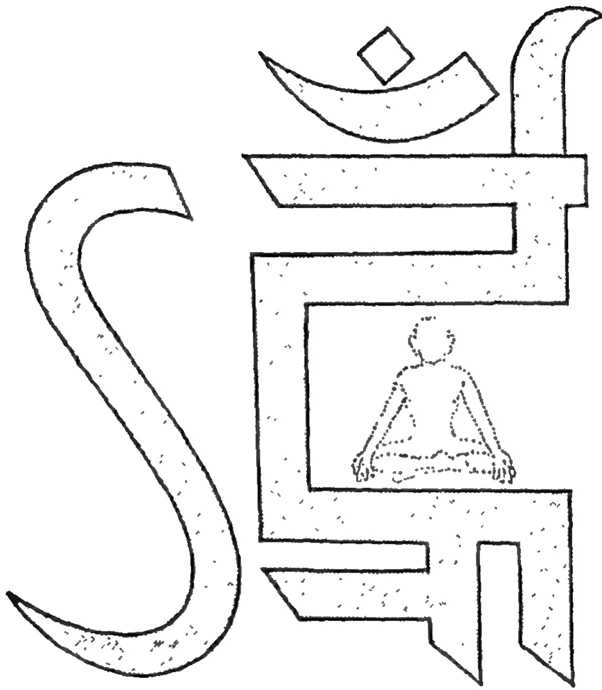
---

१. प्रणिधानं च चतुर्धा—पदस्थम्, पिण्डस्थम्, रूपस्थं, रूपातीतं चेति। पदस्थं 'अर्हं' शब्दस्थस्य, पिण्डस्थं शरीरस्थस्य, रूपस्थं प्रतिमारूपस्य, रूपातीतं योगिगम्यमर्हतो ध्यानमिति। एष्वाद्ये द्वे शास्त्रारम्भे समस्तः नोत्तरे द्वे।

अनुवादः— प्रणिधान चार प्रकारनु छे—(१) पदस्थ (२) पिंडस्थ (३) रूपस्थ (४) रूपातीत। 'अर्हं' शब्दमां रहेला श्री अरिहंत परमात्मानु ध्यान ते 'पदस्थ ध्यान'। शरीरस्थ अरिहंतनु ध्यान ते 'पिण्डस्थ ध्यान', प्रतिमारूपे रहेला अरिहंतनु ध्यान ते 'रूपस्थ ध्यान' अने 'रूपातीत ध्यान' योगिगम्य छे। शास्त्रना आरंभमां (वाचनादि प्रवृत्तिमां) आमांथी प्रथमना बे ध्यान संभवे छे, पछीना बे ध्यान संभवतां नथी।

२. अनेनात्मनः सर्वतः संभेद इत्युक्ते पदस्थम्।

अनुवादः— आ (अर्हंकार) नी साथे आत्मानो चारे बाजुथी संभेद छे एम जे कहेवामां आव्यु छे, ते 'पदस्थ ध्यान' छे।



संभेदप्रणिधानदर्शको अर्हँकारः

आदौ सम्भेदरूपमाह—**सर्वतः संभेदः**—संश्लिष्टः संबद्धो वाऽर्हंकारेण सह ध्यायकस्य भेदः सम्भेदः। आत्मानं बीजमध्ये न्यस्तं चिन्तयेद्, एवं च ध्येय-ध्यायकयोः संश्लेषरूपः सम्बन्धरूपश्च भेदो भवति।

न च महामन्त्रस्य सकलार्थक्रियाकारित्वेन मन्त्रराजत्वान्मण्डल-वर्णादिभेदेनाऽऽकर्षण-स्तम्भ-मोहाद्यनेकार्थजनकत्वाद् गमनाऽऽगमनादिरूपत्वेन संभेदासंभवादनैकान्तिकत्वाल्लक्षणाभावो वाच्यः, यतस्तत्र साध्यस्यात्मनोऽन्यत्रात्मीयात्मन इति विशेषणादिति।

प्रथम संभेद प्रणिधान जणावे छे—'अर्हंकार'नी साथे ध्यातानो संश्लिष्ट अथवा संबद्ध एवो भेद ते 'संभेद' प्रणिधान छे। अहीं अर्हँ बीजमां स्वात्माना न्यास वडे चिंतन करवाथी ध्येय अने ध्यातानो संश्लेषरूप अने सम्बन्धरूप 'भेद' थाय छे।

महामंत्र (अर्हँ) सकलार्थक्रियाकारित्वना कारणे मन्त्रराज होवाथी मण्डल, वर्ण वगेरे प्रकारो वडे आकर्षण, स्तम्भन, मोहन वगेरे अनेक प्रकारना अर्थोनो जनक होवाथी ते जे वखते गमन आगमन करे छे ते वखते संभेद संभवतो नथी; एटले संभेद प्रणिधाननुं लक्षण अनैकान्तिक (व्यभिचारि) थवाथी लक्षणनो अभाव छे एम न कहेवुं। "कारण के स्तम्भनादि कार्योमां साध्यना आत्मानी साथे संभेद अने अन्यत्र (ते कार्यो न होय त्यारे) पोताना आत्मानी साथे संभेद होय छे," एवा अर्थमां पूर्वोक्त लक्षणमां 'आत्मनः' पदनी पूर्वे 'साध्यस्य' अने 'आत्मीय' ए विशेषणो लेवानां छे।[1]

---

१ संभेद एटले चारे बाजु 'अर्हँ' शब्दथी आत्माने वींटायेलो जोवो; अर्थात् पोताना आत्मानो 'अर्हँ'नी मध्यमां न्यास करवो। अभेद एटले पोताना आत्मानुं अरिहतरूपे ध्यान करवुं।

हवे प्रश्न ए छे के, कोईना वशीकरणनो प्रयोग करवो होय तो 'अर्हँ' अक्षरथी पोताना आत्माने नहीं पण पारकाना आत्माने वींटायेलो जोवानो होय छे, अथवा तो 'अर्हँ' अक्षरने बीजा माणस तरफ मोकलवानो होय छे, एटले ते वखते अर्हँ अक्षर पोतानी पासेथी छूटो पडीने ज्यां बीजो माणस रहेतो होय त्यां पहोंचे छे, तेने वींटी ले छे अने ए रीते तेना उपर वशीकरण–आकर्षण आदिनो प्रयोग कराय छे। आवा प्रसंगे 'अर्हँ' नो पोताना आत्मा साथे संभेद एटले संश्लेष रहेतो नथी, कारणके ए छूटो पडीने जाय छे अने पाछो आवे छे। ए रीते 'अर्हँ' गमनागमनवाळो मंत्र होवाथी संभेद एटले पोताना आत्माने वींटाईने रहेवापणानो नियम रहेतो नथी।

ए रीते अनियम थवाथी 'संभेद प्रणिधान'नुं लक्षण व्यभिचारि बने छे, तेथी ते लक्षण असंगत छे, एवो शंकाकारनो आशय छे।

आत्मानो न्यास केवी रीते करवो तेनो निर्देश करतुं चित्र सामे आपेल छे। तेमां वच्चेना स्थाने स्वात्माने स्वदेहाकारे स्थापवो। श्री सिद्धचक्र वगेरे यंत्रोमां 'ऽर्हँ' मां श्री जिनेंद्र परमात्मानो आवी ज रीते न्यास करेलो जोवामां आवे छे। ए संभेद प्रणिधान छे। योगशास्त्रना आठमा प्रकाशमां 'अर्हँ' ना पदस्थादि ध्याननी प्रक्रिया बतावतां 'अर्हँ' मां आत्मानो स्वदेहाकारे न्यास सूचित कर्यो छे। ए पण संभेद प्रणिधान छे।

तथा [तदभिधेयेनेत्यादि—] तस्य 'अर्हं' इत्यक्षरस्य यदभिधेयं परमेष्ठिलक्षणं तेनात्मनोऽभेदे एकीभावः । तथाहि—केवलज्ञानभास्वता प्रकाशितसकलपदार्थसार्थं, चतुस्त्रिंशदतिशयैर्विज्ञातमाहात्म्यविशेषम्, अष्टप्रातिहार्यैर्विभूषितदिग्वलयं, ध्यानाग्निना निर्दग्धकर्ममलकलङ्कं, ज्योतीरूपं, सर्वोपनिषद्भूतं, प्रथमपरमेष्ठिनमर्हद्भट्टारकम्, आत्मना सहाभेदीकृत्य 'स्वयं देवो भूत्वा देवं ध्यायेत्' इति यत् सम्यग् ध्यानं तद् 'अभेदप्रणिधानम्' इति ।

(विशिष्टप्रणिधानम्—वयमपि चैतच्छास्त्रारम्भे प्रणिदध्महे ।

तत्त्वम्—अयमेव हि तात्त्विको नमस्कार इति ॥ १ ॥)

अस्यैव विघ्नापोहे दृष्टसामर्थ्यादन्यस्य तथाविधसामर्थ्यस्या(र्थ्या)विष्कल्पस्यासम्भवात् तात्त्विकत्वादात्मनोऽप्येतदेव प्रणिधेय वयमपीत्यादिना दर्शयति—

विशिष्टप्रणिधेय-प्रणिधानादिगुणप्रकर्षादात्मन्युत्कर्षाधानाद् गुणबहुत्वेनात्मनोऽपि तदभिन्नतया बहुत्वाद् वयमिति बहुवचनेन निर्देशः ।

'अर्हं' अक्षरना अभिधेय जे प्रथम परमेष्ठी तेमनी साथे पोताना आत्मानो एकीभाव ते अभेद प्रणिधान छे । जेमके केवलज्ञानरूप सूर्यवडे सकल पदार्थोना समूहने प्रकाशित करनारा, जेमनुं विशिष्ट माहात्म्य चोत्रीश अतिशयो वडे सारी रीते जाणी शकाय छे एवा, आठ महाप्रातिहार्योथी दिशाओना मण्डलने विभूषित करता, ध्यानरूप अग्निवडे कर्ममलरूप कलंकने भस्मसात् करनारा, ज्योतिस्वरूप अने सर्वश्रुतना रहस्यभूत एवा प्रथम परमेष्ठी श्री अरिहंत भगवंतनो स्वकीय आत्मानी साथे अभेद करीने—'पोते देव बनीने देवनु ध्यान करवुं' ए नियम मुजब सर्वे रीते ध्यान करवुं ते 'अभेदप्रणिधान' कहेवाय छे ।

(७. तत्त्व)

ग्रन्थकार कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य भगवान् कहे छे के अमे पण प्रस्तुत शास्त्रना प्रारंभमां 'अर्हं' नुं प्रणिधान करीए छीए, कारण के ए ज तात्त्विक नमस्कार छे ।

विघ्नोने दूर करवामां आ 'अर्हं'नु सामर्थ्य स्पष्ट रीते देखातुं होवाथी अने बीजा मन्त्रोमां तेवा प्रकारना सामर्थ्यनी पूर्णता असंभवित होवाथी 'अर्हं' ए ज तात्त्विक छे । तेथी अमारा माटे पण ए ज प्रणिधेय छे, एम 'वयमपि...'वडे दर्शावे छे ।

विशिष्ट प्रणिधेय-प्रणिधानादिमां गुणोनो प्रकर्ष होवाथी आत्मामां (गुणोना) उत्कर्षनुं आधान थाय छे । तेथी आत्मा बहु गुणवाळो बनवाथी अने आत्माने (बहु) गुणोनी साथे अभेद होवाथी प्रस्तुतमां 'वयं' एम बहुवचन वडे निर्देश कर्यो छे ।

---

१. तदभिधेयेनेत्यादिना विवरणम् ।

अनुवादः—तेना 'अभिधेय वडे' ए द्वारा 'विवरण ध्यान' बताव्युं छे ।

२. हैमप्राकृतव्याकरणेऽभेदप्रणिधानस्य—'अर्हद्भिन्नं अर्हंकारेण सर्वतो वेष्टितमात्मानं ध्यायेत्' इति भावार्थो निर्दिष्टः ।

अनुवादः—हैमप्राकृत व्याकरणमां अभेदप्रणिधान विशे—'अरिहंतथी अभिन्न अने अर्हंकारथी आत्माने सर्वतः वेष्टित करीने ध्यान करवुं' एवो भावार्थ बताव्यो छे ।

अवयवव्याख्यामात्रमुक्तम्, विशेषव्याख्यानस्वरूपं समयाद् गुरुमुखाद् वा पुरुषविशेषेण ज्ञेयमिति ॥ १. १. १. ॥

आ तो व्याख्यानो एक अंशमात्र कह्यो छे। व्याख्यानुं विशेष स्वरूप आगमथी, गुरुमुखथी अथवा तज्ज्ञ पुरुषविशेषथी (विशेषार्थिए) जाणी लेवुं जोईए ॥ १. १. १. ॥

परिचय

कलिकालसर्वज्ञ भगवान् श्रीहेमचन्द्राचार्ये रचेला 'श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' नामक व्याकरण-ग्रंथमां मंगलाचरणरूपे प्रथम 'अर्हँ' ए सूत्र छे ने तेना ऊपर 'तत्त्वप्रकाशिका' टीका अने ते टीका ऊपर 'शब्दमहार्णव' नामे पोते ज रचेलो न्यास छे, ते अमे अहीं अनुवाद–विवेचन साथे आपेल छे। मूळ विवरण गद्यमां छे।

आजे उपलब्ध साहित्यमां 'अर्हँ' तत्त्व के बीजाक्षरनो विशद प्रकाश जो कोईए आप्यो होय तो ते आ सूत्र अने तेनी टीकाओ तेमज 'योगशास्त्र'ना आठमा प्रकाश द्वारा सूरिचक्रचक्रवर्ति श्रीहेमचन्द्राचार्य भगवंते आप्यो छे। एमणे अहीं 'अर्हँ' नुं स्वरूप, अभिधेय, तात्पर्य, फल, प्रणिधानना संभेद अने अभेदरूप बे प्रकारो वगेरे द्वारा वडे स्फुट विवेचन कर्युं छे। जैनेतरोनी दृष्टिए मंत्रविषयक तुलनात्मक हकीकतो पण रजू करी छे।

'अर्हँ', 'अर्हूँ' अने 'ह्रूँ' तत्त्वनी उपासना जे पोते रचेला 'योगशास्त्र'ना आठमा प्रकाशमां आपेली छे, तेनुं पण अहीं सूचन कर्युं छे अने 'ह' बीजनी प्रधानता दर्शावी छे। साचे ज, आ टीकाओ द्वारा श्रीहेमचंद्राचार्ये ध्याननी उत्कृष्ट प्रक्रियानी समज आपी छे एम कही शकाय।



[५१-६]

अर्हँ

श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यविरचितसंस्कृतद्व्याश्रयमहाकाव्यस्य प्रथमश्लोकः
श्रीअभयतिलकगणिरचितव्याख्यासमेतः

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे ॥

व्याख्या—अर्हमिति वर्णसमुदायं सर्वतः सर्वस्मिन् क्षेत्रे काले च प्रणिदध्महे। आत्मानं ध्यायकं बीजमध्ये न्यस्तं संश्लेषेणार्हंकाररूपैर्ध्येयैः सर्वतो वेष्टितं चिन्तयामः । यद्वा अर्हच्छब्दवाच्येन भगवताऽर्हता ध्येयेनाभिन्नमात्मानं ध्यायकं ध्यायाम इत्यर्थः। कीदृशम्? निर्मुक्तात्मकत्वात् परमे पदे सिद्धिलक्षणे तिष्ठति। "परमात् कित्" इत्यौणादिके किति "भीरुष्ठानादयः" [२.३.३३.] इति षत्वे गणपाठसामर्थ्यात् सप्तम्या अलुपि परमेष्ठी, तस्य परमेष्ठिनो भगवतोऽर्हतो वाचकं प्रतिपादकम्। अत एवाक्षरं ब्रह्म, अभिधाना-ऽभिधेययोरभेदोपचारादक्षरं ज्ञानं परमज्ञानस्वरूप-परमेष्ठिवाचकमित्यर्थः।

यद्वा अक्षरमिति भिन्नं विशेषणं ब्रह्मेति च। ततोऽक्षरं शाश्वततमेनाभिधेयस्य भगवतः परम-पदप्राप्तत्वेनाविनश्वरत्वाद्, ब्रह्म च परमज्ञानस्वरूपम्।

अनुवाद

'अर्हँ' ए अक्षर (बीज), ब्रह्म, परमेष्ठिनुं वाचक अने श्रीसिद्धचक्रनुं श्रेष्ठ बीज छे। तेनुं अमे सर्वप्रकारे प्रणिधान करीए छीए।

व्याख्या—अर्हँ ए वर्णसमुदाय (अ+र्+ह्+अ+म्) नुं अमे सर्व प्रकारे एटले के सर्व क्षेत्रोमां अने सर्व काळमां प्रणिधान करीए छीए। अमे ध्यातारूप आत्माने अर्हँ बीजमां न्यस्त (स्थापित) अने 'अर्हँ' काररूप ध्येयो वडे संश्लेषथी सर्व बाजुए वेष्टित चिन्तवीए छीए। अथवा 'अर्हँ' शब्दथी वाच्य एवा श्री अरिहंत भगवंतरूप ध्येयथी अभिन्न एवा आत्मरूप ध्यातानुं अमे ध्यान करीए छीए। (अहीं आत्मा ते ज अरिहंत छे, अरिहंत ते ज आत्मा छे, एवुं अभेद प्रणिधान होय छे; तात्पर्य के 'ध्याता-ध्येय-ध्यान' ए त्रणेनी एकता अहीं जणाय छे।) जे कर्मथी निर्मुक्त होवाथी सिद्धिरूप परमपदे रहे छे ते परमेष्ठी छे। ते परमेष्ठिरूप श्री अरिहंत परमात्मानुं अर्हँ वाचक–प्रतिपादक छे। एथी ज ते (अर्हँ) अक्षर ब्रह्म छे अर्थात् अभिधान-अभिधेयना अभेद उपचारथी शाश्वत परम ज्ञानस्वरूप छे। तात्पर्य ए छे के ते अर्हँ परम ज्ञानस्वरूप अने शाश्वत एवा परमेष्ठिनो वाचक होवाथी पोते ज अभेदोपचारथी शाश्वत (अक्षर) एवुं परम ब्रह्म (ज्ञान) छे।

अथवा अक्षर ए जुदुं विशेषण छे अने ब्रह्म ए जुदुं विशेषण छे। तेथी 'अर्हँ' ए अक्षर एटले शाश्वत छे, कारण के (अर्हँना) अभिधेय जे अरिहंत भगवान् ते परमपदने प्राप्त थयेला होवाथी अविनश्वर छे। वळी ते ब्रह्म एटले परम ज्ञानस्वरूप छे।

यद्वा, अक्षरस्य मोक्षस्य हेतुत्वादक्षरं ब्रह्मणो ज्ञानस्य हेतुत्वाच्च ब्रह्म। अत एव च सिद्धचक्रस्य सिद्धा विद्यासिद्धादयस्तेषां चक्रमिव चक्रं यन्त्रकविशेषस्तत्र सद् आद्यत्वेन प्रधानं बीजं तत्त्वाक्षरम्। स्वर्णसिद्ध्यादिमहासिद्धिहेतोः सिद्धचक्रस्य पञ्च बीजानि वर्तन्ते, तेष्विदमाद्यमक्षरमित्यर्थः। तेन स्वर्णसिद्ध्यादिमहासिद्धीनामिदं मूलहेतुरित्युक्तम्। अत एव चेदं ध्यानार्हमित्यर्थः।

नन्वर्हमित्यस्य योऽभिधेयः स एव प्रणिधेयत्वेन मुख्यः। अर्हमिति शब्दस्त्वर्हद्वाचकत्वेन प्रणिधानार्हत्वाद् गौणः। गौणं च मुख्यानुयायीति मुख्यस्यैव प्रणिधानं कर्तुमुचितम्। एवं च—

"अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, वाच्यं श्रीपरमेष्ठिनम्।
सिद्धचक्रादिबीजेन, सर्वतः प्रणिदध्महे॥"

इति कार्यं स्यात्।

अत्र चैवमन्वयः, सिद्धचक्रादिबीजेनार्हमित्यनेन वाच्यं परमेष्ठिनं प्रणिदध्मह इति।

नैवम्, यथा कश्चित् स्वामिना प्रेषिते लिखिते समायाते स्वामिनीवान्तरङ्गं बहुमानं प्रकटयन् स्वामिनि सातिशयां प्रीतिं प्रकाशयति, एवं परमेष्ठिनो वाचकमर्हमिति प्रणिदधन् श्रीहेमचन्द्रसूरि-

---

अथवा अक्षर-अविनश्वर एवा मोक्षना हेतुरूप होवाथी 'अर्हँ' अक्षर कहेवाय छे, अने ब्रह्म-ज्ञानना हेतुरूप होवाथी 'ब्रह्म' कहेवाय छे। एथी ज विद्यासिद्धादिरूप सिद्धोनो समूह चक्ररूपे जेमां छे एवा श्री सिद्धचक्ररूप यन्त्रविशेषमां ते (प्रथम होवाथी) प्रधान बीज-तत्त्वाक्षर छे। स्वर्णसिद्धि वगेरे महासिद्धिओना कारणभूत एवा सिद्धचक्रनां पांच बीजो छे, तेमां आ अर्हँ आदि अक्षर छे। तेथी स्वर्ण-सिद्धि वगेरे महासिद्धिओनो आ (अर्हँ) मूल हेतु छे, एथी ज आ (अर्हँ) शब्द ध्यानने माटे योग्य छे।

प्रश्न—अर्हँ ए शब्दनुं जे अभिधेय ते ज प्रणिधेय होवाथी मुख्य छे, 'अर्हँ' शब्द तो अरिहंतनो वाचक होईने प्रणिधानने योग्य होवाथी गौण छे अने गौण तो मुख्यनुं अनुयायी होय छे। तेथी मुख्यनुं ज प्रणिधान करवुं उचित छे। तेथी अन्वय आ प्रमाणे करवो जोईए—

"सिद्धचक्रना आदिबीज 'अर्हँ' एवा अक्षरथी वाच्य जे परमेष्ठी छे तेनुं अमे ध्यान करीए छीए*।"

उत्तर—एवो अन्वय करवो ठीक नथी। केमके, कोई मनुष्य पोताना स्वामीए लखीने मोकलेलो संदेशो (पत्र) आवतां स्वामीनी जेम ज तेना उपर अंतरंग बहुमान प्रकट करीने स्वामी प्रत्ये साऽतिशय भक्ति बतावे छे ते ज प्रमाणे परमेष्ठीना वाचक 'अर्हँ' अक्षरनुं प्रणिधान करता कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्रसूरिए पण मुख्य प्रणिधेय श्री अरिहंत भगवंतमां पोतानुं अतिशयवाळुं प्रणिधान जणाव्युं छे।

---

* अहीं शंका ए छे के, मुख्य प्रणिधान अरिहंतनु करवानुं होय अने 'अर्हँ' शब्द तो अरिहंतनो वाचक होवाथी गौण छे तेथी ग्रन्थना प्रारंभमां "अर्हँ अक्षरनुं ध्यान करीए छीए" एवुं जे जणाव्युं छे ते उचित नथी। एना बदले "अर्हँ शब्दथी वाच्य परमेष्ठी अरिहंतनुं अमे ध्यान करीए छीए" एवुं लखवानी जरूर हती अने तेवा अर्थनो श्लोक रचवानी जरूर हती।

मुख्ये प्रणिधेयेऽर्हं इति सातिशयं प्रणिधानं ख्यापितवान्। येन हि यस्य नामाऽपि ध्यातं तेन स नितरां ध्यात इति यथोक्तमेव साधु।

तथा सर्वपार्षदत्वादस्य काव्यस्य सर्वदर्शनानुयायी नमस्कारो वाच्य इत्यर्हं शब्देन परमेष्ठिशब्देन च हरि-हर-ब्रह्माणोऽपि व्याख्येयाः। यथा परमेष्ठिनो हरेर्हरस्य ब्रह्मणश्च वाचकमर्हमिति प्रणिदध्महे। अर्हंशब्दस्य ह्येते त्रयोऽपि वाच्याः; यदुक्तम्—

'अकारेणोच्यते विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः।
हकारेण हरः प्रोक्तस्तदन्ते परमं पदम्॥'

शेषं प्राग्वद् व्याख्येयम्।

जेना वडे जेना नामनुं पण ध्यान कराय छे, तेना वडे ते (अभिधेय) ध्यात ज समजवुं। तेथी:उपर जे जणाव्युं छे ते ज उचित छे। (जुदी रीते अन्वय करीने जे शका कराई छे, ते ठीक नथी।)*

वळी, आ काव्य सर्व सभाजनो माटे होवाथी सघळा दर्शनोने मान्य नमस्कार अहीं कहेवो जोईए एटले 'अर्हं' शब्द अने 'परमेष्ठी' शब्दथी हरि, हर अने ब्रह्मा पण व्याख्येय छे जेमके परमेष्ठी, विष्णु, शिव अने ब्रह्मान्ना वाचक 'अर्हं' शब्दनुं अमे प्रणिधान करीए छीए। 'अर्हं' शब्दना हरि, हर अने ब्रह्मा ए त्रण वाच्य छे; कह्युं छे के—

'अर्हं' शब्दमा रहेला अकारवडे विष्णु कहेवाय छे, रेफमां ब्रह्मा व्यवस्थित छे अने हकारथी शिव कहेवामां आव्या छे, ते पछीनो 'म्' परमपदनो वाचक छे।

बाकीनो अर्थ पूर्वनी माफक समजवो।

परिचय

श्री हेमचंद्राचार्ये जे 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' रच्युं, तेना प्रयोगोने सूत्रकमे बतावतां अने साथेसाथ गूर्जरनृपति सिद्धराज जयसिंह तेमज कुमारपाल राजाओना चरितनुं वर्णन करवा 'द्वयाश्रय' नामने सार्थक करता लाक्षणिक महाकाव्यग्रंथनी रचना करी छे, तेमां व्याकरणप्रधान मंगलाचरणना प्रथम 'अर्हं' सूत्र माटे 'द्वयाश्रयमहाकाव्य'नुं प्रथम पद्य अने तेना ऊपर सं. १३१२ मां श्रीअभयतिलकगणिए रचेली टीकानो संदर्भ अहीं अनुवाद साथे आप्यो छे। मूळ श्लोक अनुष्टुप्मां अने टीका गद्यमां छे।

टीकामां 'अर्हं' तत्त्वना गौणत्व अने मुख्यत्व विशे खास चर्चा करीने तेना रहस्यनुं उद्घाटन करवामां आव्युं छे। आ टीकामां कहेवामां आव्युं छे के 'अर्हं' ए सुवर्णसिद्धिओनो मूळ हेतु [redacted]। एकंदरे आ टीका 'अर्हं' ने जाणवा माटे घणी उपयोगी छे।

---

* अहीं आपेला उत्तरनो आशय ए छे के, पोताना स्वामीनो पत्र आवे तो जेम कोई माणस ए [redacted] उपर खूब भक्ति बतावीने वस्तुतः ए पत्र लखनार उपर ज पोतानी अतिशय भक्ति प्रगट करे छे ते प्रमाणे 'अर्हं' अक्षरनुं प्रणिधान करता वस्तुतः अरिहंतनुं ज प्रणिधान थाय छे; जेम कोई माणस कोई व्यक्तिना नामनुं आखो दिवस रटण करतो होय त्यारे देखीती रीते भले ए नामनुं रटण करतो होय पण वस्तुतः एमां ए व्यक्तिनुं ज रटण-चिंतन-स्मरण रहेलुं होय छे तेम अर्हंना प्रणिधानमां वस्तुतः अरिहंतनुं ज प्रणिधान रहेलुं छे।

[५२-७]

श्रीसिंहतिलकसूरिरचितं ऋषिमण्डलस्तवयन्त्रालेखनम् ॥

श्रीवर्द्धमानमीशं ध्यात्वा श्रीविबुध[१]चन्द्रसूरिनतम् ।
ऋ[२]षि म ण[३]्ड ल स्तवा[४]दिह यन्त्र[५]स्या[६]लेखनं वक्ष्ये ॥ १ ॥

अनुवादः—विद्वान पुरुषोमां चंद्र समा गणधरोवडे (श्री विबुधचन्द्रसूरिथी) नमस्कार करायेला श्री वर्धमानस्वामीनुं ध्यान धरीने 'ऋषिमण्डलस्तव'ने अनुसरीने अहीं हुं यंत्रना आलेखन(विधि)ने कहीश ॥ १ ॥

---

१. **श्रीविबुधचन्द्रसूरिनतम्**—'श्री विबुधचन्द्रसूरिजी' ए ग्रन्थकारना गुरुनुं नाम छे । अहीं ते श्लेष करीने योज्युं छे ।

२. **ऋषि**—पश्यन्तीति ऋषयः । अतिशयज्ञानिनि साधौ । (अभिधानराजेन्द्र) ।

ऋषि—शास्त्रचक्षुथी जगतनुं अवलोकन करनार अथवा अतिशयज्ञानवाळा साधु भगवंत ।

३. **मण्डल**—वृत्तम् । समुदाये । (अभिधानराजेन्द्र) ।

ऋषिमण्डल एटले ऋषिओनो समुदाय । जिनावली तथा पंच परमेष्ठी ऋषिस्वरूप छे । 'ह्रीँ'कार पण जिनावलीमय तथा पंचपरमेष्ठीमय छे* । वर्तमान चोवीशी ते अहीं जिनावली समजवी । जेओना बिंबोनुं ते ते वर्णोथी (रंगथी) 'ह्रीँ'कारमां आलेखन थाय छे ।

४. **ऋषिमण्डलस्तवात्**—प्रस्तुत ग्रंथ 'ऋषिमण्डलस्तव'ने अनुसारे यन्त्रालेखन केम करवुं ते जणाववा माटे रचायो छे । माटे ज '**ऋषिमण्डलस्तवात्**' एम पंचमी विभक्तिनो प्रयोग करवामां आव्यो छे ।

५. **यन्त्र**—शान्त्याद्यर्थकरलेखनप्रकारके ।

शान्ति, तुष्टि, पुष्टि आदि अर्थक्रियाकारि कर्म माटे आलेखननो प्रकार ते यन्त्र ।

देव्याः (देवस्य) गृहयन्त्रम् (भैरवपद्मावतीकल्प पृ. ११ श्लो. १२)

---

* मायाबीजं लक्ष्यं परमेष्ठि-जिनालि-रत्नरूपं यः ।
ध्यायत्यन्तर्वीरं हृदि स श्रीगौतमः सुधर्माऽथ ॥ ४४६ ॥
—श्रीसिंहतिलकसूरिरचितं 'मन्त्रराजरहस्यम्'

अनुवादः—जे पंचपरमेष्ठि, जिनचतुर्विंशति अने रत्नत्रयरूप मायाबीजने लक्ष्य (मुख्य ध्येय) बनावीने तेनुं हृदयमां ध्यान करे छे, ते श्री वीर परमात्मानुं हृदयमां ध्यान करनार श्री गौतम के सुधर्मा गणधर सदृश थाय छे (१) ।

सौवर्ण-रूप्य-कांस्ये पटात्मदेहेऽर्चनाकृते स्थाप्यम् ।
रक्षार्थं भूर्जदले कर्पूराद्यैः सुवर्णलेखिन्या ॥ २ ॥*

अनुवादः—सोनु, रुपुं अने कासुं—ए त्रणना पटरूप देहमां (पटमां) पूजन माटे (आ यन्त्रनुं) स्थापन करवु । रक्षा माटे भोजपत्रमां कपूर वगेरे (अष्टगंध)थी सोनानी लेखणीथी लखीने स्थापवु ॥ २ ॥

देव अथवा देवीना अधिष्ठान माटे गृहरूप आलेखन ते यन्त्र । (यन्त्र देवाद्यधिष्ठाने ...नियन्त्रणे —श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यविरचित 'अनेकार्थसंग्रह' पृष्ठ ४६०)

यन्त्र मन्त्रनो आधार छे माटे मन्त्रमय छे अने देवता मन्त्रथी अभिन्न होवाथी मन्त्रस्वरूप छे। जे प्रमाणे देह अने आत्मा वच्चे (भेद अने अभेद) छे ते प्रमाणे यन्त्र अने देवता वच्चे पण समजवो। आ प्रकारे मन्त्ररूपी देवनु अधिष्ठान ते यन्त्र छे। *

६. **आलेखनम्**—यन्त्रना स्वरूप विशे तथा पूजन, द्रव्य वगेरे विषे जे आम्नाय प्राप्त थाय ते पूर्वक यन्त्रनु आलेखन करवानु होय छे । यथाविधि आलेखन थयु होय तो यन्त्र सफळ थाय छे। आ कारणे श्री सिंहतिलकसूरि यन्त्र-रचनानो विधि आ स्तवमा दर्शावे छे ।

७. **सौवर्ण-रूप्य-कांस्ये**—सोना, रूपा अने कासा वडे निर्मित पटमां आ यन्त्रनुं आलेखन करावबु। पछी तेनी पूजा करवी ।

ताम्रपट पर पण आलेखन थयेला यन्त्रो जोवाय छे। भूर्जपत्र प्रधान छे। बाकी रेशमी वस्त्र, उत्तम प्रकारना कागळ वगेरे पण उपयोगमा लई शकाय छे । +

---

* श्रीसिंहतिलकसूरिए प्रस्तुत ग्रथनी रचना 'श्रीऋषिमण्डलस्तोत्र' ना आधारे करी छे। तेथी 'श्रीऋषिमण्डलस्तोत्र' ना श्लोको सरखामणी माटे योग्य स्थळे नीचे टिप्पणीमा रजू करीए छीए। उपरना श्लोकने 'श्रीऋषिमण्डलस्तोत्र' ना नीचेना श्लोको साथे सरखावी शकाय :

सुवर्णे रौप्ये पटे कांस्ये, लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्यैवाष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती ॥ ८८ ॥
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं, गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारितं सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशकम् ॥ ८९ ॥

* यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं, मन्त्रात्मा देवतैव हि ।
देहात्मनो यथा भेदो, यन्त्रदेवतयोस्तथा ॥
—सुभाषितम्

अनुवादः—यन्त्रने मंत्रमय कह्युं छे। मन्त्रनो आत्मा (अधिष्ठाता) देवता ज छे। यन्त्र अने देवतामा देह अने आत्मा जेवो भेद अने अभेद छे।

+ यंत्रनो प्रस्तार त्रण प्रकारे थाय छे :—

(१) **भौम प्रस्तार**—(निर्णीत परिमाणना) धातुना पतरानी, चांदीना पतरानी के चंदन अगर काष्ठना फलकनी (पाटियानी), भूर्जपत्रनी के कापडना पटनी अथवा कागळनी पीठ उपर यन्त्र आलेखाय अथवा चितराय ते 'भौम प्रस्तार' छे।

[11]बहिः [12]क्षाराब्धिवलयं, श्यामलं [13]लाग्रतो[14]ऽक्षरैः ।
[15]सषट्पञ्चाशता व्याप्तमन्तरद्वीपभूमिभिः ॥ ३ ॥

अनुवादः—(यन्त्रना) वहारना भागमां श्याम वर्णनुं लवण समुद्रनुं वलय करवुं । ते छप्पन (५६) अन्तरद्वीपनी भूमिओना वाचक **व** थी (ल नी आगळना वर्णथी) व्याप्त छे । (व्याप्त करवुं) ॥ ३ ॥

---

८. **अर्चनाकृते**—पूजा माटे । पूजा माटे निर्दिष्ट धातुना पतरा उपर अथवा कपडांना पट उपर यन्त्रालेखन थाय अने रक्षा माटे भूर्जदल–भोजपत्र उपर यन्त्रालेखन थाय ।

९. **कर्पूराद्यैः**—कपूर वगेरे वडे—अष्टगंधवडे । बरास, केसर, कस्तूरी, सुखड, अगर, अंबर, मरचकंकोळ, काचो हिंगळोक—अष्टगंध कहेवाय छे ।

१०. **सुवर्णलेखिन्या**—देवनी प्रीतिनी निष्पत्ति माटे सोनानी लेखिनी वडे यन्त्रनुं आलेखन कराय पण ते न होय तो दाडमनी सळी, अघेडानी सळी पण काममां आवे ।

११. **बहिः**—यन्त्रना प्रस्तारनुं मध्यस्थान बिंदु निर्णीत करी परिमाणनी दृष्टिए सीमा अथवा मर्यादा पूरी थाय त्यां वलय करवामां आवे ते बहिर्भागनुं वलय कहेवाय ।

१२. **क्षाराब्धिवलयम्**—वलय के ज्यां निर्देश प्रमाणे लवणसमुद्र आलेखवानो छे ।

१३. **लाग्रतः**—बाराखडीमां 'ल'नी पछीनो अक्षर 'व' छे । 'व'कार *वरुणनुं प्रतीक छे ।

१४. **अक्षर**—वर्ण ।

१५. **सषट्पञ्चाशता**—लवणसमुद्रमां ५६ आन्तर द्वीपनुं विधान आवे छे । तेथी द्वीपना निर्देश माटे ५६ 'व'कारनुं अहीं विधान छे ।

---

(२) **भैरव प्रस्तार**—धातुना पतरानी अथवा चंदननी के काष्ठना फलकनी (पाटियानी) पीठ ऊपर जे यन्त्र—समग्र अथवा ओछेवत्ते अंशे—उन्नत राखीने कोराय ते भैरव प्रस्तार छे। आलेखन करवानो विभाग उपसी आवे तेवी रीते आजुबाजुनो भाग कोराय छे।

(३) **उत्कीर्ण प्रस्तार**—धातुना पतरानी के चंदनना अथवा काष्ठना फलकनी पीठ उपर जे यन्त्रना आलेखननो भाग कोतराय ते उत्कीर्ण प्रस्तार छे।

यन्त्रनो प्रस्तार (१) आलेखाय (चितराय) (२) कोराय अथवा (३) कोतराय—ते समग्र रचना निर्दिष्ट क्रम प्रमाणे अने यथाविधि करवानी होय छे।

प्रस्तारनो दरेक प्रकार मंगलमय छे। तेमां मुख्यता विधिनी (आम्नायनी) छे।

* वरुण जलतत्त्वनो देव छे । जुओ—'वारुणमण्डलम्' श्लो. १२.

[१६]मध्ये जम्बूद्वीपस्तद[१७]ष्टकाष्ठाक्रमेण [१८]संस्थाप्यम् ।
[१९]अर्हत्-सिद्धाद्यभिधापञ्चकयुग् ज्ञान-दर्शन-चारित्रम् ॥ ४ ॥*

अनुवाद:—(यन्त्रना) मध्यभागमां जंबूद्वीप छे ने तेनी आठ दिशामां क्रमशः अर्हत्, सिद्ध वगेरे पांच नामो अने साथे ज्ञान, दर्शन ने चारित्र स्थापन करवां ॥ ४ ॥

---

१६. मध्ये—मध्यस्थानमां, यन्त्रनी कर्णिकामां।

१७. अष्टकाष्ठा—(जंबूद्वीपनी) आठ दिशा। दिशा दश छे; परंतु स्तवमां आठना अंकनी मुख्यता होवाथी अहीं 'अष्टकाष्ठा'नो निर्देश छे। यन्त्रनी उपरनी दिशामां ब्रह्मा तथा नीचेनी दिशामां नागेन्द्रनुं आलेखन करवामां आवे छे ते प्रणालिका प्रमाणे थाय छे; परंतु अहीं स्तवमां ते विशे निर्देश नथी।

आठना अंकनी मुख्यता दर्शावती तालिका +

१. दिक्	२. बीज	३. पद	४. ग्रह	५. कूटाक्षर	६. कमलदल	७. अधिष्ठान	८. हठी-करणनो काळ
अष्टकाष्ठा श्लोक न ४	बीजाष्टक श्लोक न. ६	पदाष्टक श्लोक न. ७ अष्टमन्त्रपद श्लोक न १०	ग्रहाष्टक श्लोक न. ९	चार अष्टक श्लोक न. ११	सदिक्-पत्रम् श्लोक न. १४	द्रुपदी चतुर्युगम् श्लोक नं. १८	अष्टमासान् श्लोक न. २१

१८ संस्थाप्यम्—सम्यक् रीते (विधिपूर्वक) स्थापन करवुं—आलेखवुं, कोरवुं अथवा कोतरवुं।

१९. अर्हत् .. चारित्रम्—अर्हत्, सिद्ध आदि पांच नामो अने साथे ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्थापन करवां। आ तो केवळ निर्देश पूरतुं दर्शावायुं छे, परंतु तेनी आम्नाय श्लोक नं. [illegible] मां आवशे।

---

* सरखावो—

जम्बूवृक्षधरो द्वीपः क्षारोदधिसमावृत.।
अर्हदाद्यष्टकैरष्टकाष्ठाधिष्ठैरलङ्कृतः ॥ ११ ॥

+ सरखावो—

अष्टवर्गो मातृका, अष्टौ लोकपाल्य, अष्टौ दिश', अष्टौ नागकुलानि, आणिमाद्यष्टकम्, विद्याष्टकम्, कामाष्टकम्, सिद्धाष्टकम्, पीठाष्टकम्, योगिन्यष्टकम्, भैरवाष्टकम्, क्षेत्रपालाष्टकम्, समयाष्टकम्, धर्माष्टकम्, योगाष्टकम् पूजाष्टकम्, यत्किंचिद् अष्टक तत्सर्वं मातृकाष्टकवर्गकण्ठलग्नसंलीन ज्ञातव्यम्।

—श्रीत्रिपुराभारती-लघुस्तवस्य पञ्जिकानाम विवृतिः पृ. ३४. श्रीसोमतिलकसूरिकृत.

आदा[२०]वंशे फणी[२१] शम्भुर्वर्णश्चन्द्र[२२]कलाभ्र[२३]युक् ।
द्वि-चतुः-पञ्च-षट्-सप्ताष्ट-दशार्कस्वरभृत्[२४] क्रमात् ॥ ५ ॥ *

अनुवादः—प्रथम अंश फणी (र्) । पछी शंभु (ह्) ह् वर्ण चन्द्रकला अने गगनसहित (ँ) (हूँकार अने ते) अनुक्रमे बीजो (आ) चोथो (ई) पांचमो (उ) छट्ठो (ऊ) सातमो (ए) आठमो (ऐ) दशमो (औ) बारमो (अः) स्वरयुक्त........॥ ५ ॥

---

२०. आदावंशे—आदौ+अंशे । बीजाष्टकनो आदि अंश दर्शाव्यो एटले उत्तरांश अध्याहार रहे छे । आठे बीजोमां जे ध्रुव अंश छे ते आदि अंश तरीके दर्शाव्यो छे अने ते अंशने आठ स्वरथी अंजन करतां जे स्वर सहित बीजाक्षरो प्राप्त थाय ते उत्तरांश समजवा ।

२१. फणी शम्भुः—फणी-फणा एटले र् । शम्भु-शंकर एटले ह् । र् वाळो ह्=ह्+र् जे बीजाष्टकमां ध्रुव अंशो छे ।

२२. चन्द्रकला—कला के जेनी संज्ञा ˘ छे ।

२३. अभ्र—शून्य के जेनी संज्ञा · छे ।

२४. स्वरभृत्—दर्शावेला क्रम प्रमाणे स्वरनुं अंजन करतां आठ बीजो नीचे प्रमाणे मळे छे—

ह्राँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः ।

---

* सरखावो :—

(१) पूर्वं प्रणवतः सान्तः, सरेफो द्व्यब्धिपञ्चषान् ।
सप्ताष्ट-दश-सूर्याङ्कान्, श्रितो बिन्दुस्वरान् पृथक् ॥ ९ ॥
—ऋषिमण्डलस्तोत्रम्

(२) कुण्डलिनी भुजगाकृति(ती) रेफाञ्चित हः शिवः स तु प्राणः ।
तच्छक्तिर्दीर्घकला माया तद्वेष्टितं जगद्वश्यम् ॥ ४४० ॥
—श्रीसिंहतिलकसूरिरचितं 'मन्त्रराजरहस्यम्'

अनुवादः— रेफथी युक्त ह (ह्र) ते भुजग (सर्प) नी आकृतिवाळी कुण्डलिनी छे । केवळ 'ह' ते शिव छे । ते प्राण छे । दीर्घकला (ी) ते तेनी शक्ति माया छे । मायाथी वेष्टित (मोहित) जगत् छे । तात्पर्य के जगत् 'ह्रीँ' कारना ध्यानथी वश थाय छे ।

ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः —आ सघळा दीर्घ बीजाक्षरोने कोई षड्जातिमायाबीज कहे छे । अहीं बीजाष्टक जोईतुं होवाथी प्रचलित बीजाक्षरोमां ह्रुँ तथा ह्रेँ जे बन्नेने मंत्रवादीओ ह्रस्व गणे छे ते उमेरवामां आव्या छे । दीर्घ बीजाक्षरो देवीना वाचक मनाय छे अने ह्रस्व बीजाक्षरो भैरवना वाचक मनाय छे । आ बीजाक्षरो पैकी चार बीजाक्षरगर्भित वर्णनवाळा श्लोको नीचे प्रमाणे मळे छे :—

शून्यवह्न्यक्षरभवः प्रभवः सर्वसम्पदाम् ।
नादबिन्दुकलोपेतः साकारः पञ्चवर्णरुक् ॥ २५ ॥
वामातनूजवामांससंस्थितो रूपकीर्तिदः ।
धनपुण्यप्रयत्नानि जयज्ञाने ददात्यसौ ॥ २६ ॥ ह्राँ
स एव स्वरसंयुक्तः स्थितो हस्ते जिनेशितुः ।
योगिभिर्ध्यायमानस्तु रक्ताभोऽतिशयप्रदः ॥ २७ ॥ ह्रीँ
षष्ठस्वरयुतोऽरिघ्नो धूम्रवर्णः स एव हि ।
पूज्यतां विजयं रक्षां दत्ते ध्यातोऽस्य कुक्षिगः ॥ २८ ॥ ह्रूँ
विसर्गद्वयसंयुक्तः स एव श्यामलद्युतिः ।
जिनवामकटीसंस्थः प्रत्यूहव्यूहनाशनः ॥ २९ ॥ ह्रः
—श्रीसागरचन्द्रसूरिविरचितः 'श्रीमन्त्राधिराजकल्पः'
(श्री जैनस्तोत्रसन्दोह पृष्ठ २३६).

पँरमेष्ठ्यक्षराश्चाद्याः, पश्चातो "ज्ञान-दर्शन-
चारित्रेभ्यो नमः" मन्त्रः पँदबीजाँष्टकोँज्ज्वलः ॥ ६ ॥ *

[मन्त्रोद्धारः–आप्यमन्त्रः–]

"ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा ज्ञान-दर्शन-चारित्रेभ्यो नमः ॥"

अनुवादः—पछी परमेष्ठीवाचक प्रथम अक्षरो—पहेला पांच (अ सि आ उ सा) त्यारबाद 'ज्ञानदर्शनचारित्रेभ्यो नमः'—आ मंत्र छे। ते पदाष्टक तथा बीजाष्टकथी उज्ज्वल छे ॥ ६ ॥

---

२५. परमेष्ठ्यक्षराश्चाद्याः—परमेष्ठि + अक्षराः + च + आद्याः—पांच परमेष्ठीना आदि अक्षरो—अ सि आ उ सा।

२६. पदाष्टकः—आठ पदो। 'अ सि आ उ सा' ना पांच पदो तथा 'ज्ञान, दर्शन अने चारित्रना' त्रण मळी आठ पदो।

२७. बीजाष्टकः—ह्राँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः—सामान्य बीजना धर्मो जेमां होय ते बीज कहेवाय छे। जेम बीजमांथी फणगो—अंकुरो अने फळ निपजे छे तेम आ बीजाष्टकमांथी शान्त्यादि अर्थक्रियारूप फळ निपजे छे।

२८. उज्ज्वलः—मंत्र पदाष्टकथी तथा बीजाष्टकथी अलंकृत छे।

---

* सरखावोः—

(१) 'ऋषिमण्डलस्तोत्र' मां आप्यमन्त्र आ प्रकारे दर्शाव्यो छेः—

"ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः ॥"

पूज्यनामाक्षरा आद्याः, पञ्चातो ज्ञान-दर्शन-
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये, ह्रीँ सान्तः समलङ्कृतः ॥ १० ॥

(२) इदमेव हि बीजम् 'अधोरेफ–आ–ई–ऊ–औ–अं–अः' एतैर्युक्तं बीजं भवतीति व्यापकत्वं चास्य। —श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासनम्।

अनुवादः—आ (ह्कार) बीज-नीचे रेफ तथा आ, ई, ऊ, औ, अं, अः—एवा छ स्वरो पैकी कोईथी युक्त थतां बीज बने छे। ए ज एनी व्यापकता छे।

आदावों ह्रॉं प्रभृत्येकं, बीजयुगं ततो नमः ।
मध्येऽर्हद्भ्यः सिद्धेभ्य इति दिक्षु पदाष्टकम् ॥ ७ ॥

अनुवादः—प्रारंभमां—ओँ अने ह्रॉं वगेरेमांथी एक बीज एम बे बीजको–ते पछी नमः–-वचमां अर्हद्भ्यः सिद्धेभ्यः ए प्रमाणे दिशाओमां आठ पदो (लखवां) ॥ ७ ॥ *

एषामधः क्रमादिन्द्राग्नि-यमा नैर्ऋतिस्तथा ।
वरुणो वायु-कुबेरावीशानश्च यथाक्रमम् ॥ ८ ॥

अनुवादः—तेओनी पछी क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋति तथा वरुण, वायु, कुबेर अने ईशान अनुक्रमे (लखवा–आलेखवा) ॥ ८ ॥

एषामधो रविश्चन्द्र-मङ्गलौ बुध-वाक्पती ।
भार्गवः शनि-राहू च, लिखेद् दिक्षु ग्रहाष्टकम् ॥ ९ ॥

अनुवादः—तेओनी पछी सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि अने राहु ए प्रमाणे आठ ग्रहो (आठ) दिशामां लखवा ॥ ९ ॥

---

२९. आदावों—आदौ+ओँ (ॐ)—आदौ पछी 'अंशे' अध्याहार छे। आठ दिशा माटे पदाष्टकना पहेला अंशमां ॐकार।

३०. ह्रॉं प्रभृत्येकं—ह्रॉं थी ह्रः सुधीना बीजाष्टकमांथी एक।

३१. बीजयुगम्—बे बीज। ॐ ह्रॉं—ॐ ह्रीं वगेरे बे बीजाक्षरो।

३२. एषामधः—तेओनी पछी। उपर जे विधिक्रम दर्शाव्यो त्यारपछी।

३३. क्रमात्—आलेखन माटे विधि अथवा आम्नायना क्रम प्रमाणे—क्षाराब्धिवलय—जंबूद्वीप—अष्टकाष्टावलय तेमां बीजाक्षर पदाक्षर पछी लोकपालो।

३४. यथाक्रमम्—लोकपालोने दर्शावेला क्रम प्रमाणे आलेखवा।

३५. ग्रहाष्टकम्—ग्रह नव छे; परंतु अहीं स्तवमां अष्टकनी मुख्यता होवाथी केतुने गौण करी राहु साथे आलेखाय छे।

---

* ॐ ह्रॉं अर्हद्भ्यो नमः	॥ १ ॥	पूर्व	सरखावो—
ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः	॥ २ ॥	अग्नि	'ॐ नमोऽर्हद्भ्य ईशेभ्यः, ॐ सिद्धेभ्यो नमो नमः ।
ॐ ह्रूं आचार्येभ्यो नमः	॥ ३ ॥	दक्षिण	ॐ नमः सर्वसूरिभ्यः, उपाध्यायेभ्यः ॐ नमः ॥ ४ ॥
ॐ ह्रूँ उपाध्यायेभ्यो नमः	॥ ४ ॥	नैर्ऋत	
ॐ ह्रे साधुभ्यो नमः	॥ ५ ॥	पश्चिम	ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः, ॐ ज्ञानेभ्यो नमो नमः ।
ॐ ह्रैं ज्ञानाय नमः	॥ ६ ॥	वायव्य	ॐ नमः तत्त्वदृष्टिभ्यः, चारित्रेभ्यस्तु ॐ नमः ॥ ५ ॥
ॐ ह्रौं दर्शनाय नमः	॥ ७ ॥	उत्तर	श्रेयसेऽस्तु श्रिये त्वेतत्, अर्हदाद्यष्टकं शुभम् ।
ॐ ह्रः चारित्राय नमः	॥ ८ ॥	ईशान	स्थानेष्वष्टसु विन्यस्तं, पृथग्बीजसमन्वितम् ॥ ६ ॥

अँष्टमन्त्रपदैं रँक्षा, स्वशिखा-मस्तकाक्षिषु ।
नासिका-मुख-घण्टीषु, नाभि-पादान्तयोः क्रमात् ॥ १० ॥*

अनुवादः—(पूर्वे दर्शावेला) आठ मंत्रपदो वडे अनुक्रमे पोताना शिखा (चोटली), मस्तक, आख, नासिका, मुख, घंटिका, नाभ्यन्त (घटिकाथी नाभि सुधी) अने पादान्त (नाभिनी नीचे पगना अत सुधी) रक्षा (माटे न्यासनी प्रक्रिया) करवी ॥ १० ॥

तैंन्मध्ये पीतवैंलयं, सुँमेरुस्तैंन्निरक्षरम् ।
तैंदन्त द्वि त्रिंशैः कूँटैः, काद्यैः क्षान्तैः सुँधांशुभम् ॥ ११ ॥+

अनुवादः—तेनी वचमा पीळा वर्णनु वलय करवु ते निरक्षर छे। सुमेरुस्वरूप छे। तेने छेडे (अने) बत्रीश कूटो–कथी लईने क्ष सुधीना कराय तेथी चंद्र अने तारावाळुं आ वलय छे ॥ ११ ॥

---

३६. अष्टमन्त्रपदैः—दिशा माटे जे आठ मत्रपदो निर्णीत थया ते वडे ।

३७. रक्षा—देहना आठ आधारस्थानो माटे अही रक्षानो निर्देश छे; परतु नाभि-पादान्तयोः एटले नाभ्यन्त अने पादान्त—आ प्रकारे घंटिकाथी नाभि सुधीना अने नाभिथी पाद सुधीना सघळा आधारस्थानोनी रक्षानो निर्देश थाय छे ।

रक्षा माटेना मत्रपदोनु संयोजन नीचे प्रमाणे :—

१. ॐ ह्रीँ अर्हद्भ्यो नमः शिखायाम् ।	५. ॐ हैँ साधुभ्यो नम. मुखे ।
२. ॐ ह्रीँ सिद्धेभ्यो नमः मस्तके ।	६. ॐ हैँ ज्ञानेभ्यो नम. घण्टिकायाम् ।
३. ॐ हूँ आचार्येभ्यो नमः अक्ष्णो ।	७. ॐ ह्रौँ दर्शनेभ्यो नमः नाभ्यन्तेषु ।
४. ॐ हूँ उपाध्यायेभ्यो नमः नासिकायाम् ।	८. ॐ ह्रः चारित्रेभ्यो नमः पादान्तेषु ।

३८. तन्मध्ये—तेनी मध्यमां। यत्रनी आकृतिनो प्रकार श्लोक नं. २ थी श्लोक नं. १० सुधीमां यथाविधि तथा यथाक्रम निर्णीत थयो। ते प्रकारना मध्यभागमां–अंतर्भागमां–जंबूद्वीपना वलयमां।

३९. पीतवलयम्—पीळा रगनु वलय ।

४०. सुमेरुः—मेरु पर्वत—स्वर्णाद्रि ।

४१. तन्निरक्षरम्—पीत वलयमा अक्षरनी स्थापना करवानी नथी ।

सरखावो :—
* आद्य पद शिरो रक्षेत्, पर रक्षेत् तु मस्तकम् ।
तृतीय रक्षेन्नेत्रे द्वे, तुर्ये रक्षेच्च नासिकाम् ॥ ७ ॥
पञ्चम तु मुख रक्षेत् षष्ठ रक्षेच्च घण्टिकाम् ।
नाभ्यन्त सप्तम रक्षेत्, रक्षेत् पादान्तमष्टमम् ॥ ८ ॥
+ (१) तन्मध्ये सङ्गतो मेरु· कूटलक्षैरलङ्कृतः ।
उच्चैरुच्चैस्तरस्तारः, तारामण्डलमण्डित· ॥ १२ ॥

४२. तदन्त—तेने छेडे।

४३. कूटैः—कूटाक्षरो वडे। संयुक्ताक्षरो वडे। (संयुक्तः कूट इति व्यवह्रियते।) कूटाक्षरनी तालिका नीचे प्रमाणे—

क्म्ल्व्र्यूँ	ख्म्ल्व्र्यूँ	ग्म्ल्व्र्यूँ	घ्म्ल्व्र्यूँ	ङ्म्ल्व्र्यूँ
च्म्ल्व्र्यूँ	छ्म्ल्व्र्यूँ	ज्म्ल्व्र्यूँ	झ्म्ल्व्र्यूँ	....
ट्म्ल्व्र्यूँ	ठ्म्ल्व्र्यूँ	ड्म्ल्व्र्यूँ	ढ्म्ल्व्र्यूँ	ण्म्ल्व्र्यूँ
त्म्ल्व्र्यूँ	थ्म्ल्व्र्यूँ	द्म्ल्व्र्यूँ	ध्म्ल्व्र्यूँ	न्म्ल्व्र्यूँ
प्म्ल्व्र्यूँ	फ्म्ल्व्र्यूँ	ब्म्ल्व्र्यूँ	भ्म्ल्व्र्यूँ	म्म्ल्व्र्यूँ
य्म्ल्व्र्यूँ	र्म्ल्व्र्यूँ	....	व्म्ल्व्र्यूँ	....
श्म्ल्व्र्यूँ	ष्म्ल्व्र्यूँ	स्म्ल्व्र्यूँ	ह्म्ल्व्र्यूँ	क्ष्म्ल्व्र्यूँ

आ तालिकामां ञकार तथा ळकारनो कूटाक्षर आपवामां आव्यो नथी। तेनुं कारण नीचेना श्लोकथी समजाशे:—

प्रागुक्तद्वात्रिंशत्स्तुतिपदपर्यन्ततः क्रमात् काद्याः।
क्षान्ता ञ्लौ त्यक्त्वाऽमी कूटाः कार्ये महति योज्याः ॥ ४८४ ॥

—श्री. सिंहतिलकसूरिविरचितम् 'मन्त्रराजरहस्यम्'।

+ सरखावो :—

(२) देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥
सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते ॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः।
ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः ॥

—शिवसंहिता, पटल–२

अनुवाद :—

आ देहमां सात द्वीपोथी युक्त एवो मेरु, सर्व नदीओ, सागरो, पर्वतो, क्षेत्रो, क्षेत्रपालो, ऋषिओ, मुनिओ, नक्षत्रो, ग्रहो, पवित्र तीर्थो, देवता(महाचैतन्य)थी अधिष्ठित पीठो, पीठदेवताओ, सृष्टिनी उत्पत्ति-स्थिति-विनाश करनारा ब्रह्मादि, परिभ्रमण करनारा सूर्यचंद्र, आकाश, वायु, अग्नि, जल अने पृथ्वी वगेरे त्रणे लोकनी अंदर जेटली पण सद्‌वस्तुओ छे, ते बधी आ देहमां छे। देहनी मध्यमां मेरु अने तेने वींटीने उपरनी सर्व वस्तुओ रहेली होवाथी आ देहवडे सर्वत्र व्यवहार प्रवर्ते छे (?)। आ बधुं जे जाणे छे, ते ब्रह्मांडनामक देहमां उचित रीते व्यवस्थित (रहेलो) योगी छे, एमां संदेह नथी।

सारांश :—

मनुष्य शरीररूपी पिंड विशाल ब्रह्मांडनी प्रतिमूर्ति छे। जे शक्तिओ आ विश्वने चालु राखे छे ते सघळी आ नरदेहमां विद्यमान छे। आ कारणे स्थाने स्थाने मनुष्यदेहनो महिमा गावामां आवे छे।

जे प्रकारे भूमंडलनो आधार मेरुपर्वत छे ते प्रकारे मनुष्यदेहनो आधार मेरुदंड अथवा करोडरज्जु छे। करोडरज्जु तेत्रीस अस्थिखंडोना जोडावाथी बन्युं छे। करोडरज्जु अंदरथी पोलुं छे अने नीचेनो भाग नाना नाना अस्थिखंडोनो छे। त्यां कंद छे अने तेनी आसपास जगतना आधार महाशक्तिरूप कुंडलिनी अथवा प्राणशक्ति रहे छे।

तँदूर्ध्वं ह्रीँ स्वँरान्तँस्थ-सँान्त सिंहासनो जिनः ।
ह्रीँ ँत्रिरेखयाऽऽवेष्टय, बँहिर्वारुणमण्डलम् ॥ १२ ॥*

अनुवादः—ह्, र्, ई (उपलक्षणथी ँ · ँ) ए छे सिंहासन जेनुं एवो ह्रीँकार स्वरूप जिन तेनी उपरना भागे स्थापन करवो। (अर्थात् अहीं जे ह्रीँकारनुं आलेखन छे ते सिंहासनरूप छे अने तेनी उपर जे २४ जिनवरोनुं आलेखन छे ते ह्रीँकार स्वरूप जिनवरो छे)। (तथा) ह्रीँकारनी त्रण रेखाथी वारुणमडलनी बहारनो भाग आवेष्टन करवो ॥ १२ ॥

सर्वे कूटाक्षरोमां प्रथम अक्षरो अनुक्रमे क् थी क्ष् सुधीना व्यंजनो छे। तेमांथी बे अक्षर उपर दर्शाव्या प्रमाणे बाद करवामां आव्या छे। बीजो अक्षर मंकार छे। मकारने आराधकनो आत्मा मानवामां आवे छे। तेने मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरचक्र तथा अनाहतचक्र साथे जोडवा माटे ते ते चक्रोना बीजाक्षरो जे अनुक्रमे ऌं वं रं याय छे ते तेनी साथे संयुक्त करवामां आवे छे।

ऊकारनुं दीर्घस्वरूप देवतानी प्रसन्नता माटे छे अने नादानुसंधान माटे कलौं तथा बिंदु छे। कूटाक्षरो द्वारा प्राण अने मंत्राक्षरोनुं विपुन साधवा माटे प्रक्रिया करवी जोईए ते अहीं गुरुगमथी मेळववी जोईए। आने कोई पिण्डाक्षरो पण कहे छे।

४४. सुधांशुभम्—चंद्र अने तारावाळुं वलय।

४५. तदूर्ध्वम्—तेनी उपर ह्रीँकार त्रण स्वरूपे :—

१. ह्रीँ —भेन संज्ञाक्षर—सिंहासन रूपे।

२. „ —ना वाच्य २४ जिनवरोना स्वरूपे।

३. „ प्राणशक्ति स्वरूपे। नरदेहमां प्राणशक्ति साडा त्रण आंटा दईने सुषुप्त दशामां पडी छे। तदनुसार यंत्रदेहने आवेष्टन करीने क्रोंकारथी अंकुशित दर्शाववामां आवी छे।

४६. स्वर—ईकार।

४७. अन्तस्थ—रकार।

४८. सान्त—हकार।

४९. त्रिरेखया—त्रण रेखाथी। रेखाने मात्रा पण कहे छे। (त्रिमात्रा मायाऽऽवेष्टय निरुन्ध्यादङ्कुशेन तु)

५०. बहिर्वारुणमण्डलम्—क्षार समुद्रना मंडळनी बहार। (वारुणमण्डलस्य बहिः।)

---

* मतान्तरे:—
तस्योपरि सकारान्त, बीजमध्यास्य सर्वगम्।
नमामि बिम्बमार्हन्त्यं, ललाटस्थं निरञ्जनम् ॥ ११ ॥

पार्थिवी[५१]धारणायुक्त्या, पिण्डस्थं[५२] मन्त्रयुक्तितः[५३] ।
पदस्थ[५४]मर्हतो[५५] रूपवद् यन्त्रं रूपयुक्[५६] क्रमात्[५७] ॥ १३ ॥

अनुवादः—आ यंत्र अनुक्रमे पार्थिवी धारणायुक्त होवाथी पिण्डस्थ, मंत्रसहित छे माटे पदस्थ अने अरिहंतना रूपवाळुं छे माटे रूपस्थ छे ॥ १३ ॥

तिर्यग्लोकसमः[५८] क्षाराम्बुधिस्तस्यान्तरमम्बुजम् ।
जम्बूद्वीपः सदिक्पत्रं, स्वर्णाद्रिस्तत्र कर्णिका ॥ १४ ॥
सिंहासनेऽत्र चन्द्राभे, आत्माऽऽनन्दं परं श्रितः ।
अर्हन्मयो हृदि ध्येयः, पार्थिवीधारणेत्यसौ ॥ १५ ॥

अनुवादः—क्षाराम्बुधि–लवणसमुद्र ए तिर्यग्लोक समान छे ने तेमां जंबूद्वीप ए दिशाओरूप पत्र सहित–कमळ छे ने तेमां मेरुपर्वत ए कर्णिका–कळी छे । अहीं चन्द्रप्रभा समान प्रभावाळुं सिंहासन छे ने तेमां परम आनंदने प्राप्त अने अरिहंतरूपे निजात्मानुं ध्यान हृदयमां करवुं । ए प्रमाणे आ पार्थिवी धारणा छे ॥ १४-१५ ॥

---

५१. पार्थिवीधारणायुक्त्या—यंत्रनुं आयोजन पार्थिवी धारणाने अनुरूप छे तेथी ।

५२. पिण्डस्थम्—पिण्डस्थ ध्यानने अनुकूळ छे । *

५३. मन्त्रयुक्तितः—जाप्यमन्त्र युक्त छे तेथी ।

५४. पदस्थम्—पदस्थ ध्यानने अनुकूळ छे ।

५५. अर्हतः रूपवत्—२४ जिनवरोना (जिनावलीना) रूपनुं (बिम्बनुं) आलेखन होवाथी ।

५६. रूपयुक्—रूपस्थ ध्यानने अनुकूळ छे ।

५७. क्रमात्—ध्यानमां पण पहेला पिण्डस्थ पछी पदस्थ अने पछी रूपस्थ ए क्रमे थवुं जोईए ।

५८. तिर्यग्लोकसमः—श्री हेमचन्द्राचार्यविरचित 'योगशास्त्र'ना सप्तम प्रकाशमां पार्थिवी धारणा अंगे श्लोक नं. १०, ११ अने १२ मां वर्णन आवे छे। ते त्रण श्लोकनो सार अहीं श्लोक नं. १४-१५

---

* पिण्डस्थ वगेरे ध्यानने मळती प्रक्रियाओ इतरोमां नीचे प्रमाणे जोवामां आवे छे :—

जैन संज्ञा	इतरोनी संज्ञा	तेनी इतरोमां दर्शावेल समजूति
पिण्डस्थ ध्यान	व्याप्ति	अहीं वस्तु तथा उपलब्धि बन्ने होय अने प्रमेयनी मुख्यता वर्ते छे ।
पदस्थ ध्यान	महाव्याप्ति	अहीं वस्तु विद्यमान न होय छतां उपलब्धि होय अने प्रमाणनी मुख्यता वर्ते छे ।
रूपस्थ ध्यान	प्रचय	अहीं अवस्तु अने अनुपलंभ छतां वैद्य-च्छायनी वृत्ति वर्ते छे ।
रूपातीत ध्यान	महाप्रचय	

रेफः सान्तः शिरश्चन्द्रकलाग्रं नाद ईश(स्व)रः ।
सशिरोरेफ-हः पीतः, कला रक्ताऽसितं वियत् ॥ १६ ॥
नादः श्वेतः स्वरः तुर्यो, नीलो वर्णानुगा जिनाः ।
चन्द्राभसुविधी नादः, शून्यं श्रीनेमि-सुव्रतौ ॥ १७ ॥
कला पडर्कसंख्यौ स्यात् पार्श्व-(श्र)मल्लिरीश(स्व)रः ।
सशिरो-रेफ-हो द्वयष्टौ (१६), जिना इति चतुर्युगम् ॥ १८ ॥ +

अनुवादः—रेफ (र) सान्त (ह) शिर (माथुं) चन्द्रकला (अर्ध चन्द्रकला ॒) अग्र (बिन्दु) नाद (॒) ईश्वर स्वर—(आटलां अंगो ह्रींकारनां छे।)

माथुं (शिरोरेखा) अने रेफ सहित ह कार (ह) (१–२–३) नो वर्ण पीत छे। अर्ध चन्द्रकला (४) नो वर्ण लाल छे। बिन्दु (५) नो वर्ण श्याम छे। नाद (६) नो वर्ण श्वेत छे। चोथा स्वर (ई–७) नो वर्ण नील छे। वर्णानुसारे (रंग प्रमाणे) जिनो (नी स्थापना) छे। श्री चन्द्रप्रभ अने श्री सुविधिनाथ (नुं स्थान) नाद (६) छे। श्री नेमिनाथ अने श्री मुनिसुव्रतस्वामी (नुं स्थान) शून्य-बिंदु (५) छे। छट्ठा ने बारमा–श्री पद्मप्रभस्वामी अने श्री वासुपूज्यस्वामी (नु स्थान) कला (४) छे। श्री पार्श्वनाथ अने श्री मल्लिनाथ (नुं स्थान) ई स्वर (७) छे। माथु (शिरोरेखा) अने रेफ सहित ह कार (ह) (१-२-३) ते १६–(बे वार आठ) जिनो (नु अधिष्ठान) छे। (ते आ प्रमाणे :–ऋषभ–अजित–संभव–अभिनन्दन सुमति–सुपार्श्व–शीतल–श्रेयांस–विमल–अनंत–धर्म–शान्ति–कुन्थु–अर–नमि–वर्धमान)–आ प्रमाणे चार युगल छे ॥ १६-१७-१८ ॥ §

मां आवी जाय छे। पार्थिवी धारणानुं सुंदर चित्र अहीं उपलब्ध थाय छे। अहीं हुं अरिहंत स्वरूप छु तेवा ध्येयनी (प्रमेयनी) मुख्यता वर्ते छे। *

---

§ श्लोक नं. १६ थी २० एम पांच श्लोकोमां पदस्थ ध्याननो निर्देश छे। श्लोक नं. १६ १७ १८ मां ह्रींकारना सात अवयव माटे पांच वर्ण (रंग) निर्णीत करी ते पांच वर्णानुसारे जिनावलिनुं नियोजन करवामां आव्युं छे। आथी ह्रींकार जिनमय थाय छे।

* सरखावो :—

तिर्यग्लोकसमं ध्यायेत् क्षीराब्धिं तत्र चाम्बुजं ।
सहस्रपत्रं स्वर्णाभं जम्बूद्वीपसमं स्मरेत् ॥ १० ॥
तत्केसरततेरन्तः स्फुरत्पिङ्गप्रभाञ्चिताम् ।
स्वर्णाचलप्रमाणां च कर्णिकां परिचिन्तयेत् ॥ ११ ॥
श्वेतसिंहासनाऽऽसीनं कर्मनिर्मूलनोद्यतं ।
आत्मानं चिन्तयेत्तत्र पार्थिवीधारणेत्यसौ ॥ १२ ॥

योगशास्त्र–सप्तम प्रकाशः

+ जुओ वाचे—पृष्ठ ५१

नादोऽर्हन्तः कला सिद्धाः, सान्तः सूरिः स्वरोऽपरे ।
विन्दुः साधुरितः पँञ्चपरमेष्ठिमयस्त्वसौं ॥ १९ ॥*

अनुवादः—नाद (६) ए अरिहंत छे, कला (४) ए सिद्ध छे, सान्त–ह (१-२-३) ए सूरि छे, स्वर (ई–७) ए (अपरे–) उपाध्याय छे, विंदु (५) ए साधु छे। ए प्रमाणे आ ह्रीँ कार पंचपरमेष्ठिमय छे ॥ १९ ॥

---

५९. पञ्चपरमेष्ठिमय :—ह्रीँकारना सात अवयवने पांच परमेष्ठिना वर्णोमां विभाजन करी ते पंचपरमेष्ठिस्वरूप जिनोनुं ते ते अवयवमां ते ते वर्ण स्वरूपे नियोजन करवामां आव्युं छे। आथी ह्रीँकार पंचपरमेष्ठिमय थाय छे।

+ सरखावो—

अस्मिन् वीजे स्थिताः सर्वे, ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ताः, ध्यातव्यास्तत्र सङ्गताः ॥ २१ ॥

नादश्चन्द्रसमाकारो, विन्दुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमा सान्तः, स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ॥ २२ ॥

शिरः संलीन ईकारो, विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारसंलीनं, तीर्थकृन्मण्डलं स्तुमः ॥ २३ ॥

चन्द्रप्रभ-पुष्पदन्तौ, 'नाद'स्थितिसमाश्रितौ ।
'विन्दु'मध्यगतौ नेमि-सुव्रतौ जिनसत्तमौ ॥ २४ ॥

पद्मप्रभ-वासुपूज्यौ, 'कला'पदमधिष्ठितौ ।
'शिर'-'ई'-स्थितिसंलीनौ, पार्श्वमल्ली जिनोत्तमौ ॥ २५ ॥

शेषास्तीर्थकृतः सर्वे 'ह-र'स्थाने नियोजिताः ।
मायावीजाक्षरं प्राप्ताश्चतुर्विंशतिरर्हताम् ॥ २६ ॥

ऋषभं चाजितं वन्दे, सम्भवं चाभिनन्दनम् ।
श्रीसुमतिं सुपार्श्वं च, वन्दे श्रीशीतलं जिनम् ॥ २७ ॥

श्रेयांसं विमलं वन्देऽनन्तं श्रीधर्मनाथकम् ।
शान्तिं कुन्थुमरार्हन्तं, नमिं वीरं नमाम्यहम् ॥ २८ ॥

षोडशैवं जिनानेतान्, गाङ्गेयद्युतिसन्निभान् ।
त्रिकालं नौमि सद्भक्त्या, 'ह-रा'क्षरमधिष्ठितान् ॥ २९ ॥

—श्री ऋषिमण्डलस्तोत्रम्

नाभिपद्मस्थितं ध्यायेत् पञ्चवर्णं जिनेशितुः ।
तस्थुर्हरे षोडशामी सुवर्णद्युतयो जिनाः ॥ ३३ ॥

ऋषभोऽप्यजितस्वामी सम्भवोऽप्यभिनन्दनः ।
सुमतिः श्रीसुपार्श्वः श्रीश्रेयांसः शीतलोऽपि च ॥ ३४ ॥

विमलो ह्यनन्तजिनो धर्मः श्रीशान्तितीर्थकृत् ।
कुन्थुनाथो ह्यरजिनो नमिनाथो वीर इत्यपि ॥ ३५ ॥

ईकारे संस्थितौ पार्श्वमल्ली नीलौ जिनेश्वरौ ।
पद्मप्रभवासुपूज्यावरुणाभौ कलास्थितौ ॥ ३६ ॥

सुव्रतो नेमिनाथस्तु कृष्णाभौ विन्दुसंस्थितौ ।
चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ नादस्थौ कुन्दसुन्दरौ ॥ ३७ ॥

हितं जयावहं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शिवम् ।
तुष्टिपुष्टिकरं सिद्धिप्रदं निर्वृतिकारणम् ॥ ३८ ॥

निर्वाणाभयदं स्वस्तिशुभधृतिरतिप्रदम् ।
मतिबुद्धिप्रदं लक्ष्मीवर्द्धनं सम्पदां पदम् ॥ ३९ ॥

त्रैलोक्याक्षरमेनं ये संस्मरन्तीह योगिनः ।
नश्यत्यवश्यमेतेषामिहामुत्रभवं भयम् ॥ ४० ॥

—श्री जैनस्तोत्रसन्दोह, पृष्ठ २३६-२३७
(श्री मन्त्राधिराजकल्पः)

* श्लोक नं. १६-१७-१८ मां तथा श्लोक नं. १९ मां अधिष्ठानना आलेखननो प्रकार तो एक ज छे, परंतु अपेक्षा भिन्न छे।

† अन्यत्र विशेषः—

अर्हन्तो वृत्तकला त्रिकोण-सिद्धस्तु शीर्षकं सूरिः ।
चन्द्रकलोपाध्यायो दीर्घकला साधुरिह पञ्च ॥ २० ॥§

अनुवादः—अन्य स्थळे प्रकारविशेष नीचे प्रमाणे मळे छे :—

गोळ कला जे बिन्दुनी छे ० (५)—ते अरिहंत छे। त्रिकोण जे नाद छे ^ (६) ते सिद्ध छे। शीर्ष-युक्त सर्व — माथुं ह ने र—(ह–१–२–३) ए सूरि छे। चन्द्रकला ˘ (४) ए उपाध्याय छे अने दीर्घ-कला जे ईकारनी छे (७) ते साधु छे। एम अहीं एटले ह्रींकारमां पांच (परमेष्ठी) छे ॥ २० ॥

बीजाक्षर ह्रींकारना अंशो तथा वर्णोना ध्यान माटे कोष्टक
[श्लोक १६-१७-१८-१९ मुजब]

	बीजाक्षरना अंश	अंशोनुं आलेखन	वर्ण	ध्यातव्य परमेष्ठिपञ्चक	ध्यातव्य तीर्थंकृन्मंडल
१	रेफ	ह्			
२	ह (सान्त)	ह	पीत	आचार्य (सूरि)	बाकीना १६ तीर्थंकरो
३	शिर				
४	चन्द्रकला	˘	रक्त	सिद्ध	श्री पद्मप्रभ, श्री वासुपूज्य
५	बिंदु(अभ्र)	०	श्याम	साधु	श्री नेमिनाथ, श्री मुनिसुव्रत
६	नाद	^	श्वेत	अरिहंत	श्री चन्द्रप्रभ, श्री सुविधिनाथ
७	स्वर	ई – ी	नील	उपाध्याय	श्री पार्श्वनाथ, श्री मल्लिनाथ

बीजाक्षर ह्रींकारना अंशो तथा वर्णोना ध्यान माटे कोष्टक
[श्लोक २० मुजब]

	बीजाक्षरना अंश	अंशोनुं आलेखन	वर्ण	ध्यातव्य परमेष्ठिपञ्चक	ध्यातव्य तीर्थंकृन्मंडल
१					
२	शीर्षक	ह्	पीत	आचार्य (सूरि)	बाकीना १६ तीर्थंकरो
३					
४	चन्द्रकला	˘	नील	उपाध्याय	श्री मल्लिनाथ, श्री पार्श्वनाथ
५	वृत्तकला	०	श्वेत	अरिहंत	श्री चन्द्रप्रभ, श्री सुविधिनाथ
६	त्रिकोण	^	रक्त	सिद्ध	श्री पद्मप्रभ, श्री वासुपूज्य
७	दीर्घकला	ी	श्याम	साधु	श्री नेमिनाथ, श्री मुनिसुव्रत

† श्री नमस्कार संबंधी श्री मानतुङ्गसूरिनुं 'नवकारसारथवणं' नामनुं एक स्तोत्र 'नमस्कार स्वाध्याय' ना प्राकृत विभागमां आपेल छे। तेमां जे प्रकारविशेष उपलब्ध थाय छे तेनो अहीं निर्देश करवामां आव्यो छे।

§ सरखावो :— वट्टकला अरिहंता तिउणा सिद्धा य लोढकल सूरी ।
उवज्झाया मुद्दकला दीहकला साहूणो सुहया ॥ १० ॥
—नवकारसारथवणं (न. स्वा. प्रा. वि. पृ २६३)

अर्हन्तः शशि-सुविधी सिद्धाः पद्माभ-वासुपूज्यजिनौ ।
धर्माचार्याः षोडश मल्लिः पार्श्वोऽप्युपाध्यायः ॥ २१ ॥

सुव्रत-नेमी साधुर्जिनरूपः शक्ति-शिवमयस्त्वेषः ।
त्रिपुरुषमूर्तिर्ध्येयोऽ[६०]लक्ष्यवपुः सर्वधर्मबीजमिदम् ॥ २२ ॥

अनुवादः—ह्रीँकारमां चन्द्रप्रभ अने सुविधि ए बे अरिहंतरूपे, पद्मप्रभ अने वासुपूज्य ए बे सिद्ध रूपे, १–२–३–४–५–७–१०–११–१३–१४–१५–१६–१७–१८–२१ अने २४ मा जिनेश्वरो आचार्यरूपे, मल्लि अने पार्श्व ए बे उपाध्यायरूपे अने मुनिसुव्रत अने नेमि ए बे साधुरूपे ध्येय छे। आ ह्रीँकार जिनरूप छे, शक्ति अने शिवमय छे, त्रिपुरुषमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु अने महेशरूप ?) छे, अने अलक्ष्य शरीरवाळो छे। ते सर्व धर्मना बीजरूप छे। ॥ २१–२२ ॥+

---

६०. अलक्ष्यवपुः—शब्दब्रह्मनी परा अवस्था जे प्रधान अवस्था छे ते अलक्ष्य छे। तेने शाक्त लोको 'शक्ति' कहे छे, शिवभक्तो 'चिति' कहे छे, योगीओ 'कुण्डलिनी' कहे छे, सांख्यो 'प्रकृति' कहे छे, वेदांतीओ 'ब्रह्म' कहे छे, बौद्धो 'बुद्धि' कहे छे अने जैनो 'कुण्डलिनी', 'प्राणशक्ति', 'कला' वगेरे कहे छे—तेनुं मूर्तस्वरूप ह्रीँ कार छे। 'अलक्ष्यवपुः'वडे रूपातीत ध्यान सूचवाय छे।

+ श्लोक नं. २१-२२ मां रूपस्थ ध्याननो निर्देश थाय छे। श्लोक नं. २१ मां तथा श्लोक नं. २२ ना पहेला पादमां ह्रीँकार ते पंचपरमेष्ठिमय छे ते स्थापित कर्युं। आ प्रकार आगळ श्लोक नं. १७-१८ मां दर्शावायो छे; परंतु त्यां ह्रीँकारनी संज्ञा अक्षर तरीके मुख्यता हती एटले त्यां पदस्थ ध्यान हतुं। अहीं श्लोक नं. २१ तथा नं. २२ ना पहेला पादमां अधिष्ठान करायेला रूपनी मुख्यता छे अने तेथी रूपस्थ ध्यान छे। अहीं श्लोक नं. २१-२२ मां जैन तथा जैनेतर प्रणालिकाओनो निर्देश थाय छे ते नीचे प्रमाणे :—

१. ह्रीँ कार जिनस्वरूप छे।
२. ,, ,, पंचपरमेष्ठि स्वरूपे जिनावलिमय छे।
३. ,, ,, 'शक्ति' अने 'शिव'मय छे।
४. ,, ,, 'त्रिपुरुषमूर्ति' छे। आथी ते ब्रह्मा, विष्णु अने महेशरूप छे।
५. ,, ,, ध्येय छे।
६. ,, ,, 'अलक्ष्यवपुः' छे। वाणीनी परा अवस्था जे अलक्ष्य छे तेनुं मूर्तस्वरूप ह्रीँकारमां ज आपी शकाय।
७. ,, ,, सर्व धर्मना मंत्रबीजरूप अक्षर छे। तात्पर्य के सर्व धर्मो ए बीजाक्षरने माने छे।



जैनमिह धर्मचक्रं, तच्छायागर्भगं न पश्यन्ति ।
हं-नं-रं-कं-सं-(शं)-हं-जं-(यं)-ऽहि-गजाः "रक्षोऽग्नि"-सिंह"-
दुष्ट"-नृपाः" ॥ २३ ॥*

अनुवादः—अहीं (ऋषिमंडलयंत्रमां) श्री जिनेश्वर भगवंत संबंधी धर्मचक्र रहेलुं छे। तेनी छाया-निभारूप पंजरमां रहेनारने हाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी, याकिनी, सर्प, हाथी, राक्षस, अग्नि, सिंह, दुष्ट अने राजा जोई शकता नथी ॥ २३ ॥+

६१. धर्मचक्रं—त्रिभुवनपति श्री तीर्थंकर परमात्मानुं ए महान धर्मशास्त्र छे। तेथी अचिन्त्य प्रभावथी अनेक उपद्रवो शांत थाय छे। चक्रवर्तिना चक्रनी जेम ते परमात्मानी आगळ चाले छे। ते परमात्माना धर्मचक्रवर्तित्वने सूचवे छे। ऋषिमंडलयंत्र पोते ज चक्राकृति होवाथी चक्र छे। ते चक्रने जे मनमां धारण करे छे, ते सर्वत्र अपराजित बने छे।

६२. तच्छायागर्भगं—जेम चक्रवर्तिना चक्ररत्नना कारणे तेना मित्रो सुरक्षित होय छे, तेम ऋषिमंडलमां रहेल धर्मचक्रनी रक्षामां जे मानसिक रीते उपस्थित थयो छे, तेने कोई पण उपद्रवकारक एवा दुष्टादि पीडा न करी शके।

६३. न पश्यन्ति—तेने जोई शकता नथी। तेने डरावी शकता नथी। जेना उपर धर्मचक्रनी छाया छे तेना उपर बीजा कोईनी दुष्ट दृष्टि पडी शकती नथी।

६४. ह—न... नृपाः—हाकिनी आदि देवीओ, सर्प, हाथी, राक्षस, अग्नि, सिंह, दुष्टो अने राजाओ तेने डरावी शकता नथी।

* तुलनाः—

एतन्मन्त्रस्मरणात् सूरिविद्यातिशयमिलितः ।
ह र ल क स (श) ह आ (या)ऽहि रिपुप्रमुखिभ्यस्त्यं संवरयाइम् ॥ ४७१ ॥
—श्रीसिंहतिलकसूरिविरचिते "मन्त्रराजरहस्यम्"

अर्थः—आ मंत्रना स्मरणथी आकाश श्री सूरिमंत्रना वाणी वडे अतिशय संयुक्त थईने हाकिनी आदिथी पण भयथी पोतानी रक्षा करे छे।

डाकिनी शाकिनी चण्डी काकिनी राकिनी तथा ।
लाकिनी याकिनी चित्रा क्षमया हाकिनी स्मृता ॥ ११ ॥
एतेषां जन्तु मे दोषाश्च सर्वे यान्तु दूरतः ।
जिनानामनुभावाच्च पार्श्वनाथप्रसादतः ॥ १२ ॥
धर्मकौमुदी—श्रीजिनलाभसूरिकृत
(जैनस्तोत्रसन्दोह IV ३५.)

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाऽऽच्छादितसर्वाङ्गं मा मां हिनस्तु डाकिनी ॥ ३९ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु राकिनी ॥ ४३ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु लाकिनी ॥ ४४ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु काकिनी ॥ ४५ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु शाकिनी ॥ ४६ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु हाकिनी ॥ ४७ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु याकिनी ॥ ४८ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु पन्नगाः ॥ ४९ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु हस्तिनः ॥ ५१ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु राक्षसाः ॥ ५२ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु वह्नयः ॥ ५३ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु सिंहकाः ॥ ५४ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु दुर्जनाः ॥ ५५ ॥
देवदेव० मा मां हिनस्तु भूमिपाः ॥ ५६ ॥
—श्रीऋषिमण्डलस्तोत्र

+ आ अनुवाद श्री ऋषिमण्डलकल्पने अनुसरीने करेल छे।

श्रीगौतमस्य [६५]मुद्राभि [६६]र्लब्धिभि(र्भा)[६७]निधीश्वरम् ।
[६८]त्रैलोक्यवासिनो देवा देव्यो रक्षन्तु[६९] सर्वतः (मामितः) ॥ २४ ॥*

अनुवादः—श्री गौतमस्वामी गणधर भगवंतनी मुद्राओ तथा लब्धिओ वडे ज्योतिर्मय अने निधीश्वर थयेला (?) एवा मने त्रणे लोकमां वसता देवो अने देवीओ रक्षो (मारी रक्षा करो) ॥ २४ ॥

---

६५. मुद्राभिः—मुद्राओ वडे ।

श्री सूरिमन्त्रनी नीचे प्रमाणेनी पांच मुद्राओ अतिशय विख्यात होवाथी तेओनो अहीं श्री गौतमस्वामीनी मुद्रा तरीके निर्देश थयो जणाय छे :—

१. सौभाग्य मुद्रा —वश्य तथा क्षोभ माटे ।
२. सुरभि मुद्रा —शांति माटे ।
३. प्रवचन मुद्रा —ज्ञान माटे ।
४. परमेष्ठि मुद्रा —सर्वार्थसिद्धि माटे ।
५. अंजलि मुद्रा —आत्मसेवार्थे ।

६६. लब्धिभिः—लब्धिओ वडे । जिनलब्धि, अवधिजिनलब्धि वगेरे अनेक प्रकारनी लब्धिओ छे ।

लब्धिधारी महापुरुषोना स्मरणादि माटे शास्त्रोमां ॐ ह्रीँ अर्हँ णमो जिणाणं, ॐ ह्रीँ अर्हँ णमो ओहिजिणाणं वगेरे अनेक लब्धिपदो सूचववामां आव्या छे । ए लब्धिपदोना स्मरणथी आत्मानी ज्ञानादि अनेक शक्तिओनो समुचित विकास थाय छे । जुदां जुदां लब्धिपदोनी शास्त्रीय रीते संयोजना करीने तेमनुं स्मरण करवाथी शान्त्यादि अनेक अर्थक्रियाओ थाय छे ।† **(लब्धिओनी संख्या तथा नामो माटे जुओ परिशिष्ट २)**

६७. भा निधीश्वरम्—(मुद्रा तथा लब्धि वडे करायेल जापना प्रभावथी) ज्योतिर्मय अने सर्वनिधीश्वर बनेला मारी देवो तथा देवीओ रक्षा करो । **(निधि तथा देवीओना नाम माटे जुओ अनुक्रमे परिशिष्ट ९ अने परिशिष्ट ५)**

६८. त्रैलोक्यवासिनो देवा देव्यः—जुदी जुदी प्रणालिका अनुसार जे जे देवो तथा देवीओनुं रक्षा माटे आमंत्रण थाय छे तेओनो अहीं नामनिर्देश करवामां आवे छे ।

६९. रक्षन्तु सर्वतः (मामितः)—तेओ मारी सर्वप्रकारे रक्षा करो ।

---

* सरखावो—

श्रीगौतमस्य या मुद्रा तस्या या भुवि लब्धयः ।
ताभिरभ्यधिकं ज्योतिरर्हन् सर्वनिधीश्वरः ॥ ७७ ॥
पातालवासिनो देवाः, देवाः भूपीठवासिनः ।
स्वर्वासिनोऽपि ये देवाः सर्वे रक्षन्तु मामितः ॥ ७८ ॥

—श्रीऋषिमण्डलस्तोत्रम्

† एतज्जापात् सूरिर्गौतमलब्धिभामिरुत्तेजाः ।
देवासुर-दनुजेन्द्रैर्वन्द्योऽथ त्रिभवशिवगामी ॥ ४७८ ॥

—श्रीसिंहतिलकसूरिविरचितं 'मन्त्रराजरहस्यम्'

ॐ ह्रीँ श्रीश्च (ह्रीः) धृतिर्लक्ष्मीर्गौरी चण्डी सरस्वती ।
जयाऽम्बा विजयेत्याद्या विद्याँ[७०] यच्छन्तु[७१] मे धृतिम् ॥ २५ ॥ *
भ्रष्ट[७२]राज्यादयो यं यमर्थमिच्छन्ति तं नराः ।
लभन्तेऽस्य स्मृतेर्युद्धाद्यापदश्च तरन्त्यमी ॥ २६ ॥ §
भूर्जपत्रान्तरालिख्य, र[७३]क्षा कण्ठ-शिरः-करे ।
मु[७४]द्गल-ग्रह-भूतार्तिहृद् वश्यादिप्रसाधनी ॥ २७ ॥ †

अनुवादः—ॐ ह्रीँ पूर्वक—श्री, ह्री, धृति, लक्ष्मी, गौरी, चण्डी, सरस्वती, जया, अंबा, विजया—वगेरे विद्याओ (देवीओ) मने धैर्य आपो ॥ २५ ॥

अनुवादः—राज्यथी भ्रष्ट थयेला वगेरे मनुष्यो जे जे अर्थने इच्छे छे तेने आना स्मरणथी प्राप्त करे छे अने तेओ युद्ध वगेरे आपदाओने तरी जाय छे ॥ २६ ॥ +

अनुवादः—भोजपत्रमां (आनुं) आलेखन करीने कंठे, मस्तके अथवा हाथमां (बांधवाथी) रक्षा थाय छे। मोगळा, ग्रह तथा भूतपीडा दूर थाय छे अने वशीकरण वगेरेने सिद्ध करे छे ॥ २७ ॥

---

७०. विद्या—अहीं जेओनो नामनिर्देश थयो छे ते देवीओ वगेरे। (विद्यादेवीओ माटे जुओ परिशिष्ट ८).

७१. यच्छन्तु मे धृतिम—आराधनामां मने स्थैर्य तथा धैर्य अर्पो।

७२. भ्रष्टराज्यादयो—अहीं आदि पदथी पदभ्रष्ट अने लक्ष्मीभ्रष्ट तथा भार्यार्थी, सुतार्थी अने वित्तार्थी पण समजवा जोईए।

७३. रक्षा—रक्षा निर्माणना प्रकारो :—

१. आलेखन—भूर्जपत्र पर।

२. स्थान—कंठमां (मादळियामां) अथवा शिर पर (पाघडीमां, टबीमां) अथवा हाथे (मादळियामां)।

३. पीडानी शांति माटे—ग्रहरचना रिष्ट योगनी शांति माटे तथा भूत-व्यंतर वगेरेनी बाधाथी मुक्त थवा माटे अने वश्यादि कर्मना प्रसाधन माटे।

७४. मुद्गल—व्यंतरविशेष—जेओ मुद्गल साथे परिभ्रमण करे छे। मुद्गलने मंतरीने प्रहारार्थे कोई फेंके, तो तेना निवारण माटे।

सरखावो :—* ॐ ह्रीँ श्रीः ह्रीः धृतिर्लक्ष्मीः गौरी चण्डी सरस्वती ।
जयाऽम्बा विजया नित्या क्लिन्नाऽजिता मदद्रवा ॥ ८० ॥

§ राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टाः निजं पदम् ।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ ८६ ॥
भार्यार्थी लभते भार्यां, सुतार्थी लभते सुतम् ।
वित्तार्थी लभते वित्तं, नरः स्मरणमात्रतः ॥ ८७ ॥

† भूर्जपत्रे लिखित्वेदं, गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारितं सर्वदा दिव्यं, सर्वभीतिविनाशकम् ॥ ८८ ॥
भूतैः प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षैः, पिशाचैर्मुद्गलैर्मलैः ।
वात पित्त-कफोद्रेकैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८९ ॥

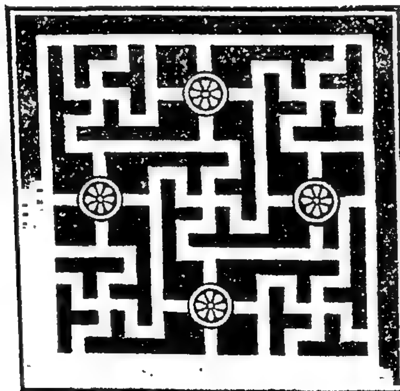
+ आ श्लोकमां फलश्रुतिनो निर्देश छे।

त्रैलोक्यवर्तिजैनानां, विम्बैर्दृष्टैः स्तुतैर्नतैः ।
यत् फलं तत् फलं [७५] वीजस्मृतावेतन्महद् रहः ॥ २८ ॥ ❀

अनुवाद :—त्रणे लोकमां रहेला अरिहंत परमात्माना विम्बोनां दर्शन करवाथी, तेमनी स्तुति करवाथी अने तेमने नमस्कार करवाथी जे फळ प्राप्त थाय ते फळ आ (ह्रीँकार) वीजना स्मरणथी प्राप्त थाय छे । आ मोटुं रहस्य छे ॥ २८ ॥

---

७५. **वीजस्मृतावेतन्महद् रहः**—वीजस्मृतिनुं रहस्य । वीजना (ह्रीँकारना) स्मरणमात्रथी त्रिभुवनवर्ती सर्व जिन विम्वोनां दर्शन, स्तवन अने वंदन जेटलो लाभ थाय छे । अहीं स्मरणनो अचिंत्य प्रभाव दर्शाववामां आव्यो छे । चक्षुइंद्रिय वडे दर्शन, वाणी वडे स्तवन अने काया वडे नमस्कार ए त्रणे करतां पण वीजना भावपूर्वक स्मरणनुं फळ अधिक छे । आ निरूपण पण आंशिक छे; मानसिक स्मरणनुं सर्वोत्कृष्ट फळ तो एना करतां अनेकगणुं अधिक छे । स्मृतिना आ महान फळने जाणवुं अने अनुभववुं, ए एक आध्यात्मिक मार्गनुं महान रहस्य छे ।



❀ भूर्भुवः स्वस्त्रयीपीठवर्तिनः शाश्वताः जिनाः ।
तैः स्तुतैर्वन्दितैर्दृष्टैर्यत् फलं तत् फलं स्मृतौ ॥ ९० ॥

अँष्टाचाम्लतपःपूर्वं, जिनानभ्यर्च्य सिद्धये ।
अष्टजातीसहस्रैस्तु, जापो होमो दशांशतः ॥ २९ ॥*

अनुवाद :—[आनी (ह्रींकारनी)] सिद्धिने माटे आठ आयंबिलनुं तप करवापूर्वक आठ हजार जाईना पुष्पो वडे जिनेश्वरनी पूजा करवी ने आठ हजारनो जाप करवो। दशांश होम करवो। अर्थात् आठसो वखत होम करवो ॥ २९ ॥

---

७६. अष्टाचाम्ल...दशांशतः—जाप, तप, अर्चा, करण अने अन्तर्योग साधनाना क्रमनी तालिका नीचे प्रमाणे थई शके :—

१. मन्त्र	२. न्यास	३. ध्यान	४. साधन	५. जाप	६. तप	७. अर्चा	८. अंतर्याग
मूलमन्त्र श्लोक न. ६ (आसन-पूर्वक)	न्यास श्लोक न. १०	पिण्डस्थ, पदस्थ अने रूपस्थ श्लोक न. १३-१८	मुद्राओ श्लो. नं. २४ जाईना पुष्पो न. ८००० श्लोक न. २९	संख्या ८००० श्लोक न. २९	आठ आचाम्ल (आयबिल) श्लोक नं. २९	जिनपूजा (स्नात्रपूजा करीने) श्लोक न. २९	कषाय-चतुष्टयनो होम

(आसन अहीं अध्याहार छे)। आमां सकलीकरणनो समावेश थाय छे।

१. मन्त्र—आसनपूर्वक मूलमंत्रनी श्लोक नं. ६ मा दर्शाव्या प्रमाणे साधना करवानी छे।

२. न्यास—रक्षा माटे सकलीकरण श्लोक नं. १० मा दर्शाव्या प्रमाणे करवानां छे।

३. ध्यान—श्लोक न. १३ थी १८ मां दर्शाव्या प्रमाणे एक पछी एक ध्यान करवानुं छे। आ विशे आम्नाय गुरु पासेथी जाणी लेवो अने ध्यान यंत्रमां आलेखन कर्या प्रमाणे करवानां छे।

४. साधन—मुद्राओ श्लोक न. २४ ना विवेचनमां आप्या प्रमाणे अने पुष्पो श्लोक नं. २९ मां जणाव्या प्रमाणे।

५. जाप—एक एक जाईना पुष्पना पूजन वडे जाप करवानो छे। जापनी व्याख्या नीचे प्रमाणे उपलब्ध थाय छे :—

भूयो भूयः परे भावे भावना भाव्यते हि या ।
जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः ॥

पुरश्चरणनी संख्या ८०००।

६. तप—आठ आयंबिलना तपपूर्वक आठ दिवसनी प्रक्रिया साधवी।

७. अर्चा—जिनपूजा (स्नात्र सहित)। जाईना फूल नं. ८०००।

८. अंतर्याग—होम—नाभिमण्डलनी अग्निमा चार कषायोनो ८०० वखत होम करवो ते अंतर्याग छे। +

---

* सरखावो :—आचाम्लादि तपः कृत्वा, पूजयित्वा जिनावलीम् ।
अष्टसाहस्रिको जापः, कार्यस्तत् सिद्धिहेतवे ॥ १३ ॥

+ श्री सागरचन्द्र तेमना 'मन्त्राधिराजकल्प'मा पूजा माटे षट्कर्म आ प्रमाणे आपे छे :—
१. आसन, २. सकलीकरण, ३. मुद्रा, ४. पूजा, ५. जप, ६. होमविधि ।

आदौ जिनेन्द्रवपुरद्भुतमन्त्रयन्त्रा ह्यानासनानि सकलीकरणं च मुद्राम् ।
पूजां जपं तदनु होमविधिं षडेव कर्माणि संस्तुतिमह सकलं भणामि ॥ २ ॥

—श्री जैनस्तोत्रसन्दोह पृष्ठ, २१२।

अँष्टमासान् स्मरेत् प्रातर्बीजमेतच्छताधिकम् (१०८) ।
स पश्येदार्हतं बिम्बं, सप्तान्तर्भवसिद्धये ॥ ३० ॥*
सम्यग्दृशे विनीताय, ब्रह्मव्रतभृते इदम् ।
देयं मिथ्यादृशे नैव ⁷⁸जै(जि)नाज्ञाभङ्गदूषणः(णम्) ॥ ३१ ॥*
पँरमेष्ठिपदानां तु, विशेषः पूर्वयन्त्रतः ।
ज्ञेयो रत्नत्रयस्याथ, विशेषः कश्चिदुच्यते ॥ ३२ ॥

अनुवादः—जे आठ मास सुधी सवारमां १०८ वार आ बीजनुं स्मरण करे छे तेने अर्हत् बिम्बनां दर्शन थाय छे अने ते तेनी सात भवनी अंदर सिद्धिने माटे थाय छे ॥ ३० ॥

अनुवादः—आ सम्यग्दृष्टि, विनीत अने ब्रह्मचर्यव्रतने धारण करनारने आपवुं । मिथ्यादृष्टिने न ज आपवुं। तेने आपवाथी श्री जिनेश्वरभगवंतनी आज्ञाना भंगरूप दूषण लागे छे ॥ ३१ ॥

अनुवादः—पंचपरमेष्ठिपदोनी जे विशेपता छे ते पूर्वयन्त्रथी (परमेष्ठियंत्रथी के जे पूर्वे ग्रन्थकारे रचेल छे तेथी) जाणवी । रत्नत्रयनी जे विशेषता छे ते हवे कांईक कहेवाय छे ॥ ३२ ॥

---

७७. **अष्टमासान्**—दृढीकरण माटे समयनो उल्लेख बाकी रह्यो हतो तेनो निर्देश अहीं थाय छे। समय—आठ मास । जे क्रिया करी छे तेना दृढीकरण माटे अहीं समयनो निर्णय कह्यो छे । आठ मास सुधी हंमेश सवारे १०८ वार ह्रींकार बीजनुं भावपूर्वक स्मरण करे तो अर्हद् बिंबनुं दर्शन थाय छे अने सात भवमां सिद्धि प्राप्त थाय छे।

७८. **जै(जि)नाज्ञाभङ्गदूषणः(णम्)**—आज्ञानो निर्देश छे अने आ आज्ञानुं उल्लंघन करे तेने जिनाज्ञा-उल्लंघननो दोष लागे छे।

७९. **परमेष्ठिपदानां....कश्चिदुच्यते**—जाप्य मूलमन्त्रना त्रण खंड थई शके अने ते नीचे प्रमाणे :—

१. प्रथम खंड—अष्ट बीजाक्षरो—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रों ह्रः ।

२. द्वितीय खंड—परमेष्ठिपदो अथवा ते पदोना आद्याक्षरो—अ सि आ उ सा ।

३. तृतीय खंड—ज्ञानदर्शनचारित्रेभ्यो नमः ।

प्रथम खंडना जाप, समय तथा फल विशे श्लोक नं. ३० मां निर्देश थयो । हवे श्लोक नं. ३२ मां पहेला बे पादमां परमेष्ठिपदो विशे ग्रन्थकारे जे रहस्यनो पूर्वे निर्देश कर्यो छे ते अवलोकवाने सूचन कर्युं अने त्रीजा तथा चोथा पादमां तृतीयखंडमां जे रत्नत्रय छे ते विशे रहस्य दर्शाववानो निर्देश कर्यो छे। आ रहस्यने श्लोक नं. ३३–३४–३५ मां जणाववामां आव्युं छे।

---

* **सरखावो**:—शतमष्टोत्तरं प्रातः ये स्मरन्ति दिने दिने ।
तेषां न व्याधयो देहे, प्रभवन्ति न चापदः ॥ ९४ ॥
अष्टमासावधिं यावत्, प्रातः प्रातस्तु यः पठेत् ।
स्तोत्रमेतन्महातेजो, जिनबिम्बं स पश्यति ॥ ९५ ॥
दृष्टे सत्यर्हतो बिम्बे, भवे सप्तमके ध्रुवम् ।
पदमाप्नोति शुद्धात्मा, परमानन्दसंपदाम् ॥ ९६ ॥

* **सरखावो**:—एतद् गोप्यं महास्तोत्रं, न देयं यस्य कस्यचित् ।
मिथ्यात्ववासिने दत्ते, बालहत्या पदे पदे ॥ ९२ ॥

ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपांसीति स्मरन् मुनिः ।
शतमष्टोत्तरं लब्ध्वा(द्वा), चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३३ ॥
कृत्वा पापसहस्राणि, हत्वा जन्तुशतानि च ।
अमुं मन्त्रं समाराध्य, तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः ॥ ३४ ॥
पतद् व्यसनपाताले, भ्रमत् संसारसागरे ।
अनेनैव जगत् सर्वमुद्धृत्य विधृतं शिवे ॥ ३५ ॥
मूर्ध्नि रत्नत्रयं बिभ्रज्जिनबीजं नमोऽक्षरम् ।
इति रत्नत्रयं ध्येयं, जिनबीजस्य बीजकम् ॥ ३६ ॥

अनुवादः—ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी तपने १०८ वार स्मरण करतो मुनि उपवासना फळने प्राप्त करनारो थाय छे ॥ ३३ ॥

अनुवादः—पूर्वे हजारो पापो कर्यां छता अने सेंकडो जीवोनी हिंसा कर्या छतां पण (पछीना जीवनमां) आ मन्त्रनु आराधन करवाथी पशुओ पण स्वर्गगामी बन्यां छे ॥ ३४ ॥ +

अनुवादः—व्यसनरूप पाताळमां पडतुं अने संसारसागरमां भमतु एवुं जगत आ मंत्र वडे ज उद्धरीने शिवमां धारण करायु छे ॥ ३५ ॥

अनुवादः—मस्तक पर रत्नत्रयस्वरूप रेफने धारण करतुं अने नमो अक्षरवाळुं जिनबीज (अर्हं) (अर्थात् 'ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः') रत्नत्रय तरीके ध्येय छे। ते (रत्नत्रय) जिनबीजनु पण बीज छे ॥ ३६ ॥

---

८०. ज्ञान-दर्शन-चारित्र तपांसि—

(ॐ) ज्ञान-दर्शन-चारित्रेभ्यो (नमः)—आ प्रमाणे जाप्य मूलमन्त्रना त्रीजा खंडनुं जे मुनि १०८ वार स्मरण करे छे ते उपवासना फळने प्राप्त करे छे। अहीं ज्ञान, दर्शन, चारित्र त्रिरत्नरूपी तप छे।

८१. मुनिः—मुनि एटले जगतना तत्त्वोनु मनन करनार।* अथवा मुनि एटले मौन(संयम)ने धारण करनार।

८२. तिर्यञ्चः—जो तिर्यंचो पण आ मंत्रनी आराधनाथी स्वर्गने पाम्या, तो बुद्धिमान मनुष्य एनाथी शु न पामी शके!

८३. अनेनैव....शिवे—आ मंत्रनी साधना ए महान धर्म छे। धर्मनुं लक्षण करतां पण शास्त्रकारोए कह्यु छे के 'जे दुर्गतिमाथी जीवनी रक्षा करे अने तेने मोक्षमां धारण करे, ते धर्म कहेवाय'। ❀

८४. रत्नत्रयं .. बीजकम्—अहीं ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः नो ध्येय तरीके निर्देश करवामा आव्यो छे; कारण के, रत्नत्रय ए जिनबीजनुं पण बीजक छे। आत्मा जिन (परमात्मा) बनावनार रत्नत्रय होवाथी, तेने जिनबीजनु पण बीज कहेवामा आवे छे। रत्नत्रयनी मुख्यता आ प्रमाणे नाना मंत्रपदमां दर्शावीने समग्र यंत्ररत्नना सार तरीके तेने कहेवामां आव्युं छे।

+ आ श्लोक 'योगशास्त्र'ना अष्टम प्रकाशमां श्लोक नं. ३७ तरीके मळे छे। मूलमन्त्रना त्रीजा खंडनी फलश्रुति आ श्लोकमां तथा आ पछीना श्लोकमां आपवामा आवी छे।

* मन्यते यो जगत्तत्त्वं स मुनिः परिकीर्तितः ।

—श्री ज्ञानसार अष्टक, मौनाष्टक.

❀ जुओ, उपा. श्री यशोविजयजी कृत 'धर्मपरीक्षा'।

नोंध :—

श्री सिंहतिलकसूरिए रजू करेल आम्नायने मुख्यत्वे लक्ष्यमां राखी संस्था तरफथी ऋषिमंडलयन्त्र चार रंगमां अलग मुद्रित करवामां आव्युं छे अने तेनी एक एक नकल आ ग्रंथनी साथे आपवामां आवी छे। ते यन्त्रमां नीचे प्रणालिका अनुसार गणधरो, लब्धिओ, देवीओ, यक्षो, यक्षिणीओ आदिनां नाम लखेल छे ते अहीं परिशिष्ट रूपे छाप्यां छे। आमांथी जेनो जेनो प्रस्तुत कृतिमां उल्लेख आवे छे तेनो त्यां त्यां निर्देश कर्यो छे।

परिशिष्ट १

अगियार गणधरो

१. इन्द्रभूति
२. अग्निभूति
३. वायुभूति
४. व्यक्त
५. सुधर्मा
६. मण्डितपुत्र
७. मौर्यपुत्र
८. अकम्पित
९. अचलभ्राता
१०. मेतार्य
११. प्रभास

परिशिष्ट २

अडताळीस लब्धिओ

१. जिन
२. अवधिजिन
३. परमावधिजिन
४. सर्वावधिजिन
५. अनन्तावधिजिन
६. कुष्टबुद्धि
७. बीजबुद्धि
८. पदानुसारि
९. आशीविष
१०. दृष्टिविष
११. संभिन्नश्रोतः
१२. स्वयंसंबुद्ध
१३. प्रत्येकबुद्ध
१४. बोधिबुद्ध
१५. ऋजुमति
१६. विपुलमति
१७. दशपूर्वि
१८. चतुर्दशपूर्वि
१९. अष्टाङ्गनिमित्तकुशल
२०. विकुर्वणर्द्धिप्राप्त
२१. विद्याधर
२२. चारणलब्धि
२३. प्रश्न(प्रज्ञ)श्रमण
२४. आकाशगामि
२५. क्षीराश्रवि
२६. सर्पिराश्रवि
२७. मध्वाश्रवि
२८. अमृताश्रवि
२९. सिद्धायतन
३०. भगवन्महामहावीर-वर्धमानबुद्धर्षि
३१. उग्रतपः
३२. अक्षीणमहानसि
३३. वर्धमान
३४. दीप्ततपः
३५. तप्ततपः
३६. महातपः
३७. घोरतपः
३८. घोरगुण
३९. घोरपराक्रम
४०. घोरगुणब्रह्मचारि
४१. आमर्शौषधिप्राप्त
४२. खेलौषधिप्राप्त
४३. जल्लौषधिप्राप्त
४४. विप्रुडौषधिप्राप्त
४५. सर्वौषधिप्राप्त
४६. मनोबलि
४७. वचनबलि
४८. कायबलि

परिशिष्ट ३

चोवीश तीर्थङ्करोना पिताओ

१. नाभि
२. जितशत्रु
३. जितारि
४. सवर
५. मेघरथ
६. श्रीधर
७. सुप्रतिष्ठ
८. महासेन
९. सुग्रीव
१०. दृढरथ
११. विष्णु
१२. वसुपूज्य
१३. कृतवर्म
१४. सिंहसेन
१५. भानु
१६. विश्वसेन
१७. सूर
१८. सुदर्शन
१९. कुम्भ
२०. सुमित्र
२१. विजय
२२. समुद्रविजय
२३. अश्वसेन
२४. सिद्धार्थ

परिशिष्ट ४

चोवीश तीर्थङ्करोनी माताओ

१. मरुदेवा
२. विजया
३. सेना
४. सिद्धार्था
५. सुमङ्गला
६. सुसीमा
७. पृथ्वी
८. लक्ष्मणा
९. रामा
१०. नन्दा
११. विष्णु
१२. जया
१३. श्यामा
१४. सुयशा
१५. सुव्रता
१६. अचिरा
१७. श्री
१८. देवी
१९. प्रभावती
२० पद्मा
२१. वप्रा
२२. शिवा
२३. वामा
२४. त्रिशला

परिशिष्ट ५

चोवीश देवीओ

१. ह्री
२. श्री
३. धृति
४. लक्ष्मी
५. गौरी
६. चण्डी
७ सरस्वती
८. जया
९. अम्बा
१०. विजया
११. निन्या
१२ क्लिन्ना
१३. अजिता
१४. मदद्रवा
१५. कामाङ्गा
१६ कामवाणा
१७. सानन्दा
१८. नन्दमालिनी
१९. माया
२०. मायाविनी
२१. रौद्री
२२. कला
२३. काली
२४. कलिप्रिया

परिशिष्ट ६

चोवीश यक्षो

१. गोमुख
२. महायक्ष
३. त्रिमुख
४. यक्षनायक
५. तुम्बरु
६. कुसुम
७. मातङ्ग
८. विजय
९. अजित
१०. ब्रह्म
११. यक्षराज
१२. कुमार
१३. षण्मुख
१४. पाताल
१५. किन्नर
१६. गरुड
१७. गन्धर्व
१८. यक्षराज
१९. कुबेर
२०. वरुण
२१. भृकुटि
२२. गोमेध
२३. पार्श्व
२४. ब्रह्मशान्ति

परिशिष्ट ७

चोवीश यक्षिणीओ

१. चक्रेश्वरी
२. अजितबला
३. दुरितारि
४. काली
५. महाकाली
६. श्यामा
७. शान्ता
८. भृकुटी
९. सुतारिका
१०. अशोका
११. मानवी
१२. चण्डा
१३. विदिता
१४. अङ्कुशा
१५. कन्दर्पा
१६. निर्वाणी
१७. बला
१८. धारिणी
१९. धरणप्रिया
२०. नरदत्ता
२१. गान्धारी
२२. अम्बिका
२३. पद्मावती
२४. सिद्धायिका

परिशिष्ट ८

सोळ विद्यादेवीओ

१. रोहिणी
२. प्रज्ञप्ति
३. वज्रशृङ्खला
४. वज्राङ्कुशी
५. चक्रेश्वरी
६. पुरुषदत्ता
७. काली
८. महाकाली
९. गौरी
१०. गान्धारी
११. सर्वास्त्रमहाज्वाला
१२. मानवी
१३. वैरोट्या
१४. अच्छुप्ता
१५. मानसी
१६. महामानसी

परिशिष्ट ९

नव निधि

१. नैसर्पिक
२. पाण्डुक
३. पिङ्गल
४. सर्वरत्न
५. महापद्म
६. काल
७. महाकाल
८. माणवक
९. शङ्ख

परिशिष्ट १०

चोसठ सुरेन्द्रो

१. सौधर्म
२. ईशान
३. सनत्कुमार
४. महेन्द्र
५. ब्रह्म
६. लान्तक
७. महाशुक्र
८. सहस्रार
९. प्राणत
१०. अच्युत
११. चमर
१२. बलि
१३. धरण
१४. भूतानन्द
१५. हरिकान्त
१६. हरिषह
१७. वेणुदेव
१८. वेणुदारि
१९. अग्निशिख
२०. अग्निमाणव
२१. वेलम्ब
२२. प्रभञ्जन
२३. घोष
२४. महाघोष
२५. जलकान्त
२६. जलप्रभ
२७. पूर्ण
२८. अवशिष्ट
२९. अमितगति
३०. अमितवाहन
३१. किन्नर
३२. किम्पुरुष
३३. सत्पुरुष
३४. महापुरुष
३५. अतिकाय
३६. महाकाय
३७. गीतरति
३८. गीतयश
३९. पूर्णभद्र
४०. माणिभद्र
४१. भीम
४२. महाभीम
४३. सुरूप
४४. प्रतिरूप
४५. काल
४६. महाकाल
४७. सन्निहित
४८. सामान
४९. धातृ
५०. विधातृ
५१. ऋषि
५२. ऋषिपाल
५३. ईश्वर
५४. महेश्वर
५५. सुवत्स
५६. विशाल
५७. हास्य
५८. हास्यरति
५९. श्वेत
६०. महाश्वेत
६१. पतङ्ग
६२. पतङ्गपति
६३. चन्द्र
६४. सूर्य

परिशिष्ट ११

आठ सिद्धिओ

१. लघिमा
२. वशिता
३. ईशिता
४. प्राकाम्य
५. महिमा
६. अणिमा
७. यत्रकामावसायित्व
८. प्राप्ति



परिचय

श्रीसिंहतिलकसूरिए रचेला आ स्तोत्रनी एक नकल स्व. श्री मोहनलाल भगवानदासना संग्रहमांथी मळी हती, बीजी प्रति पूना, भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटना संग्रह नं. ३२३, A १८८२-८३, त्रीजी नकल बुहारी, शेठ झवेरचंद पन्नाजीना संग्रहनी हती अने चोथी नकल मुनिराज श्री यशोविजयजी महाराजश्री पासेथी मळी हती।

आ चारमांथी त्रण प्रतिओनी हाथनकल हती ज्यारे एक पूना, भां. रि. इ. नी मूळ हाथपोथी हती, एटले पाठ लेवानुं काम मुश्केल हतुं। चारे प्रतिओना केटलाक अशुद्ध श्लोकोने भाषानी दृष्टिए सुधारी अनुवाद, विवरण अने तुलना-श्लोको साथे अहीं प्रगट करेल छे।

श्रीसिंहतिलकसूरिए आ स्तोत्रमां खास करीने यंत्रनी रचना उपर प्रकाश पाड्यो छे। यंत्रनो मूलमंत्र, आराधना अने फलादेश पण जणाव्यां छे।

आ स्तवन प्रसिद्ध 'ऋषिमंडलस्तोत्र' ना आधारे रचायेलुं छे। 'ऋषिमंडलस्तोत्र' मां यंत्र-रचना विशे जे अस्पष्ट निर्देश छे तेनी श्री सिंहतिलकसूरिनी आ रचनाथी स्पष्टता थाय छे। ए दृष्टिए आ स्तोत्र अतीव उपयोगी जणाय छे। वळी ऋषिमंडलस्तोत्रकारे तीर्थंकरोनी प्रभाना महिमा माटे ३१ थी ७६ श्लोकोनो विस्तार आप्यो छे तेने श्री सिंहतिलकसूरिए एक ज श्लोकमां संग्रही लीधो छे। एवो संग्रह केटलेय स्थळे जोवाय छे, ते तेनी तुलना करतां जणाई आवे छे। ए रीते ऋषिमंडलस्तोत्रना ९८ श्लोकोने श्रीसिंहतिलकसूरिए ३६ श्लोकोमां समावी लीधा छे। वळी ह्रींकारमां चोवीश तीर्थंकरोनी स्थापना उपरांत श्रीसिंहतिलकसूरि पंचपरमेष्ठीनी स्थापनानी विशेषता तेमना 'परमेष्ठिविद्यास्तवयन्त्र' अने 'मन्त्रराज-रहस्य' अनुसार आमां समावी दे छे। संक्षेपमां नाद, बिंदु, कला, शीर्षक अने दीर्घकलारूप ह्रींकारना अंशो ऊपर श्रीसिंहतिलकसूरिए सारी स्पष्टता करी छे अने विविध आम्नायोनो निर्देश पोतानी कृतिओमां कर्यो छे। ए कृतिओ प्रस्तुत ग्रंथमां अन्यत्र अमे प्रगट करी छे।

ऋषिमंडलस्तोत्र अनुसार रचायेलां अनेकविध ऋषिमंडलयंत्रो अने ह्रींकारयंत्रोमां एकसरखो मेळ देखातो नथी, ते माटे आ स्तोत्र स्पष्ट खुलासो आपे छे ए ज आ स्तोत्रनी विशेषता छे।

श्रीसिंहतिलकसूरिनी रचनाथी एटलुं स्पष्ट थाय छे के, तेमनी सामे रहेलुं ऋषिमंडलस्तोत्र तेमनी विद्यमानता वि. सं. १३२२ पहेलांनुं तो छे ज। ए ज स्तोत्रना आधारे दिगंबर जैनाचार्य श्रीविद्याभूषण-सूरिए ऋषिमंडलस्तोत्रनी ८५ उपजातिवृत्तमां करेली रचना पण प्रसिद्ध थयेली छे।

आ स्तोत्रनी तुलना माटे टिप्पणीमां अमे 'ऋषिमंडलस्तोत्र'ना सरखा भाववाळा श्लोको नोंध्या छे ते वाचकोने उपयोगी थई पडशे।



[५३-८]

कलिकालसर्वज्ञ-श्रीमद्-हेमचन्द्राचार्यरचित-
'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित'गतसंदर्भः

[पञ्च-नमस्कार-स्तोत्रम्]

(अनुष्टुप्-वृत्तम्)

ऋषभादींस्तीर्थकरान्, नमस्याम्यखिलानपि ।
भरतैरावत-विदेहार्ऽर्हतोऽपि नमाम्यहम् ॥ १ ॥

तीर्थकृद्भ्यो नमस्कारो, देहभाजां भवच्छिदे ।
भवति क्रियमाणः स बोधिलाभाय चोच्चकैः ॥ २ ॥

सिद्धेभ्यश्च नमस्कारं, भगवद्भ्यः करोम्यहम् ।
कर्मौघोऽदाहि यैर्ध्यानाऽग्निना भव-सहस्रजः ॥ ३ ॥

आचार्येभ्यः पञ्चविधाऽऽचारेभ्यश्च नमो नमः ।
यैर्धार्यते प्रवचनं, भवच्छेदे सदोद्यतैः ॥ ४ ॥

श्रुतं बिभ्रति ये सर्वं, शिष्येभ्यो व्याहरन्ति च ।
नमस्तेभ्यो महात्मभ्य,—उपाध्यायेभ्य उच्चकैः ॥ ५ ॥

अनुवाद

ऋषभदेव वगेरे सर्व तीर्थंकरोने हुं नमन करु छु। भरत, ऐरवत अने महाविदेह क्षेत्रमां रहेला 'अर्हंतो' (तीर्थंकरो) ने पण हुं नमु छु ॥ १ ॥

'तीर्थंकरो'ने करातो नमस्कार प्राणीओना संसार (रूपी बंधन) ने कापनारो थाय छे अने सम्यक्त्वनी प्राप्ति करावनारो थाय छे ॥ २ ॥

जेओए ध्यान-अग्निवडे हजारो भवमां उत्पन्न थयेल कर्मसमूहने बाळी नाख्यो छे, ते 'सिद्ध भगवंतो'ने हुं नमस्कार करु छुं ॥ ३ ॥

भव (रूपी बंधन) ने छेदवामां सदा उद्यमशील एवा जेओ प्रवचनने धारण करे छे, ते पांच प्रकारना आचारवाळा 'आचार्यो' ने वारंवार नमस्कार हो ॥ ४ ॥

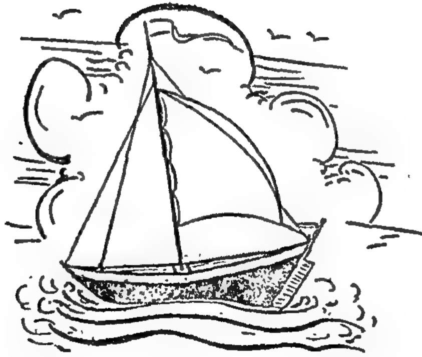
जेओ समस्त श्रुतने धारण करे छे अने शिष्योने (तेनो) उपदेश आपे छे, एवा ते 'उपाध्याय भगवंतो'ने वारंवार नमस्कार हो ॥ ५ ॥

शीलव्रत-सनाथेभ्यः, साधुभ्यश्च नमो नमः ।
भव-लक्ष-सन्निबद्धं, पापं निर्णाशयन्ति ये ॥ ६ ॥

जेओ लाखो भवोनी अंदर बांधेला पापनो समूल नाश करनारा छे अने शील तथा व्रतथी युक्त छे, एवा 'साधुओ' ने वारंवार नमस्कार हो ॥ ६ ॥

परिचय 5

श्रीहेमचन्द्राचार्ये महाराजा कुमारपाळनी विनतिथी 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' नामनो बृहत्काय ग्रंथ संस्कृत भाषामां पद्यमां रच्यो छे। तेमां पंचपरमेष्ठी विशे छ श्लोको स्तोत्ररूपे आपेला छे तेने अहीं अनुवाद साथे प्रकट कर्या छे।



[५४-१]

कलिकालसर्वज्ञ-श्रीमद्-हेमचन्द्राचार्यरचित-
श्रीवीतरागस्तोत्रमङ्गलाचरणम्

यः परात्मा परंज्योतिः, परमः परमेष्ठिनाम् ।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तादामनन्ति यम् ॥ १ ॥
सर्वे येनोदमूल्यन्त, समूलाः क्लेशपादपाः ।
मूर्ध्ना यस्मै नमस्यन्ति, सुरासुरनरेश्वराः ॥ २ ॥
प्रावर्त्तन्त यतो विद्याः, पुरुषार्थप्रसाधिकाः ।
यस्य ज्ञानं भवद्-भावि-भूतभावावभासकृत् ॥ ३ ॥
यस्मिन् विज्ञानमानन्दं, ब्रह्म चैकात्मतां गतम् ।
सः श्रद्धेयः स च ध्येयः, प्रपद्ये शरणं च तम् ॥ ४ ॥
तेन स्यां नाथवाँस्तस्मै, स्पृहयेयं समाहितः ।
ततः कृतार्थो भूयासं, भवेयं तस्य किङ्करः ॥ ५ ॥
तत्र स्तोत्रेण कुर्यां च, पवित्रां स्वां सरस्वतीम् ।
इदं हि भवकान्तारे, जन्मिनां जन्मनः फलम् ॥ ६ ॥

अनुवाद

जेमनो आत्मा सर्व संसारी जीवोथी श्रेष्ठ छे, जेओ केवलज्ञानमय छे, जेओ पांच परमेष्ठिओमां प्रधान छे, अने जेमने पंडितजनो अज्ञानरूप अंधकारथी पर तथा सूर्य समान प्रकाशमान (अथवा अज्ञानान्धकारने दूर करवा माटे सूर्य समान प्रकाशमान) माने छे ॥ १ ॥

तथा, जेओए (रागद्वेष आदि) क्लेशरूप सर्व वृक्षोने (महामोहरूप) मूलथी उखेडी नाख्या छे अने जेमने सुरेन्द्रो, असुरेन्द्रो, तथा नरेन्द्रो (चक्रवर्तिओ) पण मस्तक नमावीने नमस्कार करे छे ॥ २ ॥

तथा जेमनाथी धर्मादि पुरुषार्थोने प्राप्त करावनारी चौद विद्याओ आ विश्वमां प्रवर्ती अने जेमनुं ज्ञान भूत, भविष्य अने वर्तमानकालना सर्व पदार्थोनुं प्रकाशक छे ॥ ३ ॥

तथा, जेमना आत्मामां विज्ञान (केवलज्ञान), आनंद (अव्याबाध सुख) अने ब्रह्म (परमपद) ए त्रणे एकरूपताने पाम्यां छे ते श्री अरिहंत परमात्मा (ज) श्रद्धा करवा योग्य छे, ध्यान करवा योग्य छे अने ते परमात्माना (ज) शरणने हुं स्वीकारुं छुं ॥ ४ ॥

ते परमात्माथी (ज) हुं सनाथ छुं, ते परमात्माने ज हुं अनन्यहृदयथी चाहुं छुं, तेमनाथी ज हुं कृतकृत्य छुं अने तेमनो ज हुं सेवक छुं ॥ ५ ॥

ते परमात्माना गुणानुवादथी हुं मारी वाणीने पवित्र करुं; कारण के आ संसाररूप अटवीमां प्राणीओना जन्मनुं ए (भगवत्स्तवन) ज फळ छे. ॥ ६ ॥

श्रीसोमोदयगणिकृतावचूर्णिः

यः परात्मेति॰ परश्चासावात्मा च परात्मा सर्वसंसारिजीवेभ्यः प्रकृष्टस्वरूपः, पुनः किं विशिष्टः ? परंज्योतिः। परं सकलकर्ममलकालुष्यरहितत्वेन केवलं ज्योतिर्ज्ञानमयं यस्य स तथा, परमिति केवलार्थेऽव्ययम्। परमे चिदानन्दरूपे पदे तिष्ठन्तीति परमेष्ठिनोऽर्हदादयः पञ्च, तेषां परमः प्रधानभूतः (सिद्धः)। परमत्वं चास्य (सिद्धस्य) मुक्तावस्थामधिकृत्य परमेष्ठिनामिति षष्ठी "सप्तमी चाविभागे निर्धारणे" (२-२-१०९) इति सूत्रेण। तथा यं वीतरागं तमसः परस्तादामनन्ति ध्यायन्ति तत्स्वरूपोपलब्धये मनीषिणः। क्व? परस्तात् परस्मिन् पारे, कस्य ? तमसोऽज्ञानरूपस्य, किम्भूतं यम्? आदित्यवर्णमादित्यस्येव वर्ण उद्योतो यस्य तं तथा, भानोरुपमानमन्यस्य तथाविधस्य वस्तुनोऽत्राभावात्, परस्तादिति पठिततमसोऽज्ञानरूपान्धकारस्याग्रे आदित्यवर्णं सूर्याभं तद्विनाशकमित्यर्थः ॥ १ ॥

सर्वे॰ येन सर्वे समस्ताः क्लेशा रागद्वेषादयस्त एव पादपा वृक्षा नरकादिकटुफलदायित्वेन समूला मिथ्यात्वमूलसहिता उदमूल्यन्त उन्मूलिताः, यस्मै मूर्ध्ना सुरासुरनरेश्वरा नमस्यन्ति-नमस्कुर्वन्ति ॥ २ ॥

प्राव॰ यतो यत्सकाशाद् विद्याः शब्दविद्यादिकाश्चतुर्दश, धर्मार्थकामादिपुरुषार्थानां च प्रसाधिका विधायिकाः प्रावर्त्तन्त अभूवन्, यद्वा द्वादशाङ्गीगता विद्याः सुवर्णसिद्ध्यादिप्ररूपिकाः। यस्य ज्ञानं भवद्भाविभूतभावावभासकृद्—अतीतानागतवर्त्तमानवस्तुप्रकाशकमस्तीति गम्यम् ॥ ३ ॥

यस्मिन्॰ यस्मिन् विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं केवलज्ञानमानन्दमकृत्रिमसुखं ब्रह्म च परमपदं त्रीण्यप्येकात्मतामैक्यं गतानि स एव वीतरागजीवः स एव ज्ञानं ज्ञानैकरूपत्वात् तस्य, स एव च सुखं दर्शन-स्पर्शनादिबाह्यस्य कस्यापि तत्राभावात्, स एव परमपदं अमुक्तिरूपस्याभावात्। अथ तच्छब्दं दर्शयन्त आहुः, सः श्रद्धेयः स पूर्वोक्तपरात्मादिविशेषणविशिष्टः श्रद्धेयः, स्वहृदयरुचिविषयः कार्यः, च-पुनः स ध्येयो रूपातीततया ध्यातव्यस्तं तमसः परस्तादाम्नातं शरणं प्रपद्ये स्वीकरोमि ॥ ४ ॥

तेन॰ तेनोन्मूलितक्लेशपादपेन नाथवान् सनाथोऽहं स्यां भवामि, तस्मै सुरासुरनमस्कृतायाऽहं समाहितस्तदेकतानमनाः स्पृहयेयं वाञ्छामि, ततः प्रकटितपुरुषार्थसाधकविद्यासमुदायादहं कृतार्थः कृतकृत्यः प्राप्ताभीष्टकार्यो वा भूयासं भवामि भविष्यामि इत्यर्थः। तस्य त्रिकालज्ञानवतः किङ्करो भवेयमस्मि ॥ ५ ॥

तत्र॰ तत्र विज्ञानानन्दब्रह्मरूपे स्वां सरस्वतीं वाणीं, स्तोत्रेण कृत्वा पवित्रां कुर्यां—करोमि। को हेतुः ? हि-यस्मात् कारणाद् भवकान्तारे संसारारण्ये जन्मिनां जीवानां, जन्मनः पादपरूपस्य इदमेव वीतरागस्तवनं फलम्, नान्यत् ॥ ६ ॥



श्रीप्रभानन्दसूरिकृतविवरणम्

अत्राद्यसार्द्धश्लोकत्रयस्य पदानां प्रथमादिसप्तम्यन्तविभक्तिप्रथमवचनान्तानामुत्तरश्लोकद्वयस्य तदन्तैरेव पदैर्यथाक्रमं कर्तृकर्मविवक्षया योजनं कार्यम्। तथाहि—परमात्मेति विशेष्यं पदम्, अतो यः किल परात्मा परंज्योतिः स श्रद्धेयः। यश्च परमेष्ठिनां परमः स ध्येयः, यं चादित्यवर्णं तमसः परस्तादामनन्ति तं शरणं प्रपद्ये। येन च समूलाः सकलक्लेशापादपाः समुदमूल्यन्त तेन नाथवान् स्याम्। यस्मै च सुरासुरनरेश्वराः सरभसं नमस्यन्ति तस्मै समाहितः स्पृहयेयम्। यतश्च पुरुषार्थप्रसाधिका विद्याः प्रावर्त्तन्त ततः कृतार्थो भूयासम्। यस्य च भवद्भाविभूतभावावभासकृद् ज्ञानं तस्य किङ्करो भवेयम्। यस्मिंश्च विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चैकात्मतामुपगतं तस्मिन् स्तोत्रेण स्वां सरस्वतीं पवित्रां कुर्यामिति पदानां परस्परसम्बन्धः।

साम्प्रतमेतदेव प्रतिपदं व्याख्यायते। तत्र परश्चासावात्मा च परात्मा परत्वं चास्य देहान्मान्तरात्मापेक्षम्, यतः कैश्चिदुपयोगलक्षणमनादिनिधनं अपौद्गलिकत्वेन रूपातीतं तथाविधसामग्रीसाकल्यात् शुभाशुभरूपस्य कर्मणः कर्त्तारमुदयप्राप्तस्य तस्यैव च भोक्तारमत एवैतल्लक्षणविलक्षणाद्देहाद्व्यर्थान्तरभूतमविसंवादिप्रमाणप्रतिष्ठितमप्यात्मतत्त्वं महामोहोपहतमतित्वेनामन्यमानैः पिष्टादिद्रव्ययोगान्मदशक्तिमिवाचेतनमहद्भूतसम्पर्काच्चेतनत्वमुद्भाव्य देहस्यैवात्मत्वमुपकल्प्यतेऽतः स देहात्मा। यथा देहातिरिक्तस्यात्मनः सत्प्रमाणप्रतिष्ठितत्वं तथा पुरस्तादष्टमप्रकाशे प्रकाशयिष्यते।

अन्तरात्मा च ज्ञानावरणादिकर्मनिर्मथितमाहात्म्यः शरीरी संसारिजीवः। एतयोश्च वक्ष्यमाणविशेषणगणासहत्वेन प्रकृतानुपयोगित्वमतः परशब्दोपादानम्। परात्मा च विगलितसकलकर्म्ममलपटलः सम्यक्त्वसिद्धज्ञानदर्शनाऽऽनन्दवीर्यलक्षणानन्तचतुष्टयः शिवमचलमपुनर्भवं परमपदमध्यासीनो ज्ञानदर्शनोपयुक्तः केवलात्मैव साम्प्रतं स एव विशिष्यते। किं विशिष्टः परमात्मेत्याह परंज्योतिः, अप्रतिपातित्वेन लोकालोकप्रकाशकत्वेन च परं सर्वोत्कृष्टं चित्स्वरूपं ज्योतिर्यस्येति ज्योतिर्ज्योतिष्मतोरभेदात् स एव परं ज्योतिः। परत्वं चास्य मतिश्रुतावधिमनःपर्यायलक्षणचिद्दशाचतुष्टयापेक्षं प्रतिपातित्वेनाल्पविषयत्वेन च मत्यादीनामनीदृशत्वात्। यदि वा रवीन्दुविद्युन्मणिप्रमुखे निखिलेऽपि ज्योतिर्वर्गे यः परमुत्कृष्टं ज्योतिरिति स परंज्योतिः। यश्चैवंविधः परात्मा स श्रद्धेयः श्रद्धाविषयमवतारणीय इत्युत्तरपदेन योगः। किमुक्तं भवति? किल यद्यप्यघातिकर्मणामर्हदादीनामध्यक्षे तस्मिंस्तत् प्रत्ययेनैव श्रद्धा विधेयैव। न चानुपरतपरानुग्रहकृतां क्षीणरागद्वेषमोहानामर्हदादीनां वितथवादित्वमतः किमश्रद्धेयं परमात्मनः?। पुनः परमरहस्यभूतं परमात्मानमेव विशिनष्टि। परमः परमेष्ठिनाम्। परमे चिदानन्दरूपे ब्रह्मणि तिष्ठन्तीति परमेष्ठिनस्ते चार्हदाचार्योपाध्यायसाधव एव, तेषां मध्ये परमः प्रकृष्टः सिद्धरूपो यः परमेष्ठी, अर्हदादिपरमेष्ठिचतुष्टयस्य चामुक्तावस्थामधिकृत्य सिद्धस्य पञ्चपरमेष्ठिनः परमत्वम्। मुक्तास्तु सर्वेऽप्येकरूपा एव। स चैवंविधः परमात्मा भगवांस्तदेकतानमनोभिर्ध्येयस्तत्स्वरूपप्राप्तये सततमनुस्मरणीय इति उत्तरपदेन सम्बन्धः।

प्रथमान्तं पदमभिधाय द्वितीयान्तमाह। यं च परमात्मानमणिमाद्यष्टमहासिद्धिप्रसिद्धिमहसो मुनयोऽप्यामनन्ति—तत्स्वरूपोपलब्धये संततमभ्यस्यन्ति। किम्भूतम्? तमसः परस्ताद् वर्तमानम्, तमांसि निकाचितानि कर्माणि विमलकेवलाऽऽलोकेन च तेषां पारे प्रतिष्ठितं सत्त्व-रजस्तमोगुणत्रयातीतमित्यर्थः। तमहमेवंरूपं परमात्मानं दुर्वारान्तरापरित्याजितात्मशक्तिः शरणं प्रपद्ये इत्युत्तरेण योगः। पुनः किं विशिष्टम्? आदित्यवर्णं, आदित्यस्य प्रभापतेरिव वर्णः शोभा यस्य स तथा तम्। अत्राह परः—'ननु परिमितक्षेत्रमात्रप्रकाशनमहसा मिहिरेण लोकालोकप्रकाशनप्रवरपरमज्योतीरूपस्य परमात्मनः साम्यमनुपपन्नम्। तथा चागमः—

"चंदाइच्चगहाणं, पहा पयासेइ परिमियं खेत्तं ।
केवलियनाणलम्भो, लोयालोयं पयासेइ" ॥ १ ॥

इति'। आचार्यः—साधु, भोः सहृदय ? हृदयङ्गममभिदधासि, केवलं सकलेऽपि कलावत्प्रमुखे तेजस्विवर्गे विगणयद्भिरस्माभिर्मानोरेव किमपि तदुपमानलवलाभसम्भावनास्वादत्वमुपलब्धमित्यादित्यवर्णमित्यभिहितं, तत्त्वतस्तु सुमेरुपरमाण्वोरिव महदन्तरं परमात्मद्वादशात्ममहसोरिति। आदित्योऽपि निरस्ततमस्त्वेन तमसः परस्ताद् भवति ।

तृतीयान्तं पदमाह । येन च भगवता परमात्मना क्लेशपादपाः सर्वेऽप्युदमूल्यन्त । "अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ।" तत्र "अनित्याशुचिदुःखानात्मसु मिथ्याज्ञानमविद्या, दुर्धराहंकारवशात् सर्वत्राऽस्मीति भावोऽस्मिता, मनोज्ञेषु शब्दादिष्वात्मनो गाढाभिष्वङ्गो रागः, तेष्वेवामनोज्ञेषु भृशमप्रीतिविशेषो द्वेषः, अतत्त्वेऽपीदमित्थमेवेत्येकान्ताग्रहग्रहिलताऽभिनिवेशः"। उपलक्षणं चैतदन्यासामपि घातिकर्मोत्तरप्रकृतीनाम्। एते च संसृत्यामात्मनोऽनादिसम्बन्धवशाद् बद्धमूलाः, प्रदर्शिततत्तद्विकारप्ररोहसंहतयः, स्फुरदाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकवेदनोदयप्रसूनसंततयः, प्रकाशितामुष्मिकदुर्गदुर्गतिदुःखफलपटलाः पादपा इव पादपाः। ते च सङ्गत्यागादाकेवलोत्पत्ति त्रिजगदप्रतिमल्लहस्तिमल्लेन येन भगवता दुस्तपतपोऽन्दोलनेन (?) चलाचलतामापाद्य शुक्लध्यानसमुद्दण्डशुण्डाम्रेडनेन समूलाः सहेलमुन्मूलितास्तेन त्रिजगन्नाथेनाहमपि नाथवान् स्यां भवेयमित्युत्तरेण योगः। येनासौ मामलब्धानां ज्ञानादिगुणानां लम्भनेन तेषामेव च लब्धानां परिपालनात्तानुगृह्णाति ।

चतुर्थ्यन्तं पदमाह—मूर्ध्ना यस्मै नमस्यन्ति सुरासुरनरेश्वराः। यस्मै समूलोन्मूलितक्लेशपादपाय भगवते सुरासुरनरेश्वराः। देवदानवमानवपतयः सकलक्लेशजालोच्छित्तिनिमित्तं मूर्ध्ना उत्तमाङ्गेन सरभसं नमस्यन्ति। तस्मै त्रिभुवनसनातनगुरवे समाहितस्तदेकतानमानसोऽहमपि स्पृहयेयं, प्रणामादिनिमित्तं स्पृहामावहामीत्युत्तरेण सम्बन्धः। इदमुक्तं भवति। किल यद्यपि सुरासुरेश्वरादिवत् प्रत्यक्षार्हत्प्रमाणादिसामग्री दुःषमा-समयसमुद्भूतस्य ममासंभविनी तथापि "मनोरथानामगतिर्न विद्यते" इति न्यायात् स्पृहामात्रमपि तावद् धारयामि येन सदभ्यस्ततया भवान्तरेऽपि संस्कारोऽयमनुवर्तत इति ।

पञ्चम्यन्तं पदमाह—प्रावर्त्तन्त यतो विद्याः पुरुषार्थप्रसाधिकाः। यतो यस्मात् सर्वविदः परमपुरुषात् पुरुषार्थानां धर्मार्थ-काम-मोक्षलक्षणानां प्रसाधिकास्तदुपायोपदर्शिन्यो विद्याः शब्दविद्यादिकाः प्रावर्त्तन्त प्रादुरासन्। यतो द्वादशाङ्गीमूलनीवीमुत्पादादित्रिपदीं तदुचितेषु भगवान् स्वयमुदीरयति। न च द्वादशाङ्गीव्यतिरिक्तमन्यदपि विद्याङ्गमस्तीत्यतः समस्तविद्यानां भगवानेव प्रभवः। अतएव ततस्तस्मात् परमपुरुषानुध्यानादहमपि पुमर्थोपलब्ध्या कृतार्थः कृतकृत्यो भूयासमित्युत्तरेण योगः। पुरुषार्थोपायोपलब्ध्या च कृतकृत्यता समीचीनैवेति ।

30

षष्ठ्यन्तं पदमाह—यस्य ज्ञानं भवद्भाविभूतभावावभासकृत्। यस्य भगवतः परमात्मनो घातिकर्मणामात्यन्तिकक्षयादुत्पन्नं ज्ञानं देशकालस्वभावविप्रकर्षैरनन्तरितमत एव भवद्भाविभूतभावावभासकृद् वर्त्तमानानागतातीतपदार्थसार्थप्रकटनपटिष्ठम्। तस्यैवम्भूतस्याहं किङ्करो भवेयमित्युत्तरेण योगः। अत्रायमाशयः—किलास्मिन् जगति यस्य विसंवादित्वेन नानैकान्तिकोऽष्टाङ्गनिमित्तमात्रावभासनपरो ज्ञानांशः स्यात् सोऽपि तदर्थिभिः प्रेष्यैरिव प्रतिक्षणमुपास्यते। यस्य च भगवतः प्रागुपवर्णितस्वरूपं ज्ञानं तस्य किङ्करत्वमनुत्तरसुरा अपि कुर्युः। किमङ्ग ! मादृशोऽङ्गभागिति ।

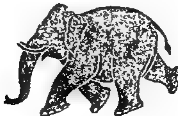
सप्तम्यन्तं पदमाह—यस्मिन् विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चैकाङ्ग[त्म]तां गतम्। यस्मिंश्च भगवति परमपरमेष्ठिनि विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चैकात्मतां गतम्। तत्र मत्यादिज्ञानेभ्यः क्षायिकत्वेनाप्रतिपातित्वेना-

नन्तद्रव्यपर्यायगोचरत्वेन च विशिष्टं केवलालोकलक्षणं ज्ञानं विज्ञानम्। आनन्दं चात्मनः कदाप्यलब्धपूर्वस्वरूपलाभसमुद्भवमितरकारणकलापनिरपेक्षमनुपाधि मधुरमक्षयमात्यन्तिकं सुखमेव। ब्रह्म च परमं पदम्। यदा च भवोपग्राहिकर्मपारवश्याद्यापि भवस्थः केवली भवति तदास्मिन् भगवति केवलिनि विज्ञानमानन्दं च वर्तते। अयं च परमं पदं गमिष्यतीत्यात्मविज्ञानानन्दब्रह्मणां मिथः पृथग्भावः स्यादेव। शैलेश्यनन्तरं च सकलकर्मांशप्रक्षयादक्षयं पदमुपेयुष्यस्मिन् विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चैकात्मतां याति स एव परमात्मा, स एव विज्ञानं, स एवानन्दः, स एव परमं ब्रह्मेत्यभिन्नभावतां भजते। अतस्तत्र तस्मिन् पूर्वोपवर्णितस्वरूपे परमात्मनि स्तोत्रेण यथार्थवादेनाहं स्वामात्मीयां सरस्वतीं वाणीं पवित्रां पावनीं कुर्यां—विदध्यामित्युत्तरेण सम्बन्धः। ननु किमस्याः प्रथमं किमप्यपूतत्वमस्तीत्युच्यते। स्वकर्मपरिणामेनाभ्यावृत्त्या भवे संभ्रम्यमाणानां प्रबलज्ञानावरणोदयाद् विशिष्टचित्तचैतन्यशून्यानामसुमतामसुलभैव कवित्ववक्तृत्वसरसा सरस्वती, यदा च तथाभव्यत्वैश्चित्र्यात् संघटितापि भयाभिनन्दिनां सुरनरादीनामसद्भूतगुणोद्भावनेनात्मानं मलिनयति, तदा परमात्मप्रभृतिस्तुत्यवर्गस्तुतिप्रयोगमन्तरेण किमन्यद्यमर्पणमस्यास्ततः तत्र स्तोत्रेणेत्युक्तम्। किञ्च अस्मिन् भयकान्तारे संसारारण्ये जन्मिनां सत्क्लेशाद्येकाद्दशाङ्गीसहृतस्य जन्मनोऽवतारस्यापीदं सद्भूतं वस्तुतत्त्वोद्भावनमेव फलम्।

परिचय

कलिकालसर्वज्ञ भगवान् श्रीहेमचन्द्राचार्यना श्री 'वीतरागस्तोत्र' थी कोण विद्वान् अपरिचित हशे ' महाराजा कुमारपालनी दैनिक प्रार्थना माटे रचवामां आवेल ए ग्रंथरत्नतुं आजे पण अनेक महात्माओ भावपूर्वक प्रतिदिन पारायण करे छे। रोज सवारमां आ ग्रंथनु संपूर्ण पारायण न थाय त्यांसुधी मोढामां थंड पण न नाखवानो श्रीकुमारपाल महाराजानो दृढ अभिग्रह हतो। आ ग्रंथ साहित्य, भक्ति वगेरे सर्व दृष्टिए परिपूर्ण छे।

श्री वीतरागस्तोत्रनी एक प्रत श्रीसोमोदयगणिकृत अवचूर्णि अने श्रीप्रभानन्दसूरिकृत विवरण साथे श्री केसरबाई ज्ञानमंदिर, पाटण, तरफथी वि. सं. १९९८ मा प्रकाशित थई छे। तेमांथी प्रस्तुत संदर्भ तारवीने अहीं रजू कर्यो छे।



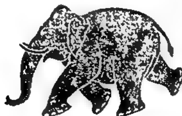


नन्तद्रव्यपर्यायगोचरत्वेन च विशिष्टं केवलालोकलक्षणं ज्ञानं विज्ञानम्। आनन्दं चात्मनः कदाप्यलब्धपूर्वस्वरूपलाभसमुद्भवमितरकारणकलापनिरपेक्षमनुपाधि मधुरमक्षयमात्यन्तिकं सुखमेव। ब्रह्म च परमं पदम्। यदा च भवोपग्राहिकर्मचारत्वस्याद्यापि भवस्थः केवली भवति तदास्मिन् भगवति केवलिनि विज्ञानमानन्दं च वर्त्तते। अयं च परमं पदं गमिष्यतीत्यात्मविज्ञानानन्दब्रह्मणां मिथः पृथग्भावः स्यादेव। शैलेश्यनन्तरं च सकलकर्मांशप्रक्षयादक्षयं पदमुपेयुष्यस्मिन् विज्ञानमानन्दं ब्रह्म चैकात्मतां याति स एव परमात्मा, स एव विज्ञानं, स एवानन्दः, एव परमं ब्रह्मेत्यभिन्नभावतां भजते। अतस्तत्र तस्मिन् पूर्वोपवर्णितस्वरूपे परमात्मनि स्तोत्रेण यथार्थवादेनाहं स्वामात्मीयां सरस्वतीं वाणीं पवित्रां पावनीं कुर्यां—विदध्यामित्युत्तरेण सम्बन्धः। ननु किमस्याः प्रथमं किमप्यपूतत्वमस्तीत्युच्यते। स्वकर्मपरिणामेनाभ्यावृत्त्या भवे परिभ्रम्यमाणानां प्रबलज्ञानावरणोदयाद् विशिष्टचित्तचैतन्यशून्यानामसुमतामसुलभैव कवित्ववक्तृत्वसरसा सरस्वती, यदा च तथाभव्यत्ववैचित्र्यात् संघटितापि भवाभिनन्दिनां सुरनरादीनामसद्भूतगुणोद्भावनेनात्मानं मलिनयति, तदा परमात्मप्रभृतिस्तुत्यवर्गस्तुतिप्रयोगमन्तरेण किमन्यद् घमर्षणमस्यास्ततः तत्र स्तोत्रेणेत्युक्तम्। किञ्च अस्मिन् भयकान्तारे संसारारण्ये जन्मिनां सारक्षेत्रादेकादशाङ्गीसङ्ग्रहस्य अप्यनोऽपतारस्यापीदं सद्भूतं वस्तुतत्त्वोद्भावनमेव फलम्।

परिचय

कलिकालसर्वज्ञ भगवान् श्रीहेमचन्द्राचार्यना श्री 'वीतरागस्तोत्र' थी कोण विद्वान् अपरिचित हशे? महाराजा कुमारपालनी दैनिक प्रार्थना माटे रचायेलां आ प्रेरणादायी ग्रंथरत्नने आजे पण अनेक महात्माओ भावपूर्वक प्रतिदिन पारायण करे छे। रोज सवारमां आ ग्रन्थनुं संपूर्ण पारायण न थाय त्यां सुधी मोढामां कांई पण न नाखवानो श्रीकुमारपाल महाराजानो दृढ अभिग्रह हतो। आ ग्रंथ साहित्य, भक्ति वगेरे सर्व दृष्टिए परिपूर्ण छे।

श्री वीतरागस्तोत्रनी एक प्रत श्रीसोमोदयगणिकृत अवचूर्णि अने श्रीप्रभानन्दसूरिकृत विवरण साथे श्री केसरबाई ज्ञानमंदिर, पाटण, तरफथी वि. सं. १९९८ मां प्रकाशित थई छे। तेमांथी प्रस्तुत संदर्भ तारवीने अहीं रजू कर्यो छे।



भट्टारक-श्रीसकलकीर्तिरचित-'तत्त्वार्थसारदीपक'-महाग्रन्थस्य संदर्भः

[पदस्थ—भावना प्रकरणम्]

अथ पिण्डस्थमाम्नाय, वक्ष्ये पदाक्षरोद्भवम् ।
ध्यानं पदस्थमत्यन्तस्वाधीनं मुक्तये सताम् ॥ ३३ ॥
पदान्यादाय साराणि, योगिभिर्यद् विधीयते ।
सिद्धान्तबीजभूतानि, ध्यानं पदस्थमेव तत् ॥ ३४ ॥
ध्यायेदनादिसिद्धान्तविख्यातां वर्णमातृकाम् ।
आदिनाथमुखोत्पन्नां, विश्वागमविधायिनीम् ॥ ३५ ॥
पत्रषोडशसंयुक्ते, कमले नाभिमण्डले ।
प्रतिपत्रं भ्रमन्तीं च, स्मरेद् द्व्यष्टस्त(स्व)रावलीम् ॥ ३६ ॥
'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ॥'

अनुवाद *

पिण्डस्थ ध्यान विषे जणाव्या पछी—हवे हुं पद अने अक्षरोथी (अथवा पदना अक्षरोथी) उत्पन्न थता एवा 'पदस्थ ध्यान' विषे कहीश। ए (पदस्थ ध्यान) अत्यंत स्वाधीन छे तेथी ते सज्जनोने मुक्ति माटे (सुसाध्य) थाय छे ॥ ३३ ॥

सिद्धान्तना बीजभूत सार पदोने अवलम्बीने योगीओ जे ध्यान करे छे, ते ज 'पदस्थ ध्यान' कहेवाय छे ॥ ३४ ॥

वर्णमालानुं ध्यान

श्री आदिनाथ भगवंतना मुखथी निकळेली, सघळा आगमोनी रचना करनारी अने अनादि-सिद्धान्तमां विख्यात एवी वर्णमातृका (सिद्धमातृका)नुं ध्यान करवुं जोईए ॥ ३५ ॥

नाभिमंडळमां सोळ पत्रवाळा कमळना प्रत्येक पत्र उपर अनुक्रमे फरती सोळ स्वरोनी श्रेणिनुं स्मरण करवुं ॥ ३६ ॥

ते सोळ स्वरो आ प्रकारे छे—'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ।'

---

* ग्रन्थकारे पदस्थ-ध्यान विषे 'ज्ञानार्णव'नो आधार लीधो होय एम लागे छे, कारण के केटलाये श्लोकोनुं थोडा फेरफार साथे आमां निरूपण छे। तेनी सरखामणी माटे 'ज्ञानार्णव'ना प्रकरण ३८ पृ. ३८७ थी श्लोकोनो अंक अहीं नोंधीए छीए।

१. ज्ञा. श्लो. १ । २. ज्ञा. श्लो. २ । ३. ज्ञा. श्लो. ३ ।

चतुर्विंशतिपत्राढ्ये, कञ्जे सत्कर्णिके हृदि ।
पञ्चविंशान् ककारादि-मान्तान् ध्यायेत् स व्यञ्जनान् ॥ ३७ ॥
ततो वदनराजीवे, हैमे पत्राष्टभूषिते ।
चिन्तयेच्छेषवर्णाष्टौ, यकारादीन् प्रदक्षिणम् ॥ ३८ ॥
इमां प्रसिद्धसिद्धान्तप्रसिद्धां वर्णमातृकाम् ।
ध्यायेद् यः स श्रुताम्भोधेः, पारं गच्छेच्च तत्फलात् ॥ ३९ ॥
अथ मन्त्रं गणाधीशं, विश्वतत्त्वैकनायकम् ।
आदिमध्यान्तसद्भेदैः, स्वरव्यञ्जनसंभवम् ॥ ४० ॥
ऊर्ध्वाधोरेफसंयुक्तं, सकलं बिन्दुभूषितम् ।
एकाग्रमनसा ज्ञानिन् ! मन्त्रराजमिमं स्मर ॥ ४१ ॥

हृदयमां सुंदर कर्णिका सहित चोवीश पत्रवाळा कमळमां 'क' थी 'म' सुधीना पचीश व्यञ्जनोनुं तेणे (योगीए) ध्यान करवुं[1] ॥ ३७ ॥

ए पछी मुखमां सुवर्णकमळना आठ पत्रोमां प्रदक्षिणारूपे (क्रमशः फरता) बाकी रहेला 'य' आदि (य र ल व श ष स ह) आठ वर्णोनुं चिंतन करवुं[2] ॥ ३८ ॥

फलश्रुति

आ प्रकारनी (उपर जणावेली) प्रसिद्ध सिद्धांतोमां विख्यात एवी वर्णमातृकानुं जे पुरुष ध्यान करे ते तेना फलस्वरूपे श्रुतसागरना पारने पामे[3] ॥ ३९ ॥

मन्त्राधिराज ह्रूँ

हवे गणाधीश मन्त्र (ह्रूँ विशे जणावे छे के—) जे सर्व तत्त्वोनो मुख्य नायक छे, जे आदि (अ), मध्य (र्) अने अंत (ह्)—ए रीते धना भेदो वडे स्वर अने व्यञ्जनथी उत्पन्न थाय छे[4], जे उपर अने नीचे रेफथी युक्त छे, जे कलाथी सहित छे अने जे बिन्दुथी शोभे छे; ते आ मन्त्राज[5] (ह्रूँ) नुं हे ज्ञानी ! तुं एकाग्र मनथी स्मरण कर[6] ॥ ४०–४१ ॥

१. शा. श्लो. ४ । २. शा. श्लो. ५ । ३. शा. श्लो. ६ । ४. शा. श्लो. ७ ।

५. 'ब्रह्मविद्याविधि' नामक अप्रकट जैन ग्रंथमां आ 'ह्रूँ'ने मन्त्रराज तरीके ओळखावतां जणाव्युं छे के—

ऊर्ध्वाधोरेफमाक्रान्तं, सकलं बिन्दुलाञ्छितम् ।
अनाहतयुतं तत्त्वं मन्त्रराजं प्रचक्षते ॥ ह्रूँ ॥
—ह. लि. पत्र ९

६. शा. श्लो. ८ ।

देवासु(सु)रनतं मिथ्याबोधध्वान्तभास्करम् ।
शुद्धं मूर्द्धस्थचन्द्रांशुकलापव्याप्तदिङ्मुखम् ॥ ४२ ॥
हेमाब्जकर्णिकासीनं निर्मलं दिक्षु खाङ्गणे ।
संचरन्तं च चन्द्राभं, जिनेन्द्रतुल्यमूर्जितम् ॥ ४३ ॥
ब्रह्मा कश्चिद्धरिः कश्चिद्, बुद्धः कश्चिन्महेश्वरः ।
शिवः सर्वस्तथेशानो; वर्णोऽयं कीर्तितो महान् ॥ ४४ ॥
मन्त्रमूर्तिं किलादाय, देवदेवो जिनः स्वयम् ।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः, साक्षादेष व्यवस्थितः ॥ ४५ ॥ 'ह्रीँ' ॥
ज्ञानबीजं जगद्वन्द्यं, जन्म-मृत्यु-जरापहम् ।
अकारादि-हकारान्तं, रेफबिन्दुकलाङ्कितम् ॥ ४६ ॥
भुक्ति-मुक्त्यादिदातारं, स्रवन्तममृताम्बुभिः ।
मन्त्रराजमिमं ध्यायेद्, धीमान् विश्वसुखावहम् ॥ ४७ ॥

(ते मंत्र) देवो अने असुरो वडे नमस्कार करायेल, मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार (ने दूर करवा) माटे सूर्य समान, मोनाना उपर रहेला चन्द्र(कला)मांथी नीकळता किरणोना समूह वडे दिगंतोने व्याप्त करतो, सुवर्णकमळनी कर्णिकामां विराजमान, निर्मळ, दिशाओमां अने आकाशरूपी आंगणामां संचरता चन्द्र समान, परम सामर्थ्यशाळी अने श्रीजिनेन्द्रतुल्य छे[1] ॥ ४२–४३ ॥

आ महान् वर्ण (ह्रीँ) ने ज केटलाक ब्रह्मा, केटलाक हरि, केटलाक बुद्ध, केटलाक महेश्वर, केटलाक शिव तथा केटलाक ईशान कहे छे[2] ॥ ४४ ॥

खरेखर ! आ मंत्रना रूप(आकृति)ने धारण करीने स्वयं देवाधिदेव, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी अने शान्त एवा श्री जिनेश्वर भगवान् साक्षात् रहेला छे[3] ॥ ४५ ॥ ते मन्त्र आ छे—'ह्रीँ'।

मन्त्राधिराज अर्हँ

(अथवा) बुद्धिमान पुरुषे जेनी आदिमां 'अ' छे; अंतमां 'ह' छे अने जे रेफ, कला अने बिन्दुथी सहित छे; जे ज्ञानबीज छे; जगद्वंद्य छे; जन्म, मृत्यु अने जराने दूर करनार छे; भुक्ति (सांसारिक सुखो) तेमज मुक्तिने आपनार छे; जेमांथी अमृतजळ झरी रह्युं छे अने जे सर्व सुखोने लावनार छे, ते आ मन्त्रराज 'अर्हँ' नुं ध्यान करवुं जोईए[4] ॥ ४६-४७ ॥

१. शा. श्लो. ९-१० । २. शा. श्लो. ११ । ३ शा. श्लो. १२ । ४ शा. श्लो. १३ ।

नासाग्रे निश्चलं वा भ्रूलतान्तरे महोज्ज्वलम् ।
तालुरन्ध्रेण वाऽऽयान्तं, विशन्तं वा मुखाम्बुजे ॥ ४८ ॥
सकृदुच्चारितो येन, मन्त्रोऽयं वा स्थिरीकृतः ।
हृदि तेनापवर्गाय, पाथेयं स्वीकृतं परम् ॥ ४९ ॥
यदैवैष महामन्त्रश्चित्ते धत्ते स्थितिं मुनेः ।
तदैव कर्मसन्तानप्रारोहः प्रविशीर्यते ॥ ५० ॥
मत्वेतीदं महत्तत्त्वमर्हनामोद्भवं बुधाः ।
विश्वकल्याणतीर्थेशं, श्रीदं ध्यायन्तु मुक्तये ॥ ५१ ॥
सर्वावस्थासु सर्वत्र, जपन्तु वा निरन्तरम् ।
विशुद्धे मानसे मन्त्रं, निश्चलं स्थापयन्तु वा ॥ ५२ ॥ 'अर्हं' ॥
ततो हकारमात्रं च, रेफ-बिन्दु-कलोज्झितम् ।
सूक्ष्मं प्रभास्वरं चन्द्ररेखाभं शान्तिकारणम् ॥ ५३ ॥
अणिमादिमहर्द्धीनां, जनकं चिन्तयेत् सुधीः ।
अनुच्चार्यं हृदा नित्यं, भवभ्रमणहानये ॥ ५४ ॥ 'ह' ॥

ते मन्त्रराज नासिकाना अग्रभाग पर स्थिर छे, अथवा भ्रूमध्यमा अत्यन्त प्रकाशमान छे, अथवा तालुरन्ध्रथी आवे छे अने मुखकमलमां प्रवेश करे छे, एवुं ध्यान करवुं ॥ ४८ ॥

जेणे एक ज वार आ मन्त्रनो उच्चार कर्यो छे अथवा हृदयमां स्थिर कर्यो छे ते पुरुषे मोक्ष माटे उत्तम भातुं ग्रहण कर्युं छे ॥ ४९ ॥

मुनिना चित्तमा आ महामंत्र स्थिरता करे त्यारथी ज (अर्थात् मुनिना चित्तमां आ महामंत्रनी स्थिरता थतानी साथे ज) कर्मोनी परपरानो अंकुरो खरवा माडे छे ॥ ५० ॥

ए रीते अर्हं नाममांथी उत्पन्न थयेला आ महातत्त्वने जाणीने विश्वनुं कल्याण करवामां श्री तीर्थंकर स्वरूप अने मोक्ष (अने मुक्ति) ने आपनार एवा ते तत्त्व(अर्हं)नु विद्वानोए मुक्ति माटे ध्यान करवुं जोईए ॥ ५१ ॥

अथवा सर्व अवस्थाओमा सर्वत्र निरतर ते मन्त्राधिराजनो जाप करवो जोईए । अथवा विशुद्ध मनमां ते मन्त्रने निश्चल रीते स्थापवो जोईए ॥ ५२ ॥ ते मन्त्र आ छे—'अर्हं'

'ह' कार

ते पछी बुद्धिमान पुरुष संसारभ्रमणनी हानि माटे उच्चार कर्या विना मन वडे केवल हकारने रेफ, कला अने बिन्दुथी रहित, सूक्ष्म, प्रकाशमान अने चन्द्ररेखा जेवो चिंतवे । आवो 'ह'कार शान्ति अने अणिमादि महर्द्धिओनु कारण छे ॥ ५३-५४ ॥ ते मन्त्र आ छे—'ह' ।

---

१ ज्ञा. श्लो. १६ । २ ज्ञा. श्लो. १४ । ३ ज्ञा. श्लो. १५ । ४. ज्ञा. श्लो. २१ ।
५. ज्ञा. श्लो. २-३, पृ. ३९२ ।

ॐकारं विस्फुरच्चन्द्रकलाविन्दुमहोज्ज्वलम् ।
नामाद्याक्षरनिष्पन्नं, पञ्चानां परमेष्ठिनाम् ॥ ५५ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां, दातारं विश्वपूजितम् ।
हृत्कञ्जकर्णिकासीनं, ध्यायेद् ध्यानी शिवाप्तये ॥ ५६ ॥
अर्हन्तो ह्यशरीराश्चाचार्या विश्वनतक्रमाः ।
उपाध्यायाः गताः पारं, श्रुताब्धेर्मुनयः परे ॥ ५७ ॥
एषां पंचनमस्कारपदानां प्रथमाक्षरैः ।
निष्पादितोऽयमोङ्कारो, बुधैः सर्वार्थसिद्धिदः ॥ ५८ ॥
एष मन्त्रो जगत्ख्यातः, कामदः कामधेनुवत् ।
ध्यानीनां कल्पशाखीव, समीहितफलप्रदः ॥ ५९ ॥
चिन्तामणिरिवाभीष्टसिद्धिकृन्मूलमन्त्रजः ।
ध्यातव्योऽनिशमत्यर्थं, सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ६० ॥
स्तम्भनेऽयं सुवर्णाभो, विद्वेषे कज्जलप्रभः ।
वश्यादिकरणे रक्तो, ध्येयः शुभ्रोऽघ हानये ॥ ६१ ॥

'ॐ'कार

अथवा ध्यानी पुरुष विस्फुरायमाण चन्द्रकला अने बिन्दु वडे महोज्ज्वल अने हृदयकमलनी कर्णिकामां विराजमान एवा ॐकारनुं मोक्ष माटे ध्यान करे । ते ॐकार पांच परमेष्ठिओना नामना प्रथमाक्षरो (अ+अ*+आ+उ+म+) थी निष्पन्न, विश्व वडे पूजित अने धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षने आपनार छे[1] ॥ ५५-५६ ॥

विश्व जेमना चरणोमां नम्युं छे एवा अरिहंतो, अशरीरी—सिद्धो तथा आचार्यो, श्रुतसिंधुना पारने पामेला उपाध्यायो अने श्रेष्ठ मुनिओ—ए पंचनमस्कार (नमस्कार महामंत्र)ना पदोना प्रथम अक्षरो वडे (गणधरादि) बुद्धिमान पुरुषोए सर्व प्रयोजनोनी सिद्धिने आपनार आ ॐकारने निष्पादित कर्यो छे ॥ ५७-५८ ॥

आ मंत्र जगतमां विख्यात, कामधेनुनी जेम इच्छित वस्तुओने आपनार अने ध्यानी पुरुषोने कल्पवृक्षनी जेम समीहित—वांछित फलने आपनार छे ॥ ५९ ॥

मूलमंत्रमांथी उत्पन्न थयेल आ ॐकार चिन्तामणिनी जेम वांछितोनी सिद्धिने करनार छे । तेथी सर्व कार्यो अने अर्थोनी सिद्धि माटे प्रतिदिन एनुं घणुं ध्यान करवुं जोईए ॥ ६० ॥

स्तम्भनमां सुवर्णसदृश कांतिवाळो, विद्वेषमां काजळ समान प्रभावाळो, वशीकरणादिमां रक्त अने पापनाश माटे शुभ्र ॐकार ध्येय छे[2] ॥ ६१ ॥

---

* अशरीरी । + मुनि । १ ज्ञा. श्लो. ३३ । २. ज्ञा. श्लो. ३७ ।

अथवैषोऽनिशं ध्येयः, सर्वत्रैव शशिप्रभः ।
कर्मारिहानये कृत्ये, किमसत्कल्पनैः सताम् ॥ ६२ ॥ ॐ ॥
महापञ्चगुरोर्नाम, नमस्कारसुसंभवम् । (१)
महामन्त्रं जगज्ज्येष्ठमनादिसिद्धमादिमम् ॥ ६३ ॥
ध्यायन्तु वा जपन्तूच्चैर्दक्षाः सर्वार्थसाधकम् ।
युक्त्या कमलजाप्येन, वशीकृत्य चलं मनः ॥ ६४ ॥
मस्तकस्थे स्फुरच्चन्द्राभेऽब्जे पत्राष्टभूषिते ।
स्थापयेत् कर्णिकामध्येऽर्हन्तं पूर्वादिदिक्षु च ॥ ६५ ॥
चतुर्षु पद्मपत्रेषु, सिद्धं सूरिमनुक्रमात् ।
उपाध्यायं परं साधुं, विदिक्पत्रेषु दर्शनम् ॥ ६६ ॥
ज्ञानं वृत्तं तपो ध्यानी, स्थापयेद् ध्यानसिद्धये ।
कर्णिकायां जपेद् ध्यायेद्, वाऽऽदौ मन्त्रं च्युतोपमम् ॥ ६७ ॥
महापञ्चगुरूणां पञ्चत्रिंशदक्षरप्रमम् ।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्रचेतसा भवहानये ॥ ६८ ॥
ततश्चतुर्दिशापत्रेषु मन्त्रांश्चतुरः स्मरेत् ।
क्रमाद् विदिक्षु पत्रेषु, नमस्कारांश्चतुःप्रमान् ॥ ६९ ॥

अथवा रोज सर्वत्र चंद्र समान प्रभावाळा ॐकारनुं ज कर्मशत्रुना नाश माटेना कृत्यमां ध्यान करवुं जोईए । सत्पुरुषोने बीजी असत् कल्पनाओनुं शुं प्रयोजन ? ॥ ६२ ॥ ॐ ॥

नमस्कार महामंत्रमा रहेला (अरिहंत–सिद्ध–आयरिय–उवज्झाय–साहु रूप) पांच महागुरुओना नामथी निष्पन्न थयेल महामंत्र के जे जगतमां श्रेष्ठ छे, अनादि-सिद्ध छे, आदिम छे अने सर्व अर्थोनो साधक छे, तेनुं दक्ष पुरुषोए कमलजाप वडे युक्तिपूर्वक चंचल मनने वश करीने जाप अथवा ध्यान करवुं जोईए ॥ ६३-६४ ॥

मस्तकमां रहेला (ब्रह्मरन्ध्रचक्रमां), स्फुरायमान चन्द्र जेवा, आठ पत्रोथी शोभता कमळनी कर्णिकामां वच्चे अर्हन भगवंतने स्थापन करवा अने पूर्व आदि दिशाओमांना चार पत्रोमा अनुक्रमे सिद्ध भगवंत, सूरि भगवंत, उपाध्याय भगवंत अने साधु भगवंतने स्थापन करवा; तेमज विदिशाओनी पांखडी-ओमा अनुक्रमे दर्शन, ज्ञान, चारित्र अने तपने ध्यानी पुरुषे ध्याननी सिद्धि माटे स्थापन करवा। ते पूर्वे प्रथमत कर्णिकामां निरुपम एवा पांच महागुरुओना पांत्रीश अक्षर प्रमाण (मंत्र)नो त्रण श्वासोच्छ्वासमां एकाग्रचित्तथी भवनी हानि माटे जाप करवो अथवा ध्यान करवुं ॥ ६५-६८ ॥

ए पछी चार दिशाना पत्रोमाना चार मंत्रोनुं स्मरण करवुं अने ते पछी क्रमश. विदिशाओना पत्रोमां चार प्रकारना नमस्कारनु चिंतन करवुं (२) ॥ ६९ ॥

---

१. श. श्लो. ४० ।

अनेन विधिना भाले, मुखे कण्ठे हृदि स्फुटम् ।
नाभौ पद्मे च संस्थाप्यं, मन्त्रं नवनवोत्तमम् ॥ ७० ॥

नमस्कारान्क्षिपेद् दक्षोऽवरोहाऽऽरोहणेन च ।
द्वि-षट्पद्मेषु सर्वेऽमी, नमस्काराश्च पिण्डिताः ॥ ७१ ॥

विश्वकल्याणदाः सन्ति, ह्यष्टोत्तरशतप्रमाः ।
कृत्स्नकर्मारिसंतानं, घ्नन्तो विश्वशुभावहाः ॥ ७२ ॥

जाप्येन कमलाख्येनानेन योगी लभेत भोः ।
भुञ्जानोऽप्युपवासस्य, कर्मणां निर्जरां पराम् ॥ ७३ ॥

अपराजितमन्त्रोऽयं, विश्वमन्त्राग्रिमो महान् ।
निरौपम्यो जगत्ख्यातो, जगद्वन्द्यो जगद्धितः ॥ ७४ ॥

अनेन मन्त्रवज्रेण, हता दुःकर्मपर्वताः ।
शतखण्डं क्रमाद् यान्ति, योगिनां मुक्तिरोधकाः ॥ ७५ ॥

महामन्त्रप्रभावेन, विघ्नजालान्यनन्तशः ।
दुष्टारि-नृप-चौरादिजानि नश्यन्ति तत्क्षणम् ॥ ७६ ॥

आ विधिए भालपद्ममां, मुखपद्ममां, कंठपद्ममां, हृदयकमलमां अने नाभिकमलमां नवनवी रीते उत्तम (?) एवा मंत्रने स्पष्ट स्थापन करवा (?) ॥ ७० ॥

कुशल मनुष्ये अवरोह अने आरोहपूर्वक नमस्कारनो जाप करवो । बार पद्मोमां आ बधा नमस्कारोनो समावेश थयेलो छे ॥ ७१ ॥

एक सो ने आठ संख्या प्रमाण नमस्कारो (नो जाप) जगतनुं कल्याण करनार, समस्त कर्मरूप शत्रुओनी परंपरानो नाश करनार अने सर्व शुभने लावनार थाय छे ॥ ७२ ॥

आवी रीते 'कमल' जापथी आ मंत्रनो जाप करतो योगी पुरुष उपवासी न होवा छतां उपवासनुं फळ मेळवे छे; अने कर्मनी उत्तम निर्जरा करे[१] छे ॥ ७३ ॥

आ 'अपराजित' मंत्र सघळा मंत्रोमां प्रथम छे, महान् छे, अनुपम छे, जगतमां प्रसिद्ध छे, जगत (ना पुरुषो) ने वंदनीय छे अने जगतनुं हित साधनारो छे ॥ ७४ ॥

आ मंत्ररूप वज्र वडे, योगीओने मुक्तिमार्गमां रोध करनार दुष्कर्मरूप पर्वतो भेदाई जतां क्रमशः सेंकडो टुकडाने पामे छे (अर्थात् कर्मोना चूरेचूरा थई जाय छे) ॥ ७५ ॥

आ महामंत्रना प्रभावथी दुष्ट, शत्रु, राजा अने चोरथी उत्पन्न थयेल अनन्त प्रकारनां विघ्नोनी जाळो तत्क्षण नाश पामी जाय छे ॥ ७६ ॥

---

१. ज्ञा० श्लो० ४७ ।

ग्रह-व्यन्तर-शाकिन्यादयो दुष्टाश्च निर्जराः ।
सन्मन्त्रजपनेनाहो, कर्तुं नोपद्रवं क्षमाः ॥ ७७ ॥
सतां मन्त्रमहाशक्त्या, नागा व्याघ्रा गजादयः ।
कीलिता इव जायन्ते, चोपसर्गा अनेकशः ॥ ७८ ॥
दुःसाध्याः सकला रोगाः, कुष्ठ-शूलादयोऽशुभाः ।
क्षणाद् यान्ति क्षयं पुंसां, मन्त्रध्यानमहौषधात् ॥ ७९ ॥
मन्त्रजाप्याम्बुभिः सिक्ताः, शाम्यन्ति वह्नयोऽखिलाः ।
जल-स्थलभयाः सर्वे, विलीयन्तेऽस्य शक्तितः ॥ ८० ॥
अनेन मन्त्रयोगेन, महापापकलङ्किताः ।
शुद्धयन्ति जन्तवः क्रूरास्त्यजन्ति क्रूरतां परे ॥ ८१ ॥
सप्तव्यसनसंसक्ता, अञ्जनाद्याश्च तस्कराः ।
प्राप्य मित्रमिमं मृत्यौ, तत्पुण्येन दिवं गताः ॥ ८२ ॥
जिनशासनमध्येऽयं, सारो मन्त्राधिपो महान् ।
उद्धारः सर्वपूर्वाणां, तत्त्वानां तत्त्वमुत्तमम् ॥ ८३ ॥
किमत्र बहुभिः प्रोक्तैर्मन्त्रराजप्रसादतः ।
ध्यानिनां जायते मुक्तिः, का वार्ता परवस्तुषु ॥ ८४ ॥

आ सन्मन्त्रनो जाप करवाथी, खरेखर ग्रहो, व्यंतरो, शाकिनीओ वगेरे अने दुष्ट देवताओ उपद्रव करवाने शक्तिमान थता नथी ॥ ७७ ॥

आ मंत्रनी महाशक्तिथी संत पुरुषोने सर्पो, वाघो अने हाथीओ वगेरे; तेमज अनेक प्रकारना उपसर्गो जाणे कीलित कर्या होय एवा बनी जाय छे ॥ ७८ ॥

मनुष्योना दुःसाध्य एवा कोढ, शूल वगेरे सर्व अशुभ रोगो आ मंत्रना ध्यानरूप औषधथी तरतमां क्षय पामी जाय छे ॥ ७९ ॥

समग्र प्रकारना अग्निओ आ मंत्रना जापरूप पाणीथी सिंचातां शमी जाय छे अने जल तेम ज स्थलना सघळा भयो आ मंत्रनी शक्तिथी नाश पामे छे ॥ ८० ॥

महापापथी कलंकित थयेलां प्राणीओ आ मंत्रनो योग थवाथी शुद्ध एटले पवित्र बनी जाय छे अने क्रूर प्राणीओ पण तेमनुं घातकीपणुं छोडी दे छे ॥ ८१ ॥

साते व्यसनमां डूबेला एवा अंजन वगेरे चोरोए पण मृत्युकाले आ मंत्ररूप मित्रने पामीने तेना पुण्यथी ज स्वर्गने प्राप्त कर्युं ॥ ८२ ॥

जिनशासनमां आ (मंत्र) सारभूत महान् मंत्रराज छे, समस्त पूर्वोना उद्धार स्वरूप छे अने तत्त्वोमां उत्तम तत्त्व छे ॥ ८३ ॥

अहीं वहु कहेवाथी शु ? (वस्तुतः) आ मंत्रराजनी कृपाथी ध्यानी पुरुषोने मुक्ति आवी मळे छे त्यारे बीजी वस्तुओ मळे एमां आश्चर्य ज शु छे ! ॥ ८४ ॥

विज्ञायेति सुखे दुःखे, पथि दुर्गे रणे स्थितौ ।
आसने शयने स्थाने, रोगक्लेशादिके सति ॥ ८५ ॥
सर्वावस्थासु सर्वत्र, महामन्त्रः शिवार्थिभिः ।
जपनीयोऽथवा ध्येयो, न मोक्तव्यो क्वचिद्धृदः ॥ ८६ ॥
वाचो वा विश्वकार्याणां, सिद्धयेऽत्र परत्र च ।
तथासंख्या विधेयास्य, सहस्र-लक्ष-कोटिभिः ॥ ८७ ॥
"णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइ(य)रियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥"
पञ्चसद्गुरुनामोत्थां षोडशाक्षरभूषिताम् ।
महाविद्यां जगद्विद्यां, स्मर सर्वार्थसिद्धिदाम् ॥ ८८ ॥
अस्याः शतद्वयं ध्यानी, जपेत् तल्लीनमानसः ।
अनिच्छन्नप्यवाप्नोत्युपवासपरं फलम् ॥ ८९ ॥
"अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ॥"

ए प्रमाणे जाणीने सुखमां, दुःखमां, मार्गमां, पर्वतमां, युद्धस्थानमां, बेसवामां, शयनस्थानमां अने रोग तेमज कलह आवी पडे त्यारे—सघळी अवस्थामां अने सघळे स्थळे मोक्षना अर्थीओए आ महामंत्रनो जाप करवो; अथवा आ (मंत्र)नुं ध्यान करवुं पण कदापि हृदयमांथी तेने दूर न करवो ॥ ८५-८६ ॥

आ लोक अने परलोकमां समस्त कार्यो अने वाणीनी सिद्धि माटे आ मंत्रनो हजार, लाख अने करोड संख्या प्रमाणनो जाप करवो ॥ ८७ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे :—

"णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइ(य)रियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥"

पांच सद्गुरुओना नामथी निष्पन्न थयेल जे सोळ अक्षरोथी शोभती 'महाविद्या' छे, ते सघळा अर्थनी सिद्धि आपनारी जगत्-विद्या छे, तेनुं तुं स्मरण कर ॥ ८८ ॥[1]

आ (विद्या)मां एकाग्र मनवाळो ध्यानी पुरुष बसो वार आ विद्यानो जाप करे तो न इच्छवा छतांये उपवासनुं सुंदर फळ मेळवे छे[2] ॥ ८९ ॥

ते विद्या आ प्रकारे छे :—

"अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ॥"

---

१. ज्ञा. श्लो. ४८ । २. ज्ञा. श्लो. ४९ ।

विद्यां षड्वर्णसंयुक्तामर्हत्-सिद्धसुनामजाम् ।
तत्त्वभूतां जगत्सारां, जपन्तु ध्यानिनोऽनिशम् ॥ ९० ॥
ये जपन्ति त्रिशुद्धयेमां, विद्यां त्रिशतसम्मिताम् ।
संवरेण समं तेषां, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ९१ ॥
"अरहंत-सिद्ध ॥"
चतुर्वर्णमयं मन्त्रं, चतुर्वर्गैकसाधनम् ।
अर्हन्नामभवं विश्वज्येष्ठं जपन्तु धीधनाः ॥ ९२ ॥ (अरिहंत)
आदिमं चार्हतो नाम्नोऽकारं पञ्चशतप्रमम् ।
यरं जपेत् त्रिशुद्धया यः, स चतुर्थफलं श्रयेत् ॥ ९३ ॥
एतत् स्वल्पं फलं प्रोक्तं, शास्त्रे रुच्याप्तये सताम् ।
किन्त्वमीषां फलं सम्यक्, संवरो निर्जरा शिवम् ॥ ९४ ॥
पञ्चसद्गुरुनामाद्यक्षरोद्भूतां जगन्नुताम् ।
पञ्चवर्णमयीं सारां, महाविद्यां समुद्धृताम् ॥ ९५ ॥
बीजबुद्धया श्रुतस्कन्धाम्बुधेर्ध्यायन्तु सद्बुधाः ।
ह्रॉकारादिमहापञ्चतत्त्वोँकारोपलक्षिताम् ॥ ९६ ॥

अरिहंत अने सिद्धना सुंदर नामोमाथी उत्पन्न थयेली छ वर्णोवाळी विद्या तत्त्वभूत छे अने जगतमां सारभूत छे—तेनो ध्यानी पुरुषो सदा जाप करो ॥ ९० ॥

जे पुरुषो मन, वचन अने कायानी शुद्धिथी आ विद्यानो त्रणसो वार जाप करे छे, तेमने संवर थाय छे एटले आवतां कर्मो रोकाय छे अने साथे साथे उपवासतपनुं फळ मळे छे[1] ॥ ९१ ॥

ते विद्या आ प्रकारे छे—"अरहंत-सिद्ध ॥"

विश्वमां महान् एवो अर्हन् नाममांथी उत्पन्न थयेलो चार वर्णमय (अ रि हं त) मंत्र चार वर्ग (धर्म, अर्थ, काम अने मोक्ष) ने साधनारो छे, तेनो बुद्धिशाळी पुरुषो जाप करे[2] ॥ ९२ ॥

अर्हत नामना आदि अकारनो (अरिहंत) मन, वचन अने कायानी शुद्धि वडे जे साधक पांचसो वार जाप करे छे ते एक उपवासनु फळ मेळवे छे[3] ॥ ९३ ॥

सज्जन पुरुषोने रुचि उत्पन्न करवा माटे शास्त्रमां दर्शावेलु आ स्वल्प फळ छे, परन्तु आ मंत्रोनु वास्तविक फळ तो संवर, निर्जरा अने मोक्ष छे[4] ॥ ९४ ॥

जगते जेने नमस्कार कर्यो छे एवी, पांच सद्गुरुओना नामना प्रथम अक्षरोमांथी निष्पन्न थयेली अने सारभूत एवी (अ सि आ उ सा) पांच वर्णमयी महाविद्या, जेनो श्रुतस्कन्धरूप समुद्रमांथी बीज-बुद्धि लब्धिथी उद्धार करायेलो छे, तेनो विद्वान् पुरुषो जाप करो। ते विद्या ह्रॉंकार वगेरे (ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः) पांच महातत्त्वो अने ॐकारथी उपलक्षित छे[5] ॥ ९५-९६ ॥

---

१. श. श्लो. ५०। २. श. श्लो. ५१। ३. श. श्लो. ५३। ४. श. श्लो. ५४। ५. श. श्लो. ५५।

अनन्यशरणीभूय जपेद् यस्त्रिजगद्गुरुम् ।
इमां चतुःशतान्तं स, चतुर्थस्य फलं भजेत् ॥ ९७ ॥
अनया विद्यया पुंसां, जन्म-मृत्यु-ज[रा] द्रुतम् ।
हीयन्ते कर्मभिः सार्धं, ढौकन्ते शिवसम्पदः ॥ ९८ ॥
"ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा नमः ॥"
अर्हत्-सिद्ध-त्रिधासाधुधर्मान् केवलिभाषितान् ।
विश्वमाङ्गल्यकर्तृंश्च, विश्वलोकोत्तमान् परान् ॥ ९९ ॥
विश्वशरण्यभूतांश्च, ध्यायन्तु तत्पदार्थिनः ।
चतुरोऽत्र चतुर्मङ्गलाद्यैः पदैः परैः सदा ॥ १०० ॥
लोकोत्तमपदाः पूज्याः, शरण्याश्चार्हदादिकाः ।
एतद्ध्यानवतां ध्यानान्मङ्गलानि पदे पदे ॥ १०१ ॥
संपद्यन्तेऽत्र वाऽमुत्र, सम्पदस्त्रिजगद्भवाः ।
धर्मार्थकाम-मोक्षार्थाः, प्रणश्यन्त्यापदोऽखिलाः ॥ १०२ ॥
"चत्तारि मंगलं । अरिहंता मंगलं । सिद्धा मंगलं ।
साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

जे मनुष्य त्रण जगत्ना गुरु श्रीअर्हंतना अनन्य शरणे जई ए विद्यानो चार सो वार जाप करे छे ते उपवासनुं फळ मेळवे छे ॥ ९७ ॥

आ विद्याथी मनुष्यनां कर्मोनी साथे ज जन्म, मृत्यु अने जरा (वृद्धावस्था) जलदीथी घटे छे अने ते शिवसंपत्तिने प्राप्त करे छे ॥ ९८ ॥

ते विद्या आ प्रकारे छे :—

"ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा नमः ॥"

विश्वनुं मंगल करनार, जगतना लोकोमां सर्वोत्तम अने जगतने शरण्यभूत एवा अरिहंत, सिद्ध त्रण प्रकारे (?) साधु अने केवली भगवंतोए उपदेशेल धर्म—ए चारेनुं 'चत्तारि मंगल' आदि उत्तम पदोथी ते पदवीना अर्थी मनुष्यो हंमेशां ध्यान करो ॥ ९९-१०० ॥

"ते (उपर्युक्त) अरिहंत वगेरे लोकोमां उत्तम पदवाळा छे, पूज्य छे अने शरण्यभूत छे," आ प्रकारे ध्यान करनाराओने तेमना ध्यानना प्रभावथी पगले पगले मंगल प्रगटे छे। त्रण जगतमां रहेली संपत्तिओ अने धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षरूप पुरुषार्थो आलोक अने परलोकमां प्राप्त थाय छे; तथा सर्व आपत्तिओ नाश पामे छे[1] ॥ १०१-१०२॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे :—

"चत्तारि मंगलं। अरिहंता मंगलं। सिद्धा मंगलं। साहू मंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।"

---

१. ज्ञा. श्लो. ५७ ।

"चत्तारि लोगुत्तमा। अरिहंता लोगुत्तमा। सिद्धा लोगुत्तमा।
साहू लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
"चत्तारि सरणं पवज्जामि। अरिहंते सरणं पवज्जामि। सिद्धे सरणं पवज्जामि।
साहू सरणं पवज्जामि। केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि॥"

मुक्तेः सौधं द्रुतारोढुमिमां सोपानमालिकाम्।
अर्हत्-सिद्ध-सयोगिश्रीकेवल्यक्षरसंभवाम्॥ १०३॥

आद्योंकारमयीं सारां, विद्यां ध्यायन्तु योगिनः।
त्रयोदश (पंचदश) सुवर्णाढ्यां, गुणस्थानगुणाप्तये॥ १०४॥

"ॐ अरिहंत सिद्ध सयोगिकेवली स्वाहा॥"

ॐकारभूषितं मन्त्रं ह्रींकाराङ्कितमुत्तमम्।
अर्हन्नामोभवं दक्षाश्चिन्तयन्तु शिवाप्तये॥ १०५॥
सकलज्ञानसाम्राज्यदानदक्षं च्युतोपमम्।
समस्तमन्त्ररत्नानां, चूडारत्नं सुखावहम्॥ १०६॥

"ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः॥"

चत्तारि लोगुत्तमा। अरिहंता लोगुत्तमा। सिद्धा लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पवज्जामि। अरिहंते सरणं पवज्जामि। सिद्धे सरणं पवज्जामि। साहू सरणं पवज्जामि। केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि॥"

अरिहंत, सिद्ध अने सयोगी केवलीना अक्षरोथी उत्पन्न थयेली, मुक्तिरूपी महेलनुं जल्दीथी आरोहण करवा माटे पगथियानी श्रेणि समान, पंदर सुंदर वर्णोथी शोभती अने जेनी आदिमां ॐकार छे तेवी सारभूत विद्यानुं योगिओ गुणस्थानकनी प्राप्ति माटे ध्यान करो[1]॥ १०३-१०४॥

ते विद्या आ प्रकारे छे :—"ॐ अरिहंत सिद्ध सयोगिकेवली स्वाहा॥"

ॐकारथी भूषित अने ह्रींकारथी अंकित तेमज 'अर्हन्' नाममांथी उत्पन्न थयेला उत्तम एवा मंत्रने चतुर पुरुषो मोक्षनी प्राप्ति माटे ध्यान करो॥ १०५॥

ए मंत्र सघळा ज्ञाननुं साम्राज्य आपवामां कुशळ, निरुपम, सुख लावनार अने समस्त मंत्ररत्नोमां चूडामणि (श्रेष्ठ) छे[2]॥ १०६॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे :—"ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः॥"

---

१. ज्ञा. श्लो. ५८। २. ज्ञा. श्लो. ६०।

कृत्स्नकर्मकलङ्कौघतमोविध्वंसभास्करम् ।
परं सिद्धनमस्कारजातं साक्षाच्छिवप्रदम् ॥ १०७ ॥
पञ्चवर्णमयं मन्त्रं विश्वविघ्नौघनाशनम् ।
दक्षाः स्मरन्तु मोक्षाय, जपन्तु वा निरन्तरम् ॥ १०८ ॥
"णमो सिद्धाणं ॥"
निर्दोषस्यार्हतो घातिघातिनः परमेष्ठिनः ।
प्राप्तानन्तगुणस्य श्रीमतः परमयोगिनः ॥ १०९ ॥
विदो जपन्तु मन्त्रेशं, विश्वक्लेशाग्निवार्मुचम् ।
भुक्ति-मुक्तिसुदातारं, त्रातारं भव्यदेहिनाम् ॥ ११० ॥
अनेन मन्त्रपुण्येन, त्रिजगन्नाथसंपदः ।
विश्वशर्माणि लभ्यन्ते, क्रमाच्छ्रीजिनभूतयः ॥ १११ ॥
"ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिने अनन्तविशुद्धपरिणामविस्फुरच्छुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मङ्गलवरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा ॥"

सर्व कर्म-कलंकना समूहरूप अंधकारनो नाश करवामां सूर्य समान, श्रेष्ठ, सिद्ध-नमस्कारथी उत्पन्न थयेल, साक्षात् शिवने आपनार अने सर्व विघ्नसमूहना नाशक एवा पांच वर्णवाळा मंत्रनुं चतुर पुरुषो मोक्षनी प्राप्ति माटे सदा स्मरण करो अथवा तेनो जाप करो ॥ १०७-१०८ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छेः—"णमो सिद्धाणं ॥"

घाती (चार कर्मो)नो नाश करनारा, निर्दोष, अनंत गुण(चतुष्टय)ने प्राप्त, (केवलज्ञानरूप) लक्ष्मीथी शोभता अने परमयोगी एवा श्री अरिहंत परमेष्ठिना मंत्रराजने सुज्ञ पुरुषो जपे। ए मंत्रराज समग्रक्लेशरूप अग्निने (शांत करवा) माटे मेघ समान, भुक्ति तेमज मुक्तिने आपनार अने भव्य जीवोनुं रक्षण करनार छे ॥ १०९-११० ॥

आ पवित्र मंत्र वडे त्रण जगतना नाथ श्री तीर्थंकर परमात्मानी संपत्तिओ अने सर्व सुखो क्रमशः प्राप्त थाय छे[२] ॥ १११ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छेः—"ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिने अनन्तविशुद्धपरिणामविस्फुरच्छुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मङ्गलवरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा ॥"

---

१. शा. श्लो. ६२ । २. शा. श्लो. ६३ ।

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं, पुण्डरीकं मुखे स्मरन् ।
क्रमात् तदष्टपत्रेषु, वर्णाश्चाष्टौ पृथक् पृथक् ॥ ११२ ॥
ॐकाराद्यर्हन्नमस्कारजातांस्तत्कर्णिकोपरि ।
ज्योतिर्मयमिवात्यन्तदीप्रं ह्रींकारमूर्जितम् ॥ ११३ ॥
व्रजन्तं तालुरन्ध्रेण, तिष्ठन्तं भ्रूलतान्तरे ।
स्फुरन्तं चिन्तयाऽत्यर्थं, स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥ ११४ ॥
अनेन मन्त्रपोतेन, सर्वविद्यागमाम्बुधेः ।
भवव्यसनपापाब्धेः प्राप्यते पारमुत्तमैः ॥ ११५ ॥
" ॐ नमो अरहंताणं ॥ " इमेऽष्टौ वर्णाः । " ह्रीं ॥ "
इमां विद्यां महादेवीं, ललाटे संस्थितां स्मृताम् ।
कल्याणकारिणीं पूतां, क्ष्वींकारजां शिवप्रदाम् ॥ ११६ ॥ " क्ष्वीं ॥ "
यदि साक्षात् त्वमुद्विग्नो, भवदुःखाग्नितापतः ।
तदा सप्ताक्षरं मन्त्रं, अर्हन्नामोद्भवं स्मर ॥ ११७ ॥
अनेनानादिमन्त्रेण, लभन्ते दृग्विभूषिताः ।
सर्वज्ञवैभवं विश्व-विजयं तद्गुणान् शिवम् ॥ ११८ ॥
" णमो अरहंताणं ॥ "

पूर्णचंद्रमंडलाकार अष्टदल कमळनुं मुखमां स्मरण करवुं । तेना आठ पत्रो पर क्रमशः 'ॐ नमो अरहंताण' ए आठ वर्णो पृथक् पृथक् चिंतववा । तेनी कर्णिकामां ज्योतिर्मय, अत्यंत देदीप्यमान अने प्रभावशाळी ह्रींकारने चिंतववो । पछी ते ह्रींकार मुखकमलमांथी तालुरंध्रमां जाय छे, त्यांथी पसार थईने भ्रूमध्यमां स्थिर थईने प्रकाशे छे अने अमृतजलने स्रवे छे, एम चिंतववुं[1] ॥ ११२-११४ ॥

उत्तम पुरुषो आ मंत्ररूप नौका वडे सर्व विद्याओ अने आगमो रूप समुद्रना तथा संसारना संकटो अने पापोरूप समुद्रना पारने पामे छे[2] ॥ ११५ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे :—" ॐ नमो अरहंताणं ॥ " ॥ ह्रीं ॥

आ क्ष्वींकारविद्यारूप महादेवीनुं ललाटमां स्मरण करवुं । ते क्ष्वींकारमांथी निष्पन्न, कल्याणकारिणी, पवित्र अने शिवप्रद छे[3] ॥ ११६ ॥

ते विद्या आ प्रकारे छे—" क्ष्वीं ॥ "

जो तुं खरेखर संसारमां दुःखरूपी अग्निना तापथी उद्विग्न थयो होय तो अर्हन् नाममांथी उत्पन्न थयेल सप्ताक्षर मंत्रनुं स्मरण कर ॥ ११७ ॥

आ अनादिमंत्र वडे सम्यग्दृष्टि महात्माओ सर्व पर विजय, सर्वज्ञनो वैभव, ते(सर्वज्ञ)ना गुणो अने शिवने प्राप्त करे छे ॥ ११८ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे :—" णमो अरहंताणं ॥ "

---

१. ज्ञा. श्लो. ६४ । २. ज्ञा. श्लो. ७१ । ३. ज्ञा. श्लो. ८१ ।

प्रणवानाहतोद्भूतं, वर्णत्रयमयं परम् ।
नासाग्रे ध्यानिनो मन्त्रं, ध्यायन्तु शिवशर्मणे ॥ ११९ ॥
एतेनाऽद्भुतमन्त्रेण, ध्यानशुद्धिः परा भवेत् ।
आत्यन्तिकसुखं स्वात्मजं च सिद्धगुणाष्टकम् ॥ १२० ॥
"ॐ अर्हँ ॥"
ततो ध्यायेन्महाबीजं स्त्री (स्त्रीँ श्रीँ) कारं स्वमुखोदरे ।
विस्फुरन्तं जिनेन्द्रोक्तं, परं मन्त्रमयं शुभम् ॥ १२१ ॥ "स्त्रीँ" ॥ (श्रीँ ॥)
विद्यां स्वेष्टार्थसंदानकरां कल्पलतोपमाम् ।
श्रीवीरवदनोद्भूतां, ध्यायन्त्वचिन्त्यविक्रमाम् ॥ १२२ ॥
इमां विद्यां जपेद् योऽत्र, ध्यानलीनो निरन्तरम् ।
अणिमादिगुणान् लब्ध्वा, तरेच्छास्त्रार्णवं च सः ॥ १२३ ॥
अस्या निरन्तराभ्यासाद्, ध्यानी लभेत निश्चितम् ।
त्रिकालविषयं ज्ञानं, विश्वतत्त्वप्रदीपकम् ॥ १२४ ॥

प्रणव अने अनाहतथी उत्पन्न थयेल त्रण वर्णवाळा श्रेष्ठ मंत्रने मोक्षसुख माटे ध्यानी पुरुषो नासिकाना अग्रभाग पर दृष्टि × राखीने ध्यान करो ॥ ११९ ॥

आ अद्भुत मंत्र वडे ध्याननी परम शुद्धि, स्वात्मामां आत्यंतिक सुख अने सिद्धना आठ गुणो प्राप्त थाय छे[1] ॥ १२० ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छेः—"ॐ अर्हँ ॥"

ते पछी पोताना मुखनी अंदर, जिनेश्वर भगवंते उपदेशेल, विशेष प्रकारे स्फुरायमान, श्रेष्ठ मंत्रमय अने शुभ एवा महाबीज स्त्रीँ (श्रीँ)कारनुं ध्यान करवुं जोईए[2] ॥ १२१ ॥

पोताना इच्छित अर्थनुं दान करवामां कल्पलता समान, श्री वीर भगवंतना मुखमांथी निकळेली अने अचिन्त्य सामर्थ्यवाळी आ विद्यानुं तमे ध्यान करो[3] । जे मनुष्य आ विद्यानो अहीं सदा ध्यानमग्न बनीने जाप करे छे, ते अणिमा वगेरे गुणो प्राप्त करे अने शास्त्ररूप समुद्रनो पार पामे[4] । आ विद्याना निरंतर अभ्यासथी ध्यानी पुरुष निश्चयथी सघळां तत्त्वोने प्रकाशित करवा माटे दीपक समान एवुं त्रणे काळना विषयनुं ज्ञान प्राप्त करे छे[5] ॥ १२२-१२४ ॥

× सरखावो : "द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते नासाग्रे विमलेऽम्बरे ।
संविद्दृशोः प्रशाम्यन्त्योः प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥"
—हठयोगप्रदीपिका पृ. १९० ॥

नासाया नासिकाया अग्रेऽग्रे भागे नासिकायां द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते वा दत्ते प्रहिते ईक्षणे येन सः नासाग्रदत्तेक्षणः॥

१. ज्ञा. श्लो. ८७ । २. ज्ञा. श्लो. ९० । ३. ज्ञा. श्लो. ९१ । ४. ज्ञा. श्लो. ९२ । ५. ज्ञा. श्लो. ९३ ।

"ॐ जोगे मग्गे तत्त्वे भूये भवे भविस्से अक्खे जिनपार्श्वे स्वाहा ॥
ॐ ह्रीँ अर्हँ नमो अरिहंताणं ह्रीँ नमः ॥"
दिक्पत्राष्टकसंपूर्णे, कमले मध्यसंस्थितम् ।
ध्यायेदात्मानमत्यन्तं, स्फुरद्ग्रीष्मार्कभास्करम् ॥ १२५ ॥

ॐकारार्हन्नमस्कारांश्चाष्टौ वर्णान् विचिन्तयेत् ।
क्रमात् पूर्वादिपत्रेषु, वर्णैकैकं प्रदक्षिणम् ॥ १२६ ॥

स्वीकृत्य पूर्वदिक्पत्रं, पूर्वदिक्सम्मुखस्थितः ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं, एकादशशतप्रमम् ॥ १२७ ॥

प्रत्यहं प्रतिपत्रेषु, पूर्वादिदिक्ष्वनुक्रमात् ।
अष्टरात्रं स्मरेद् ध्यानी, तं मन्त्रं निर्मलाशयम् ॥ १२८ ॥

अस्याचिन्त्यप्रभावेन, शाम्यन्ति क्रूरजन्तवः ।
सिंहसर्पादयः सर्वे, हरित्रस्ता गजा इव ॥ १२९ ॥
"ॐ नमो अरिहंताणं ॥"

ते विद्या आ प्रकारे छे—"ॐ जोगे मग्गे तत्त्वे भूये भवे भविस्से अक्खे जिनपार्श्वे स्वाहा॥ ॐ ह्रीँ अर्हँ नमो अरिहंताणं ह्रीँ नमः॥"

(आठ) दिशाओना आठ पत्रोथी परिपूर्ण एवा कमलना मध्यभागमा ग्रीष्म ऋतुना अत्यंत स्फुरायमान सूर्य जेवा आत्मानु ध्यान करवुं। ते (पद्म) ना पूर्व आदि दिशाना पत्रोमां, ॐकारपूर्वक अर्हन् नमस्कार (ॐ नमो अरिहंताणं)ना आठ वर्णोमांना प्रत्येक वर्णनुं क्रमशः प्रदक्षिणामां चिंतन करवुं[1]। पूर्व दिशामा मुख करीने बेसवु। पूर्व दिशाना पत्रमा आठ अक्षरना मंत्रनो अगियारसो संख्या प्रमाण जाप करवो[2]। ध्यानी पुरुषे पूर्व आदि दिशाना प्रत्येक पत्रमां अनुक्रमे एक एक दिवस एम आठ रात्रि सुधी ते निर्मल आशय(अर्थ)वाळा मंत्रनु ध्यान करवुं जोईए[3]। आ (मंत्र)ना अचिन्त्य प्रभावथी, जेम सिंहथी हाथीओ भयभीत बने छे तेम सिंह, सर्प वगेरे सघळां क्रूर प्राणीओ शान्त बने छे[4]. ॥ १२५-१२९॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे—"ॐ नमो अरिहंताणं॥"

---

१. शा. श्लो. ९५। २. शा. श्लो. ९६। ३. शा. श्लो. ९७।
४. शा. श्लो. ९८। ५. शा. श्लो. ९९।

इत्येतद् ध्यानमाधाय, पूर्वं विघ्नौघशान्तये ।
पश्चात् सप्ताक्षरं मन्त्रं, जपेदोँकारवर्जितम् ॥ १३० ॥
मन्त्र ॐकारपूर्वोऽयं, विश्वाभीष्टार्थसिद्धिदः ।
एकोह्यनेककार्यार्थं, मुक्त्यर्थं प्रणवोज्झितम् ॥ १३१ ॥
"णमो अरिहंताणं ॥"
चतुर्विंशतितीर्थेशनमस्कारोद्भवं परम् ।
स्मर मन्त्रं जिनेन्द्रादिपददं जन्मघातकम् ॥ १३२ ॥
"श्रीमद्वृषभादि-वर्धमानान्तेभ्यो नमः ॥"
सुनिष्कम्पं मनः कृत्वा, पापारातिनिकन्दिनीम् ।
जिनेन्द्रमुखजां विद्यां, महतीं पापभक्षिणीम् ॥ १३३ ॥
विश्वविद्यासु (?) सिद्धान्तदानदक्षां जगन्नुताम् ।
ध्यायन्तु प्रत्यहं धीरा, अर्हन्मुखाब्जवासिनीम् ॥ १३४ ॥
मुनेरस्याः प्रभावेन, पापपङ्कः प्रलीयते ।
चेतः प्रशान्तिमायाति, विज्ञानं जायते परम् ॥ १३५ ॥

विघ्नोना समूहनी शान्ति माटे पहेलां आ रीतनुं (उपर्युक्त मंत्रनुं) ध्यान करीने, ते पछी ॐकारथी रहित एवा सात अक्षरना मंत्रनो जाप करवो[1] ॥ १३० ॥

सघळी इच्छित वस्तुओनी सिद्धिने आपनारो ॐकारपूर्वकनो आ एक ज मंत्र अनेक कार्यो माटे थाय छे। मुक्तिने माटे ॐकारथी रहित (एवा आ ज मंत्र) नुं ध्यान करवुं ॥ १३१ ॥

ते मंत्र आ रीते छे[2] — "**णमो अरिहंताणं ॥**"

चोवीश तीर्थंकरोना नमस्कारथी उत्पन्न थयेल श्रेष्ठ मंत्र, जे तीर्थंकर आदि पदवीने आपनारो छे अने जन्मनो नाश करनारो छे, तेनुं तुं स्मरण कर[3] ॥ १३२ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे—"**श्रीमद्वृषभादि-वर्धमानान्तेभ्यो नमः ॥**"

मनने सारी रीते निश्चळ बनावीने पापरूपी शत्रुनां मूळने ऊखेडी नाखनारी अने श्रीजिनेन्द्रना मुखथी नीकळेली आ महान पापभक्षिणी महाविद्या छे[4]। ते सिद्धान्तनुं दान करवामां प्रवीण, जगतना मनुष्यो वडे नमस्कृत अने अरिहंत भगवंतना मुखरूपी कमळमां रहेनारी छे। तेनुं, हे धीर मनुष्यो! तमे सदा ध्यान करो ॥ १३३-१३४ ॥

आ(विद्या)ना प्रभावथी मुनिनो पापरूप मळ नाश पामे छे; तेनुं चित्त शांत बने छे अने तेने श्रेष्ठ एवुं विज्ञान प्राप्त थाय छे ॥ १३५ ॥

---

१. ज्ञा. श्लो. १०१। २. ज्ञा. श्लो. १०२। ३. ज्ञा. श्लो. १०३। ४. ज्ञा. श्लो. १०४।

"ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि ! पापात्मक्षयङ्करि ! श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते ! सरस्वति ! मत्पापं हन हन दह दह क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षः क्षीरवरधवले ! अमृतसंभवे ! पापभक्षिणि ! वँ वँ हूँ हूँ स्वाहा ॥"

संजयन्तादियोगीन्द्रैः सिद्धचक्रमनेकधा ।
भुक्ति-मुक्तेर्निधानं यद्, विद्यावादात् समुद्धृतम् ॥ १३६ ॥
तद्ध्यान्तु बुधा मुक्त्यै, सर्वविघ्नादिनाशनम् ।
तस्य प्रयोजकं शास्त्रं, ज्ञात्वा गुरूपदेशतः ॥ १३७ ॥ "सिद्धचक्रम्" ॥
स्मर मन्त्रपदाधीशमर्हन्नामाक्षराभिधम् ।
'अ'वर्णं नाभिपद्मे त्वं, मोक्षमार्गप्रदीपकम् ॥ १३८ ॥
'सि'वर्णं मस्तकाम्भोजे, 'सा'कारं च मुखाम्बुजे ।
'आ'कारं कण्ठकञ्जे हि, 'चो+'कारं हृत्सरोरुहे ॥ १३९ ॥
एष मन्त्रमहाराजोऽर्हदाद्यक्षरोद्भवः ।
पञ्चवर्णमयोऽनेकाभीष्टदोऽनिष्टशान्तिकृत् ॥ १४० ॥
"अ सि आ उ सा ॥"

ते विद्या आ प्रकारे छे:—"ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि ! पापात्मक्षयङ्करि ! श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते ! सरस्वति ! मत्पापं हन हन दह दह क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षः क्षीरवरधवले ! अमृतसंभवे ! पापभक्षिणि ! वँ वँ हूँ हूँ स्वाहा ॥"

संजयन्त आदि योगीन्द्रोए विद्याप्रवाद (पूर्व) माथी भुक्ति अने मुक्तिना निधानरूप श्री सिद्धचक्रनो अनेक प्रकारे उद्धार कर्यो छे, ते सर्व विघ्नोनो नाश करनार छे तेथी तेना प्रयोजक शास्त्रनुं ज्ञान गुरु उपदेशथी जाणीने हे बुद्धिमान पुरुषो ! तमे मुक्तिने माटे तेनु ध्यान करो ॥ १३६-१३७ ॥

मत्रपदोना अधीश श्रीमद् अर्हन्‌ना नामना अक्षरोनो वाचक 'अ' वर्ण छे । ते मोक्षमार्गमां दीपक समान छे । तेनुं तुं नाभिपद्मर्मा स्मरण कर ॥ १३८ ॥

ए ज रीते मस्तक(ब्रह्मरन्ध्रना)कमलमा 'सि' वर्णनुं, मुखकमलमां 'सा' वर्णनुं, कंठपद्मा 'आ' वर्णनुं अने हृदयकमलमां 'उ' वर्णनुं तुं ध्यान कर ॥ १३९ ॥

अरिहंत वगेरे नामना आदि अक्षरोथी उत्पन्न थयेल आ (मंत्र) मन्त्रोमां श्रेष्ठ छे । ते पंचवर्णमय छे । ते अनेक प्रकारनां इच्छितोने आपनार अने अनिष्ट वस्तुओने शान्त करनार छे ॥ १४० ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे—"अ सि आ उ सा ॥"

+ चो = च + 'उ' ।
१. शा. श्लो. १०६-१०७ । २. शा. श्लो. १०८ ।

साक्षात् सिद्धिपदं दातुं, क्षमं मन्त्रं स्मरान्वहम् ।
विश्वविघ्नहरं ज्येष्ठं, सर्वसिद्धनमः प्रजम् ॥ १४१ ॥
"नमः सर्वसिद्धेभ्यः ॥"
इत्यादीन्यपराण्यत्र, सारमन्त्रपदानि च ।
उद्धृतानि श्रुतस्कन्धाज्जगद्धिताय योगिभिः ॥ १४२ ॥
यानि निर्वेदबीजानि, मनःशान्तिकराणि च ।
ध्येयानि तानि सर्वाणि, बुधैः पदस्थसिद्धये ॥ १४३ ॥
राग-द्वेषाक्षमोहाद्यरयो यान्ति क्षयं सताम् ।
साम्यं संवेगबोधादिगुणाः प्रादुर्भवन्ति च ॥ १४४ ॥
संवरो निर्जरा मोक्षो, मनोजयश्च जायते ।
यैर्मन्त्रौघैः पदैः वर्णैः सारैर्दोपापहैः परैः ॥ १४५ ॥
ते सर्वे मुनिभिर्ध्येयाश्चिन्तनीया मुहुर्मुहुः ।
कथनीयाः परेषां च, भावनीया निरन्तरम् ॥ १४६ ॥
जपनीयाश्च सर्वत्र, निश्चेतव्या स्वमानसे ।
श्रद्धेयाः स्वात्मसिद्धयर्थं, किं वृथा बहुजल्पनैः ॥ १४७ ॥

साक्षात् सिद्धिपद देवाने समर्थ एवा मंत्रनुं हंमेशां तुं स्मरण कर; ते सर्व विघ्नोने हरनारो छे, ज्येष्ठ छे, अने 'सर्वसिद्ध-नमः' शब्दोथी निष्पन्न थयेलो[1] छे ॥ १४१ ॥

ते मंत्र आ प्रकारे छे—"नमः सर्वसिद्धेभ्यः ॥"

आ प्रकारे अहीं आ अने बीजां पण जे साररूप मंत्रपदो छे तेनो, योगीओए जगतना हितने माटे श्रुतस्कन्धमांथी उद्धार कर्यो छे[2] ॥ १४२ ॥

जे निर्वेदनां जनक अने मननी शांति करनारां बीजो छे ते बधां बीजोनुं बुद्धिशाळी पुरुषोए पदस्थ ध्यानननी सिद्धिने माटे ध्यान करवुं ॥ १४३ ॥

(ते मंत्रबीजोना ध्यानथी) सत्पुरुषोना राग, द्वेष, इंद्रियो अने मोहरूप शत्रुओ क्षय पामे छे अने समभाव, संवेग, बोध आदि गुणो प्रगट थाय छे ॥ १४४ ॥

वळी जे दोपहर अने सारभूत पदो, वर्णो, के मंत्रसमूह वडे संवर, निर्जरा, मोक्ष अने मननो जय थाय ते बधानुं मुनिओए वारंवार ध्यान अने चिंतन करवुं जोईए। ते बीजाने कहेवा (आपवा) जोईए अने तेनी निरंतर भावना करवी जोईए ॥ १४५-१४६ ॥

ते (मंत्रो)नो आत्मानी मुक्ति माटे सर्वत्र जाप करता रहेवुं जोईए; पोताना मनमां तेनो निश्चय करवो जोईए; अने तेनां उपर श्रद्धा राखवी जोईए। निरर्थक, बहु कहेवाथी शुं? ॥ १४७ ॥

---

१. ज्ञा. श्लो. १११ । २. ज्ञा. श्लो. ११५ ।

एतत् पदस्थसद्ध्यानं, स्वाधीनं जपनादिभिः।
सर्वत्र सुख-दुःखादिजातावस्थासु कोटिषु ॥ १४८ ॥
कुर्वन्तु ध्यानिनो धीरा, स्वप्नेपि मा त्यजन्तु भोः।
शयनासनसद्वार्तात्रजनादौ शिवाप्तये ॥ १४९ ॥
सन्मन्त्रजपनेनाहो, पापारिः क्षीयतेतराम्।
मोहाक्षस्मरचौराद्यैः, कषायैः सह दुर्धरैः ॥ १५० ॥
मनः परीषहादीनां, जयः कर्मनिरोधनम्।
निर्जरा कर्मणां मोक्षः, स्यात्सुखं स्वात्मजं सताम् ॥ १५१ ॥
वीतरागमुनीन्द्राणां, ध्यानसिद्धिश्च केवलम्।
त्यक्तरागादिदोषाणां, जिनैः प्रोक्ता न संशयः ॥ १५२ ॥
मत्वेति रागदुर्द्वेषावरीन् हत्वा जिताशयाः।
कषायाक्षभटैः सार्धं, क्षमा-तोषादिकायुधाः ॥ १५३ ॥
नानाभेदं प्रकुर्वन्तु, पदस्थध्यानमूर्जितम्।
सर्वयत्नेन सिद्ध्यर्थं, सर्वत्रालम्ब्य साम्यताम् ॥ १५४ ॥

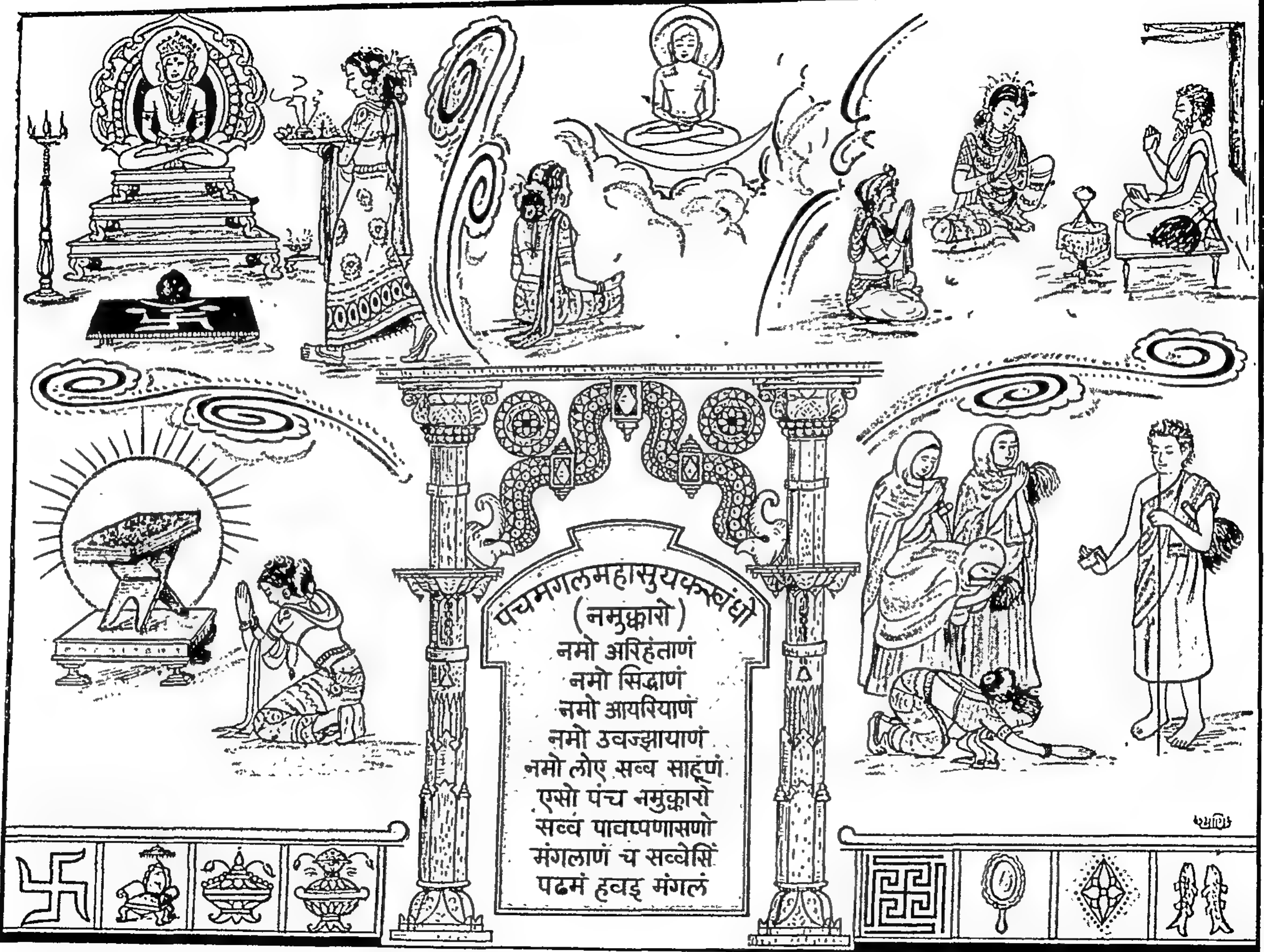
ध्यानी एवा धीरपुरुषोए आ सुंदर पदस्थ ध्यानने सर्वत्र सुख-दुःख-जन्म-जरादि अनेक अवस्थाओमां जपादि वडे स्वाधीन (सुसाध्य) करवुं जोईए। तेनो स्वप्नमां पण त्याग न करवो। शयन-आसन-वार्तालाप-गमन वगेरेमां पण मोक्षप्राप्तिनुं ध्येय सामे राखीने ते (ध्यान) करवुं जोईए। सुंदर मंत्रना जापथी मोह, इन्द्रियो, कामरूप चोर वगेरे दुर्धर कषायो सहित पापशत्रु अत्यंत क्षीण थाय छे। तेथी सत्पुरुषोने मनोजय, परीषह-जय, कर्मनिरोध, कर्मनिर्जरा, मोक्ष अने स्वात्मामांथी उत्पन्न थतुं शाश्वत सुख प्राप्त थाय छे ॥ ॥ १४८-१५१ ॥

श्री जिनेश्वरोए कह्यु छे के "राग, द्वेष आदि दोषोथी रहित एवा वीतराग मुनिओने ज केवळ ध्यानसिद्धि थाय छे, एमां संशय नथी।" एम मानीने मनने जीतनारा साधकोए क्षमा, संतोष वगेरे शस्त्रो वडे कषायो अने इन्द्रियोरूप सुभटोने जीतीने, राग अने द्वेषरूप शत्रुओने हणीने अने सर्वत्र साम्यने धारण करीने सिद्धिने माटे सघळा प्रयत्नोथी समर्थ एवुं विविध प्रकारनुं पदस्थ ध्यान करवुं जोईए॥ १५२-१५४ ॥

परिचय

सोलापुरना श्री जीवराज जैन ग्रन्थालयमांथी 'तत्त्वार्थसारदीपक' नामनी एक हस्तलिखित प्रत मळी हती। प्रत घणी उपयोगी होई तेनी फोटोस्टेटिक नकल कढावीने श्री जैन साहित्य विकास मण्डलना पुस्तकालयमां राखवामां आवी छे। तेना पत्र ५५ थी ६५ एम अगियार पत्र परथी नमस्कार-विषयक संदर्भ तारवीने *अहीं अनुवाद सहित संपादित करेल छे। प्रतमां जणाव्युं* छे तेम तेना कर्ता भट्टारक श्रीसकलकीर्ति छे। तेओ भट्टारक श्रीपद्मनन्दिनी शिष्यशाखामांना एक हता।

प्रस्तुत संदर्भमां 'पदस्थ ध्यान' विशे घणी उपयोगी समज प्राप्त थाय छे, जो के तेना पर श्री शुभचन्द्राचार्यकृत *'ज्ञानार्णव'नी घणी मोटी असर छे अने ते बन्नेना श्लोको सरखावतां तुरत समजाय* छे।



उपासनादर्शक पञ्चपरमेष्ठि चित्रम्

[५६–११]

श्रीसिंहतिलकसूरिविरचित-श्रीमन्त्रराजरहस्यान्तर्गतार्हदादि-पञ्चपरमेष्ठिस्वरूपसंदर्भः ॥

अर्हद्देहाचार्योपाध्याय-मुनीन्द्रपूर्ववर्णोत्थः ।
प्रणवः सर्वत्रादौ, ज्ञेयः परमेष्ठिसंस्मृत्यै ॥ ३१४ ॥ १ ॥

अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-मुनित्वरूपमर्हन्तः ।
पूज्योपचार-देशक-पाठक-निर्विषयचित्तत्वात् ॥ ३१५ ॥ २ ॥

× × ×

प्रणवः प्रागुक्तार्थो, मायावर्णेऽर्हदादिपञ्चकताम् ।
अन्तश्चतुरधिविंशतिजिनस्वरूपमथो वक्ष्ये ॥ ३४२ ॥ ३ ॥

अनुवाद

(ॐकार—)

अरिहंत, अदेह (अशरीरी-सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय अने मुनिना प्रथम वर्णोमांथी (अ+अ+आ+उ+म्=ॐ) निष्पन्न थयेलो प्रणव[1] पञ्चपरमेष्ठीना स्मरण अर्थे (मंगल रूपे) सर्वत्र प्रारंभमां आवे छे ॥ ३१४ ॥ १ ॥

अरिहंतो अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु स्वरूप छे, कारण के तेमनामां पूज्यता होवाथी तेओ अरिहंत छे; उपचारथी (द्रव्यसिद्धत्व होवाथी) तेओ सिद्ध छे; उपदेशकता होवाथी तेओ आचार्य छे; पाठकता होवाथी तेओ उपाध्याय छे अने निर्विषय चित्त होवाथी तेओ साधुरूप छे ॥ ३१५ ॥ २ ॥

× × ×

(ह्रींकार—)

ऊपर प्रणवनो अर्थ कहेवामां आव्यो छे (एटले के ॐकार ते पंचपरमेष्ठीना प्रथम अक्षरो वडे केवी रीते निष्पन्न थयो छे ए कहेवामां आव्युं छे)। हवे मायावर्ण-ह्रींकारना देहमां पंचपरमेष्ठी अने चोवीश तीर्थंकरो केवी रीते छे ते समजावीश ॥ ३४२ ॥ ३ ॥

---

१. सरखावो—"अरिहंता असरीरा आयरिय उवज्झाय तहा मुणिणो ।
पंचक्खरनिप्पन्नो ॐकारो पंचपरमिट्ठी ॥ ९ ॥"

—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६३.

अर्हन्तो वर्णान्तः रेफः सिद्धाः शिरश्च सूरिरिह ।
शुद्धकलोपाध्यायो दीर्घकला साधुरिति पञ्च ॥ ३४३ ॥ ४ ॥
अर्हन्तौ शशि-सुविधिजिनौ सिद्धाः(द्धौ) पद्माभ-वासुपूज्यजिनौ ।
धर्माचार्याः षोडश मल्लिः पार्श्वोऽप्युपाध्यायः ॥ ३४४ ॥ ५ ॥
सुव्रत-नेमी साधुस्त(धू त)त्रार्हन् चन्द्रप्रभः रुजां शान्त्यै ।
सिद्धाः सिन्दूराभास्त्रैलोक्यवशीकृतिं कुर्युः ॥ ३४५ ॥ ६ ॥
सिद्धाक्षररेफाकृतिर्वाग्बीजं वश्यमूर्ध्नि वदने वा ।
आज्ञाचक्रे वाऽरुणरोचि वश्यं तनोत्ययशः ॥ ३४६ ॥ ७ ॥

(पंचपरमेष्ठीना ध्यान माटे ह्रींकारना अंशोनुं आलंबन करतां—) वर्णनी अंते रहेलो 'ह्' ते अरिहंत, रेफ अथवा 'र्' ते सिद्ध, (देवनागरी लिपिनी) सीधी लीटी—मस्तकनी लीटी '—'—ते सूरि, शुद्धकला 'ँ' ते उपाध्याय अने दीर्घकला 'ी' ते साधु—एम (ह्रींकारनी आकृतिना अवयवो–अंशो द्वारा) पांचे (परमेष्ठीओनो ह्रींकारमां समावेश कर्यो) छे ॥ ३४३ ॥ ४ ॥

अरिहंत	सिद्ध	आचार्य	उपाध्याय	साधु
ह्	र्	—	ँ	ी

✓ श्रीचंद्रप्रभ अने श्रीसुविधिनाथ ते अरिहंत; श्रीपद्मप्रभ अने श्रीवासुपूज्य ते सिद्ध; (श्रीऋषभदेव, श्रीअजितनाथ, श्रीसंभवनाथ, श्रीअभिनंदन, श्रीसुमतिनाथ, श्रीसुपार्श्वनाथ, श्रीशीतलनाथ, श्रीश्रेयांसनाथ, श्रीविमलनाथ, श्रीअनन्तनाथ, श्रीधर्मनाथ, श्रीशांतिनाथ, श्रीकुंथुनाथ श्रीअरनाथ, श्रीनमिनाथ, श्रीवर्धमानस्वामी —ते)सोळ धर्माचार्य एटले सूरि, श्रीमल्लिनाथ अने श्रीपार्श्वनाथ ते उपाध्याय छे। श्रीमुनिसुव्रतस्वामी अने श्रीनेमनाथ ते साधु तरीके गणाय छे[1]। तेमां चन्द्र जेवी उज्ज्वल प्रभावाळा [श्रीचंद्रप्रभ (अने श्रीसुविधिनाथ,) जेओ श्वेत वर्णना छे ते] अरिहंतो रोगनी शांति (शांतिकृत्य)[2] माटे छे। सिद्धो जे सिंदूर (लाल) वर्णना (श्रीपद्मप्रभ अने श्रीवासुपूज्य) छे ते त्रण लोकनुं वशीकरण[3] (वशीकरणकृत्य) करे छे ॥ ३४४–३४५ ॥ ५–६ ॥

सिद्धनो अक्षर जे रेफ आकृति ते 'र्' ए वाग्बीज छे। जेनुं वशीकरण करवुं होय तेना मस्तकमां, मुखमां अथवा आज्ञाचक्र (बे भ्रमरोनी वच्चेना स्थान)मां (रकारने चिंतवतो) अगर तो रकारनुं अरुणरोचिलाल किरणमय ध्यान धरतां मे वशीकरणकृत्य करे छे ॥ ३४६ ॥ ७ ॥

---

१. सरखावो—"ससि-सुविही अरिहंता सिद्धा पउमाभ-वासुपुज्जजिणा। धम्मायरिया सोलस पाढो मल्ली उवज्झाया ॥ २ ॥ सुव्वय-नेमी साहू ॥"

—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६१.

२. श्रीमानतुंगसूरिए 'नवकारसारथवण' (गाथा ३, पृ. २६१) मां अरिहंतनुं ध्यान करनाराओने माटे अरिहंतो मोक्ष अने खेचरत्वरूप पौष्टिक कृत्य करे छे, ज्यारे अहीं रोगनी शांति द्वारा शांतिकृत्यरूप फळ बताव्युं छे।

३. सरखावो—"तेल्लुक्कवसीयरणं मोह सिद्धा कुणंतु भुवणस्स ॥"

—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६२.

आचार्याः स्वर्णनिभाः कुर्युर्जलवह्निरिपुमुखस्तम्भम् ।
सूर्यक्षरशीर्षाकृतिदण्डहता न स्युरुपसर्गाः ॥ ३४७ ॥ ८ ॥
नीलाभोपाध्यायो लाभार्थं शुक्लनीलकृद् यदि वा ।
अध्यापकार्द्धचान्द्री कलाऽऽत्मलाभाय परगलके ॥ ३४८ ॥ ९ ॥
कृष्णरुचः साधुजनाः क्रूरदृशोच्चाट-मृत्युदाः शत्रोः ।
साध्वक्षरदीर्घकलाकृत्यङ्कुशमुद्रया हता रिपवः ॥ ३४९ ॥ १० ॥
अर्हन्नम्भः सिद्धस्तेजः सूरिः क्षितिः परे वायुः ।
साधुर्व्योमेत्यन्तर्मण्डलतत्त्वानुगं सदृग् ध्यानम् ॥ ३५० ॥ ११ ॥
'नादो'ऽर्हन् 'व्योम'मुनिः 'कला'ऽथ सिद्धः 'शिरो-ह-रः' सूरिः ।
'ई'कार उपाध्यायो मायायां प्राग्वदुत शेषम् ॥ ३५१ ॥ १२ ॥

आचार्योनो वर्ण सुवर्ण सरखो छे। तेओ जल (पाणीनुं पूर, अतिवृष्टि वगेरे), अग्नि (आग) अने शत्रुना मुखनुं स्तंभन (स्तंभनकृत्य) करे छे[१]। सूरि (आचार्य)नो अक्षर जे शीर्षनी आकृति '—' (देवनागरी लिपिनी सीधी लीटीरूप संज्ञा) रूप दंडथी हणाएला उपसर्गो नाश पामे छे ॥ ३४७ ॥ ८ ॥

उपाध्यायनो वर्ण नील छे ते ऐहिक लाभार्थे छे[२] अने ते शुक्ल—नीलकृत्य (तुष्टि-पुष्टिकृत्य) माटे छे, तेमज अध्यापकनी (ह्रीँकार आकृतिमां रहेली) अर्धचन्द्रकला (ˇ) नुं बीजाना गळामां (?) ध्यान करतां पोता . लाभ थाय छे ॥ ३४८ ॥ ९ ॥

साधुओनो वर्ण श्याम छे तेथी ते (पापीओना मारण अने उच्चाटनकृत्य करवा माटे) शत्रुओने क्रूरदृष्टियी उच्चाटन अने मृत्यु आपनार बने छे[३]। (आकृतिरूपे) दीर्घकला (दीर्घ ईकाररूप) 'ी' छे ते साधुनो अक्षर छे। ते (ईकार— ी) अंकुशमुद्रास्वरूप छे अने तेनाथी शत्रुओ हणाय छे ॥ ३४९ ॥ १० ॥

अरिहंतनुं (जलतत्त्व) वरुणमंडल रूपे, सिद्धनुं अग्निमंडल रूपे, आचार्यनुं पृथ्वीमंडल रूपे, उपाध्यायनुं वायुमंडल रूपे अने साधुनुं व्योममंडल रूपे ध्यान ते देहमां रहेला जलतत्त्वादिना मण्डलोने अनुसरतुं ध्यान छे ॥ ३५० ॥ ११ ॥

अरिहंत ते नाद, मुनि ते व्योम (बिंदु), सिद्ध ते कला, आचार्य ते शिर (देवनागरी लिपिनी)—मस्तकनी लीटी साथे हकार अने रकार, तेमज उपाध्याय ते 'ई'कार छे—एम माया-ह्रीँकारमां पूर्वे जेम (कला, आकृति, तत्त्व वगेरे रूपे विचार कर्यो छे तेम अहीं मंत्रनी दृष्टिए नाद, कला, बिंदुरूपे) विचार कर्यो छे ॥ ३५१ ॥ १२ ॥

△ (नाद)	‿ (कला)	ह (सशिर हृ)	ी (ईकार)	• (विन्दु)
अरिहंत	सिद्ध	आचार्य	उपाध्याय	साधु

---

१. सरखावो—"जल-जलणाई सोलस पयत्थ थंमंतु आयरिया।"
—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६२.

२. सरखावो—"इहलोइय लाभकरा उवज्झाया हुंतु भयसरणा ॥" गा. ५ ।

३. "पावुचाडण-ताडणनिउणा साहू सया सरह ॥" गा. ५ ।
—न. स्वा. (प्रा.वि) पृ. २६२.

शशि-सुविधिजिनौ नादो बिन्दुर्मुनिसुव्रतो व्रती नेमी ।
उद्यच्चन्द्रकलाऽन्तः सिद्धौ पद्माभ-वासुपूज्यजिनौ ॥ ३५२ ॥ १३ ॥

वर्णान्तः सशिरो रः षोडश सूरीश्वरास्तथेकारः ।
पार्श्वो मल्लिर्वाचक इदमपि न विरोधि पूर्ववद्भणितम् ॥ ३५३ ॥ १४ ॥

एकैकोऽर्हत्प्रभृतिः शतादिवर्णानुगोऽनिशं ध्यातः ।
शान्त्यादि कर्मपंङ्क्तु[1] तनोति किन्त्वत्र दिङ्मात्रम् ॥ ३५४ ॥ १५ ॥

परमेष्ठिपञ्चनिर्मितजिनमयमाचार्यमेरुमर्हन्त्वम् ।
त्रैलोक्य-श्रीबीजं सर्वं ध्यायति स सर्वज्ञः ॥ ३५५ ॥ १६ ॥

श्रीचन्द्रप्रभ अने श्रीसुविधिनाथ ते अरिहन्तस्थाने होवाथी ह्रींकारनो 'नाद' अंश छे; श्रीमुनिसुव्रतस्वामी अने श्रीनेमिनाथ ए साधुस्थाने होवाथी ह्रींकारनो 'बिंदु' अंश छे; श्रीपद्मप्रभ अने श्रीवासुपूज्यस्वामी ए सिद्धस्थाने होवाथी ऊगता चंद्रनी 'कला' रूपे छे; सोळ जिनेश्वरो (श्रीऋषभदेव, श्रीअजितनाथ, श्रीसंभवनाथ, श्रीअभिनन्दन, श्रीसुमतिनाथ, श्रीसुपार्श्वनाथ, श्रीशीतलनाथ, श्रीश्रेयांसनाथ, श्रीविमलनाथ, श्रीअनंतनाथ, श्रीधर्मनाथ, श्रीशान्तिनाथ, श्रीकुंथुनाथ, श्रीअरनाथ, श्रीनमिनाथ अने श्रीवर्धमानस्वामी) आचार्य स्थाने होवाथी शिर सहित वर्णोनी अंते रहेलो ह्, जे 'र्' साथेनी आकृति (ह)—ह्रींकारनी अष्टकलारूप अंशवाळो छे, श्रीपार्श्वनाथ अने श्रीमल्लिनाथ ए उपाध्याय स्थाने होवाथी ह्रींकारनो 'ई'कार अंश छे—ए रीते (ह्रींकार)ना चिन्तनमां पूर्वनी जेम विरोध नथी ॥ ३५२–३५३ ॥ १३–१४ ॥

अरिहंत वगेरे एकेकनुं वर्णाक्षरोना सेंकडो (अनेक प्रकारना) आयोजनोनी साथे रोज (?) ध्यान धराय छे तेथी तेओ शान्ति आदि छये कर्मना कल्पकारी थाय छे परंतु अहीं तो तेनुं दिशासूचन मात्र कर्युं छे ॥ ३५४ ॥ १५ ॥

('शतादिवर्णानुगः' नो 'सेंकडो स्तुतिओपूर्वक' अथवा 'सो, हजार वगेरे संख्यामां' एवो पण अर्थ थई शके।)

परमेष्ठिपंचकथी निर्माण थयेलो 'ॐ' ते जिनस्वरूप छे, तेमज आचार्यमेरु (आयरियमेरु) श्री अरिहंत–'अर्हँ' स्वरूप छे, 'ह्रीं'कार ते त्रैलोक्यबीज अने 'श्रीँ' (ज्ञानलक्ष्मी) बीजाक्षर छे, ते—'ॐ श्रीँ ह्रीँ अर्हँ नमः' (अथवा 'ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ नम.') ए सघळानुं ध्यान धरनार सर्वज्ञ बने [redacted] ॥ ३५५ ॥ १६ ॥

---

१. पङ्कं करोति विज्ञान J ।

षट्कोणाकृतिदेहे मध्ये नरमेरुसूर्यबिम्बस्थम् ।
यः सूरिमेरुमन्तः स्वं पश्यति सोऽपि सर्वज्ञः ॥ ३५६ ॥ १७ ॥

शङ्खिन्यन्तः शुपिरितवंशाग्रविलासिमौलिमेरुमये ।
आचार्यमेरुरात्माऽर्हन्निन्दुबिम्बस्थः ॥ ३५७ ॥ १८ ॥

चन्द्रार्कशक्रसङ्गमसमरससिक्तं स्वमौलिमेरुस्थम् ।
यः सूरिमेरुरर्हँ स्वं पश्यति सोऽत्र योगीन्द्रः ॥ ३५८ ॥ १९ ॥

षट्कोणाकृति मनुष्यदेहना मध्यमां नाभिकमल छे, तेमां सूर्यनुं स्थान छे, ते सूर्यना बिंबमां रहेला अरिहंत छे, तेनी अंदर पोते छे, एम जे विचिंतन करे छे ते सर्वज्ञ थाय छे ॥ ३५६ ॥ १७ ॥[1]

[अथवा (ह्रींकार जेनो) देह षट्कोणाकृतिनो छे, तेना मध्यमां पंचपरमेष्ठिरूप ज्योत जे ॐकार छे तेना मध्यमां 'अर्हँ'नो न्यास करीने तेना गर्भमां पोतानो आत्मा छे, एम जे विचिंतन करे छे ते सर्वज्ञ थाय छे. ॥ ३५६ ॥ १७ ॥]

छिद्रवाळा वांसना अग्रभाग ऊपर रहेल होय एम मस्तकनी मेरुमय शंखिनी नाडीमां चंद्रबिंब छे, तेमां अरिहंत विराजे छे अने (ध्यान करनारनो) आत्मा ते आचार्यमेरु (परमात्मा अरिहंत)स्वरूप छे एम चिंतवे (अथवा तो) पोताना मस्तकमां रहेल मेरुमां चंद्रनाडी, सूर्यनाडी अने सुषुम्णानाडीना संगमथी उत्पन्न थयेल जे समरस, तेनाथी सिंचायेला सूरिमेरु स्वरूप 'अर्हँ' अरिहंत ते स्वयं छे—एम जे चिंतवे छे, ते अहीं योगीन्द्र छे (?) ॥ ३५७–३५८ ॥ १८–१९ ॥

---

१. 'सूरिमन्त्रकल्पसंदोह' पृष्ठ ४५ मां 'मेरु' शब्दनो अर्थ अने भावार्थ आ प्रकारे जणाव्यो छे—

"मेरुसद्देण अरिहंतत्तणं वुच्चइ। अरिहंतत्तणेण अरिहंता, जहा चक्केण चक्की, रज्जेण राया। ....

अरिहंतत्तणं मुक्खतरुवीयभूयं अरिहंता अंकुरा। सेसा साहपसाहव्वा णेया। अतः कारणात् मेरुरूपे (आर्हन्त्यरूपे) मन्त्रराजे स्मर्यमाणे जिनप्रभा भवति ।

अर्हन् स्तुत्यगुणसंपूर्णो भगवान्, तेन स्तुतिपदानि भगवतामृद्धिस्थानीयान्युक्तानि ॥"

(अर्थ—) "जेम चक्रथी चक्री अने राज्यथी राजा कहेवाय छे तेम 'मेरु' शब्दथी अरिहंतपणुं कहेवाय छे अने अरिहंतपणाथी अरिहंत ओळखाय छे।......

अरिहंतपणुं ए मोक्षरूपी वृक्षना वीजस्वरूप छे अने अरिहंतो अंकुररूपे छे, बाकीना बीजा शाखा अने प्रशाखाओ कहेवाय छे। ए कारणथी अरिहंतपणारूप मंत्रराजनुं स्मरण करतां भगवाननुं तेज प्राप्त थाय छे।

स्तुति करवा योग्य गुणोथी परिपूर्ण भगवाननां स्तुतिपदो पण ऋद्धिनां स्थान छे, एम कहेवायुं छे।"

आ अर्थने लक्षमां लेतां अहीं जे 'नरमेरु' शब्द जणाव्यो छे ते मानव देहना आत्मानो वाचक छे अने 'सूरिमेरु' ते अरिहंतपणानो वाचक छे। अर्थात् मंत्रनुं अनुष्ठानपूर्वक ध्यान करनारनो आत्मा ज्यारे 'पोते अरिहंत-स्वरूप छे' एम संवेदन करे त्यारे ते सर्वज्ञ बने छे।

अः पृथिवी पीतरुचिः उर्व्योम तडित्प्रभामिराक्रान्तम् ।
मः स्वर्गः कला चन्द्रप्रभमिन्दुनभस्तत्परं ब्रह्म ॥ ४१६ ॥ २० ॥
अ-उ-मो विष्णु-विधीशास्त्रिगुणाः सकलास्तु कृष्ण-पीत-सिताः ।
संसृतिरताश्च निष्कलमभ्रं नादो जिनः सिद्धः ॥ ४१७ ॥ २१ ॥
आलोकेनोपलम्भेन मुनित्वेन च साधितः ।
रत्नत्रयमयो ध्येयः प्रणवः सर्वसिद्धये ॥ ४१८ ॥ २२ ॥
वा 'ॐ' इत्यन्तराप्राणशब्दो यः स्यात् तदुद्भवम् ।
शब्दब्रह्मेत्यसौ युक्त (उक्तः) वाचकः परमेष्ठिनाम् ॥ ४१९ ॥ २३ ॥

(ॐकार—)

('ॐ' ना स्थूल वर्णो 'अ, उ, म्' आ प्रमाणे चिंतववा—) 'अ' ए पृथ्वीरूप (भूः) छे अने तेनी कांति पीळी छे, 'उ' ए आकाश रूप (भुवः) छे अने ते वीजळीनी प्रभाथी भरपूर छे, 'म्' ए स्वर्गरूप (स्वः) छे अने कला चंद्रनी कांति जेवी छे। नभ (बिंदु) ते इंदु छे, तेथी पर (नाद) ते शब्दब्रह्म छे ॥ ४१६ ॥ २० ॥

अ	उ	म्	कला	बिंदु	नाद
भूः	भुवः	स्वः	चंद्रकांति	इन्दु	शब्दब्रह्म

'अ, उ, म्' थी ॐ सकल चिंतवीए तो ते त्रिगुणात्मक छे अने तेना अंशो (अनुक्रमे) ब्रह्मा, विष्णु अने शिव छे–तेनुं ध्यान धराय छे; ए त्रणे अनुक्रमे सत्त्व, रजस् अने तमस् गुणवाळा छे, सकल (देहधारी), श्वेत, पीळा तेम ज श्यामवर्णवाळा[1] अने संसारमां रत छे। कलारहित आकाश (शून्य-बिन्दु) ते नाद छे अने ते ज जिन अथवा सिद्ध छे ॥ ४१७ ॥ २१ ॥

सकल			निष्कल	
अ	उ	म्	बिंदु	नाद
ब्रह्मा	विष्णु	महेश	अरिहंत	सिद्ध

'आलोक'—प्रकाश अर्थात् ज्ञान; 'उपलम्भ'—प्राप्ति अर्थात् दर्शन अने 'मुनित्व' अर्थात् चारित्र—ए वडे साधित (आ + उ + म् = ॐ) त्रण रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) स्वरूप प्रणव (ॐकार) नु सर्व सिद्धि माटे ध्यान करवुं जोईए ॥ ४१८ ॥ २२ ॥

आ	उ	म्
आलोक	उपलम्भ	मुनित्व
ज्ञान	दर्शन	चारित्र

अथवा देहमां 'ॐ' एवो जे प्राणात्मक (प्राणसंचारात्मक) ध्वनि थाय छे तेमांथी शब्दब्रह्म (मातृका) उद्भवे छे, माटे (शब्दब्रह्म-मातृकावाचक होवाथी अने परमेष्ठिओ वाच्य होवाथी) ते ॐकार 'परमेष्ठिओने वाचक' कहेवायो छे ॥ ४१९ ॥ २३ ॥

[1]. सरखावो—'ध्यानबिन्दूपनिषद्'—"अकारः पीतवर्णः स्याद् रजोगुण उदीरितः ॥ १२ ॥ उकारः सात्त्विकः शुक्लो मकारः कृष्ण तामसः ।.. ...॥ १३ ॥"

इत्युक्त्वा हृत्कमले प्रणवं मध्यस्थसूरिमेरुजिनम् ।
स्वर-कादिवर्णयुक्तं यो ध्यायति कुम्भकेन शशिवर्णम् ॥ ४२० ॥ २४ ॥
सिन्दूर-सुवर्णाभं श्यामारुणवर्ण(र्णा)भं क्रमादेषः ।
शान्तिः क्षेमं स्तंभं द्वेषं वश्यं तनोति जन्तूनाम् ॥ ४२१ ॥ २५ ॥
यस्तु द्वादशसहस्रं सामान्यात्प्रणवे जपम् ।
कुर्यात् तस्य परं ब्रह्म स्फुटं द्वादशमासतः ॥ ४२२ ॥ २६ ॥
अर्हद्बिम्बं द्वये सायं प्राणायामत्रयं मुनिः ।
षट्त्रिंशत्प्रणवाभ्यासात्कुर्याद् द्वादशकत्रयात् ॥ ४२३ ॥ २७ ॥
इडायां पूरणं सूर्ये रेचनं कुम्भकेऽन्तरा ।
हृदि द्विषट्पदाम्भोजे सन्ध्याविधिरयं स्मृतः ॥ ४२४ ॥ २८ ॥
सूर्योपस्थानमेतत्तु तदेतदघमर्षणम् ।
एतदेव महासन्ध्या नैवान्यत्किञ्चिदस्त्यतः ॥ ४२५ ॥ २९ ॥
षष्ट्या गुर्वक्षरैर्वारैः पलं षष्ट्या पलैर्घटी ।
षष्ट्यां गुर्वक्षराङ्कोऽयं त्रिसहस्री षट्शती ॥ ४२६ ॥ ३० ॥
अहोरात्रघटीषष्टिगुणा लक्षयुगं तथा ।
सहस्रा षोडशेत्यन्तः प्रणवादजपा मुनेः ॥ ४२७ ॥ ३१ ॥

आ प्रमाणे विवेचन कर्या पछी (प्रांते कहेवानुं के—) हृदयकमलमां स्वर अने व्यंजनोथी युक्त अने जेना मध्यमां सूरिमेरु—ऽर्हं रूप जिन छे एवा प्रणवनुं कुंभक वडे श्वेतवर्णनुं ध्यान करवाथी प्राणीओने शांति, सिंदूर (कुंकुम ?) वर्णनुं ध्यान करवाथी क्षेम, पीतवर्णनुं ध्यान करवाथी स्तंभन, श्यामवर्णनुं ध्यान करवाथी द्वेष अने अरुणवर्णनुं ध्यान करवाथी वश करवानां कृत्यो थाय छे ॥ ४२०–४२१ ॥ २४–२५ ॥

जे साधारण रीते (दररोज) १२००० प्रमाण प्रणव-ॐकारनो जाप करे छे तेने बार महिनामां परब्रह्म (सूक्ष्म परावाक् अथवा आत्मस्वरूप) स्पष्ट थाय छे ॥ ४२२ ॥ २६ ॥

मुनिए बंने संध्याकाळे बार बार संख्याथी त्रण वार—एम छत्रीश प्रणवना अभ्यासथी (पूरक, कुंभक, रेचक स्वरूप) प्राणायाम करवापूर्वक अर्हद् बिंबनुं हृदयमां (अनाहतचक्रना) बार दलना कमलमां ध्यान करवुं । ते वखते इडा नाडीथी पूरक, सुषुम्णाथी कुंभक अने सूर्या (पिंगला) नाडीथी रेचक करवा । आ विधिने 'सन्ध्याविधि' कहेवामां आवे छे ॥ ४२३–४२४ ॥ २७–२८ ॥

आ (विधि) ज (अमारुं) 'सूर्योपस्थान' छे, आ ज (अमारुं) 'अघमर्षण' छे अने आ ज (अमारी) 'महासन्ध्या' छे । आनाथी भिन्न बीजुं कोई सूर्योपस्थान वगेरे तात्त्विक नथी ॥ ४२५ ॥ २९ ॥

(पंचपरमेष्ठी स्वरूप) गुरु अक्षरो ६० वार गणाय तो एक 'पल' थाय अने ६० पलोनी एक 'घडी' थाय । आ रीते गुरु अक्षर ६० वार गणीए तो ३६०० संख्या प्रमाण थाय । दिवस अने रातनी घडीओथी गुणीए (३६०० × ६०) तो २१६००० (बे लाख सोळ हजार) थाय । आ संख्याथी प्रणवनो अजपा (निरंतर) जाप करवो जोईए ॥ ४२६-४२७ ॥ ३०–३१ ॥

घट्यां गुर्वक्षरमिता उच्छ्वासाः स तु एककः ।
दशप्रणवजास्तेन प्राणायामा घटीभवाः ॥ ४२८ ॥ ३२ ॥
त्रिशती सह षष्ट्या स्याद्दशप्रणवजा मुनेः ।
सन्ध्यातो याति नोच्छ्वासः परमेष्ठिस्मृतिं विना ॥ ४२९ ॥ ३३ ॥
परमेष्ठिमयो रत्नमयः सर्वमहोमयः ।
प्रणवः सूरिमन्त्रादौ गौतमस्वामिना कृतः ॥ ४३० ॥ ३४ ॥
वृत्ताकृतिरर्हन्तस्त्रिकोणसिद्धास्तु शीर्षकं सूरिः ।
वाचक इन्दुकलाख्य दीर्घकला साधुरिति पञ्च ॥ ४३१ ॥ ३५ ॥
शीर्ष-मुख-कण्ठ-हृदय-क्रमगतमात्मानमन्यदेहिगतम् ।
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-मुनिपदं तु रक्षार्थं ॥ ४३२ ॥ ३६ ॥

एक घडीमां गुर्वक्षर प्रमाण एटले ३६० उच्छ्वास थाय । तेमां एकेक उच्छ्वासे दश प्रणव (नो जाप) उत्पन्न थाय । आ रीते घडीथी उत्पन्न थनारो ३६०० प्रमाणनो प्रणव कह्यो छे ॥ ४२८ ॥ ३२ ॥

दश प्रणवथी उत्पन्न थता (एक घडीमां) ३६० प्रमाण (जापसंख्या) थाय छे । आथी संध्याथी लईने परमेष्ठीना स्मरण विनानो मुनिनो एक पण उच्छ्वास जतो (होतो) नथी ॥ ४२९ ॥ ३३ ॥

आ प्रणव (ॐकार) पञ्चपरमेष्ठिमय छे; त्रण रत्नमय छे, सर्व प्रकारनी पूजास्वरूप छे, तेथी सूरिमंत्रनी आदिमां पण श्रीगौतमस्वामीए ॐकारनो निर्देश कर्यो छे ॥ ४३० ॥ ३४ ॥

(ह्रींकार—)

ह्रींकारमां वृत्ताकृति '०' बिंदु ते अरिहंत, त्रिकोणाकृति '△' नाद ते सिद्ध, शीर्षक 'ह' मुख्याक्षर ते आचार्य, चंद्रकला '◡' ते वाचक (उपाध्याय) अने दीर्घकला 'ी' ईकार ते साधु—ए रीते पांच परमेष्ठीओ (जणाव्या) छे ॥ ४३१ ॥ ३५ ॥[1]

बीजाना देहमां पोताने स्थापित करवो, त्यां रहेल पोताना शीर्ष, मुख कंठ, हृदय अने चरणस्थानोमां अनुक्रमे अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने मुनि पदोनो न्यास करवो, एथी रक्षा थाय छे । ॥ ४३२ ॥ ३६ ॥[2]

[अहीं एवो पण अर्थ लई शकाय के—पोतानी रक्षा माटे पोताना देहमां न्यास करवो अने अन्यनी रक्षा माटे अन्यना देहमां न्यास करवो ।]

---

१. सरखावो—'वट्टकला अरिहंता तिउणा सिद्धा य लोटकल सूरी ।
उवज्झाया सुद्धकला दीहकला साहुणो सुहया ॥ १० ॥' —न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६३

आ गाथानो भावार्थ तो उपर्युक्त ४३१ श्लोक जेवो ज छे पण आमांनो 'लोटकल' शब्द ध्यानमां लेवा जेवो छे । लोट एटले थाळ, कला-रेखा जेमां छे ते 'ह' समजवो । श्रीहेमचंद्राचार्य 'अभिधानचिंतामणि-वृत्ति'मां जणावे छे के—'सुवर्णं रजतं ताम्रं रीतिः कांस्यं तथा त्रपुः । सीसं च धीवरं चैव अष्टौ लोहानि चक्षते ॥' (पृ० ४१६)

२. सरखावो—'सीसत्था अरहंता सिद्धा वयणम्मि सूरिणो कंठे ।
हिययम्मि उवज्झाया चरणठिया साहुणो वंदे ॥ ८ ॥' —न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६३

अर्हन् भूमिर्नभः सिद्धास्तेजः सूरिः परे पयः।
वायुः साधुरतो मायावीजान्तस्तत्त्वपञ्चकम् ॥ ४३३ ॥ ३७ ॥
पृथ्वी धर्मस्य पदं वारि नभश्चापि शुक्लबीजमिह।
तैजसमार्त्तध्यानं मरुत् तथा रौद्रबीजं स्यात् ॥ ४३४ ॥ ३८ ॥
चन्द्र-कुजावर्हन्तः सिद्धाश्च बुधो बृहस्पतिः सूरिः।
शुक्रो वाचक एवं मुनिरर्क-शनीग्रहास्तत्र ॥ ४३५ ॥ ३९ ॥
नादोऽर्हन्नेतदधः शून्यं व्योमाश्रिता ग्रहाः सप्त।
इति नादार्हद्ध्यानात् सर्वग्रहभूतशान्तिरिह ॥ ४३६ ॥ ४० ॥
अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-मुनीन्द्रसंस्थितास्तिथयः।
नन्दाद्याः पञ्चामूः क्रमशः शान्तिकं प्राग्वत् ॥ ४३७ ॥ ४१ ॥

मायाबीज—ह्रीँकारमां तत्त्वपंचक तथा परमेष्टिपंचकनो मेळ आ प्रमाणे छे—अर्हन् भूमिरूपे, सिद्ध आकाशरूपे, आचार्य अग्निरूपे, उपाध्याय जलरूपे अने साधु वायुरूपे छे[1] ॥ ४३३ ॥ ३७ ॥

अहीं (ध्याननी दृष्टिए) धर्मध्याननुं पद पृथ्वी छे, शुक्लध्याननुं बीज जल तथा आकाश छे, आर्त्तध्याननुं पद अग्नि छे अने रौद्रध्याननुं बीज मरुत् (पवन) छे ॥ ४३४ ॥ ३८ ॥

चंद्र अने मंगल(ना ग्रहचार)नी शांति माटे अरिहंतना, बुध माटे सिद्धना, गुरु माटे आचार्यना, शुक्र माटे उपाध्यायना अने रवि तेमज शनि माटे मुनिनां पदोनी उपासना छे[2] ॥ ४३५ ॥ ३९ ॥

नाद '△' ए अरिहंत छे, नादनी नीचे शून्य '△̣' ते आकाश छे, अने आकाशने आश्रयीने सात ग्रहो रहेला छे। ए रीते नादरूप अरिहंतना ध्यानथी सकल ग्रहो तथा भूतो अंगेनी शांति थाय छे ॥ ४३६ ॥ ४० ॥

तिथिओना पांच विभागो छे :—नंदा (१, ६, ११), भद्रा (२, ७, १२), जया (३, ८, १३), रिक्ता (४, ९, १४) अने पूर्णा (५, १०, १५)। शांतिकर्म माटे अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने मुनिपदोमां ते ते तिथिओनुं अनुक्रमे ध्यान करवुं.[3] ॥ ४३७ ॥ ४१ ॥

---

१. सरखावोः—महिमंडलमरहंता गयणं सिद्धा य सूरिणो जलणो।
वरसं वरमुवज्झाया पवणो मुणिणो हरंतु दुहं ॥ ६ ॥
—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६२

२. सरखावो :—
ससिमंगल अरिहंता बुहो य सिद्धा य सुरगुरू सूरी।
सुक्को उवज्झाय पुणो साहू मंदो सुहं माणू ॥ १८ ॥
—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६५

३. सरखावो :—
नंदा तिहि अरिहंता भद्दा सिद्धा य सूरिणो य जया।
तिहि रित्ता उवज्झाया पुण्णा साहू सुहं दिंतु ॥ १७ ॥
—न. स्वा. (प्रा. वि.) पृ. २६५

चन्द्राभः शशिशान्त्यै कुजस्य पद्मप्रभो गुरोः शान्तिः ।
सूर्यस्य नाभिभूरथ वीरो राहोश्च शान्तिकृते ॥ ४३८ ॥ ४२ ॥
मन्दस्य श्रीपार्श्वो बुधस्य नमिश्च शान्तये तदिह ।
मायाबीजे तत्तत्स्थाने देवं ग्रहं च तं ध्यायेत् ॥ ४३९ ॥ ४३ ॥

इति शान्तिकम् ॥

कुण्डलिनी भुजगाकृति (ती) रेफाश्रित'ह:' शिवः स तु प्राणः ।
तच्छक्तिर्दीर्घकला माया सद्वेष्टितं जगद्वश्यम् ॥ ४४० ॥ ४४ ॥
नाभौ हृदये कण्ठे आज्ञाचक्रेऽथ योनिमध्ये वा ।
सिन्दूरारुणमायाबीजध्यानाद् जगद्वश्यम् ॥ ४४१ ॥ ४५ ॥
प्राग्वद् वर्णानुगतं मायाबीजं विशिष्टकार्यकरम् ।
प्रायः शिरसि त्रिकोणे वश्यकरं कामबीजवत् ॥ ४४२ ॥ ४६ ॥

चंद्रनी शाति माटे श्रीचन्द्रप्रभ, मगलनी शाति माटे श्रीपद्मप्रभ, गुरुनी शांति माटे श्रीशांतिनाथ, सूर्यनी शांति माटे श्रीऋषभदेव अने राहुनी शांति माटे श्रीवीर, शनिनी शांति माटे श्रीपार्श्वनाथ अने बुधनी शाति माटे श्रीनमिनाथ—एम मायाबीज ह्रींकारमां ते ते तीर्थंकरोना स्थाने ते ते ग्रहनुं ध्यान करवु ॥ ४३८–४३९ ॥ ४२–४३ ॥

रेफथी युक्त ह (ह्र) ते भुजग(सर्प)नी आकृतिवाळी कुंडलिनी छे । केवल 'ह' ते शिवं छे, ते ज प्राण छे, दीर्घकला (ी दीर्घ ईकार) ए तेनी शक्ति–माया छे, मात्राथी वेष्टित (मोहित) जगत छे, जगत 'ह्रीं' ना ध्यानथी वश थाय छे (१) ॥ ४४० ॥ ४४ ॥

नाभि(मणिपुरचक्र)मां, हृदय(अनाहतचक्र)मां, कंठ(विशुद्धचक्र)मां, आज्ञाचक्र(भ्रूमध्यभाग)मां अथवा योनिमध्य(स्वाधिष्ठानचक्र)मां सिंदूर समान अरुणवर्णवाळा मायाबीज(ह्रींकार)नु ध्यान करवाथी जगत वश थाय छे ॥ ४४१ ॥ ४५ ॥

मायाबीज–ह्रींकारनुं ते ते वर्णने अनुसार ध्यान कराय तो ते विशिष्ट कृत्यकारी थाय छे । प्रायः मस्तकमां—त्रिकोणमा तेनुं ध्यान करवाथी ते कामबीज (क्लीं)नी माफक वशीकरण माटे थाय छे ॥ ४४२ ॥ ४६ ॥

---

१. सरखावो :—

" अकारो भुजगाकृत्या कुण्डली विश्वजन्मभू" ।
तत्परो हः शिवः स्वात्मा राजतेऽर्हे इत्यतः ॥

—सूरिमन्त्रकल्पसंदोह, परिशिष्ट पृष्ठ–२

हः शम्भुः सेन्दुकलो ब्रह्मा रस्तुर्यकः स्वरो विष्णुः ।
संसृतिरस्या विन्दुं दत्त्वा नादो विभात्यर्हन् ॥ ४४३ ॥ ४७ ॥

वर्णान्तः पार्श्वजिनः कला फणा विन्दुरत्र-नाद(ग)महः ।
नागो र ई तु पद्मा तत्रार्हन् सूरिमेरुमयः ॥ ४४४ ॥ ४८ ॥

वारि-घट-पत्र-यन्त्रे मूर्धनि भाले सुपुष्प-नैवेद्यैः ।
संपूज्यामुं जापः करपर्वभिरब्जबीजाद्यैः ॥ ४४५ ॥ ४९ ॥

मायाबीजं लक्ष्यं(क्षं) परमेष्टि-जिनौलि-रत्नरूपं यः ।
ध्यायत्यन्तर्वीरं हृदि स श्रीगौतमः सुधर्मा च ॥ ४४६ ॥ ५० ॥

इति मायाबीजम् ॥

इंदुकलायुक्त ह अर्थात् 'हँ' ए शंभुनो वाचक छे, 'र्' ए ब्रह्मानो वाचक छे अने चोथो स्वर 'ई' ए विष्णुनो वाचक छे। एनाथी [1] संसारनी प्रवृत्ति थाय छे, तेना ऊपर विन्दु—शून्य दइए, अर्थात् मींडुं मूकीए तो ते 'नाद' छे अने ते स्वयं 'अर्हन्' रूपे शोभे छे ॥ ४४३ ॥ ४७ ॥

हँ	र्	ई	△
हर	ब्रह्मा	विष्णु	अरिहंत

वर्णनी अंते रहेल 'ह्' ए पार्श्वजिन छे, कला ए फणा छे, विन्दु ए नागना मस्तके रहेल मणि छे, 'र्' ए नाग–धरणेन्द्र छे अने 'ई' ए पद्मावती देवी छे, तेमां अरिहंतनी आकृति ते सूरिमेरु छे ॥ ४४४ ॥ ४८ ॥

ह्	˘	·	र्	ई
पार्श्वजिन	फणा	नागमणि	धरणेन्द्र	पद्मावती

(जाणे) जलथी पूर्ण कलश होय अने तेना पर पवित्र पांदडां मूकेलां होय एवा आकारवाळा (सिद्धचक्र समान) यंत्रना उपरना भागमां 'ह्रीँ' कारने स्थापन करी तेनी पूजा करवी, पछी आंगळीना वेढा वडे, कमलाकार वडे अथवा रुद्राक्षादि माला वडे तेनो जाप करवो (?) ॥ ४४५ ॥ ४९ ॥

मायावीज–ह्रीँकार परमेष्टिमय छे, जिनावलीमय (चोवीश तीर्थंकरमय) छे अथवा तो त्रण रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र)मय छे, ए प्रकारे मायावीज–ह्रीँकारने लक्ष्यमां राखीने हृदयमां जे श्रीवीर भगवंतनुं ध्यान करे छे ते श्रीगौतम गणधर अथवा श्रीसुधर्मा गणधर सदृश थाय छे ॥ ४४६ ॥ ५० ॥

---

१. संसारने विन्दु (शून्य–मींडुं) दईए अर्थात् सांसारिक प्रवृत्ति बंध करीए तो आत्मा अर्हन् थाय छे, एवो पण अर्थ लई शकाय।

आद्यं हान्तं शब्दब्रह्मोर्ध्वाधो 'र'वह्निरत्नयुतम् ।
चन्द्रकला सिद्धिपदं विन्दुनिभोऽनाहतः सोऽर्हन् ॥ ४४७ ॥ ५१ ॥
षोडश चतुरधिविंशतिरष्टौ नाभौ दलानि हृदि मूर्ध्नि ।
आद्यं हान्तं वर्णाः शारदिन्दुकला-नमःप्रभवाः ॥ ४४८ ॥ ५२ ॥
नादस्त्वात्मोर्ध्वाधो रेफाञ्जिनरत्नयुक्त इत्यर्हम् ।
द्वयोऽन्तर्ब्रह्माब्जं नाभ्यन्तः शक्तिकुण्डलिनी ॥ ४४९ ॥ ५३ ॥
इति सर्ववर्णमूर्तिं अर्हन्तं सर्वमेरुगतमन्तः ।
ध्यायन् सूरिः सकलागमार्थवक्ता गतभ्रान्तिः ॥ ४५० ॥ ५४ ॥

(अर्हँ–)

अर्हँ मा अ अने ह् (अथी माडीने ह् सुधीनां मातृकारूप) शब्दब्रह्मना सूचक छे, रेफरत्नत्रितयने बनावे छे, चन्द्रकला (˘) ते सिद्धिपद छे अने बिंदुसदृश जे अनाहत (नाद) छे ते अरिहंत छे[1] ॥४४७॥५१॥

'अ' थी 'ह्' सुधीना (४९) वर्णो छे। तेमांथी 'अ' थी 'अः' सुधीना सोळ स्वरो नाभिकमल (मणिपूरचक्र)ना सोळ दलोमां, 'क्' थी 'भ्' सुधीना चोवीश व्यञ्जनो हृदयकमल-(अनाहतचक्र)ना चोवीश दलोमा अने 'य्' थी 'ह्' सुधीना आठ व्यञ्जनो ललाटकमल(आज्ञाचक्र) ना आठ दलोमां—ए प्रकारे ४८ वर्णो, शरद ऋतुना चन्द्रसदृश कला (˘) अने बिन्दुथी युक्त चितववो। कला ˘ (वक्ररेखा) बिंदु अने नाद (सरल रेखा)नी संयोजनाथी मातृकाना वर्णो उत्पन्न थाय छे। (ते 'म्' सिवायना 'अ' थी 'ह्' सुधीना ४८ वर्णो थाय; तेमना ऊपर जे कला अने बिन्दुरूपे नाद छे ते 'म्' छे। 'म्' ने हृदयकमलनी वचे चिंतववो। आ प्रमाणे नाभिकमलनो पहेलो वर्ण 'अ,' ललाटकमलनो छेल्लो वर्ण 'ह्' अने हृदयकमलनो वचलो वर्ण 'म्' मळीने 'अर्हँ' थाय।) अर्हँ ते स्वात्मा छे। उपरनो अने नीचेनो 'र'कार श्रीजिनेश्वर भगवंतना रत्नत्रयनो सूचक छे। तेनाथी सहित थतां स्वात्मा–अर्हँ–परमात्मा बने छे। 'अर्हँ' ने ब्रह्माब्ज(ब्रह्मरंध्र)मां चिंतववो अने नाभिकमलनी मध्यमां कुंडलिनी शक्ति चिंतववी ॥ ४४८–४४९ ॥ ५२–५३ ॥

ए रीते 'अर्हँ' ए अरिहंतनी साक्षात् सर्ववर्णमय मूर्ति छे। ए अर्हँनुं संपूर्ण मेरुदंडमां (मेरुदंडगत-सुषुम्णा नाडीमां) ध्यान करनार सूरि भ्रान्तिरहित थईने सर्व आगमोना अर्थना प्रवक्ता बने छे ॥४५०॥५४॥

---

१. सरखावो :—

आद्यन्ताक्षरसंलक्ष्यमक्षरं व्याप्य यत् स्थितम् ।
अग्निज्वालासमं नाद-बिन्दु-रेखासमन्वितम् ॥ १ ॥
अग्निज्वालासमाक्रान्तं मनोमलविशोधकम् ।
देदीप्यमानं हृत्पद्मे तत्पदं नौमि निर्मलम् ॥ २ ॥

—'ऋषिमण्डलस्तोत्र'

२. सरखावो—योगशास्त्र, प्रकाश ८, श्लो. नं. १८-२२ नी व्याख्या।
३. सरखावो— ,, ,, ,, श्लो. २–४।
४. ,, ,, ,, ,, श्लो. ८।

उक्तं च—

कमलदलोदरमध्ये ध्यायन् वर्णाननादिसंसिद्धान् ।
नष्टादिविषयबोधो ध्यातुः संपद्यते कालात् ॥ ४५१ ॥ ५५ ॥

अर्हँजपात् क्षयमरोचकमग्निमान्द्यं
कुष्ठोदरामकसन-श्वसनानि हन्ति ।
प्राप्नोति चाप्रतिमवाक् महतीं महद्भ्यः
पूजां परत्र च गतिं पुरुषोत्तमाप्ताम् ॥ ४५२ ॥ ५६ ॥

अपि च—

कनककमलगर्भे कर्णिकायां निषण्णं
विगततमसमर्हँ सान्द्रचन्द्रांशुगौरम् ।
गगनमनुसरन्तं सञ्चरन्तं हरित्सु
स्मर जिनपतिकल्पं मन्त्रराजं यतीन्द्र ! ॥ ४५३ ॥ ५७ ॥

इति सर्वत्रगं ध्यायन्नर्हमित्येकमानसः ।
स्वप्नेऽपि तन्मयो योगी किञ्चिदन्यन्न पश्यति ॥ ४५४ ॥ ५८ ॥

कह्युं छे के—

अनादिसंसिद्धवर्णोनुं कमलपत्रनी अंदर जे ध्यान करे छे तेने नष्ट (चोरायेली) वस्तु वगेरे विषयनुं ज्ञान समय जतां थाय छे[1] ॥ ४५१ ॥ ५५ ॥

'अर्हँ' मन्त्रराज जाप द्वारा क्षय, अरुचि, अपचो, कोढ, आमरोग, खांसी, श्वास वगेरे (रोगोनो) नाश करे छे; जाप करनार अप्रतिम वाणीवाळो बने छे, महापुरुषोनी पण पूजाने प्राप्त करे छे अने परलोकमां उत्तम पुरुषोए प्राप्त करेली गतिने मेळवे छे[2] ॥ ४५२ ॥ ५६ ॥

हे मुनिवर ! तुं अज्ञानरूप अंधकारथी रहित, घन एवां चन्द्रकिरणोना जेवी गौर कांतिवाळा अने साक्षात् जिनपति समान एवा मंत्रराज अर्हँ (नाभिगत) सुवर्णकमलनी मध्यमां विराजमान छे, एम प्रथम चिंतव । ते पछी ते आकाशमां जाय छे अने सर्वदिशाओमां संचरे छे, एम चिंतव ॥ ४५३ ॥ ५७ ॥

आ प्रकारे सर्वत्र जता एवा 'अर्हँ' नुं एक चित्तथी ध्यान करतो अने तेमां लीन थतो योगी स्वप्नमां पण ए (अर्हँ) सिवाय बीजुं जोतो नथी[3] ॥ ४५४ ॥ ५८ ॥

---

१. जुओ ज्ञानार्णव, पृ. ३८७, श्लो. १.

२. जुओ 'ज्ञानार्णव' पृ. ३८७, श्लो. २, तथा योगशास्त्र; अष्टम प्रकाश, श्लो० ५ अने व्याख्या ।

३. सरखावो—योगशास्त्र; अष्टम प्रकाश, श्लो. १४-१५.

अर्हं लक्ष्यीकृत्य ध्यायन् नादादिविच्युतं शशिनम् ।
यद्वर्णमात्रमक्षरभावोज्झितमीरितं शक्यम् ॥ ४५५ ॥ ५९ ॥
पश्यत्यनाहताभिधदेवमसौ सूक्ष्मलक्ष्यगतः ।
तस्माच्च गलितलक्ष्यो ज्योतिर्मयमीक्षते विश्वम् ॥ ४५६ ॥ ६० ॥
मन्त्रराजसमुद्भूतानाहतस्थितचेतसः ।
सिध्यन्ति सिद्धयः सर्वा अणिमाद्याः स्वयं यतेः ॥ ४५७ ॥ ६१ ॥
इति पिण्डस्थिति-पदगत-रूपाश्रित-रूपवर्जिताभ्यासात् ।
अर्हं मेरुध्यातुस्तत्तद्भवसिद्धिसाम्राज्यम् ॥ ४५८ ॥ ६२ ॥
अकारः श्रीपतिः सान्तः सेन्दुः शम्भुर्विधिश्च रः ।
ऊर्ध्वमेतन्नभोलोकस्तदन्तेऽनाहतो जिनः ॥ ४५९ ॥ ६३ ॥
अर्हं त्रैलोक्यपूज्यत्वाद् (?) अनन्तकरुणा जिनाः ।
सद्रत्नत्रयभाजस्तदर्हं सर्वबीजकम् ॥ ४६० ॥ ६४ ॥

आ रीते अर्हंना पदस्थ ध्यान पछी नाद वगेरेथी रहित (अ, रेफ, बिन्दु अने कलाथी रहित) उज्ज्वल 'ह' वर्णनुं ध्यान करवुं। आ 'ह' अक्षरभावने प्राप्त कहेवाय। ते 'ह' हवे वर्णमात्र (वाचाथी अनुच्चार्य) रहे अने अनक्षरताने पामे, ते माटे तेने चन्द्रकलाकारे चिंतववो। आ रीते सूक्ष्म लक्ष्य (चन्द्रकला)मां स्थिर थयेलाने चन्द्रकलाना आकारवाळा श्री अनाहतदेवनां दर्शन थाय छे। पछी ते अनाहत—चन्द्रकलाने सूक्ष्मातिसूक्ष्म–वालाग्रसदृश–बिंदुरूप चिंतववी, पछी ते लक्ष्यथी पण मनने खसेडी लेवुं। ते पछी योगी विश्वने ज्योतिर्मय जुए छे ॥ ४५५–४५६ ॥ ५९–६० ॥

मन्त्रराज(अर्हं)थी उत्पन्न–उपस्थित थयेला अनाहत देवमां जेणे मनने स्थिर कर्युं छे ते यतिने अणिमा वगेरे बधी सिद्धिओ स्वयं सिद्ध थाय छे ॥ ४५७ ॥ ६१ ॥

आ प्रकारे पिंडस्थ, पदस्थ, रूपाश्रित अने रूपातीतना अभ्यासथी 'अर्हं'–मेरुनुं पूर्वोक्त रीते ध्यान करनारने ते ते भवोमां अनेक सिद्धिओ रूप साम्राज्य प्राप्त थाय छे ॥ ४५८ ॥ ६२ ॥

('अर्हं'मां रहेल) 'अ' ते विष्णुस्वरूप छे, 'स'नी अंते रहेल अने इन्दुकला '˘' सहित एवो 'ह्' अर्थात् 'हूँ' ते शंभुस्वरूप छे अने 'र्' ब्रह्मास्वरूप छे, एनाथी ऊपर बिंदु ते लोकाकाश छे अने बिन्दु पछी जे अनाहत प्रगटे छे, ते लोकाकाशना अंते (सिद्धशिलाना उपर) रहेल 'जिन' छे ॥ ४५९ ॥ ६३ ॥

'अर्हं' एटले त्रणे लोकने पूज्य, अनन्तकरुणावाळा अने रत्नत्रयने धारण करनारा श्री जिनेश्वर भगवंतो छे, तेथी अर्हं सर्व सद्वस्तुओनी प्राप्तिनुं बीज छे ॥ ४६० ॥ ६४ ॥

---

१. सरखावो—योगशास्त्र; अष्टम प्रकाश, श्लो. २४-२५-२६ ।
२. ,, ,, ,, ,, श्लो० २७-२८ ।

वर्णान्तः श्रीवीरो रेफः सिंहासनं तु चन्द्रकला ।
रुचिदण्डच्छत्रत्रयं मन्त्रकलशोऽस्य नादशिखा ॥ ४६१ ॥ ६५ ॥
वर्णान्तस्तीर्थकरस्त्रिकोणकोटीरमथ सितांशुकला ।
सर्वत्र शीतलेश्या शून्यं शुक्लं ततः परं सिद्धिः ॥ ४६२ ॥ ६६ ॥
रेफद्वयाद्यमयुतं तयोर्ध्वरेफमधःस्थरेफं वा ।
अत्यक्तसान्तबीजं मन्त्रतनुर्जिनपतिः साक्षात् ॥ ४६३ ॥ ६७ ॥
त्रैलोक्यवर्तिशाश्वतजिनदर्शन-पूजन-स्तुतिभवेन ।
जिनपतिबीजोऽष्टशतं स्मरन् फलेन स्वयं व्रियते ॥ ४६४ ॥ ६८ ॥

अथवा, वर्णान्त–'ह्' ए वीर भगवंतनो वाचक छे, (नीचेनो) रेफ–'र्' ते सिंहासन छे अने चंद्रकला 'ँ' ए (ऊपरना) ह् रूपी (त्रण) दंड ऊपर रहेल त्रण छत्र स्वरूप छे अने तेनी नादशिखा (बिन्दु) अहीं मन्त्रकलश स्वरूप छे ॥ ४६१ ॥ ६५ ॥

अथवा—वर्णनी अंते रहेलो 'ह्' तीर्थंकर स्वरूप छे, 'र्' त्रिकोणकोटि (?) छे, अर्धचन्द्रकला ते सर्वत्र शुक्लेश्यानी सूचक छे, शून्य ते शुक्लध्याननुं प्रतीक छे, अने ते पछी सिद्धि प्राप्त थाय छे ॥ ४६२ ॥ ६६ ॥

बे रेफ, आद्य–अ अने म– ँ थी युक्त अने ह बीज सहित एवो अर्हँ ए श्रीजिनपतिनो साक्षात् मंत्र छे। अथवा ऊर्ध्व रेफ सहित ह (र्ह) अथवा अधो रेफ सहित ह (ह्र) अथवा बन्ने रेफ सहित (र्ह्र):— ए त्रणे पण मंत्रदेहधारी साक्षात् जिनपति छे ॥ ४६३ ॥ ६७ ॥

जिनपतिबीज 'अर्हं'नुं १०८ वार स्मरण करनार त्रणे लोकमां रहेली शाश्वत जिनप्रतिमाओनां दर्शन, पूजन अने स्तुतिथी थनारां फळो वडे स्वयं वराय छे (ए फळो तेने स्वयं वरे छे) ॥ ४६४ ॥ ६८ ॥

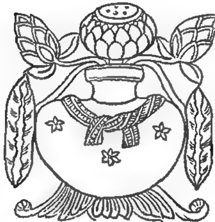
परिचय

मंत्र, गणित, ज्योतिष् वगेरे विषयोना पारगामी आचार्य श्रीसिंहतिलकसूरिए सूरिमंत्र विशे 'मंत्रराज-रहस्य' नामनो आर्या, अनुष्टुप्-छंदमां ६३२ गाथाओ (ग्रंथाग्र ८००)नो सूरिमंत्र विषयनो माहितीपूर्ण एक विशिष्ट ग्रंथ वि. सं. १३२७मां रच्यो छे, जे अद्यावधि अप्रसिद्ध छे। तेनी एक ह. लि. प्रति वडोदरा, श्रीमुक्तिकमलज्ञानमंदिरना संग्रहमांथी मळी हती। बीजी प्रति पाटण, पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजकना संग्रहमांथी प्राप्त थई हती। अने त्रीजी प्रति डभोई, श्री अमरविजयजी ज्ञानभंडारमांथी मळेली; परंतु त्रणे प्रतिओ अशुद्ध हती। छेवटे चोथी प्रति जयपुर, तपगच्छ जैनभंडारनी मळी, तेना ऊपरथी मूळ ग्रंथनुं संशोधन थई शक्युं छे।

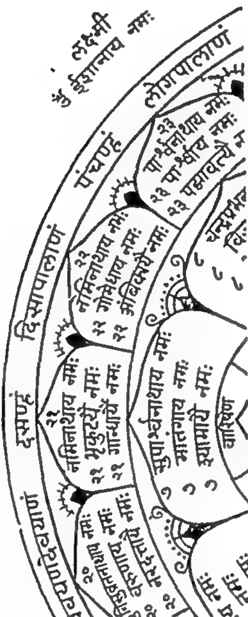


आ 'मंत्रराजरहस्य' ग्रंथमां अर्हँ, ह्रीँ, ॐ वगेरे मंत्रबीजो ऊपर व्यापकदृष्टिए विवेचन करेलुं छे अने तेनुं रहस्य तेमज उपासना संबंधी हकीकतो दर्शावी छे। आ विषय नमस्कार विषयने लगतो होवाथी तेटलो संदर्भ तारवी चारे प्रतिओथी शुद्ध करी अनुवाद साथे अहीं आपीए छीए।

श्रीसिंहतिलकसूरिए अनेक ग्रंथोनी रचना करेली छे। प्रत्येक ग्रंथमां तेमणे पोताना गुरु श्रीविबुधचंद्रसूरिनो मानभर्यो उल्लेख कर्यो छे, केटलेक स्थळे तो पोताना प्रगुरु श्रीयशोदेवसूरिनुं पण स्मरण कर्युं छे। तेमणे पोतानी घणीखरी कृतिओने अंते साह्लाददेवतानी कृपानो उल्लेख कर्यो छे।



अट्ठमहारिद्धीओ
हिरि-सिरि-लच्छि-बुद्धी-कंतीओ।
विजया जया जयंती
वियरइ अपराजिया वि तहिं॥



श्रीसिंहतिलकसूरिसंदृब्धः परमेष्ठिविद्यायन्त्रकल्पः

श्रीवीरजिनं नत्वा वक्ष्ये श्रीविबुधचन्द्रपूज्यपदम् ।
गणिविद्यायुगपदतो यन्त्रं परमेष्ठिविद्यायाः[1] ॥ १ ॥
त्रि[2]प्राकारं क्रमशश्च[4]तुर[8]ष्ट-द्व्य[16]ष्टपत्रपद्मान्तः ।
किञ्जल्क[3]पूज्यबीजं यन्त्रं लेख्यं सुरभिदलैः ॥ २ ॥
मध्येऽर्हूँ ऊर्ध्वादिषु सि[1] आ[2] उ[3] सा[4] रेखिका दलचतुष्के ।
ऋ[1]षभोऽथ व[2]र्द्धमानश्च[3]न्द्राननो वा[4]रिषेणको दिक्षु ॥ ३ ॥
अष्टदलेषु क्रमशो युगादिनाथाय तन्नमोऽत्रैव ।
गोमुख-चक्रेश्वर्यौ शस्यं कान्तं जिनः सुरश्च सुरी ॥ ४ ॥
द्व्यष्टदलेषु क्रमशः सुविधिजिनाय नम इत्यथ ।
त्रिदशदेवं श्रीवीरान्तमेवं तद् वच्मि नामानि ॥ ५ ॥

अनुवाद

गणधरो अने देवेन्द्रोने पण पूज्य छे चरण जेमना एवा श्री जिनेश्वर भगवंतने नमस्कार करीने गणिविद्यानी साथोसाथ अहींथी जेनां पदो गुरुदेव श्री विबुधचन्द्रसूरिने अत्यन्त पूज्य हता एवा 'परमेष्ठि-विद्या'ना यंत्र विशे वर्णन करीश ॥ १ ॥

(यन्त्र रचना–)

त्रण गढ(ना आकार)मां क्रमशः चार, आठ अने सोळ पत्रोवाळा कमळनी अंदर यंत्रना कमळनी कर्णिकामां पूज्यबीज (अर्हूँ) मूकीने यंत्रने सुवासित द्रव्योथी आलेखवुं ॥ २ ॥

मध्यमां 'ऽर्हूँ' अने ऊर्ध्वादि चार दलोमां 'सि, आ, उ, सा 'नां रेखाचित्रो (आलेखवां) अने चार दिशाओमां क्रमशः 'ऋषभ, वर्धमान, चन्द्रानन, वारिषेण' एवां नाम लखवां ॥ ३ ॥

(कमळनां) आठ पत्रोमां क्रमशः—'युगादिनाथाय नमः', 'गोमुखाय नमः', 'चक्रेश्वर्यै नमः' ए प्रकारे जिनेश्वर, (शासन) देव अने (शासन) देवीनां नामो श्रीचन्द्रप्रभ जिनेश्वर सुधी लखवां, (कमळनां) सोळ पत्रोमां 'सुविधिजिनाय (नाथाय) नमः 'थी लईने देवाधिदेव एवा श्रीवीर भगवान सुधीनां नामो देव अने देवी साथेनां आलेखवां। ते नामो आ प्रकारे जणावुं छुं ॥ ४–५ ॥

---

1 ०ग्रायाम् झ । 2 वप्राकारं झ । 3 पूज्यं नी० झ । 4 जिन-सुराश्च झ ।

युगादीशोऽजितस्वामी संभवोऽप्यभिनन्दनः।
सुमतिः पद्मलक्ष्मा श्रीसुपार्श्वश्चन्द्रलाञ्छनः॥ ६॥
सुविधिः शीतलः श्रेयान् वासुपूज्यप्रभुस्ततः।
विमलानन्त-धर्म-श्रीशान्ति-कुन्थुररो जिनः॥ ७॥
मल्ली श्रीसुव्रत-नमी नेमिः' श्रीपार्श्वतीर्थकृत्।
वीरश्च जिननामान्ते नाथाय नम इत्यदः॥ ८॥
श्रीगोमुखो महायक्षस्त्रिमुखो यक्षनायकः।
तुम्बरुः सुमुखस्तस्माद् मातङ्गो विजयोऽजितः॥ ९॥
ब्रह्मा यक्षेट् कुमारः षण्मुख-पाताल-किन्नराः।
गरुडो गान्धर्वो यक्षेन्द्रः(द्) कुबेरो वरुणस्तथा॥ १०॥
भृकुटिर्गोमेधः पार्श्वो मातङ्गोऽमी जिनाश्रिताः।
चक्रेश्वर्यजितबला दुरितारिश्च कालिका॥ ११॥
महाकाल्यच्युता श्यामा भृकुटी च सुतारि(र)का।
अशोका मानवी चण्डा विदिताऽथ प्रियाङ्कुशा॥ १२॥
कन्दर्पा निर्वाणी बला धारिणी धरणप्रिया।
नरदत्ताऽथ गान्धार्यम्बिका पद्मावती तथा॥ १३॥
सिद्धायिका इमा जैन्यः क्रमाच्छासनदेवताः।
जिन-देवं-सुरी (?) नामत्रयं प्रति दलं दलम्॥ १४॥

---

१. युगादीश, २. अजितस्वामी, ३. संभव, ४. अभिनन्दन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि, १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनंत, १५. धर्म, १६. शांति, १७. कुंथु, १८. अर, १९. मल्ली, २०. सुव्रत, २१. नमि, २२. नेमि, २३. पार्श्व अने २४. वीर—आ जिनेश्वरोना नामोनी अंते 'नाथाय नमः' ए पद जोडीने लखवु ॥६–८॥

(ते प्रत्येक जिनेश्वरनी नीचे क्रमशः—) १. गोमुख, २. महायक्ष, ३. त्रिमुख, ४. यक्षनायक, ५. तुम्बरु, ६. सुमुख (कुसुम), ७. मातंग, ८. विजय, ९. अजित, १०. ब्रह्मा, ११. यक्षेट् (मनुज), १२. कुमार, १३. षण्मुख, १४. पाताल, १५ किन्नर, १६. गरुड, १७. गांधर्व, १८. यक्षेन्द्र (यक्षेट्), १९. कुबेर, २०. वरुण, २१. भृकुटि, २२. गोमेध, २३. पार्श्व अने २४. मातंग—आ (बधा) जिनेश्वरदेवोने आश्रित (शासनदेवो) छे॥ ९–११॥

(ते प्रत्येक जिनेश्वर अने देवनी नीचे क्रमशः—) १. चक्रेश्वरी, २. अजितबला, ३. दुरितारि, ४. कालिका, ५. महाकाली, ६. अच्युता, ७. श्यामा, ८. भृकुटी, ९. सुतारका, १०. अशोक,

---

5 ०धर्मा श्री० ह्र। 6 मल्लिः श्री० ह्र। 7 नेमि श्री० ह्र। 8 कुसुम० इति नाम अभिधानचिन्तामणौ। 9 मनुज० इति नाम अभिधानचिन्तामणौ। 10 चण्डी अ। 11 ०वसूरिना० अ।

एकोऽर्हन् सिद्धाद्याः षट् तीर्थेश्वराः क्रमादथवा ।
चन्द्राभ-सुँविध्याद्या अर्हत्-सिद्धादयः प्राग्वत् ॥ १५ ॥

---

११. मानवी, १२. चण्डी, १३. विदिता, १४. प्रियांकुशा, १५. कंदर्पा, १६. निर्वाणी, १७. बला, १८. धारिणी, १९. धरणप्रिया, २०. नरदत्ता, २१. गांधारी, २२. अंबिका, २३. पद्मावती अने २४. सिद्धायिका—आ जैन शासनदेवीओ छे तेने क्रमशः आलेखवी। आ प्रकारे प्रत्येक पत्रमां जिनेश्वर, (शासन) देव अने (शासन) देवी—एम त्रण नामो लखवां ॥ ११-१४ ॥

(कमळनां आठ पत्र पैकी—

पहेला पत्रमां—युगादिनाथाय नमः। गोमुखाय नमः। चक्रेश्वर्यै नमः।
बीजा पत्रमां—अजितनाथाय नमः। महायक्षाय नमः। अजितबलायै नमः।
त्रीजा पत्रमां—संभवनाथाय नमः। त्रिमुखाय नमः। दुरितार्यै नमः।
चोथा पत्रमां—अभिनन्दननाथाय नमः। यक्षाय नमः। कालिकायै नमः।
पांचमा पत्रमां—सुमतिनाथाय नमः। तुम्बरवे नमः। महाकाल्यै नमः।
छट्ठा पत्रमां—पद्मप्रभनाथाय नमः। सुमुखाय (कुसुमाय नमः)। अच्युतायै नमः।
सातमा पत्रमां—सुपार्श्वनाथाय नमः। मातङ्गाय नमः। श्यामायै नमः।
आठमा पत्रमां—चन्द्रप्रभनाथाय नमः। विजयाय नमः। भृकुटयै नमः।

ए पछी सोळ पत्रवाळा कमळमां—

पहेला पत्रमां—सुविधिनाथाय नमः। अजिताय नमः। सुतारकायै नमः।
बीजा पत्रमां—शीतलनाथाय नमः। ब्रह्मणे नमः। अशोकायै नमः।
त्रीजा पत्रमां—श्रेयांसनाथाय नमः। यक्षेशे (मनुजाय) नमः। मानव्यै नमः।
चोथा पत्रमां—वासुपूज्यनाथाय नमः। कुमाराय नमः। चण्डयै नमः।
पांचमा पत्रमां—विमलनाथाय नमः। षण्मुखाय नमः। विदितायै नमः।
छट्ठा पत्रमां—अनन्तनाथाय नमः। पातालाय नमः। प्रियाङ्कुशायै नमः।
सातमा पत्रमां—धर्मनाथाय नमः। किन्नराय नमः। कन्दर्पायै नमः।
आठमा पत्रमां—शान्तिनाथाय नमः। गरुडाय नमः। निर्वाण्यै नमः।
नवमा पत्रमां—कुन्थुनाथाय नमः। गान्धर्वाय नमः। बलायै नमः।
दशमा पत्रमां—अरनाथाय नमः। यक्षेन्द्राय (यक्षेसे) नमः। धारिण्यै नमः।
अगियारमा पत्रमां—मल्लिनाथाय नमः। कुबेराय नमः। धरणप्रियायै नमः।
बारमा पत्रमां—सुव्रतनाथाय नमः। वरुणाय नमः। नरदत्तायै नमः।
तेरमा पत्रमां—नमिनाथाय नमः। भृकुटये नमः। गान्धार्यै नमः।
चौदमा पत्रमां—नेमिनाथाय नमः। गोमेधाय नमः। अम्बिकायै नमः।
पंदरमा पत्रमां—पार्श्वनाथाय नमः। पार्श्वाय नमः। पद्मावत्यै नमः।
सोळमा पत्रमां—वीरनाथाय नमः। मातङ्गाय नमः। सिद्धायिकायै नमः।
—आ प्रकारे अष्टदलकमळमां अने षोडशदलकमळमां क्रमशः नाम लखवां।)

---

12 °सुविधाद्या अ प्रतावपपाठः।



"ॐ नमोऽरिहो भगवओ अरिहंत-सिद्ध-आयरिय- ।
उवज्झाय-सव्वसंघ-धम्मतित्थपवयणस्स ॥ १६ ॥
ॐ नमो भगवईए सुयदेवयाए संतिदेवयाए ।
सव्वदेव-पवयणदेवयाणं दसण्हं दिसापालाणं ।
पंचण्हं लोगपालाणं ठः ठः स्वाहा ॥"
विधेयं वलयाकृत्या, लेख्या नवगजैर्मिता ॥ १७-१८ ॥
अस्या वर्णाः श्लोकयुग्मे (ग्मेन) पञ्चविंशतिरक्षरा (पदानि) ॥

(अहीं बीजा यन्त्रनो अगर ए यंत्रनो बीजो प्रकार बतावे छे—)

अथवा वचे एक 'अर्हन्'ने राखीने (कमळनां चार पत्रोमां) सिद्ध वगेरे आगळ छ तीर्थंकरो (सिद्ध जिनेश्वरोना समविभागे) स्थापवा—

(**सिद्ध**—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ। **आचार्य**—सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य। **उपाध्याय**—विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर। **साधु**—मल्लि, (मुनि)सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वीर। —आ प्रकारे स्थापना करावी।)

अथवा वर्ण अनुसार आ क्रमथी स्थापवा—

(**अर्हन्**—चन्द्रप्रभ, सुविधि। **सिद्ध**—पद्मप्रभ, वासुपूज्य। **आचार्य**—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, सुपार्श्व, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, नमि, वीर। **उपाध्याय**—मल्लि, पार्श्व। **साधु**—सुव्रत, नेमि।) —आ प्रकारे अगाउ (सूरिमंत्र अने वर्धमानविद्या)मां जणाव्या मुजब स्थापना करवी॥ १५॥

† (परमेष्ठिविद्या—पद अने वर्णसंख्यासहित—)

* १–१ ॐ	२–२ नमो	३–३ अरिहो	४–४ भगवओ	५–४ अरिहंत
६–२ सिद्ध	७–४ आयरिय	८–४ उवज्झाय	९–४ सव्वसंघ	१०–४ धम्मतित्थ
११–५ पवयणस्स	१२–१ ॐ	१३–२ नमो	१४–५ भगवईए	१५–६ सुयदेवयाए
१६–६ संतिदेवयाए	१७–४ सव्वदेव	१८–८ पवयणदेवयाणं	१९–३ दसण्हं	२०–५ दिसापालाणं
२१–३ पंचण्हं	२२–५ लोगपालाणं	२३–१ ठः	२४–१ ठः	२५–२ स्वाहा

—आ विद्या(परमेष्ठिविद्या)ने वलयाकृतिए लखवी अने तेनुं प्रमाण नेव्याशी वर्णोनुं (८९) थाय छे॥ १६–१८॥

आ विद्याना वर्णो बे श्लोकमां (उपर गणाव्या मुजब) पचीश (२५) अक्षरो अगर पदो छे।

13 °णदेयाण अ।
† परमेष्ठिविद्या (गणिविद्या) माटे जुओ 'नमस्कार स्वाध्याय' (प्रा. वि.) पृ. ४२७।
* प्रथम अंक पदसूचक अने द्वितीय अंक वर्णसूचक छे।

मघवाऽग्निर्यमो रक्षो वरुणो वायुदिक्पतिः ।
पूर्वादौ धनदेशानौ नागोऽधो विधिरूर्ध्वगः ॥ १९ ॥
"अट्ठमहारिद्धीओ हिरि-सिरि-लच्छि-बुद्धि-कंतीओ ।
विजया जया जयंती वियरइ अपराजिया वि तहिं" ॥ २० ॥
पूर्वादिक्रमतो दिक्षु एतद्गाथांह्रिरेकतः ।
एकतः श्रुतदेवी तु पुस्तकाम्भोजशालिनी ॥ २१ ॥
एकतः शान्तिदेवी च करे स्वर्णकमण्डलुम् ।
सुधारसभृतं पद्माक्षसूत्राद्यापि बिभ्रती ॥ २२ ॥
राजत-स्वर्ण-रत्नप्राकारात्रितयं दिशेत् ।
चतुर्द्वारं स्फुरद्रत्नध्वज-तोरणराजितम् ॥ २३ ॥
भूमण्डलं ततो दिक्षु विदिक्षु [च] लकारवान् ।
यद् व्याप्यं(प्य) [मण्]डलं सार्द्धं वकारैः कलशाङ्कितम् ॥ २४ ॥

[इति यन्त्रलेखनम् ।]

पूर्व आदि आठ दिशाओमां (क्रमशः) दिशाओना अधिपतिओ—१. मघवा (इन्द्र), २. अग्नि, ३. यम, ४. रक्षः (नैर्ऋत), ५. वरुण, ६. वायु, ७. धनद (कुबेर), ८. ईशान—(आ आठ दिशाओमां अने) नीचेना भागमां नाग तेमज ऊपरना भागमां विधि (ब्रह्मा)—ए प्रकारे नामो लखवां ॥ १९ ॥

पूर्व आदि दिशाओमां क्रमशः आठ महाऋद्धिओ लखवी—१. ह्री, २. श्री, ३. धृति, ४. मति, ५. कीर्ति, ६. कांति, ७. बुद्धि अने ८. लक्ष्मी; तेम ज त्यां (पूर्व आदि दिशाओमां) १. जया (पूर्व), २. विजया (उत्तर), ३. जयन्ती (अजिता–पश्चिम) ४. अपराजिता (दक्षिण) लखवी ॥ २० ॥

पूर्व आदि दिशाओना क्रमे ऊपरनी गाथाओनां चरणो क्रमशः मूकवां, एक तरफ पुस्तक तेम ज कमळथी शोभती श्रुतदेवीनी आलेखना करवी अने बीजी तरफ जेना एक हाथमां अमृतरसथी भरेलुं सुवर्णनुं कमण्डलु छे अने बीजा हाथमां पद्मना पारानी माला छे एवी शांतिदेवीने आलेखवी ॥ २१-२२ ॥

(वलयाकृतिनी बहारनुं भूमण्डल) रजतमय, सुवर्णमय, अने रत्नमय त्रण गढवाळुं रचवुं अने तेमां जाज्वल्यमान रत्नवाळा ध्वजो अने तोरणोथी शोभतां एवां (प्रत्येक गढनां) चार द्वार बनाववां ॥ २३ ॥

ए पछी भूमंडलनी चारे दिशाओ अने विदिशाओमां 'ल'नी आकृति दोरवी। कलशथी अलंकृत एवा मंडलने 'व'कारो साथे आलेखवुं (?) ॥ २४ ॥

[आ प्रकारे यंत्रनुं आलेखन करवुं ।]

---

14 °ग्नियमौ ह्र ।

इति यन्त्रलेखनं प्रागस्याश्रतस्रोऽस्ति निरसनं चैवम् ।
आदावन्ते मध्ये एकादश जलयुता(ताः) भाति(न्ति) ॥ २५ ॥

दुःशील-निह्नव-गुरुद्रोहक-विध्वस्तचैत्य-य(प्र)त्यनीकान् ।
पातकपञ्चककृतमपि यो दूरात् त्यजति योग्य इह ॥ २६ ॥

जिनभक्तिर्गुरुसेवी अव्यसन-विवाद-राज-भक्तकथः ।
प्रियवाग् जितेन्द्रियमना योग्यः परमेष्ठिविद्यायाः ॥ २७ ॥

पूर्वोत्तरे दिग्वक्त्रः पद्मासन-सुखासनः ।
सौभाग्य-योगमुद्राभृत् कृताऽऽह्वानादिकक्रिया(यः) ॥ २८ ॥

"ॐ भूरसि भूतधात्री(त्रि) भूमिशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।"
इति कौङ्कुमाम्भोभिश्चिन्त्यं सद्भूमिसेचनम् ॥ २९ ॥

"ॐ ह्रीँ विमले तीर्थजला(ले आ)न्तरशुचिः शुचिः ।
भवामि स्वाहा" इति शान्तिदेवी मधुरितेक्षणा ॥ ३० ॥

कमण्डलुसुधाम्भोभिर्मां संस्नापयतेऽथवा ।
षोडशविद्यादेव्यस्तीर्थाम्भोभिर्विचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥

[॥ २५ ॥ नी गाथानो अर्थ स्पष्ट थई शक्यो नथी।]

दुःशील, निह्नव, गुरुद्रोही, चैत्यनाशक अने शासनना प्रत्यनीकोने अथवा ए पांचे प्रकारना पातक करनारने पण जे दूरथी तजे छे, ते आ विद्या माटे योग्य समजवो ॥ २६ ॥

जिनेश्वरमां भक्तिवाळो, गुरुनी सेवा-शुश्रूषा करनारो, व्यसन विनानो, विवाद नहीं करनारो, राजकथा तेमज भक्तकथा वगरनो, प्रिय वाणी बोलनार, इन्द्रियो तेमज मनने जीतनार पुरुष ज परमेष्ठि-विद्याने योग्य छे ॥ २७ ॥

पूर्व के उत्तर दिशामां मुख राखीने, पद्मासने अथवा सुखासने बेसीने, सौभाग्यमुद्रा अगर योगमुद्राने धारण करी आवाहन आदि क्रिया करवी ॥ २८ ॥

पछी भूमिशुद्धि माटे आ मंत्र बोलवो—

"ॐ भूरसि भूतधात्रि ! भूमिशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ॥"

—आ प्रकारे कुंकुम-केसरवाळा पाणीथी भूमिने सिंचन करुं छुं एम चितववुं ॥ २९ ॥

(मंत्र-स्नान—)

"ॐ ह्रीँ विमले तीर्थजले आन्तरशुचिः शुचिर्भवामि स्वाहा ॥"

—एम बोलवुं अने मधुरित आखोवाळी शांतिदेवी कमंडलुमां भरेला अमृत-पाणी वडे मने नवरावे छे—अथवा सोळ विद्यादेवीओ तीर्थोना पाणीथी मने नवरावे एम चिंतववुं ॥ ३०-३१ ॥

---

15 °दावेते म प्रतौ भ्रष्टपाठः । 16 °क्तिगुरु म । 17 °त्तरेशादि° म प्रतावसम्यक् पाठः ।
18 °तेऽथ° इत्यतः पुष्करी° यावत् पतितोऽयं पाठः ह प्रतौ ।

यद्वा चन्द्रसुधास्नातः क्षीराब्धौ योजनप्रभ(म)म् ।
पुण्डरीकं समारूढो द्रष्टुं तानर्हदादिमा(का)न् ॥ ३२ ॥

पाएहिं रक्खवालो कणयमयंको हुयासणो जाणुं ।
उर-नाहि-हियपयड़ी दो हत्था पास-मुह-सीसं ॥ ३३ ॥

धणवालो जयपालो अच्चुत्ता भयवई य वइरुट्टा ।
देवो हरिणगमेसी वज्जधरो रक्खए सव्वं ॥ ३४ ॥

"ॐ श्रीँ द्रांँ णाँ आँ ह्रीँ तुँ अ सि आ उ सा क्षिप ॐ स्वाहा ॥"

विहिताष्टाङ्गदिग्रक्षश्चन्द्रादिवर्णभानिमान् ।
विद्याक्षरान् स्मरन् शान्तिप्रमुखं तनुतेऽचिरात् ॥ ३५ ॥

सम्यग्दृशा महाब्रह्मचारिणा गुरुवक्त्रतः ।
गृहीता पठिता विद्या सर्वकर्मकरी मता ॥ ३६ ॥

व्याख्यानादौ विवादे वा विहारे जनरञ्जने ।
सप्तकृत्वः स्मृता विद्या तत्तत्कार्यप्रसाधिका ॥ ३७ ॥

अथवा ते अरिहंत वगेरेने जोवा माटे (?) चन्द्र-सुधाथी स्नान करेलो हुं क्षीरसमुद्रमां योजन प्रमाणवाळा कमळ ऊपर आरूढ थयो छुं, एम चिंतववुं ॥ ३२ ॥

(दिग्रक्षा—)

पगथी लईने जानु सुधीनी रक्षा करनार कनकमृगाङ्क हुताशन छे (?) तेम छातीनो धनपाल, नाभिनो जयपाल, हृदयपटनी रक्षापालिका अच्चुतादेवी, बे हाथनी भगवती, बे पडखांनी वैरोट्या देवी, मुखनो हरिणगमेषी देव अने मस्तकनो रक्षपाल इन्द्र छे (?)—ए रीते साधक सर्व अंगोनी रक्षा करे ॥ ३३-३४ ॥

"ॐ श्रीँ द्रांँ णाँ आँ ह्रीँ तुँ अ सि आ उ सा क्षिप ॐ स्वाहा ॥"—आ प्रकारे मंत्रोच्चार करवो ॥

आ रीते आठे अंगोनी जेणे दिग्रक्षा करी छे एवो अने चन्द्र वगेरे जेवा उज्ज्वळ वर्णोवाळा आ विद्याक्षरोनुं स्मरण करतो एवो साधक जलदीथी शान्तिकृत्यो करे छे ॥ ३५ ॥

सम्यग्दृष्टि अने महाब्रह्मचारी पुरुष वडे गुरुमुखथी ग्रहण करायेली [आ] विद्यानो पाठ 'सर्वकर्मकर'—बधां कार्यने करनारो (वशीकरण आदि षट्कर्मो अगर सघळां कृत्यो करनारो) छे, एम कहेवाय छे ॥ ३६ ॥

व्याख्यान वगेरेमां, विवादमां, विहारमां, जनताने रंजन करवामां आ विद्यानुं सात वखत स्मरण करवामां आवे तो ए ते ते कार्यने सफळ करे छे ॥ ३७ ॥

---

19 एतेषां वर्णानां कला-बिन्दुयुक्तः पाठः ह्य प्रतौ, केवलमनुस्वारयुतो पाठस्तु अ प्रतौ। 20 देव्यवहा० अ।

जातिपुष्पायुतैः शालितन्दुलैः सत्फलैरपि ।
जप्ता दशांशहोमेन प्रीणिता कुरुते न किम् ? ॥ ३८ ॥
एतद्विद्यान्तरोद्भूतखण्डविद्याफलान्यथ ।
वक्ष्यामि जैनसिद्धान्तरहांसि स्मरणाकृते ॥ ३९ ॥
सत्त्वशब्दं विना विद्या गुरुपञ्चकनामभूः ।
+ हृदष्टाक्षरात्महृत्पद्मगर्भे देवो निरञ्जनः ॥ ४० ॥
[यद्वा—"अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नमः ।"] +
हृदम्बुजे इमां विद्यां संस्कृते षोडशाक्षरैः ।
लभते द्विशतीं ध्यायन् चतुर्थतपसः फलम् ॥ ४१ ॥
"अरिहंत-सिद्ध"शब्दाज्जपन् विद्यां षडक्षरीम् ।
शतत्रयेण लभते चतुर्थतपसः फलम् ॥ ४२ ॥
'अरिहंत'चतुर्वर्णं जपन् ध्यानी चतुःशतीम् ।
लभते दृष्टजैनात्मा चतुर्थतपसः फलम् ॥ ४३ ॥
'अ'वर्णं च सहस्रार्धं नाभ्यब्जे कुण्डलीतनुम् ।
ध्यायन्नात्मानमाप्नोति चतुर्थतपसः फलम् ॥ ४४ ॥

जूईना दश हजार पुष्पो वडे, शालि जातना उत्तम अक्षतो वडे, सुंदर फळो वडे जाप करायेली अने एक हजार होम करवा वडे प्रसन्न थयेली आ विद्या शु शुं न साधी आपे ? ॥ ३८ ॥

आ विद्यामाथी उत्पन्न थयेली खंड-अंशगत विद्याओनुं फळ अने जैन सिद्धांतना रहस्यो हवे हु स्मरण करवा माटे कहुं छुं ॥ ३९ ॥

पच गुरु (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने साधु)ना नाममांथी उत्पन्न थयेली, सत्त्व–'ॐ' शब्द विनानी, संस्कृत भाषाना सोळ अक्षरोवाळी 'अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नमः ।'—आ विद्या छे । तेने हृदयकमलनी सोळ पाखडीओमां स्थापीने वच्चे कर्णिकामां निरंजन (सिद्ध) देव स्थापवा, एवी रीते आ विद्यानु बसो वार ध्यान करनार एक उपवासनु फळ मेळवे छे ॥ ४०-४१ ॥

'अरिहत-सिद्ध'—ए छ अक्षरनी विद्यानो त्रणसो वार जाप करनार एक उपवासनुं फळ मेळवे छे ॥ ४२ ॥

'अ रि हं त'—ए चार वर्णोनो चारसो वार जाप करनार ध्यानी सम्यग्दृष्टि आत्मा एक उपवासनु फळ मेळवे छे ॥ ४३ ॥

कुंडलिनी स्वरूप ['अर्हँ'(ऽईँ)ना अवग्रह 'ऽ' रूप] 'अ' वर्णनु नाभिकमलमां पाचसो वार ध्यान करनार एक उपवासनु फळ मेळवे छे ॥ ४४ ॥

+ + एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः अ प्रतौ निर्गलितः ।
21 °स्कृतैः षो° इ । 22°त्मानं माप्नोति इ ।

गुरुपञ्चकनामाद्यमेकैकमक्षरं तथा[23]।
नाभौ मूर्ध्नि मुखे कण्ठे[24] हृदि स्मर क्रमान्मुने ! ॥ ४५ ॥
[25]'अ'वर्णं नाभिपद्मान्तः 'सि' वर्णं तु शिरोऽम्बुजे।
'आ' मुखाब्जे 'उ' कण्ठे 'सा' कारं हृदये स्मर ॥ ४६ ॥
मन्त्राधीशः पूज्यैरुक्तोऽसौ किन्तु देहरक्षायै।
शीर्ष-मुख-कण्ठ-हृत्-पदक्रमेण 'अ सि आ उ साः' स्थाप्याः ॥ ४७ ॥
प्रणवः पञ्चशून्याग्रे 'अ सि आ उ सा नमः'।
अस्याभ्यासादसौ सिद्धिं प्रयाति गतबन्धनः ॥ ४८ ॥
शाम्यन्ति जन्तवः क्षुद्रा व्यन्तरा ध्यानघातिनः।
तद् वक्ष्येऽष्टदिक्पत्रे गर्भे सूर्यमहः स्वकम् ॥ ४९ ॥
'ॐ नमो अरिहंताणं' क्रमात् पूर्वादिपत्रगम्।
प्रत्याशमेकमेकाहः एकादशशतीं जपेत् ॥ ५० ॥
ध्यानान्तरायाः शाम्यन्ति मन्त्रस्यास्य प्रभावतः।
कार्ये सप्रणवो ध्येयः सिद्धये प्रणवं विना ॥ ५१ ॥

हे मुनि ! पांचे गुरुओना नामना प्रथम एकेक वर्ण नाभि, मस्तक, मुख, कंठ अने हृदयमां क्रमशः स्मरण कर ॥ ४५ ॥

(एटले) नाभिकमलमां 'अ' वर्ण, मस्तकमां 'सि' वर्ण, मुखकमलमां 'आ' वर्ण, कंठमां 'उ' वर्ण अने हृदयमां 'सा' वर्णनुं स्मरण कर ॥ ४६ ॥

पूज्योए आ (अ सि आ उ सा)ने मंत्राधीश कह्यो छे। शरीरनुं रक्षण करवा माटे मस्तकमां 'अ', मुखमां 'सि', कंठमां 'आ', हृदयमां 'उ' अने चरणमां 'सा'—ए क्रमे वर्णोने स्थापन करवा ॥ ४७ ॥

प्रणव—'ॐ', पांच शून्य—'ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः' नी आगळ 'अ सि आ उ सा नमः'—आ प्रकारना (मंत्रना) वारंवार जापथी साधक बंधनोमांथी छूटीने मोक्षमां जाय छे। (मंत्रोद्धार—) "ॐ ह्रॉं ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः ॥" ॥ ४८ ॥

ध्यानने विघ्न करनारा क्षुद्र जंतुओ अने व्यंतरो जेथी शांत थाय ते विधिने हुं कहुं छुं—

आठ दिशारूप पत्रनी मध्य (कर्णिका)मां सूर्यना तेज स्वरूप पोताने स्थापन करवो अने 'ॐ नमो अरिहंताणं' (ए मंत्र)ने क्रमशः पूर्व आदि प्रत्येक दिशामां तेम ज विदिशामां स्थापन करवो अने तेनो प्रत्येक दिशामां एकेक दिवसे अगियारसो वार जाप करवो जोईए। आ मंत्रना प्रभावथी ध्यान करती वेळा आवता अंतरायो शमी जाय छे। (इहलौकिक) कार्य माटे (सकाम ध्यान करवुं होय तो) प्रणव—'ॐ'पूर्वक ध्यान करवुं अने सिद्धिने माटे (निष्काम ध्यान माटे) प्रणव—'ॐ' विना तेनुं ध्यान करवुं ॥ ४९-५१ ॥

---

23 'तथा' इति पाठो नास्ति अ प्रतौ। 24 कर्णे हृ० अ प्रतौ न सम्यगाभाति। 25 'सा' मुखाम्बुजे 'आ' कण्ठे 'उ'कारं हृदये स्मर भां०।

यदिवाऽष्टदले पद्मे गर्भे स्यात् प्रथमं पदं दिक्षु।
सिद्धादिचतुष्कं [च] विदिक्ष्वन्यच चतुष्कम्॥ ५२॥
एतां नवपदीं विद्यां प्रणवादिं विना स्मरेत्।
'नमो अरिहंताणं' [च] यदिवान्तश्चतुर्दलीम्॥ ५३॥
सिद्धादिकचतुष्कं च दिग्दलेषु मुनीन्दुभिः।
अपराजितमन्त्रोऽप्युक्तः पापक्षयङ्करः॥ ५४॥
हृदि वा 'नमो सिद्धाणं' अन्तर्दलचतुःक्रमात्।
पञ्चवर्णमयो मन्त्रो ध्यातः कर्मक्षयङ्करः॥ ५५॥
'श्रीमदृषभादि-वर्धमानान्तेभ्यो नमो'मयः।
मन्त्रः स्मृतः सर्वसिद्धिकरोऽत्र तीर्थशब्दतः॥ ५६॥

अथवा, आठ पत्रवाळा कमलगर्भमां (कर्णिकामां) प्रथम पद (नमो अरिहंताणं) छे अने चार दिशाओमां सिद्ध आदि चतुष्क (नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं) छे अने चार विदिशाओमां बीजुं चतुष्क (एसो पचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगल अथवा 'णमो दसणस्स' आदि ४ पद) छे—आ प्रकारे प्रणव वगेरे विनानी आ नवपदीनु स्मरण करवुं। अथवा तो, चार दलवाळा कमलमां वच्चे—कर्णिकामां 'नमो अरिहंताणं' अने चार दिशाओना पत्रोमां सिद्ध आदि चतुष्कनु स्मरण करवुं जोईए। ए रीते महामुनिओए आने 'पापक्षयंकर'—पापनो क्षय करनार 'अपराजितमन्त्र' कह्यो छे॥ ५२-५४॥

अथवा, हृदयमा चार दलवाळा कमलने कल्पीने क्रमशः 'नमो सिद्धाणं' एवा पांच वर्णवाळा मंत्रनुं ध्यान करता कर्मनो क्षय थाय छे—'कर्मक्षयंकर' मत्र बने छे॥ ५५॥

तीर्थंकरोना शब्दथी बनेला मंत्रने 'सर्वसिद्धिकर'—समग्र सिद्धिओने आपनारा मत्रो कह्या छे, ते आ प्रकारे—

१. "श्रीऋषभतीर्थङ्कराय नमः।"

२. "श्रीऋषभनाथाय नमः। श्रीअजितनाथाय नमः। श्रीसंभवनाथाय नमः। श्रीअभिनन्दननाथाय नमः। श्रीसुमतिनाथाय नमः। श्रीपद्मप्रभनाथाय नमः। श्रीसुपार्श्वनाथाय नमः। श्रीचन्द्रप्रभनाथाय नमः। श्रीसुविधिनाथाय नमः। श्रीशीतलनाथाय नमः। श्री श्रेयांसनाथाय नमः। श्रीवासुपूज्यनाथाय नमः। श्रीविमलनाथाय नमः। श्रीअनन्तनाथाय नमः। श्रीधर्मनाथाय नमः। श्रीशान्तिनाथाय नमः। श्रीकुन्थुनाथाय नमः। श्रीअरनाथाय नमः। श्रीमल्लिनाथाय नमः। श्रीमुनिसुव्रतनाथाय नमः। श्रीनमिनाथाय नमः। श्रीनेमिनाथाय नमः। श्रीपार्श्वनाथाय नमः। श्रीवीरनाथाय नमः॥"

३. "ॐ ह्रीँ श्रीँ ऋषभ-अजित-संभवाभिनन्दन-सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-सुविधि-शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्य-विमलानन्त-धर्म-शान्ति-कुन्थ्वरमल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-वर्द्धमानेभ्यो नमः॥" ५६॥

॥॥ °दिच° स प्रतावशुद्धः पाठः।

'श्रुतदेवता' शब्देन सरस्ती वाच्या—

"ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि! पापात्मक्ष[27]यंङ्करि! [28]श्रुतज्ञानज्वालासहस्रज्वलिते!
मत्पापं हन हन दह दह क्षाँ क्षीं क्षूँ क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृतसंभवे!
वँ वँ हूँ हूँ स्वाहा ॥"
गणभृद्भिर्जिनैरुक्तां तां विद्यां पापभक्षिणीम्।
स्मरन्नष्टशतं नित्यं सर्वशास्त्राब्धिपारगः ॥ ५७ ॥

वाग्-माया-कमलाबीजं[29] झ्वाँ श्रीं ततः स्फुर स्फुर।
ॐ क्लाँ क्लीं ऐँ वागीश्वरीं भगवतीमस्तु नमः ॥ ५८ ॥
एनं सारस्वतं मन्त्रं विबुधश्चन्द्र[30]पूजितम्।
स्मरेत् सरस्वती देवी साक्षाद् ध्यातुर्वरप्रदा ॥ ५९ ॥

अत्र विशेषः (कुण्डलिनीवर्णनविशेषः)—
गुदमध्य-लिङ्गमूले नाभौ हृदि कण्ठ-घण्टिका-भाले।
मूर्धन्यूर्ध्वे नवषट्कं (चक्रं?) ठान्ताः पञ्च भाले(ल?) युताः ॥ ६० ॥

श्रुतदेवीथी अहीं सरस्वतीदेवी समजवी—(तेनो मंत्र आ प्रकारे छे)—

"ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि! पापात्मक्षयङ्करि! श्रुतज्ञानज्वालासहस्रप्रज्वलिते! मत्पापं हन हन दह दह क्षाँ क्षी क्षूँ क्षौं क्षः क्षीरधवले! अमृतसंभवे! वँ वँ हूँ हूँ स्वाहा ॥"

जिनेश्वरो अने गणधरोए ए (उपर्युक्त) विद्याने 'पापभक्षिणी—' पापने खानारी कही छे। एनुं हमेशां एक सो ने आठ वार स्मरण करनार सकल शास्त्रनो पारगामी बने छे ॥ ५७ ॥

वाग्–'ऐँ' माया–'ह्रीँ', कमलाबीजं–'श्रीँ' 'झ्वाँ श्रीँ' ते पछी 'स्फुर स्फुर ॐ क्लाँ क्लीँ ऐँ वागीश्वरीं भगवतीमस्तु नमः ॥

(मंत्रोद्धार–) "ऐँ ह्रीँ श्रीँ झ्वाँ श्रीँ स्फुर स्फुर ॐ क्लाँ क्लीँ ऐँ वागीश्वरीं भगवतीमस्तु नमः ॥" ५८ ॥

आ प्रकारे विद्वानो अगर पोताना गुरु विबुधचंद्र आचार्ये पूजेला आ 'सारस्वत' मंत्रनुं स्मरण करवुं जोईए। एनुं ध्यान करनारने सरस्वती देवी प्रत्यक्षपणे वरदान आपे छे ॥ ५९ ॥

(अहींथी विशेषविधि–कुण्डलिनीनो आम्नाय जणावे छे—)

१. गुदाना मध्यभाग पासे आधारचक्र, २. लिंगमूळ पासे स्वाधिष्ठानचक्र, ३. नाभि पासे मणिपूरचक्र, ४. हृदय पासे अनाहतचक्र, ५. कंठ पासे विशुद्धचक्र, ६. पडजीभ (घंटिका) पासे ललनाचक्र, ७. भाल पासे (बे भ्रमर वच्चे) आज्ञाचक्र, ८. मूर्धा पासे ब्रह्मरन्ध्रचक्र, जेने सोमचक्र पण

---

27 °ङ्करी अ। 28 श्रुतज्वाला° अ। 29 °बीजं झाँ झाँ श्री अ। 30 °बुधयन्त्रपू° अ।

आधाराख्यं स्वाधिष्ठानं मणिपूर्णमनाहतम् ।
विशुद्धि-ललना-ऽऽज्ञा-ब्रह्म-सुषुम्णाख्यया नव ॥ ६१ ॥
अम्बुधि-रस-दश-सूर्याः षोडश-विंशति-गुणास्तु-षोडशकम् ।
देशशतदलमथ वाऽन्त्यं (वाच्यं ?) षट्कोणं मनसाऽक्षपदम् ॥ ६२ ॥
दलसंख्या इह साद्या ह-क्षान्ता मातृकाक्षराः षट्सु ।
चक्रेषु व्यस्तमिता देहमिदं भारतीयन्त्रम् ॥ ६३ ॥
आधाराद्या विशुद्ध्यन्ताः पञ्चाङ्गास्तालुशक्तिभृत(तः ?) ।
आज्ञा भ्रूमध्यतो भाले मनो ब्रह्मणि चन्द्रमाः ॥ ६४ ॥
रक्तारुणं सितं पीतं सितं रक्तत्रयं सितम् ।
चक्रे वर्णा इतः प्राग्वदादौ पत्राणि पञ्चसु ॥ ६५ ॥

कहे छे, ९ ऊर्ध्व भागमां (ब्रह्मबिन्दुचक्र) सुषुम्णाचक्र—एम नव चक्रो छे। मूलाधारथी ऊर्ध्व गणना करीए तो नव चक्रो थाय, तेमां कंठ (विशुद्धचक्र) सुधी पांच चक्रो अने आज्ञाचक्र नामे छट्ठुं चक्र गणाय ॥ ६०-६१ ॥

(ए प्रत्येक चक्र-कमलनां दल क्रमशः—) चार (मूलाधारनां), छ (स्वाधिष्ठाननां), दश (मणिपूरनां), बार (अनाहतनां), सोळ (विशुद्धनां), वीश (ललनानां), त्रण (आज्ञानां), सोळ (ब्रह्मरंध्रनां) अने छेल्लां हजार पत्रो (ब्रह्मबिन्दुचक्रनां) होय छे। * अथवा आ सहस्रार ते मन अने इन्द्रिय पदवाळुं षट्कोण छे (!) ॥ ६२ ॥

अहीं दलसंख्यामां 'अ' थी लईने 'ह' अने 'क्ष' सुधीना मातृकाक्षरो छये चक्रोमां विभाजित छे; तेथी आ शरीर भारती—सरस्वतीना यंत्ररूप बनी जाय छे ॥ ६३ ॥

आधारचक्रथी मांडीने विशुद्धचक्र सुधीनां (आधार–स्वाधिष्ठान–मणिपूर–अनाहत–विशुद्ध) चक्रो शरीरना पांच अंगो (अवयवो—गुदा-मध्य, लिंगमूल, नाभि, हृदय अने कंठ स्थाने रहेलां) छे। तालु-स्थानीय (घंटिकास्थानीय) ललनाचक्र सरस्वतीनी वाक्शक्तिने[1] धारण करे छे। आज्ञाचक्र भालप्रदेशमां भ्रूमध्यस्थाने छे। ए स्थानमां मन रहेलुं छे। ब्रह्मचक्रमां चन्द्रमा–परमात्मशक्तिनुं प्रतीक छे (!) ॥ ६४ ॥

१ आधारचक्रनो रंग रक्त, २ स्वाधिष्ठानचक्रनो रंग अरुण, ३ मणिपूरचक्रनो रंग श्वेत, ४ अनाहतचक्रनो रंग पीळो, ५ विशुद्धचक्रनो रंग श्वेत, ६–७–८ ललनाचक्र, आज्ञाचक्र अने ब्रह्मचक्रनो

---

* 'षट्चक्रनिरूपण' वगेरे ग्रंथोमां आधारचक्र चार दलनुं, स्वाधिष्ठानचक्र षड्दलनुं, मणिपूरचक्र दश दलनुं, अनाहतचक्र बार दलनुं, विशुद्धचक्र सोळ दलनुं, आज्ञाचक्र बे दलनुं अने सहस्रारचक्र हजार दलनुं पद्म होय छे, एम जणावेलुं छे। तेमां छ चक्रो उपरांत बीजा चक्रो विशे जणाव्युं नथी।

१ शक्ति शब्दना अनेक अर्थो छे, तेमांथी नीचेना अर्थो अहीं लई शकाय तेम छे :—

शक्तिदेवी–गौरी, शब्दमां रहेल अर्थबोधकतारूप शक्ति, तत्र प्रसिद्ध पीठाधिष्ठात्री देवता, उत्साहरूप शक्ति, कवित्व शक्ति वगेरे।

31 °मुद्रानां पञ्चानस्ता° ह। 32 मनो ब्र° ह।

चतुष्टये क्रमात् सूर्याः[12] त्रि-[3]षट्-[6]द्व्यष्टदलावली[16] ।
तदन्तर्[33]नवबीजानि त्रिष्वादौ[34] त्रिपुराऽथवा ॥ ६६ ॥
नवचक्रान्तः क्रमशो वाग्भवमुख्यानि मन्त्रबीजानि ।
तत्राद्ये रविरोचिषि त्रिकोणमर्केन्दुनाडीभ्याम्[35] ॥ ६७ ॥
भगबीजमेतदूर्ध्वं कुण्डलिनीतन्तुमात्रमभ्रकलम् ।
वाग्भवबीजं श्वेतं ध्यातं सरस्वतीसिद्धिः ॥ ६८ ॥
अरुणमिदं वह्निपुरं ध्यातं मात्रां विनाऽपि वश्यकृते ।
किन्तु समात्रं यद्वा मायान्तः कामबीजमध्ये वा ॥ ६९ ॥
ध्यातं सा(स्वा)धिष्ठाने पट्कोणे ह्रीँ स्मर[36]बीजभू(यु)त[म्] ।
ईकाराङ्कुशताणितशिरोऽम्बरस्त्रीक(स्त्रिकल ?)मिह वश्यम् ॥ ७० ॥

रंग रातो तेम ज ९ सहस्रार (ब्रह्मबिंदु) चक्रनो रंग श्वेत छे। आदिनां पांच चक्रोमां अगाऊ जणाव्या मुजब पत्रो होय छे (एटले आधार ४, स्वाधिष्ठान ६, मणिपूर १०, अनाहत १२, विशुद्ध १६) ज्यारे बाकीनां चक्रोमां क्रमशः १२, ३, ६ अने १६ (एटले ललना १२, आज्ञा ३, ब्रह्म ६ अने सहस्रारमां १६ *) होय छे। तेना अंतर्भाग (कर्णिका) मां ते दरेकमां एकेक एम नव बीजो होय छे अथवा आदिनां त्रण चक्रोमां 'त्रिपुरा' (देवताविशेष ?) छे ॥ ६५–६६ ॥

नवचक्रोमां क्रमशः वाग्भव—'ऐं' वगेरे मंत्रबीजो रहेलां छे, तेमां सूर्यकिरण जेवा मूलाधारचक्रमां सूर्य (पिंगला) अने चंद्र (इडा) नाडीद्वारा त्रिकोण थाय छे, ते भगबीज—'एँ' स्वरूप छे अने तेनी ऊपर कुंडलिनीना तंतु जेवी अने तेजे अभ्रकला—आकाश (-मेघ) जेवी झांखी कला—मात्रारूप थईने 'ऐँ' बनावे छे। ते वाग्भवबीज—'ऐँ' नुं श्वेतवर्णी ध्यान करतां सरस्वती देवी सिद्ध थाय छे ॥ ६७–६८ ॥

आ वह्निपुर—अरुण वर्ण छे, तेनुं मात्रा विना पण ध्यान करवामां आवे तो ते वशीकरण माटे थाय छे, पण ज्यारे मात्रा सहित अथवा मायाबीज ह्रीँकारमां अथवा कामबीज क्लीँकारमां एनुं (ऐँकारनुं) ध्यान करवामां आवे तो विशेष वशीकरण माटे थाय छे ॥ ६९ ॥

(बीजी रीते—गाथा ६९ ना अंतिम अर्धभागनो ज्यारे गाथा ७० साथे अन्वय करीए तो आ रीते अर्थ शके छे :—)

पण ज्यारे स्वाधिष्ठान चक्रमां आ ऐँनुं मात्रा सहित अथवा ह्रीँकारमां अथवा क्लीँकारमां अथवा षट्कोणमां ह्रीँ अने क्लीँनी अंदर ध्यान करवामां आवे तो ते विशेष वशीकरण माटे थाय छे। 'ई' कार (ी) ने अंकुशरूपे चिंतववो। 'ई' काररूप अंकुशथी खेंचायुं छे मस्तकनुं वस्त्र जेनुं एवुं वश्य (स्त्री अथवा पुरुष) वशीभूत थाय छे ॥ ७० ॥

---

* इतरमते हजार दल होय छे।

33 वदनान्त° ब। 34 त्रिष्वादौ° ब। 35 नाडिभ्याम् ड। 36 स्व(स्म)रस्य बीजसुतः ड।

मणिपूर्णे श्रीबीजं जपारुणं वँर्ण(र्णं?) दशकदिग्भ्यः।
ईश्वरताणितवस्तूच्चयमिह वश्यं च लाभकरम् ॥ ७१ ॥

भालान्तर्भ्रूमध्ये त्रिकोणकोदण्डखेचरीत्याख्यम्।
अस्योर्ध्वं मध्ये वाँ माया-स्मरबीजयोरेकम् ॥ ७२ ॥

आधारान्तरवाग्भवं कुण्डलिनीतन्तुबद्धवश्यशिरः।
कृत्वाऽधःस्थितमरुणं ध्यातं बीजान्तरुत वश्यम् ॥ ७३ ॥

यदि वा भ्रूमध्यान्तः ऌवीँ बीजनिर्यदमृतवर्षभरम्।
ध्यातं विषरोगहरं त्रिकोणके मूर्ध्नि पूर्ववत् स्वरम् ॥ ७४ ॥

यदि वा—
कुण्डलिनीतन्तुद्युतिसंभृतमूर्तीनि सर्वबीजानि।
शान्त्यादि-संपदे स्युरित्येषो गुरुक्रमोऽस्माकम् ॥ ७५ ॥

मणिपूरचक्रमां 'श्रीँ' बीजनु जपा कुसुमनी माफक अरुणवर्णनु ध्यान दशे दिशाओमांथी '(?)' स्वर (अकुश)थी खेंचायो छे वस्तुसमूह जेनो एवा वश्य (स्त्री के पुरुष) ने वश करे छे अने लाभ माटे थाय छे (?) ॥ ७१ ॥

भालनी वचे भ्रूमध्यमा रहेल आज्ञाचक्रनां त्रिकोण, कोदण्ड, अथवा खेचरी एवां नामो छे तेना ऊर्ध्वभागमां अथवा मध्यभागमा मायाबीज-'ह्रीँ' अने स्मरबीज-'क्लीँ'—ए बेमांथी एकनुं ध्यान कराय छे ॥ ७२ ॥

आधारचक्रमा अरुणवर्ण 'ऐँ' मां कुडलिनी रूप तंतु वडे वश्यनुं शिर बंधायेल छे, एम चिंतववु अथवा वश्यने बीज नीचे अथवा बीजनी वचे चिंतववो; एथी वशीकरण थाय छे (?) ॥ ७३ ॥

अथवा तो भ्रूमध्यमा 'ऌवीँ' बीजमांथी झरता अमृतना वरसादथी भरपूर एवा ए बीजनु ध्यान विष अने रोगने हरनारुं थाय छे। अथवा आज्ञाचक्रना उपरना चक्रोमां पूर्ववत् स्वरोनुं ध्यान करवुं ॥ ७४ ॥

अथवा (ज्योतिर्मयी) कुडलिनी ततुनी ज्योतथी प्रकाशित वर्ण-देहवाळां अथवा कुंडलिनी ततुनी कांतिमांथी प्राप्त थयो छे आकार जेमने एवां सघळा बीजाक्षरो शान्ति आदि (तुष्टि-पुष्टि)नी संपत्ति माटे थाय छे—एवो अमारो गुरुक्रम—आम्नाय छे ॥ ७५ ॥

---

37 वर्णदेशक° स। 38 वामेयम्° म। 39 °भवकु° स। 40 °न्तः क्ष्वीँ क्ष्वीँ बीज° स। ऌवीँ क्षी म। 41 °वर्षभरम् स।

किं बीजैरिह शक्तिः कुण्डलिनी सर्वदेववर्णजनुः ।
रवि-चन्द्रान्तर्ध्याता भुक्त्यै मुक्त्यै च गुरुसारम् ॥ ७६ ॥

भ्रूमध्य-कण्ठ-हृदये नाभौ कोणे[42] त्रयान्तरा ध्यातम् ।
परमेष्ठिपञ्चकमयं मायाबीजं महासिद्ध्यै ॥ ७७ ॥

श्रीविबुधचन्द्रगणभृच्छिष्यः श्रीसिंहतिलकसूरिरिमम् ।
परमेष्ठियन्त्रकल्पं लिलेख साह्लाददेवताभक्त्या ॥ ७८ ॥

इति परमेष्ठिविद्यायन्त्रकल्पः ॥

अथवा बीजोथी शुं ? अहीं तो एक कुंडलिनी शक्ति ज सर्वदेवस्वरूप वर्णोने उत्पन्न करनारी छे। सूर्य अने चन्द्र नाडीमां (सुषुम्णामां) तेनुं ध्यान करवाथी ते भुक्ति–भोग अने मुक्ति–मोक्ष माटे बने छे—एवुं गुरुए आपेलुं रहस्य छे ॥ ७६ ॥

भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र)मां, कंठ (विशुद्धचक्र)मां, हृदय (अनाहतचक्र)मां, नाभि (मणिपूरचक्र)मां कोणद्वय (स्वाधिष्ठान अने मूलाधारचक्र)मां पंचपरमेष्ठिमय मायाबीज–'ह्रीं' नुं ध्यान महासिद्धि माटे थाय छे ॥ ७७ ॥

श्रीविबुधचंद्र आचार्यना शिष्य श्रीसिंहतिलकसूरिए आ 'परमेष्ठियन्त्रकल्प' प्रसन्न थयेला देवतानी भक्तिथी लख्यो छे ॥ ७८ ॥

	चक्रनुं नाम	चक्रनुं स्थान	चक्रनां दल	चक्रनो रंग	* चक्रदलना वर्णो	* चक्रनां तत्त्व	* चक्रनां तत्त्व-बीज	* चक्रनी देवी	* चक्र-यंत्रनो आकार	चक्रनां मंत्रबीज
१	मूलाधार	गुदामध्य	४	रक्त	व श ष स	पृथ्वी	लँ	डाकिनी	चतुष्कोण.	ऐँ
२	स्वाधिष्ठान	लिंगमूल	६	अरुण	ब भ म य र ल	जल	वँ	राकिनी	चन्द्राकार	ऐँ ह्रीँ क्लीँ
३	मणिपूर	नाभि	१०	श्वेत	ड ढ ण त थ द ध न प फ	अग्नि	रँ	लाकिनी	त्रिकोण	श्रीँ
४	अनाहत	हृदय	१२	पीत	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ	वायु	यँ	काकिनी	षट्कोण	
५	विशुद्ध	कंठ	१६	श्वेत	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः	आकाश	हँ	शाकिनी	शून्यचक्र (गोलाकार)	
६	ललना	घंटिका	२०	रक्त				हाकिनी		ह्रीँ
७	आज्ञा, त्रिकोण, कोदंड, खेचरी	भ्रूमध्य	३	रक्त	ह क्ष (?ळ)	महातत्त्व	ॐ	याकिनी	लिंगाकार	ह्रीँ क्लीँ
८	ब्रह्मरन्ध्र, सोमकला, हंसनाद	शीर्ष	१६	रक्त						
९	ब्रह्मबिन्दु, सुषुम्णा	सहस्रार	१०००	श्वेत						

---

42 °णे द्वया° ख।

* आ खानाओमां अपायेली माहिती ग्रंथांतर मुजब छे।

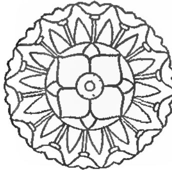
परिचय

'मन्त्रराजरहस्य' जे हजी सुधी प्रगट थयेल नथी तेना कर्ता श्रीसिंहतिलकसूरिए आ 'परमेष्ठिविद्यायन्त्रकल्प' नी रचना करेली छे। ७८ गाथाओना कल्पमां थोडांक पद्यो अनुष्टुप् छंदमां छे, ज्यारे मोटा भागनां पद्यो आर्यावृत्तमां छे।

आ कल्पनी अमने त्रण प्रतिओ मळी हती, तेमांनी एक स्व० श्रीमोहनलाल भगवानदास झवेरीना संग्रहनी हती, बीजी बुहारी, शेठ झवेरचंद पन्नाजीए करावेली नकलरूपे हती, अने त्रीजी प्रति पूना, भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्युटनी मळी हती। आ त्रणे प्रतिओ अशुद्ध हती छतां एक-बीजी प्रतिओना पाठो जोई-सुधारीने पाठभेद आपवापूर्वक मूलपाठ संपादित कर्यो छे अने ते अनुवाद साथे अमे अहीं प्रगट कर्यो छे।

श्रीसिंहतिलकसूरिए आ कृतिद्वारा परमेष्ठिविद्याना एक मौलिक यंत्रनुं विवरण कर्युं छे। ध्यान माटे कुंडलिनी विशे सरस माहिती आपी छे। जैनाचार्योमां कुंडलिनीना विषयमां आटलुं स्फुट विवेचन कोईए कर्युं होय एवुं जोवामां आव्युं नथी, ए दृष्टिए आ रचनानुं महत्त्व सविशेष छे।

यंत्रनी उपासना अने फळादेश विषयक सारी माहिती आ कल्पमां आपेली छे।



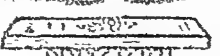


प. पू. आ. श्रीविजयप्रेमसूरीश्वरजी
म. हस्तलिखित पाठ.

पंचमंगल महासुयखंधं

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं



[५८-१३]

श्रीसिंहतिलकसूरिविरचितं लघुनमस्कारचक्रस्तोत्रम् ॥

नत्वा विबुधचन्द्रार्च्यं यशोदेवं मुनिं गुरुम् ।
वक्ष्ये लघुनमस्कारचक्रं साह्लाददेवता ॥ १ ॥

द्व्यष्टरेखाभिरष्टारं सप्तभिर्दशभिः परम् ।
रेखाभिरष्टवलयं चक्रं तुम्बे जिनाक्षरः (रम् ?) ॥ २ ॥

'ॐ नमो अरिहंताणं' आद्यं पदचतुष्टयम् ।
अरमध्ये द्विरावर्त्य लेख्यं प्रणवपूर्वकम् ॥ ३ ॥

पाशाङ्कुशाभयैः सार्द्धं वरदोऽरान्तरे[1] क्रमात् ।
लिख्यतेऽमुष्योपान्तेऽथ 'आँ क्रों ह्रीं श्रीं' चतुष्टयम् ॥ ४ ॥

प्राक् प्रणवो 'नमो लोए सव्वसाहूणं' इत्यपि ।
प्रथमे वलये लेख्यं प्राग्वत् पञ्चपदीफलम् ॥ ५ ॥

अनुवाद

गणधरो अने देवेन्द्रोने पण पूज्य एवा श्री तीर्थंकर परमात्माने, श्री विबुधचन्द्र (आचार्य) ने तथा पूज्य एवा गुरु श्रीयशोदेव मुनिने नमस्कार करीने प्रसन्न छे देवता जेना पर एवो हुं (देवतानी प्रसन्नताथी) 'लघुनमस्कारचक्र' कहुं छुं ॥ १ ॥

सोळ रेखाओ वडे आठ आरा आलेखवा, ए पछी सात अने दश रेखाओथी आठ वलयनुं चक्र करवुं अने वच्चे तुंबमां जिनाक्षर (ऽर्हं) लखवो ॥ २ ॥

'ॐ नमो अरिहंताणं' आदि प्रथमनां चार पदो आरानी मध्ये बे वखत आवर्त करीने प्रणव-ॐकारपूर्वक लखवां ॥ ३ ॥

बीजा (खाली रहेला आंतरामां) आराओनी वच्चे 'पाश, अंकुश, अभय अने साथोसाथ वरद' ए पदो लखवां, तेमज आराओनी समीपे 'आँ क्रों ह्रीं श्रीं' एम चारेयने लखवां ॥ ४ ॥

प्रथम वलयमां पहेलां (ॐपूर्वक) 'ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं' ए पद पण लखवुं । आ पांच पदोनुं फळ अगाऊ मुजब जाणवुं ॥ ५ ॥

---

१. °रे लिख्यते अ ।

'ॐ नमो चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं सिद्धा' ।
जाव 'धम्मं सरणं पवज्जामि' एवं द्वादशपदी ॥ ६ ॥
अर्हत्-सिद्धाः साधुर्धर्मो मङ्गलचतुष्टयं तद्वत् ।
लोकोत्तरशरणमपि लेख्यं वलये द्वितीये तु ॥ ७ ॥
द्वादशान्तर्मनाः साधुः पञ्चदशपदीमिमाम् ।
विद्यां सप्रणवां ध्यायन् शिवं यात्यपकल्मषः ॥ ८ ॥
उक्तं च,
मङ्गल-लोकोत्तम-शरण्यपदसमूहं सुसंयमी स्मरति ।
अविकलमेकाग्रतया लभते स स्वर्गमपवर्गम् ॥ ९ ॥
तृतीये वलये ॐ-मायायुता वर्णसप्ततिः ।
बीजाक्षरचतुष्कं च जिनबीजपदाश्रयम् ॥ १० ॥
"ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ"

वळी 'ॐ नमो चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं' थी लईने 'धम्मं सरणं पवज्जामि ।' सुधीनां बार पदो वडे अरिहंत, सिद्ध, साधु अने धर्म—ए चार लोकोत्तम, मंगल अने शरण सूचवाय छे । ते पदो बीजा वलयमां लखवां (बार पदी लखवी ।)॥ ६-७ ॥

चार मंगल, चार लोकोत्तम अने चार शरण्य ए बारने मनमां धारण करीने प्रणवथी सहित एवी आ पचदशपदी (पंदर पदवाळी) विद्यानुं ध्यान करतो साधु सर्व पापोथी रहित थईने मोक्षमां जाय छे।

पंचदशपदी विद्या आ रीते छे:—

ॐ नमो चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं ।

ॐ नमो चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

ॐ नमो चत्तारि सरणं पवज्जामि—अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ ८ ॥

कह्युं छे के—

"चार मंगलो, चार लोकोत्तम अने चार शरण्यना परिपूर्ण पदसमूहने जे सुसंयमी एकाग्रताथी स्मरण करे छे ते स्वर्ग अथवा मोक्ष पामे छे ॥ ९ ॥

त्रीजा वलयमां ॐ अने माया—ह्रीँ पूर्वक सित्तेर वर्णो अने जिनबीज 'अर्हँ' पदना आश्रयभूत चार बीजाक्षरो ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ लखवा ॥ १० ॥

---

१. °दाश्रयः ह्र ।

"ॐ ह्रीं नमो भगवओ तिहुयणपुज्जस्स वद्धमाणस्स ।
जस्सेयं खलु चक्कं जलंतमागच्छए पयडं ॥ ११ ॥
आयासं पायालं लोयाणं तह य चेव भूयाणं ।
जूए वा[1]वि रणे वा[2] विग्घं रायंगणे वावि ॥ १२ ॥
एवं च—'थंभणे मोहणे तह य सव्वजीवसत्ताणं' ।
अपराजिओ भवामि स्वाहा" इय मंतविन्नासो ॥ १३ ॥
चैत्रेऽष्टाह्निकायां तु त्रयोदश्यां विशेषतः ।
सहस्रैः जातिकुसुमैः सप्तभिर्वीरमर्चयेत् ॥ १४ ॥
जापैः सहस्रैरेतैः स्यादखण्डैः शालितण्डुलैः[3] ।
दृढब्रह्मव्रतस्यैवं सिद्धाऽसौ पठि (?पाठ)तोऽथवा ॥ १५ ॥
सन्ध्याद्वये स्मरन्नेवं व्यसनग्रह-मुद्गलैः ।
द्विपदैः श्वापदैर्दुष्टैर्न पराजीयते क्वचित् ॥ १६ ॥†

× × ×

अत्र कूटाक्षराः सर्वे सस्वरा अष्टवर्गतः ।
ते स्युर्वृद्धनमस्कारचक्रे अष्टारकक्रमात् ॥ ३४ ॥

(सित्तेर वर्णनो मंत्र आ प्रकारे छे—)

"ॐ ह्रीँ णमो भगवओ वद्धमाणसामिस्स जस्स चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जूए वा रणे वा रायंगणे वा वंधणे मोहणे थंभणे सव्वसत्ताणं अपराजिओ भवामि स्वाहा ॥"

आ प्रकारे विन्यास-मंत्रना उद्धार पूर्वक स्थापना करवी ॥ ११-१३ ॥

चैत्र महिनानी अष्टाह्निका (सातमथी पूनम) मां अने खास करीने त्रयोदशी (श्रीमहावीर प्रभुना जन्मकल्याणक) ना दिवसे सात हजार जाईनां पुष्पोथी वीर भगवाननी पूजा करवापूर्वक सात हजारनो जाप करवाथी अथवा सात हजार अखंड शाली अक्षतथी जाप करतां दृढ ब्रह्मचारीने आ विद्या पाठसिद्ध थाय छे ॥ ॥ १४–१५ ॥

बंने संध्याए आनुं ध्यान करतां आपत्तिओ, ग्रहो, मुद्गलादिना प्रयोगो, अथवा दुष्ट हिंस्र पशुओथी क्यांय पण पराभव थतो नथी ॥ १६ ॥

× × ×

अहीं बधा कूटाक्षरो ते स्वर सहित आठ वर्ग समजवा । ते बधा 'वृद्धनमस्कारचक्र' मां आठ आराओना क्रमथी जाणवा ॥ ३४ ॥

---

१. वा रयणे अ । २. वा निचं ग्र । ३. तन्दुलैः अ ।
† इतः १६ गाथातः ३३ गाथा पर्यन्तो वन्ध्यादिस्त्रीणां प्रयोगो नोद्धृतः ॥

"ॐ नमः पूर्वं थंमेइ" इति गाथा चतुर्थके ।
वलये योजनशतं यावत् स्तम्भक्रिया भवेत् ॥ ३५ ॥
"ॐ नमो थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तो वि पंचनवकारो
अरि-मारि-चोर-राउल घोरुवसग्गं पणासेइ ॥ ३६ ॥

अत्र विधिः—
शिलापट्टेऽथ भूर्जे वा फलके क्षीरवृक्षजे ।
कुं-गो-गोमय-गोक्षीरैर्जात्यादिलेखनीकरः ॥ ३७ ॥ ‡

× × × ×

[शान्तिपाठः—]
"मुक्त्वा स्त्री-गज-रत्न-चक्रमहतीं राज्यश्रियं श्रेयसे
प्रव्रज्या दुरिताश्रयप्रमथनी येन श्रिताऽभूत् पुरा ।
मृत्यु-व्याधि-जरावियोगमगमत् स्थानं च योऽत्यद्भुतं
तं वन्दे मुनिमप्रमेयमृषभं सेन्द्रामराभ्यर्चितम् ॥ ५८ ॥"

"ॐ नमो थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तो वि पंचनवकारो ।
अरि-मारि-चोर-राउल घोरुवसग्गं पणासेइ ॥"

(पंच नमस्कार चिंतनमात्रथी पाणी अने अग्निने थंभावे छे तेमज शत्रु, महामारी, चोर अने राजकुळोथी थता घोर उपद्रवोनो नाश करे छे ॥)

आ गाथा चोथा वलयमां लखवी । एथी सो योजन सुधी स्तम्भनक्रिया थई शके छे ॥ ३५-३६ ॥

अहींथी विधि दर्शावे छे—

जूई वगेरेनी डाळीथी बनावेली लेखनी हाथमां लईने कुंकुम, गोरोचना, गायनुं छाण अने गायना दूध वडे पथ्थरनी शिला ऊपर, भूर्जपत्र ऊपर अथवा क्षीरवृक्षना पाटिया ऊपर (आ प्रकारे) लखवुं (?) ॥ ३७ ॥

■ × ×

('मुक्त्वा०' श्लोक शान्तिपाठ छे, ते बोलवो, ते श्लोकनो अर्थ—)

जेमणे स्त्रीओ, हाथीओ, रत्नोना समूहथी युक्त एवी महान राजलक्ष्मीनो त्याग करीने कल्याणना अर्थे पापना आश्रयभूत मोहनीय कर्मनो नाश करनारी दीक्षाने पूर्वे अंगीकार करी हती अने मृत्यु, व्याधि अने वृद्धावस्था ज्यां नथी एवा अत्यंत अद्भुत स्थानने (मोक्षने) प्राप्त कर्युं हतुं ते अप्रमेय (जेमना संपूर्ण स्वरूपने छद्मस्थ न जाणी शके एवा) अने जेमनी इन्द्रो सहित देवताओए पूजा करी छे एवा मुनिपति श्री ऋषभदेवस्वामीने हुं वंदन करुं छुं ॥ ५८ ॥

---

‡ ३७ गाथातः ५७ गाथापर्यन्तो गर्भगतोऽवशिष्टो विधिर्नोद्धृतः ॥

एवं 'बृहन्नमस्कार' प्रोक्तं श्रीशान्तिमन्त्रकं यद्वा ।
'थंभेइ जलं' इत्यादिगाथां जपन् शताधिकाम्[1] ॥ ५९ ॥

शुक्लवस्त्रेण संछाद्यं[2] त्रिसन्ध्यमष्टपूजया ।
त्रिदिनं त्रिदिनस्यान्ते महापूजापुरस्सरम् ॥ ६० ॥

अभिषेकजलं तत्तु क्षेप्यं श्रीकलशान्तरे ।
श्रीशान्तिप्रतिमां हस्ति-शिबिका-रथमूर्धनि ॥ ६१ ॥

शुक्ल[3]वस्त्रधृताङ्गस्य नरस्य ब्रह्मचारिणः ।
कुलशुद्धस्य मान्यस्य मूर्ध्नि कृत्वा सचामराम्[4] ॥ ६२ ॥

छत्रेण सहितां चन्द्रोदये ध्वजस्रजाञ्चिताम्[5] ।
तूर्यत्रिकोल्लसद्वातां प्रदीपद्युतिभासुराम् ॥ ६३ ॥

चतुर्विधेन संघेन संयुतः सूरिरुद्यमी ।
मारि-ग्रहीतग्रामाद्यष्टदिक्षु प्रददेद् बलिम् ॥ ६४ ॥

दिने तस्मिन्नमारिः स्यात् पटहोद्‌घोषपूर्वकम् ।
चतुर्विधाय संघाय भक्त्या दानं दिशेन्मुनिः ॥ ६५ ॥

आ प्रकारे 'बृहन्नमस्कारचक्र' मां कहेला शांतिमंत्रनो अथवा 'थंभेइ जलं०' गाथानो सोथी वधुवार (१०८) जाप करवो ॥ ५९ ॥

श्वेत वस्त्रो धारण करीने (?) रोज त्रणे संध्याए अष्टप्रकारी पूजा त्रण दिवस सुधी करवी। त्रण दिवस पछी 'महापूजा' भणाववी ॥ ६० ॥

ते अभिषेकनुं पाणी कळशमां नाखवुं। पछी जेणे श्वेत वस्त्र धारण कर्यां होय अने जे ब्रह्मचारी, कुलीन अने मान्य होय एवा मनुष्यने हाथीपर, पालखीमां के रथमां बेसाडवो। तेना मस्तके श्री शांतिनाथ प्रभुनी प्रतिमा मूकवी। त्यां चामर छत्र, चंदरवो, धजा, माळा, प्रदीप वगेरे पण होवा जोईए। वातावरण वाजिंत्रोना नादथी उल्लसित थयेलुं होवुं जोईए।

आ बधो महोत्सव संयममां उद्यमशील एवा सूरि भगवान चतुर्विध संघनी साथे करे। पछी ते सूरि मरकीथी पीडातां गाम वगेरेमां आठे दिशाए बलि प्रक्षेप करे। ते दिवसे पडहनी उद्‌घोषणापूर्वक गाममां अमारि प्रवर्तावची।

ते पछी ते सूरि चतुर्विध संघने भक्तिदाननो उपदेश करे।

ते दिवसे दीन वगेरेने घणुं दान आपवुं। पछी कळशना जलनुं सिंचन करवुं। ए रीते मरकीनो उपद्रव शांत थाय छे। गायोमां मरकी फेलायेली होय तो गायोना वाडाओना प्रवेशमार्गमां अने

---

१. °धिकम् अ। २. सच्छाद्यं अ। ३. श्लक्ष्णव० ड। ४. सचामरम् अ। ५. ०श्रितम् अ।

दानं दीनादिषु प्राज्यं देयमेवंकृते सती(ति) ।
मारिर्निवर्तते किन्तु तत्कुम्भजलसेचनात् ॥ ६६ ॥
गोमार्यादिषु गोवाटप्रवेशे श्रावकैः शुभैः ।
तत्कुम्भजलसिक्ता गौर्मूर्ध्नि गोमारिवारणम् ॥ ६७ ॥
पञ्चमे वलये लेख्या 'ॐ नमः' पूर्वमेष्वि(पि)का ।
स्वाहान्ता गाथिका क्षेत्र-स्वसैन्यत्राणकारिणी ॥ ६८ ॥
"अट्ठेव य अट्ठसयं अट्ठसहस्सा य अट्ठकोडीओ ।
रक्खंतु मे सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा" ॥ ६९ ॥
भूर्यादावेपिका गाथा लिखिता चन्दनादिभिः ।
रक्ष्या जिनान्तिके पूज्या बद्धा दोषज्वरापहा ॥ ७० ॥
'ॐ नमो अरिहंताणं' पूर्वं 'अट्ठविहा'दिकम् ।
गाथां वलये षष्ठे स्वाहान्तां विलिखेन्मुनिः ॥ ७१ ॥
'अट्ठविहकम्ममुक्को तिलोयपुज्जो य संथुओ भगवं ।
अमर-नर-रायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ' ॥ ७२ ॥

गायोना मस्तके श्रावकोए ते कुंभनुं जल छांटवु। एथी गायोमां फेलायेली मरकीनु निवारण थाय छे ॥ ६१-६७ ॥

पांचमा वलयमां पहेलां 'ॐ नम.' लखवु, ते पछी नीचेनी गाथा लखवी—

"अट्ठेव य अट्ठसय अट्ठसहस्सा य अट्ठकोडीओ
रक्खंतु मे सरीर देवासुरपणमिया सिद्धा ॥"

पछी अते 'स्वाहा' लखवुं। एथी क्षेत्र अने पोताना सैन्यनु रक्षण थाय छे ॥ ६८-६९ ॥

भोजपत्रमा आ गाथाने चंदन वगेरेथी लखवी। ते पत्रने श्रीजिनेश्वर देवने सामे राखीने गाथानु पूजन करवुं। आ गाथाने (हाथे) बांधवामां आवे तो कोई दोष नडतो नथी अने ताव दूर थाय छे ॥ ७० ॥

मुनिए (मंत्राचार्ये) छट्ठा वलयमां 'ॐ नमो अरिहंताणं' लखीने आ गाथा लखवी—

"अट्ठविहकम्ममुक्को तिलोयपुज्जो य संथुओ भगवं।
अमर-नर-रायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥"

—आठ प्रकारना कर्मोथी रहित, त्रणे लोकथी पूजायेला अने स्तवायेला देवेंद्रो अने चक्रवर्तिओथी पण पूजित अने जेमने आदि अने अंत नथी एवा हे भगवन्! अमने मोक्ष आपो। आ गाथा लखीने अते 'स्वाहा' लखवुं ॥ ७१-७२ ॥

---

१. °वैन्ये त्रा० ह्र। २. भूर्जादा० ह्र।

सप्तमे वलये ॐ प्राक् 'नमो सिद्धाणं' इत्यतः ।
'तव' इत्याद्यां लिखेद् गाथां 'स्वाहा'न्तां शिवगामिनीम् ॥ ७३ ॥

'तवनियमसंयमरहो पंचनमोकारसारहिनिउत्तो ।
नाणतुरंगमजुत्तो नेइ पुरं परमनिव्वाणं' ॥ ७४ ॥

'ॐ प्राग् धणुद्वयं तस्मान्महाधणु-महाधणु ।
स्वाहा' इतीमां धनुर्विद्यामष्टमे वलये लिखेत् ॥ ७५ ॥

कायोत्सर्गे उपोष्यैनां श्रीवीरप्रतिमाग्रतः ।
अष्टोत्तरं सहस्रं प्राग् जपेत् सिद्धा मुनेरसौ ॥ ७६ ॥

स्मृत्वैतां [च] पथि धूल्यन्तराऽऽलिख्य सशरं धनुः ।
आक्रम्य वामपादेन मौनी गच्छेन्न दस्यवः ॥ ७७ ॥

युद्धकाले जिनं वीरं संपूज्याष्टशतस्मृतेः ।
प्राग्वद् धनुःक्रियां कृत्वा युद्धे गच्छेन्न शस्त्रभीः ॥ ७८ ॥

परेषां सम्मुखीभूतां धनुर्विद्यां महोमयीम् ।
इन्द्रचापसदृक्कान्ति ध्यायेन्मन्त्रं पठेदमुम् ॥ ७९ ॥

सातमा वलयमां पहेलां 'ॐ नमो सिद्धाणं' लखीने नीचेनी 'शिवगामिनी' गाथा लखवी—

"तव-नियम-संयमरहो पंचनमोकारसारहिनिउत्तो ।
नाणतुरंगमजुत्तो नेइ पुरं परमनिव्वाणं ॥"

—पंच नमस्काररूपी सारथिथी नियुक्त अने ज्ञानरूपी अश्वोथी सहित एवो तप, नियम अने संयमरूपी रथ परमनिर्वाण—मोक्षपुरमां लई जाय छे ॥

आ गाथा लखीने अंते 'स्वाहा' लखवुं ॥ ७३-७४ ॥

आठमा वलयमां—'ॐ धणु धणु महाधणु महाधणु स्वाहा ।'—आ प्रकारे 'धनुर्विद्या' लखवी ॥ ७५ ॥

उपवास करीने श्रीवीर भगवाननी प्रतिमा आगळ कायोत्सर्गमां रहेला मुनि-मंत्राचार्य एनो एक हजार ने आठ वार जाप करे तो आ विद्या सिद्ध थाय छे ॥ ७६ ॥

आ विद्यानुं स्मरण करीने मार्गमां धूळनी अंदर बाण साथे धनुष्यनुं (चित्र) आलेखन करवुं । ए (चित्रलेखन) ने मौनपूर्वक डावा पगथी ओळंगवुं । एथी शत्रुओ (सामे) आवता नथी ॥ ७७ ॥

युद्ध समये श्रीवीरजिनेश्वरने पूजीने आ मंत्रनुं एकसो ने आठ वार स्मरण करवाथी अने पहेलांनी माफक ज धनुष्यनी क्रिया (आलेखन वगेरे) करीने युद्धमां जतां शस्त्रनो भय रहेतो नथी ॥ ७८ ॥

बीजाओनी सामे थती आ तेजस्वी 'धनुर्विद्या' छे, तेनी कांति इन्द्रधनुष्य जेवी छे, ए प्रकारे ध्यान करतां आ (धनुर्विद्या)नो पाठ करवो जोईए ॥ ७९ ॥

तद्ध्यानावेशतो वैरिसेना पराङ्मुखी तथा ।
सैन्यद्वयं प्रतीपं चेद् ध्यायते सैन्यसन्धिदा ॥ ८० ॥
वलयाष्टबहिर्दिक्षु पद्मं षोडशपत्रकम् ।
प्रतिपत्रं विलिख्यन्ते अं(अँ)आद्या षोडशस्वराः ॥ ८१ ॥
आदिद्वयष्टस्वराग्रे तत् प्रत्येकं 'हूँ' इहाक्षरम् ।
षोडशस्वरसंबद्धं 'हूँ हाँ हिँ हीँ' मुखं लिखेत् ॥ ८२ ॥
एतदूर्ध्वं द्वयष्टदलं पद्मं तु प्रतिपत्रकम् ।
षोडशविद्या लेख्या(? खनीया) मन्त्रबीजयुतास्तथा ॥ ८३ ॥

१. ॐ यॉ रोहिण्यै अं नमः ।[1] २. ॐ राँ प्रज्ञप्त्यै आँ नमः ।
३. ॐ लाँ वज्रशृङ्खलायै इँ नमः । ४. ॐ वाँ वज्राङ्कुश्यै ईँ नमः ।
५. ॐ शाँ अप्रतिचक्रायै उँ नमः । ६. ॐ षाँ पुरुषदत्तायै ऊँ नमः ।
७. ॐ साँ काल्यै ऋँ नमः । ८. ॐ हाँ महाकाल्यै ॠँ नमः ।

एवा प्रकारना तेना ध्यानना प्रभावथी शत्रुनुं सैन्य पाछुं जाय छे। विरुद्ध एवां बे सैन्योने उद्देशीने संधिनी दृष्टिए करातुं आ विधानु ध्यान ते बेमां संधि करावनारुं बने छे ॥८०॥

आठे वलयोनी बहार आठे दिशाओमा सोळ पत्रवाळा पद्मना प्रत्येक पादडामां 'अँ आँ' वगेरे सोळ स्वरो लखवा ॥८१॥

ए सोळे स्वरनी आगळ पहेलां ते प्रत्येकने 'हूँ' ए प्रकारे सोळ स्वरोथी जोडायेला, जेवा के— 'हूँ हाँ हिँ हीँ' वगेरे लखवा ॥८२॥

एनी ऊपर सोळ पत्रवाळा कमळना प्रत्येक पादडामां सोळ विद्याओ मंत्रबीज सहित (मूळमां आपी छे ते मुजब) लखवी ॥८३॥

---

१. (१) अ प्रतौ—ॐ नमो रोहिणी ह्रॉं फट् स्वाहा । (१) ह्र प्रतौ—ॐ नमो रोहिणि [illegible] फुट् स्वाहा ।
(२) अ प्रतौ—ॐ नमो पन्नत्ति ह्रीँ फट् स्वाहा । (२) ह्र प्रतौ—ॐ नमो पन्नत्ती ह्रीँ फुट् स्वाहा ।
(३) अ प्रतौ—ॐ नमो वज्रशृङ्खला ह्रूँ फट् स्वाहा । (३) ह्र प्रतौ—ॐ नमो वज्रशृङ्खला ह्रूँ फुट् स्वाहा ।
(४) अ प्रतौ—ॐ नमो वज्राङ्कुशी क्रौँ ह्री फट् स्वाहा । (४) ह्र प्रतौ ॐ नमो वज्राङ्कुशी क्रौँ ह्री फुट् स्वाहा ।
(५) अ प्रतौ ॐ नमो अप्रतिचक्रे ह्रूँ ह्रूँ फट् स्वाहा । (५) ह्र प्रतौ ॐ नमो अप्रतिचक्रे ह्रूँ ह्रूँ फुट् स्वाहा ।
(६) अ प्रतौ ॐ नमो पुरुषदत्ते हुँ फुँ हुँ [illegible] फट् स्वाहा । (६) ह्र प्रतौ ॐ नमो पुरुषदत्ते फुँ हूँ क्षुँ फुट् स्वाहा ।
(७) अ प्रतौ ॐ नमो काली अम्म हुँ फट् स्वाहा । (७) ह्र प्रतौ ॐ नमो काली अम्म हुँ फुट् स्वाहा ।
(८) अ प्रतौ ॐ नमो महाकाली गुँ धूँ फट् स्वाहा । (८) ह्र प्रतौ ॐ नमो महाकाली गू धूँ फुट् स्वाहा ।

९. ॐ यूँ गौर्यै लँ नमः। १०. ॐ रूँ गान्धार्यै लृँ नमः।
११. ॐ लृँ सर्वास्त्रमहाज्वालायै एँ नमः। १२. ॐ वूँ मानव्यै ऐँ नमः।
१३. ॐ शूँ वैरोट्यायै ओँ नमः। १४. ॐ पूँ अच्छुप्तायै औँ नमः।
१५. ॐ ह्रूँ मानस्यै अँ नमः। १६. ॐ हूँ महामानस्यै अः नमः॥

इति मन्त्रबीजपूर्वा विद्यादेव्यो दलेषु स्युः॥

देवीषोडशपत्राग्रे परमेष्ठिपदाक्षराः।
षोडशोर्ध्वे स्फुरच्चद्रबिन्दवो ज्योतिरञ्चिता [:] ॥ ८४ ॥
"अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहुवन्नियं विंदुं।
जोयणसयप्पमाणं जालासयसहस्सदिप्पंतं ॥ ८५ ॥
सोलससुयअक्खरेहिं[2] इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोयं।
भवसयसहस्समहणो जम्मि ठिओ पंचनवकारो" ॥ ८६ ॥

ए प्रकारे मंत्रबीज साथे विद्यादेवीओ दलोमां होवी जोईए॥

सोळ देवीओना पत्रोनी आगळ (ऊपर) ज्योतिर्मय, स्फुरायमान कला अने विंदुओवाळा परमेष्ठिपदना अक्षरो लखवा ॥ ८४ ॥ ते आ प्रकारे—

"अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहुवन्नियं विंदुं।
जोयणसयप्पमाणं जालासयसहस्सदिप्पंतं ॥
सोलससुयअक्खरेहिं इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोयं।
भवसयसहस्समहणो जम्मि ठिओ पंचनवकारो ॥"

'अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसाहु' ए सोळ अक्षरोमांना प्रत्येक पर सेंकडो योजन प्रमाण अने लाखो ज्वालाओथी प्रदीप्त एवो विंदु छे, एम चिंतववुं। आ सोळ श्रुताक्षरोमांनो प्रत्येक अक्षर जगतमां उद्योत करनारो छे। कारण के एमां लाखो भवोनो नाशक पंचनमस्कार रहेलो छे।

(अँ रिँ हँ तँ सिँ द्धँ आँ यँ रिँ यँ उँ वँ ज्झाँ यँ साँ हुँ) ॥ ८५-८६ ॥

---

१. (९) अ झ प्रत्योः ॐ नमो गौरी क्षो वँ फट् स्वाहा। (१०) अ झ प्रत्योः ॐ नमो गान्धारी क्षाँ फट् स्वाहा। (११) अ झ प्रत्योः ॐ नमो सर्वास्त्रमहाज्वाले हूँ फट् स्वाहा। (१२) अ झ प्रत्योः ॐ नमो मानवी स्युँ फट् स्वाहा। (१३) अ प्रतौ ॐ नमो वैरोट्या वाँ फट् स्वाहा। (१३) झ प्रतौ ॐ नमो वैराट्या वाँ फट् स्वाहा। (१४) अ झ प्रत्योः ॐ नमो अच्छुत्ते हुँ क्षूँ फट् स्वाहा। (१५) अ प्रतौ ॐ नमो मानसी क्षूँ ह्रूँ फट् स्वाहा। (१५) झ प्रतौ ॐ नमो मानसी क्षुँ ह्रूँ फट् स्वाहा। (१६) अ झ प्रत्योः ॐ नमो महामानसी हुलु हुँ फट् स्वाहा।

२. ° रेसु इ° झ।

उक्तं च—'विन्दुं विनाऽपी'त्यादिचतुःश्लोकी ।

चतुर्षु पटकोणेषु चतुरष्ट-दशं-द्विकम् ।
अष्टापदजिना ज्ञेयाः 'चत्तारि' इत्यादिगाथया ॥ ८७ ॥

यद्वाऽष्टचत्वारिंशत्सहस्रा द्व्यधिकं शतम् ।
जातिसुमनसां जापो होमो दशांशमानय(तः) ॥ ८८ ॥

'श्रीइन्द्रभूतये स्वाहा' 'ॐ प्रभासाय' पूर्ववत् ।
पटस्यैशानकोणे द्वे(द्वौ) गाथिका पूर्वदिग्गता ॥ ८९ ॥

'सोमे य वग्गु-वग्गू(ग्गु) सुमणे सोमणसे तह य महुमहुरे ।
किलिकिलि अप्पडिचक्का हिलिहिलि देवीओ सव्वाओ' ॥ ९० ॥

'ॐ अग्निभूतये स्वाहा' स्वाहान्तं वायुभूतये ।
पटस्याग्नेयकोणे द्वौ मन्त्रावेकस्तयोरधः ॥ ९१ ॥

'ॐ अ सि आ उ सा हुलु [हुलु] चुलुद्वयं ततः ।
इच्छियं मे कुरुद्वन्द्वं स्वाहा' सर्वार्थसिद्धिदा ॥ ९२ ॥

'विन्दुं विनाऽपि' इत्यादि चार श्लोकोमां पण ए ज कहेवामां आव्युं छे ।

पटना चार खूणामां 'चत्तारि अट्ठ-दस-दोय°' ए गाथा मुजब, अष्टापदपर जे प्रकारे चार, आठ, दश अने बे जिनेश्वरो छे तेम अहीं पण समजवा* ॥ ८७ ॥

अथवा अडतालीस हजार ने बसो (४८२००) प्रमाण जूईना पुष्पोथी जाप करवो अने तेना दशमा भागे (एटले ४८२० वार) होम करवो ॥ ८८ ॥

पटना ईशानखूणामां—(१) ॐ इन्द्रभूतये स्वाहा । (२) ॐ प्रभासाय स्वाहा—आ बे मंत्रो अने पूर्वदिशामां नीचेनी एक गाथा लखवी—

"सोमे य वग्गु वग्गु सुमणे सोमणसे तह य महुमहुरे ।
किलिकिलि अप्पडिचक्का हिलिहिलि देवीओ सव्वाओ ॥" ॥ ८९-९० ॥

पटना अग्निखूणामां—(१) ॐ अग्निभूतये स्वाहा । (२) ॐ वायुभूतये स्वाहा—आ बे मंत्रो अने (नीचेनो) एक मंत्र तेनी नीचे (आ प्रकारे) लखवो—

"ॐ अ सि आ उ सा हुलु हुलु चुलु चुलु इच्छियं मे कुरु कुरु स्वाहा।"—आ विद्या सर्वसिद्धिने आपनारी छे ॥ ९१-९२ ॥

---

१ जातिसु॰ च । २ ॰द्वन्द्वा॰ च ।

* पटयंत्रना चारे खूणामां 'चत्तारि' गाथा मूकवी अने ते प्रमाणे भगवंतनां नामो के आकृतिओ (?) आलेखवी ।

दक्षिणस्यां[दिशि] 'ॐ प्राग् व्यक्तायाथ मरुन्नभः ।'
'ॐ प्राक् सुधर्मस्वामिने स्वाहा' इति [च] पदद्वयम् ॥ ९३ ॥

नैऋते 'प्रणवः पूर्वं मण्डिताय मरुन्नभः ।'
'प्रणवो मौर्यपुत्राय स्वाहा' इति गणभृद्द्वयम् ॥ ९४ ॥

पश्चिमायां 'वाय्वग्निभ्यां स्वाहा'न्ते[1] प्रणवः पुरः ।
अकम्पिताऽचलभ्राता मेतार्य इति मध्यतः ॥ ९५ ॥

प्राच्यां गाथेश[:?] काष्ठादौ चतुर्विदिक् त्रिदिक् क्रमात् ।
द्वौ द्वावेकैकः(कश्च) सूरिराजान इति मे मतिः ॥ ९६ ॥

यद्वा,

प्राच्यां गुरुरतः प्राग्वद् गौतमासनमम्बुजम् ।
गाथाबीजयुतं ध्यानं वाच्यं प्राक्सूरियन्त्रतः ॥ ९७ ॥

बहिश्चतुर्दलं पद्मं चतुर्दिक्षु लिखेदिदम् ।
'ॐ नमो सव्वसिद्धाणं' पदं सर्वार्थसाधकम् ॥ ९८ ॥

दक्षिणदिशामां—(१) ॐ व्यक्ताय स्वाहा। (२) ॐ सुधर्मस्वामिने स्वाहा—एम लखवुं ॥ ९३ ॥

नैर्ऋत्यदिशामां—(१) ॐ मण्डिताय स्वाहा। (२) ॐ मौर्यपुत्राय स्वाहा—एम बे गणधरोनां नाम लखवां ॥ ९४ ॥

पश्चिमदिशामां—ॐ अकम्पिताय स्वाहा। वायव्यदिशामां—ॐ अचलभ्रात्रे स्वाहा। अग्निदिशामां—ॐ मेतार्याय स्वाहा ॥ ९५ ॥

पूर्वदिशामां एक गाथा अने दिशाओ पैकी चारे विदिशाओमां बे बे (मळीने आठ) अने बाकीनी त्रण दिशाओमां एकेक ए प्रमाणे सूरिराजाओ—गणधरोने स्थापवा एम हुं मानुं छुं (?) ॥ ९६ ॥

अथवा—

पूर्वदिशामां गुरु छे तेथी, पहेलांनी माफक गौतमस्वामीनुं आसन कमळ छे एटले कमळनी वच्चे गौतमस्वामीनुं गाथाबीज साथेनुं ध्यान पहेलां जणावेला 'सूरियंत्र' मुजब समजवुं ॥ ९७ ॥

बहारना चार पत्रवाळा कमळमां चारे दिशामां 'ॐ नमो सव्वसिद्धाणं' लखवुं। ए पद सर्व अर्थनुं साधक छे ॥ ९८ ॥

---

१ ०हान्तः प्र० ज्ञ ।

1 मरुत्=स्वा। 2 नमः=हा।

अष्टारमौलिकुम्भेषु 'जम्भे मोहे'-चतुष्टयम् ।
ऽरावर्त्य क्रमाल्लेख्यमयं मन्त्रश्च पश्चिमे ॥ ९९ ॥
'ॐ नमो अरिहंताणं एहि एहि नन्दे महानन्दे पन्थे बन्धे दुप्पयं ।
धे चउप्पयं बंधे घोरं आसिविसं बन्धे जाव गण्ठि न मुञ्चामि ॥"
नामष्टशतं स्मृत्वा कृत्वा ग्रन्थि स्ववाससि ।
पथि गम्यं न चौराद्युपद्रवः छोट्यते स्थितौ ॥ १०० ॥
मायाबीजं त्रिरेखाभिरुपर्यावेष्टयमन्ततः ।
क्रौं भूमण्डलं यद्वा (?) वारुणं स्वस्ववर्णकम् ॥ १०१ ॥
मध्ये'ऽर्हं 'बीजमावेष्टयं केचिद् रत्नत्रयाक्षरैः ।
केचित् (च) बीजचक्रेण गुरुरेव प्रमा मतिः(तः) ॥ १०२ ॥

ध्यानम्—

अथ ध्यानविधिं वक्ष्ये जितेन्द्रियदृढव्रतः ।
सम्यग्दृग् गुरुभक्तश्च सत्यवाग् मन्त्रसाधकः ॥ १०३ ॥
एकान्ते शुचिभूमौ सः पूर्वोत्तराश(शा)दिङ्मुखः ।
तीर्थाम्भो-गोमय-रसैः सिक्तां भूमिं विचिन्तयेत् ॥ १०४ ॥

आठ आराना शिखर ऊपर रहेला कुंभोमां 'जंभे मोहे' इत्यादि चतुष्टय बे वार चारे दिशामां क्रमशः लखवुं अने आ मंत्र पश्चिम दिशामां लखवो—

"ॐ नमो अरिहंताणं एहि एहि नंदे महानंदे पंथे बंधे दुप्पयं बंधे चउप्पयं बंधे घोरं आसीविसं बंधे जाव गंठिं न मुंचामि।"

आ विद्यानुं एक सो ने आठ वार स्मरण करीने पोताना वस्त्रमां गांठ वाळवी; आथी मार्गे जतां चोर वगेरेनो उपद्रव नडतो नथी। स्थाने पहोंच्या पछी गांठ छोडवी ॥ ९९-१०० ॥

पछी यंत्रने मायाबीज–'ह्रीँ'कारथी नीकळती त्रण रेखाओथी वींटीने अंते 'क्रौं' लखवुं। पछी पोतपोताना वर्णनुं भूमंडल अथवा वारुण मंडल करवुं (?) ॥ १०१ ॥

मध्यमां 'अर्हँ' (ऽर्हँ) बीजनुं आवेष्टन करवुं। केटलाक त्रण रत्नना अक्षरोनुं(थी) अने केटलाक बीजाक्षरना चक्रनुं(थी) आवेष्टन करवानुं जणावे छे; (एमां तो) गुरु ए ज प्रमाण छे (!) ॥ १०२ ॥

हवे ध्यानविधि कहे छे—

हवे हुं ध्यानविधि जणावीश—जितेन्द्रिय, दृढव्रती, सम्यग्दृष्टि, गुरुभक्त, सत्यवादी एवा मंत्रसाधके एकांतस्थानमां पवित्र भूमि पर पूर्व, उत्तर के ईशान (?) दिशा तरफ मों राखीने ध्यानभूमि गोमयथी लींपेली तथा तीर्थजलोथी सिंचायेली छे एम चिंतववुं ॥ १०३-१०४ ॥

सहस्रदलपद्मान्तःपर्यङ्कासनसंश्रितम् ।
प्रसन्नाभिर्जयाद्य(द्य)ष्टसुरीभिस्तीर्थवारिभिः ॥ १०५ ॥

भृतैः सुवर्णभृङ्गारैर्वक्त्रदत्ताम्बुजैः स्वकम् ।
स्नप्यमानं विचिन्त्यामुं मन्त्रं हृदि विचिन्तयेत् ॥ १०६ ॥

'ॐ नमो अरिहंताणं अशुचिः शुचिरित्यतः ।
भवामि स्वाहा' इति स्नातः कुर्याद् देहस्य रक्षणम् ॥ १०७ ॥

"ॐ नमो अरिहंताणं ह्रीं हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो सिद्धाणं हर हर शिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो आयरियाणं ह्रीं शिखां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो उवज्झायाणं एहि भगवति चक्रे कवचवज्रिणि हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं क्षिप्रं साधय साधय दुष्टं वज्रहस्ते ।
शूलिनि रक्ष रक्ष 'आत्मरक्षा' सर्वरक्षा हुं फट् स्वाहा ॥"
कृत्वाऽमीभिः 'स्वाङ्गरक्षां' 'दिग्बन्धं' 'चेन्द्रभूतये ।
स्वाहा'द्यैः सर्वगणभृदाह्वानं क्रियते ततः ॥ १०८ ॥

सहस्रदल पद्ममां वच्चे पोते पर्यंकासने बेठेल छे अने जेमना मुख पर कमळो मूकेलां छे एवा सुवर्ण कलशो वडे जयादि आठ देवीओ तीर्थजलोथी पोतानो (ध्यातानो) अभिषेक करे छे, एम चिंतवे । ते वखते निम्नोक्त मंत्र हृदयमां चिंतववो ॥ १०५–१०६ ॥

"ॐ नमो अरिहंताणं अशुचिः शुचिः भवामि स्वाहा ।"

एम मंत्र वडे स्नान करीने शरीरना रक्षण माटे (नीचेना मंत्रो) बोलवा—

"ॐ नमो अरिहंताणं ह्रीं हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो सिद्धाणं हर हर शिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो आयरियाणं ह्रीं शिखां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो उवज्झायाणं एहि भगवति चक्रे कवचवज्रिणि ! हुं फट् स्वाहा ।
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं क्षिप्रं साधय साधय दुष्टं वज्रहस्ते शूलिनि ! रक्ष रक्ष आत्मरक्षा सर्वरक्षा हुं फट् स्वाहा ॥"

आ (बधा) मंत्रोथी पोताना अंगनी रक्षा करवी । पछी दिग्बंधन करीने "ॐ इन्द्रभूतये स्वाहा ।" इत्यादि मंत्रो वडे सर्व गणधरोनुं आह्वान करवुं ॥ १०७–१०८ ॥

त्रिप्राकार-स्फुरज्ज्योतिः-समवसृतिमध्यगम् ।
चतुःषष्टिसुराधीशैः पूज्यमानक्रमाम्बुजम् ॥ १०९ ॥

छत्रत्रयं पुष्पवृष्टि-मृगेन्द्रासन-चामरं (राः ?) ।
अशोक-दुन्दुभि-दिव्यध्वनिर्भामण्डलान्यपि ॥ ११० ॥

इत्यष्टभिः प्रातिहार्यैर्भूषितं सिंहलाञ्छनम् ।
संसदन्तःसुवर्णाभं वर्धमानं जिनं हृदि ॥ १११ ॥

साक्षाद् विलोकयन् ध्याता तल्लीनाक्षिमना अमुम् ।
अष्टोत्तरं शतं मन्त्रं सूरिमन्त्रसमं जपेत् ॥ ११२ ॥

एतद् यन्त्रं जैनधर्मचक्रमष्टारभासुरम् ।
अष्टदिक्षु स्फुरद्भाभिः शतयोजनदीपकम् ॥ ११३ ॥

तच्छायाक्रान्तिवित्रस्तदुरितं सर्वपूजितम् ।
आत्मानं च स्मरेन्नित्यं तस्य स्युरष्टसिद्धयः ॥ ११४ ॥

मोक्षाभिचार-मारेषु शान्त्याकृष्ट्यादिषु क्रमात् ।
अङ्गुष्ठादि-कनिष्ठान्तमक्षसूत्रं करे धरेत् ॥ ११५ ॥

इति श्रीलघुनमस्कारचक्रम् ॥

ध्यानार त्रण गढथी स्फुरायमान-प्रकाशवाळा, समवसरणनी मध्यमां रहेला, चोसठ इन्द्रोथी जेमनां चरणकमळ पूजाय छे एवा अने त्रण छत्रो, पुष्पवृष्टि, सिंहासन, चामर, अशोकवृक्ष, दुंदुभि, दिव्य ध्वनि अने भामंडल—एम आठ प्रातिहार्योथी अलङ्कृत, सिंहना लांछनवाळा, सुवर्ण जेवी कांतिवाळा, पर्षदामां विराजमान श्रीवर्धमान जिनेश्वरने हृदयमां साक्षात् जोतां । ध्यान करनारे एमनी अंदर नेत्र अने मनने लीन करीने 'सूरिमंत्र' समान आ मंत्रनो एकसो आठ वार जाप करवो ॥ १०९-१११ ॥

आ यंत्र आठ आराओथी देदीप्यमान एवुं 'जैन धर्मचक्र' छे । आठे दिशाओमां स्फुरायमान प्रभा वडे सेंकडो योजन सुधी आ चक्र प्रकाशने पाथरी रह्युं छे । तेनी छायाना आक्रमण वडे जेना सर्व पाप नाश पाम्यां छे अने तेथी जे सर्व वडे पूजाई रह्यो छे एवा स्वात्मानुं जे सदा ध्यान करे छे, तेने आठे सिद्धिओ वरे छे ॥ ११२-११४ ॥

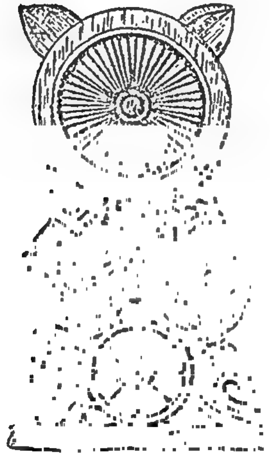
मोक्ष माटे अंगूठा द्वारा, अभिचार माटे तर्जनी द्वारा, मारण माटे मध्यमा द्वारा, शांति माटे अनामिका द्वारा अने आकर्षण माटे कनिष्ठा द्वारा अक्षसूत्र-माळा वडे जाप करवो ॥ ११५ ॥

परिचय

श्रीसिंहतिलकसूरिए 'लघुनमस्कारचक्रस्तोत्र'नी रचना करेली छे, तेनी एक प्रति स्व. श्रीमोहनलाल भगवानदासना संग्रहमांथी मळी हती। बीजी बुहारी, शेठ झवेरचंद पन्नाजीए करावेली नकल पाठभेदो माटे उपयोगी नीवडी हती। त्रीजी प्रति पूना भांडारकर रिसर्च इन्स्टिटयूटनी मळी हती—आ त्रणे प्रतिओने भाषानी दृष्टिए सुधारी, तेना अनुवाद साथे मूल पाठ आप्यो छे।

लघुनमस्कारचक्र ए बृहन्नमस्कारचक्रनो ख्याल आपे छे पण हजी सुधी एवी कोई कृति उपलब्ध थई नथी। आमां (लघु-)नमस्कारचक्रनी जे रचनानुं वर्णन करेलुं छे ते लगभग पंचनमस्कारचक्र जेवुं ज छे, पाछळना वलयोमां कंईक तफावत पडे छे। एटले 'नमस्कार स्वाध्याय'ना प्राकृत विभागमां जे पंचनमस्कारचक्र [चित्र नं. १ पृष्ठ : २१२ नी सामे] आपेलुं छे, तेनी साथे आ स्तोत्रना यंत्रवर्णननी सरखामणी करी शकाय।

आ स्तोत्रमां केटलाक आम्नायो आपेला छे, ते पैकी गर्भाधान अने वशीकरणना आम्नायोनो भाग मूळमां लीधो नथी। आ कृतिमां ध्यानविधि वगेरे उपयोगी हकीकतो आपेली छे।



[५९-१४]

श्रीसिद्धसेनसूरिप्रणीतं

श्रीनमस्कारमाहात्म्यम् ॥

[प्रथमः प्रकाशः]

(अनुष्टुप्-वृत्तम्)

नमोऽस्तु गुरवे कल्प-तरवे जगतामपि ।
वृषभस्वामिने मुक्ति-मृगनेत्रैककामिने ॥ १ ॥

तपोज्ञान-धनेशाय, महेन्द्रप्रणतांह्रये ।
सिद्धसेनाधिनाथाय, श्रीशान्तिस्वामिने नमः ॥ २ ॥

नमोऽस्तु श्रीसुव्रताया-ऽनन्तायाऽरिष्टनेमिने[1] ।
श्रीमत्पार्श्वाय वीराय, सर्वार्हद्भ्यो नमो नमः ॥ ३ ॥

देव्योऽच्छुप्ताऽम्बिका-ब्राह्मी-पद्मावत्यङ्गिरादयः[2] ।
मातरो मे प्रयच्छन्तु, पुरुषार्थपरम्पराम् ॥ ४ ॥

जीयात् पुण्याङ्गजननी, पालनी शोधनी च मे ।
हंस-विश्राम-कमल-श्रीः सदेष्ट-नमस्कृतिः ॥ ५ ॥

त्रण जगतना गुरु, जगतना कामित पूरण माटे कल्पवृक्ष समान अने मुक्तिरूपी स्त्रीना ज कामी एवा श्रीऋषभदेवस्वामीने नमस्कार थाओ ॥ १ ॥

तप अने ज्ञानरूपी भावधनना स्वामी देवेंद्रो वडे पण नमस्कृत चरणवाळा अने योगसिद्धादि महापुरुषोना वृंदना परम नाथ [श्री सिद्धसेन (ग्रन्थकर्ता)ना परम नाथ], एवा श्री शान्तिनाथस्वामीने नमस्कार थाओ ॥ २ ॥

श्री मुनिसुव्रतस्वामीने, श्री अनन्तनाथस्वामीने, श्री अरिष्टनेमिप्रभुने, श्री पार्श्वनाथ-स्वामीने, श्री महावीरस्वामीने अने त्रणे काळना सर्व अरिहंत भगवतोने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ ३ ॥

धर्मनिष्ठ आत्माओने मातानी जेम सहाय करनारी अच्छुप्ता, अम्बिका, ब्राह्मी (सरस्वती), पद्मावती अने अंगिरा वगेरे देवीओ मने पुरुषार्थनी परंपरा आपो ॥ ४ ॥

इष्ट पंचनमस्कृति मारा पुण्यरूप देहनु जनन, पालन अने शोधन करनारी माता छे। मारा आत्महंसना विश्राम माटे ते कमलिनी छे। ते सदा जय पामो ॥ ५ ॥

---

१. 'नेमये' ख० घ० । २. पद्मा प्रत्यङ्गिरादयः ग० घ० टि० ।

कटुकोऽप्येष संसारो, जन्म-संस्थिति-दानतः ।
मान्यो मे यन्मया लेभे, जिनाज्ञाऽस्यैव संश्रयात् ॥ ६ ॥
भवतु नमोऽर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः ।
श्रीजिनशासन-मनुज-क्षेत्रान्तःपञ्चमेरुभ्यः ॥ ७ ॥
ये "नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणमित्यथ ।
नमो आयरियाणं, चो-वज्झायाणं नमोऽग्रगम् ॥ ८ ॥
नमो लोए सव्व-साहूणं"मेवं पद-पञ्चकम् ।
स्मरन्ति भावतो भव्याः, कुतस्तेषां भवभ्रमः ? ॥ ९ ॥
वर्णाः सन्तु श्रिये पञ्च-परमेष्ठि-नमस्कृतेः ।
पञ्चत्रिंशज्जिनवचोऽतिशया इव रूपिणः ॥ १० ॥
तेषामनाद्यनन्तानां, श्लोकैस्त्रैलोक्य-पावनैः ।
वितनोत्यात्मनः शुद्धिं, सिद्धसेन-सरस्वती ॥ ११ ॥
नरनाथा वशे तेषां, नतास्तेभ्यः सुरेश्वराः ।
न ते बिभ्यति नागेभ्यो, येऽर्हन्तं शरणं श्रिताः ॥ १२ ॥

जन्म अने मरण आपवावाळो होवाथी कडवो एवो पण आ संसार मारे मन कडवो नथी पण माननीय छे, कारण के ए संसारना आश्रयथी ज मने जैन-शासननी प्राप्ति थई छे, अर्थात् जे संसारमां जैनशासननी प्राप्ति न थई होय ते ज कडवो छे पण बीजो नहि ॥ ६ ॥

श्री जैन-शासनरूपी मनुष्यक्षेत्रने विषे पांच मेरु पर्वत समान एवा अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने सर्व साधु भगवंतोने नमस्कार थाओ ॥ ७ ॥

जे भव्य जीवो भावपूर्वक "नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं" ए पांच पदनुं स्मरण करे छे तेमने भवभ्रमण क्यांथी होय ? अर्थात् न ज होय ॥ ८-९ ॥

श्री तीर्थंकर भगवंतनी वाणीना पांत्रीश मूर्तिमान अतिशयो ज जाणे न होय, एवा आ पंचपरमेष्ठि नमस्कारना पांत्रीश अक्षरो तमारा कल्याण माटे थाओ ॥ १० ॥

अनादि-अनंत एवा ते वर्णो त्रणे लोकने पवित्र करनारा श्लोको द्वारा (स्तुति करवा वडे) श्री सिद्धसेननी (कर्तानी) वाणी पोताना आत्मानी शुद्धि करे छे ॥ ११ ॥

नरनाथो*—राजाओ पण तेओने वश थाय छे, देवेन्द्रो पण तेओने प्रणाम करे छे अने सर्पो (नागकुमारो)थी पण तेओ भय पामता नथी के जेओ श्री अरिहंत परमात्मानुं शरण भावपूर्वक स्वीकारे छे ॥ १२ ॥

---

१. हूणमित्येवं क० ।

* अहींथी शरु थता श्लोकोनी शरूआतमां अनुक्रमे 'नमो अरिहंताणं' ए अक्षरो आवे, ए दृष्टिए विशिष्ट प्रकारे अनुवाद करेल छे ।

मोहस्तं प्रति न द्रोही, मोदते स निरन्तरम् ।
मोक्षङ्गमी सोऽचिरेण, भव्यो योऽर्हन्तमर्हति ॥ १३ ॥

अर्हन्ति यं केवलिनः, प्रादक्षिण्येन कर्मणा ।
अनन्त-गुण-रूपस्य, माहात्म्यं तस्य वेद कः? ॥ १४ ॥

रिपवो राग-रोषाद्याः, जिनेनैकेन ते हताः ।
लोकेश-केशवेशाद्याः, निविडं यैर्विडम्बिताः ॥ १५ ॥

हंसवन् श्लिष्टयोः क्षीर-नीरयोर्जीव-कर्मणोः ।
विवेचनं यः कुरुते, स एको भगवान् जिनः ॥ १६ ॥

'स्मृ'-'ध्यै' प्रभृति-युग्धातु-वर्णवत् सहजस्थितिः ।
कर्मात्म-श्लेषो ह्यन्येषां, दुर्लक्ष्यो महतामपि ॥ १७ ॥

ह्यन्वात्म-कर्मणोर्बीजाङ्कुरवत् कुर्कुटाण्डवत् ।
मिथः संहतयोः पूर्वा-पर्यं नास्त्येव सर्वथा ॥ १८ ॥

मोह तेना उपर रोषायमान थतो नथी, ते हंमेशां आनंदमां रहे छे अने ते अल्पकाळमां ज मोक्ष पामे छे, के जे भव्य पुरुष श्री अरिहंत परमात्माने भावपूर्वक पूजे छे ॥ १३ ॥

अनन्त गुणस्वरूप जे अरिहन्त परमात्माने केवल ज्ञानीओ पण प्रदक्षिणा करवापूर्वक पूजे छे, तेमना प्रभावने केवली विना कोण जाणी शके? ॥ १४ ॥

रिपु (शत्रु) भूत एवा जे रागद्वेषादि वडे ब्रह्मा, विष्णु, महेश वगेरे पण अत्यंत विडम्बित कराया, ते रागादिने एकला (अन्यनी सहाय न लेनारा) एवा श्री जिनेश्वरे हणी नाख्या! ॥ १५ ॥

हंस एकमेक थई गयेल दूध अने पाणीने जेम अलग करे छे, तेम एकमेक थई गयेल जीव अने कर्मने पृथक् करनार एक ज जिनेश्वर भगवंत छे (बीजा कोई नथी, अहीं जिननो अर्थ वीतराग करवो) ॥ १६ ॥

'स्मृ' (स्मरण करवु), 'ध्यै' (चिंतन करवु) वगेरे जोडाक्षरवाळा धातुओना वर्णोनी जेम जीव अने कर्मनो सम्बन्ध सहज छे। ते सम्बन्ध एक जिन विना अन्य महात्माओने (पण)—दुर्लक्ष्य—दुर्ज्ञेय छे ॥ १७ ॥

बीज अने अंकुरानी जेम तथा कुकडी अने इंडानी जेम आत्मा अने कर्मनो परस्पर संबन्ध अनादिकाळनो छे, तेमां अमुक पहेला हतो अने अमुक पछी हतो एवो पूर्वापर सबन्ध कोई पण प्रकारे छे ज नहि ॥ १८ ॥

---

१. राग-दोषाद्या. हि० । २. एव क० । ३. कुर्कटा० ग०, कुर्कुटा० हि० । ४. नान्यथा, क० ख० ग० हि० ।

तायिनः कर्मपाशेभ्यस्तारका मज्जतां भवे।
तात्त्विकानामधीशा ये, तान् जिनान् प्रणिदध्महे ॥ १९ ॥

'णं'कारोऽयं दिशत्येवं, त्रिरेखः शून्यचूलिकः।
तत्त्वत्रयपवित्रात्मा, लभते पदमव्ययम् ॥ २० ॥

सशिरस्त्रिसरलरेखं, सचूलमित्यक्षरं सदा ब्रूते।
भवति त्रिशुद्धिसरलस्त्रिभुवनमुकुटस्त्रिकालेऽपि ॥ २१ ॥

सप्तक्षेत्रीव सफला, सप्तक्षेत्रीव शाश्वती।
सप्ताक्षरीयं प्रथमा, सप्त हन्तु भयानि मे ॥ २२ ॥

इति श्रीसिद्धसेनाचार्यविरचिते श्रीनमस्कारमाहात्म्ये प्रथमः प्रकाशः समाप्तः ॥

"तायिनः"–जीवोने कर्मना पाशमांथी छोडावनारा, संसारसमुद्रमां डूबता प्राणीओने तारनारा अने तत्त्वज्ञानीओना पण स्वामी एवा श्री जिनेश्वर भगवंतोनुं अमे ध्यान करीए छीए ॥ १९ ॥

णं ए अक्षर त्रण उभी लीटीओवाळो अने माथे बिंदुवाळो छे, ए एम सूचवे छे के—देव, गुरु अने धर्मरूप त्रण तत्त्वनी आराधना वडे पोताना आत्माने पवित्र करनार भव्य जीव शाश्वत स्थान–मोक्षने पामे छे ('णं' मां त्रण रेखाओ ते तत्त्वत्रय अने बिंदु ते सिद्धिपद जाणवुं।) ॥ २० ॥

उपरनी तिर्यग् रेखारूप मस्तकसहित, त्रण सरल रेखासहित अने बिंदुरूप चूलासहित 'णं' अक्षर सदा कहे छे के त्रिकरण (मन, वचन अने काया) शुद्धि वडे सरल बनेल महात्मा त्रणे काळमां पण त्रिभुवनशिरोमणि बने छे ॥ २१ ॥

सांत क्षेत्रनी जेम सफळ तथा सांत क्षेत्रनी जेम शाश्वत एवा नमस्कार महामंत्रना प्रथम 'नमो अरिहंताणं' पदना सात अक्षरो मारा सांत प्रकारना भयोनो नाश करो ॥ २२ ॥

---

१. (१) जिनमूर्ति, (२) जिनमन्दिर, (३) जिनागम, (४) साधु, (५) साध्वी, (६) श्रावक अने (७) श्राविका—ए धनव्यय माटेनां अवंध्यफळवाळां उत्तम क्षेत्रो गणाय छे।

२. (१) भरत, (२) हैमवत, (३) हरिवर्ष, (४) महाविदेह, (५) रम्यक्, (६) हैरण्यवत अने (७) एरावत क्षेत्रो शाश्वत छे।

३. (१) इहलोक, (२) परलोक, (३) अकस्मात्, (४) आजीविका, (५) आदान, (६) मरण अने (७) अपयश संबंधी भयो।

[द्वितीयः प्रकाशः]

न जातिर्न मृतिस्तत्र, न भयं न पराभवः ।
न जातु क्लेशलेशोऽपि, यत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ॥ १ ॥

मोचा-स्तम्भ इवासारः, संसारः क्वैष सर्वथा ?
क्व च लोकाग्रगं लोके-सारत्वा(व)त्सिद्धवैभवम् ॥ २ ॥

सितधर्माः सितलेश्याः, सितध्यानाः सिताश्रयाः ।
सितश्लोकाश्च ये लोके, सिद्धास्ते सन्तु सिद्धये ॥ ३ ॥

सतां स्वर्मोक्षयोर्दाने, धाने दुर्गतिपाततः ।
मन्येऽहं युगपच्छक्तिं, सिद्धानां द्वेतिवर्णतः ॥ ४ ॥

यदि वा—
'द्धा' वर्णे सिद्धशब्देऽत्र, संयोगो वर्णयोर्द्वयोः ।
सकर्णोऽयं सकर्णानां, फलं वक्तीव योगजम् ॥ ५ ॥

बीजो प्रकाश

*नथी त्यां जन्म, नथी मरण, नथी भय, नथी पराभव अने नथी कदापि क्लेशनो लेश,—ज्यां सिद्धना जीवो रहेला छे ॥ १ ॥

मोचास्तंभ (केळना थड)नी जेम लोकमां सर्व प्रकारे असार एवो संसार क्यां ? अने लोकना अग्रभाग उपर रहेल अने लोकमां सारभूत एवो सिद्धोनो वैभव क्यां ? ॥ २ ॥

सित (उज्ज्वल) धर्मवाळा, शुक्ललेश्यावाळा, शुक्लध्यानवाळा, स्फटिक रत्न करतां पण अत्यन्त उज्ज्वल सिद्धशिलारूप आश्रयवाळा अने उज्ज्वल ज्ञानवाळा सिद्ध भगवंतो भव्योनी सिद्धिने माटे थाओ ॥३॥

सज्जनोने स्वर्ग अने मोक्ष देवावाळो होवाथी(दा)अने दुर्गतिमा पडताने धारण करनारो होवाथी(धा)—ए प्रमाणे सिद्धोना 'द्धा' वर्णमां उपरनी बन्ने शक्ति रहेली छे एम हुं मानुं छुं ॥ ४ ॥

'द्धा' वर्ण जे सिद्धाणं पदमा छे, तेमां 'द' अने 'ध' ए बे वर्णनो संयोग छे, ए संयोग काननी आकृति जेवो होवाथी 'सकर्ण' छे, ते सकर्णोने (निपुण जनोने) योगथी (जीवात्मा अने परमात्माना ऐक्यरूप योगथी) उत्पन्न थता मोक्षना फलने जाणे कहेतो न होय ! ॥ ५ ॥

---

१. लोके सा० क. । २. वक्तीति० क. ख. ग. हि. ।

* 'नमो सिद्धाण' ना 'न' आदि अक्षरो फकरानी शरुआतमा आवे ए दृष्टिए विशिष्ट प्रकारे अनुवाद करेल छे ।

परस्परं कोऽपि योगः, क्रिया-ज्ञान-विशेषयोः।
स्त्री-पुंसयोरिवानन्दं, प्रसूते परमात्मजम् ॥ ६ ॥
भाग्यं पङ्गूपमं पुंसां, व्यवसायोऽन्ध-सन्निभः।
यथा सिद्धिस्तयोर्योगे, तथा ज्ञान-चरित्रयोः ॥ ७ ॥
खड्ग-खेटकवज्ज्ञान-चारित्र-द्वितयं वहन्।
वीरो दर्शन-सन्नाहः, कलेः पारं प्रयाति वै ॥ ८ ॥
नयतोऽभीप्सितं स्थानं, प्राणिनं[1] सत्तपःशमौ।
समं निश्चल-विस्तारौ, पक्षाविव विहङ्गमम् ॥ ९ ॥
युक्तौ धुर्याविवोत्सर्गापवादौ वृषभावुभौ।
शीलाङ्गरथमारूढं, क्षणात् प्रापयतः शिवम् ॥ १० ॥
निश्चय-व्यवहारौ द्वौ, सूर्याचन्द्रमसाविव।
इहामुत्र दिवारात्रौ, सदोद्द्योताय जाग्रतः ॥ ११ ॥
अन्तस्तत्त्वं मनःशुद्धिर्बहिस्तत्त्वं च संयमः।
कैवल्यं द्वयसंयोगे, तस्माद् द्वितयभाग् भव ॥ १२ ॥

विशिष्ट क्रिया अने विशिष्ट ज्ञाननो परस्पर योग कोई जुदी ज जातनो होय छे। ते स्त्रीपुरुषना संयोगनी जेम परमात्मजन्य आनंदने उत्पन्न करे छे ॥ ६ ॥

पुरुषोनुं भाग्य ए पंगु (पांगळा) जेवुं छे अने उद्यम ए आंधळा जेवो छे। आम छतांय ए बन्नेनो संयोग थाय तो कार्यसिद्धि थाय छे। ए ज रीतिए एकलुं ज्ञान पांगळा जेवुं छे अने एकली क्रिया अंध जेवी छे; परन्तु ज्ञान अने क्रिया बन्नेनो सुयोग मळे तो मोक्षप्राप्तिरूप कार्यसिद्धि अवश्य थाय छे ॥ ७ ॥

वीर लडवैयो तरवार अने ढालने हाथमां राखीने अने बख्तरथी सज्ज थईने जेम युद्धना पारने पामे छे तेम ज्ञानरूपी खड्ग, चारित्ररूपी ढाल अने सम्यग्दर्शनरूपी बख्तर धारण करीने कर्मशत्रु साथे संग्राम खेलनार पराक्रमी आत्मा संसारना पारने पामे छे ॥ ८ ॥

जेम पक्षीने युगपत् संकोच अथवा विस्तारने पामती बे पांखो इष्ट स्थाने पहोंचाडे छे, तेम श्रेष्ठ तप अने शम जीवने मोक्षरूप इष्ट स्थाने पहोंचाडे छे ॥ ९ ॥

जोडेला श्रेष्ठ बे बळद ज जाणे न होय तेवा उत्सर्ग अने अपवाद, शीलांगरथ उपर आरूढ थयेलाने क्षणवारमां मोक्षने प्राप्त करावे छे ॥ १० ॥

जाग्रत पुरुषने सूर्य दिवसे अने चन्द्र रात्रिए हंमेशां प्रकाश माटे थाय छे तेम निश्चय अने व्यवहार ए बे जाग्रत—विवेकी पुरुषना सदा उद्द्योत—केवलज्ञानरूप प्रकाश माटे थाय छे ॥ ११ ॥

मनःशुद्धि ए आभ्यंतर तत्त्व छे अने संयम ए बाह्य तत्त्व छे, ए उभयनो संयोग थवाथी मोक्ष मळे छे, माटे हे चेतन! तुं बन्नेनुं धारण करनारो था ॥ १२ ॥

---

१. प्राणिनः ग.।

नैकचक्रो रथो याति, नैकपक्षो विहङ्गमः।
नैवमेकान्तमार्गस्थो, नरो निर्वाणमृच्छति ॥ १३ ॥

दशस्कान्तर्नवास्तित्व-न्यायादेकान्तमप्यहो।
अनेकान्तसमुद्रेऽस्मिन्, प्रलीनं सिन्धुपूरवत् ॥ १४ ॥

एकान्ते तु न लीयन्ते, तुच्छेऽनेकान्तसम्पदः।
न दरिद्रगृहे मान्ति, सार्वभौम-समृद्धयः ॥ १५ ॥

एकान्ताभासो यः क्वापि[1], सोऽनेकान्तप्रसत्तिजः।
वर्ति-तैलादि-सामग्री-जन्मानं पश्य दीपकम् ॥ १६ ॥

सत्त्वासत्त्व-नित्यानित्य-धर्माधर्मादयो गुणाः।
एवं द्वये द्वये श्लिष्टाः, सतां सिद्धिप्रदर्शिनः ॥ १७ ॥

तदेकान्त-ग्रहावेशमष्टधी-गुणमन्त्रतः।
धुत्वा यतध्वं तत्त्वाय, सिद्धये[3] यदि कामना ॥ १८ ॥

'णं'-कारोऽत्र दिशत्येवं, त्रिरेखः शून्यमालितः।
रत्नत्रयमयो ह्यात्मा, याति शून्य-स्वभावताम् ॥ १९ ॥

जेम एक पैडावाळो रथ चाली शकतो नथी अने एक पांखवाळुं पक्षी ऊडी शकतुं नथी, तेम एकान्त मार्गमां रहेलो माणस मोक्षने पामी शकतो नथी ॥ १३ ॥

दशनी अंदर जेम एकथी नव सुधीनी संख्यानो समावेश थई जाय छे, तेम अनेकान्तवाद रूप समुद्रमां एकान्तवाद पण नदीना पूरनी जेम समाई जाय छे। परन्तु निःसार एवा एकान्तवादमां अनेकान्तवादनी संपदाओ समाती नथी, कारण के दरिद्रीना घरमां चक्रवर्तीनी संपदाओ समाती नथी ॥ १४-१५ ॥

जेम दीवेट, तेल, कोडियु वगेरे अनेक वस्तुना समुदायथी उत्पन्न थयेलो दीपक शोभा पामे छे, तेम अनेकान्तपक्षना संसर्गथी कोई कोई स्थळे एकान्तपक्षमा पण शोभा देखाय छे, ते अनेकान्तपक्षने ज आभारी छे, एम समजवुं ॥ १६ ॥

ए रीते (उपर मुजब) सत्पुरुषोने सिद्धि बतावनारा सत्त्वासत्त्व, नित्यानित्य, धर्माधर्म वगेरे गुणो ते ते जोडकांओने विषे परस्पर संबंधवाळा छे ॥ १७ ॥

तेथी जो सिद्धि माटे कामना होय तो एकान्तरूप ग्रह (शनि आदि ग्रह, आ ग्रह)ना आवेशने बुद्धिना आठ गुणो रूप मंत्रथी दूर करीने तत्त्व माटे प्रयत्न करो ॥ १८ ॥

णं ए अक्षर त्रण रेखावाळो छे अने माथे शून्य (अनुस्वार) वडे शोभे छे, ए एम देखाडे छे के—ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप रत्नत्रयस्वरूप बनेलो आत्मा शून्यस्वभावपणाने (मोक्षने) पामे छे। (आ स्थळे शून्यनो अर्थ मोक्ष समजवानो छे, कारण के त्या सर्व विभावदशानी शून्यता छे।) ॥ १९ ॥

---

१. ऽपि ग. हि.। २. कोऽपि क.। ३. सिद्धत्वे ख. ग. घ. हि.।

शुभाशुभैः परिक्षीणैः, कर्मभिः केवलस्य या ।
चिद्रूपतात्मनः सिद्धौ[1], सा हि शून्यस्वभावता ॥ २० ॥

पञ्च-विग्रह-संहन्त्री, पञ्चमीगति-दर्शिनी ।
रक्ष्यात् पञ्चाक्षरीयं वः, पञ्चत्वादि-प्रपञ्चतः ॥ २१ ॥

इति द्वितीयः प्रकाशः समाप्तः ॥

[तृतीयः प्रकाशः]

न तमो न रजस्तेषु, न च सत्त्वं बहिर्मुखम् ।
न मनो-वाग्वपुः-कष्टं, यैराचार्यांह्रयः श्रिताः ॥ १ ॥

मोहपाशैर्महच्चित्रं, मोटितानपि जन्मिनः ।
मोचयत्येव भगवानाचार्यः केशिदेववत् ॥ २ ॥

आचारा यत्र रुचिराः, आगमाः शिवसङ्गमाः ।
आयोपाया गतापायाः, आचार्यं तं विदुर्बुधाः ॥ ३ ॥

शुभाशुभ सर्व कर्मनो क्षय थवा वडे केवळ आत्मानी जे चिद्रूपता–चैतन्यस्वभावता मोक्षमां छे ते ज शून्यस्वभावपणुं छे ॥ २० ॥

पांच (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस अने कार्मण) शरीरनो नाश करनारा अने मोक्षरूपी पांचमी गतिने आपनारा आ 'नमो सिद्धाणं' पदना पांच अक्षरो मरण वगेरेना प्रपंचथी तमारुं रक्षण करो ॥ २१ ॥

× × ×

त्रीजो प्रकाश

नथी तेओमां तमो-गुण, नथी रजो-गुण, नथी बाह्य मुखवाळो सत्त्व-गुण अने नथी मानसिक, वाचिक के कायिक कष्ट तेओने, के जेओए आचार्यना चरणो सेव्या छे ॥ १ ॥

मोहना पाशो वडे बंधायेला प्राणीओने पण आचार्य भगवान् केशिगणधरनी जेम मोहथी छोडावे छे ए मोटुं आश्चर्य छे ॥ २ ॥

आचारो जेमनामां सुंदर छे, जेमना आगमो (शास्त्रो) मोक्ष मेळवी आपनारा छे अने जेमना लाभना उपायो नुकसान विनाना छे तेमने डाह्या माणसो आचार्य कहे छे ॥ ३ ॥

---

१. शुद्धौ घ. ।

यथास्थितार्थ-प्रथको, यतमानो यमादिषु ।
यजमानः स्वात्मयज्ञं, यतीन्द्रो मे सदा गतिः ॥ ४ ॥

रिपौ मित्रे सुखे दुःखे, रिष्टे शिष्टे शिवे भवे ।
रैक्थे[1] नैःस्व्ये समः सम्यक्, स्वामी संयमिनां मतः ॥ ५ ॥

या काचिदनघा सिद्धिर्या काचिल्लब्धिरुज्ज्वला ।
वृणुते सा स्वयं सूरिं, भ्रमरीव सरोरुहम् ॥ ६ ॥

'णं' कारोऽत्र दिशत्येवं, त्रिरेखो व्योम-चूलिकः ।
त्रिवर्ग-समता-युक्ताः, स्युः शिरोमणयः सताम् ॥ ७ ॥

धर्मार्थ-कामा यदि वा, मित्रोदासीन-शत्रवः ।
यद्वा राग-द्वेष-मोहास्त्रिवर्गः समुदाहृतः ॥ ८ ॥

सप्त-तत्त्वाम्बुज-वनी[2]-सप्तसप्ति-विभा-निभा ।
सप्ताक्षरी तृतीयेयं, सप्तावनि-तमो ह्रियात् ॥ ९ ॥

इति तृतीयः प्रकाशः समाप्तः ॥

यथास्थित अर्थनी प्ररूपणा करनारा, यम-नियमादिना पालनमां यत्न करनारा अने आत्मरूप यज्ञनुं यजनपूजन करनारा एवा आचार्य भगवान् मने सदा शरणरूप हो ॥ ४ ॥

रिपु—शत्रु के मित्र, सुख के दुःख, दुर्जन के सज्जन, मोक्ष के संसार तथा धनाढ्य के दरिद्रीने विषे संयमीओना स्वामी आचार्य अत्यंत समदृष्टिवाळा होय छे ॥ ५ ॥

या—जे कोई पवित्र सिद्धि छे अने जे कोई उज्ज्वल लब्धि छे ते सर्व, जेम भमरी कमळने वरे तेम, आचार्यने स्वयं वरे छे ॥ ६ ॥

'णं' अक्षर त्रण रेखावाळो अने माथे अनुस्वारवाळो छे, ए एम बतावे छे के त्रिवर्गमां* समतावाळा पुरुषो ज सज्जनोमां शिरोमणि बने छे ॥ ७ ॥

धर्म, अर्थ अने काम अथवा मित्र, शत्रु अने उदासीन अथवा राग, द्वेष अने मोहने त्रिवर्ग कहेवाय छे ॥ ८ ॥

जीवादि सात तत्त्वरूप कमळना वनने विकसित करवामां सूर्यना किरण जेवा आ 'नमो आयरियाणं' त्रीजा पदना सात अक्षरो सात पृथ्वीना (सात नरकना) दुःखनो नाश करो ॥ ९ ॥

---

१. रैक्थे द्वि. । २. —॰वनी-क. ख. घ. ।
* त्रिवर्गनो अर्थ पछीना श्लोकमां दर्शावेल छे ।

[चतुर्थः प्रकाशः]

न खण्ड्यते कुपाखण्डैर्न त्रिदण्ड्या विडम्ब्यते ।
न दण्ड्यते चण्डिमाद्यै-रुपाध्यायं[1] श्रयन् सुधीः ॥ १ ॥
मोमा[2]-श्री-ह्री-धृति-ब्राह्म्यो, मोच्चलन्तु तदङ्गतः ।
उपास्ते[3] य उपाध्यायं, सिद्धादेशो महानिति ॥ २ ॥
उदयो मूर्तिमान् सम्यग्-दृष्टीनामुत्सवो धियाम् ।
उत्तमानां य उत्साहः, उपाध्यायः स उच्यते ॥ ३ ॥
वचो वपुर्वयो वक्षो[4], वर्जितं वधवार्तया ।
वशगं वेदविधानां, उपा[5]ध्यायमहेशितुः ॥ ४ ॥
ज्झाकारो वाचक-श्लोक-भम्भाया व्यानशे दिशः ।
अनित्यैकान्तदृग्नित्यैकान्तदृग्जयजन्मनः ॥ ५ ॥
या सप्तनय-वैदग्धी, या परागम-चातुरी ।
या द्वादशाङ्गी-सूत्राप्तिः, सोपाध्यायादृते कुतः ? ॥ ६ ॥

चोथो प्रकाश

नथी खंडन करातो ते सुज्ञपुरुष कुपाखंडीओ वडे, नथी विडंबना पमाडातो मन, वचन अने कायाना दंड वडे, तथा नथी दंडातो क्रोधादि कषायो वडे, जे उपाध्यायनो आश्रय करे छे ॥ १ ॥

मोमा ('मा' एटले लक्ष्मी अने 'उमा' एटले शांति, कांति, कीर्ति), श्री, ह्री, धृति अने ब्राह्मी ए देवीओ, जेओ उपाध्यायनी उपासना करे छे, तेओना शरीरमांथी दूर न जाओ, ए प्रमाणे योगसिद्ध महर्षिओनो आदेश छे ॥ २ ॥

उपाध्याय ते कहेवाय छे के जे सम्यग्दृष्टि आत्माओ माटे मूर्तिमान उदयरूप छे, बुद्धिमान पुरुषोने माटे साक्षात् उत्सव छे अने उत्तम जनोने माटे प्रत्यक्ष उत्साह छे ॥ ३ ॥

वचन, वपु–शरीर, वय अने वक्ष-हृदय––उपाध्यायनी ए चार वस्तुओ वधनी वार्ताथी रहित तथा आगमविधाने वश छे। (आगमोक्त योगसाधनाथी उपाध्यायनी ए चार वस्तुओनो प्रभाव सर्व पर पडे छे, जे प्रभावने कोई पण खंडित करी शके तेम नथी।) ॥ ४ ॥

'ज्झा' सूचवे छे के एकान्त-नित्य-दर्शनो अने एकान्त-अनित्य-दर्शनोने जीती लेवाथी उत्पन्न थयेल उपाध्यायना यशरूपी भंभा (भेरी) नो ज्झाकार (गुंजारव) दिशाओने व्याप्त करी रह्यो छे ॥ ५ ॥

या– जे(वीजाओने) सात नयमां निपुणता प्राप्त थाय छे, परशास्त्रोमां जे निपुणता प्राप्त थाय छे अने द्वादशांगीना सूत्रोनी जे प्राप्ति थाय छे ते उपाध्याय सिवाय क्यांथी होय ? अर्थात् न ज होय ॥ ६ ॥

---

१. ०ध्यायाम् क. । २. सोमा० ग. हि., मा+उमा=मोमा । ३. उपाध्यास्त उपा. क. । ४. वक्ष्यो० घ. वृद्धं हि. । ५. ०ध्यं महस्व तम् हि. ।

'णं'-कारोऽत्र दिशत्येवं, त्रिरेखोऽम्बरशेखरः ।
विनय-श्रुत-शीलाद्या, महानन्दाय जाग्रति ॥ ७ ॥
सप्तरज्जूर्ध्वलोकाध्वो-द्योत-दीप-महोज्ज्वला ।
सप्ताक्षरी चतुर्थी मे, ह्रियाद् व्यसन-सप्तकम् ॥ ८ ॥

इति चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ॥

[पञ्चमः प्रकाशः]

न व्याधिर्न च दौर्विध्यं, न वियोगः प्रियैः समम् ।
न दुर्भगत्वं नोद्वेगः, साधूपास्तिकृतां नृणाम् ॥ १ ॥
न चतुर्द्धा दुःखतमो, नराणामान्ध्य-हेतवे ।
साधुध्यानाऽमृतरसाञ्जनलिप्तमनोदृशाम् ॥ २ ॥
मोक्कारः सर्वसङ्गानां, मोप्या नान्तर-वैरिणाम् ।
मोदन्ते मुनयः कामं, मोक्ष-लक्ष्मी-कटाक्षिताः ॥ ३ ॥
लोभ-द्रुम-नदीवेगाः, लोकोत्तर-चरित्रिणः ।
लोकोत्तमास्तृतीयास्ते, लोपं तन्वन्तु पाप्मनाम् ॥ ४ ॥

णं—अक्षर त्रण रेखावाळो अने माथे अनुस्वारवाळो छे, ए एम जणावे छे के विनय, श्रुत अने शीलादि गुणो महानन्द-मोक्ष प्राप्ति माटे जाग्रत छे ॥ ७ ॥

सात रज्जू प्रमाण ऊर्ध्वलोकना मार्गने प्रकाश करवामां दीपकनी जेम अत्यन्त उज्ज्वल आ चोथा 'नमो उवज्झायाण' पदना सात अक्षरो मारा सात व्यसनोनो नाश करो ॥ ८ ॥

पांचमो प्रकाश

नथी ते मनुष्योने व्याधि, नथी दरिद्रता, नथी इष्ट वस्तुओनो वियोग, नथी दौर्भाग्य अने नथी भय के त्रास, के जेओ साधुओनी उपासना-सेवा करनारा होय छे ॥ १ ॥

साधुपदना ध्यानरूपी अमृतरसना अजन वडे जेओनां मनरूपी नेत्रो अंजाया छे, ते मनुष्योने (चार गतिमां उत्पन्न थता ?) चार प्रकारना दुःखरूपी अंधकार अंधपणानुं कारण थतो नथी ॥ २ ॥

मोक्कारः—सर्वसंगनो त्याग करनारा, राग-द्वेषादि आन्तर शत्रुओथी नहि लूटानारा अने मोक्ष-लक्ष्मी वडे कटाक्षपूर्वक जोवायेला मुनिओ अत्यन्त आनंद पामे छे ॥ ३ ॥

लोभरूपी वृक्षने उखेडी नाखवा माटे नदीना वेग जेवा, लोकोत्तर चरित्रवाळा अने लोकोत्तम (अरिहंत, सिद्ध, साधु अने धर्म) वस्तुओमां तृतीय एवा मुनि भगवंतो अमारा पापोनो नाश करो ॥ ४ ॥

एकान्ते रमते स्वैरं, मृगेण मनसा समम् ।
मूलोत्तरगुण-ग्रामाऽऽरामेषु भगवान् मुनिः ॥ ५ ॥

एकत्वं यदिदं साधौ, संविग्ने श्रुतपारगे ।
तत्साक्षाद् दक्षिणावर्त्ते, शङ्खे सिद्ध-सरिज्जलम् ॥ ६ ॥

एको न क्रोध-विधुरो, नैको मानं तनोति वा ।
एको न दम्भ-संरम्भी, तृष्णा मुष्णाति नैककम् ॥ ७ ॥

एकत्व-तत्त्व-निर्व्यूढ-सत्त्वा[1] राजर्षि-कुञ्जराः ।
ययुः प्रत्येकबुद्धाः श्रीनमि-प्रभृतयः शिवम्[2] ॥ ८ ॥

सर्वथा ज्ञात-तत्त्वानां, सदा संविग्न-चेतसाम् ।
सतामेकाकिता सम्यक्, समतामृत-सारणिः ॥ ९ ॥

[3]व्वर्दैदंयुगीनौ तु, द्वौ द्वौ सङ्घाटक-स्थितौ ।
स्वार्थ-संसाधकौ स्यातां, व्रतिनौ वशिनौ यदि ॥ १० ॥

व्व-[4]संज्ञयेत्यवतर्क्यमैतिह्यं यद् द्वयोर्द्वयोः ।
वचोवक्षोवपुर्वृत्त्या, वशिनोर्व्रतिनोः शिवम् ॥ ११ ॥

एकान्तमां मुनि भगवान् मूलोत्तर गुणना समूहरूप बगीचामां मनरूपी मृगनी साथे स्वेच्छापूर्वक क्रीडा करे छे ॥ ५ ॥

संविग्न अने श्रुतना पारगामी गीतार्थ साधुने विषे जे एकाकीपणुं छे, ते साक्षात् दक्षिणावर्त्त शंखमां गंगा नदीना पाणी जेवुं छे । संविग्न अने गीतार्थ एवो एकाकी साधु क्रोध वडे विह्वळ थतो नथी, मान करतो नथी, माया-कपट करतो नथी अने तृष्णा एने लूंटती नथी ॥ ६-७ ॥

राजर्षिओमां श्रेष्ठ नमिराजर्षि वगेरे प्रत्येकबुद्धो एकत्व भावना वडे पोताना पराक्रमने खीलवीने मोक्षने पाम्या ॥ ८ ॥

सर्व प्रकारे जीवादि तत्त्वोने जाणनारा अने सदा वैराग्यवासित चित्तवाळा गीतार्थ साधुओनुं एकाकीपणुं श्रेष्ठ समतारूपी अमृतनी नीक जेवुं छे ॥ ९ ॥

व्व अक्षरनी जेम संघाटक—बे बे साथे विचरनारा आ युगना साधुओ जो तेओ इन्द्रियो अने मनने वश करनारा होय तो ज स्वार्थने (स्वप्रयोजन मोक्षने) साधनारा थाय छे ॥ १० ॥

'व्व' संज्ञावडे ए गुरुपरंपरागत रहस्य अनुमित थाय छे के जितेंद्रिय एवा बे बे साधुओनुं परस्परना मन, वचन अने कायाना शुभ योगो वडे कल्याण थाय छे, परस्परना शुभयोगो परस्परने सहायक बने छे ॥ ११ ॥

---

१. सारा रा. ग. हि. । २. समम् क. । ३. सर्वदैवयुगीनौ क. । ४. सर्वज्ञावित्यवितर्क्य० क.

निःशङ्कमैक्यं अनयोर्वशित्वादुभयोरपि ।
एकस्यापि सहस्रत्वं, दुरन्तमवशात्मनः ॥ १२ ॥

नेत्रवत्समसङ्कोच-विस्तार-स्वप्न-जागरौ ।
द्वौ दर्शनाय कल्पेते, नैकः सम्पूर्णकृत्यकृत् ॥ १३ ॥

एको विडम्बनापात्रं, एकः स्वार्थाय न क्षमः ।
एकस्य नहि विश्वासो, लोके लोकोत्तरेऽपि वा ॥ १४ ॥

भावना-ध्यान-निर्णीत-तत्त्व-लीनान्तरात्मनः ।
ऐक्यं न लक्ष-मध्येऽपि, निर्ममस्य विनश्यति ॥ १५ ॥

साम्यामृतोर्मि-तृप्तानां, सारासार-विवेचिनाम् ।
साधूनां भावशुद्धानां, स्वार्थेऽपि क्वाऽथवा क्षतिः ॥ १६ ॥

मनःस्थैर्याभिश्चलानां, वृक्षादिवदकर्मणाम् ।
वृन्दस्थर्षीणामेकत्र, भावना-वल्लि-मण्डपः ॥ १७ ॥

इन्द्रियो अने मनने वश राखनारा होय ते बे साधुओमां पण एकत्व निःशंकपणे घटी शके छे, कारण के—बन्ने जितेन्द्रिय होवाथी एक ज विचारना होय छे, परन्तु इन्द्रियो अने मनने परवश बनेलो एकगण होय तो पण ते दुःखदायक हजार जेवो छे ॥ १२ ॥

नेत्रनी जेम संकोच अने विस्तारमां तथा निद्रा अने जाग्रतिमां सरखे सरखी स्थितिवाळा बे साधुओ सम्यग् दर्शनने माटे समर्थ बने छे, परतु एकलो साधु संपूर्णपणे कार्य करी शकतो नथी। कारण के—एकलो माणस विडम्बनानु स्थान बने छे, एकलो माणस स्वार्थसिद्धि माटे पण असमर्थ बने छे, अने एकला माणसनो लोकमां तथा लोकोत्तर जैन शासनमा पण कोई विश्वास करतुं नथी ॥ १३-१४ ॥

भावना तथा ध्यान द्वारा निर्णीत करेला तत्त्वमा लीन छे अन्तरात्मा जेनो एवा अने ममता विनाना साधुनु एकाकीपणुं लाख माणसोनी अंदर रहेवा छतां पण नाश पामतुं नथी ॥ १५ ॥

साम्य (समता) रूप अमृतनी ऊर्मिओथी तृप्त, सार अने असारनो विवेक करनारा अने निर्मल आशयवाळा साधुओ घणा होय तो पण तेमने पोतपोताना कार्यमां कोई पण जातनी हरकत आवती नथी ॥ १६ ॥

मननी स्थिरतावडे निश्चल अने वृक्ष आदिनी जेम अकर्म (अक्रिय, अनाश्रव) एवा साधुओना समूहनो एकत्रवास ए भावनारूपी लतानो मंडप छे ॥ १७ ॥

---

१. विवेकिनाम् हि० । २. सिद्धाना ख. ग. घ. हि. । ३. क्षितिः क. ।

* ज्यारे मन अध्यात्मवडे आत्मरमणतामा सविशेष पुष्ट थाय छे त्यारे ते भावना नामनो योग कहेवाय छे।

+ ज्यारे चित्त शुभ विषयने ज अवलम्बीने स्थिर दीपकनी जेम प्रकाशमान थई सूक्ष्म बोधवाळु बने छे त्यारे ते ध्यान नामनो योग कहेवाय छे।

मनसा कर्मणा वाचा, चित्रालिखित-सैन्यवत् ।
मुनीनां निर्विकाराणां, बहुत्वेऽप्यरतिः कुतः ? ॥ १८ ॥

निर्जीवेष्विव चैतन्यं, साहसं कातरेष्विव ।
बहुष्वपि मुनीन्द्रेषु, कलहो न मनागपि ॥ १९ ॥

पञ्चषैरपि यो ग्लानिं, मुग्धधीर्गणयिष्यति ।
एकत्राऽनन्तसिद्धेभ्यः, स कथं स्पृहयिष्यति ? ॥ २० ॥

रागाद्यपाय-विषमे, सन्मार्गे चरतां सताम् ।
रत्नत्रयजुषामैक्यं, कुशलाय न जायते ॥ २१ ॥

नैकस्य सुकृतोल्लासो, नैकस्यार्थोऽपि तादृशः ।
नैकस्य कामसम्प्राप्तिर्नैको मोक्षाय कल्पते ॥ २२ ॥

श्लेष्मणे शर्करादानं, सज्वरे स्निग्ध-भोजनम् ।
एकाकित्वमगीतार्थे, यतावञ्चति नौचितीम् ॥ २३ ॥

एकश्चौरायते प्रायः, शङ्कयते धूर्तवद् द्वयम् ।
त्रयो रक्षन्ति विश्वासं, वृन्दं नरवरायते ॥ २४ ॥

चित्रमां चित्रेला सैन्यनी जेम मन, वचन अने काया वडे विकार विनाना मुनिओ घणा होय तो पण तेमने अरति क्यांथी होय ? ॥ १८ ॥

निर्जीव पदार्थोमां जेम चैतन्य न होय, कायरोमां जेम साहस न होय, तेम मुनिवरो घणा होय तो पण तेओमां अल्प पण कलह होतो नथी ॥ १९ ॥

जे मूढबुद्धि पांच छ साधुओनी साथे रहेवामां पण ग्लानि (खेद) पामे छे, ते एक ज स्थानमां रहेला अनंत सिद्धोनी साथे रहेवानी स्पृहा शी रीते करी शके ? ॥ २० ॥

रत्नत्रय धारण करनार मुनिओने रागादि शत्रुओना अपायोथी विषम एवा सन्मार्गमां एकला चालवुं ए कल्याणने माटे थतुं नथी (विषम मार्गमां एकाकी जतां रत्नो लुंटाई जवानो संभव छे) ॥ २१ ॥

एकलाने धर्ममां उल्लास थतो नथी, एकलाने अर्थ पण तेवो प्राप्त थतो नथी, एकलाने कामनी संप्राप्ति थती नथी अने एकलो मोक्ष–मार्गनी आराधना माटे समर्थ बनतो नथी (एकलाथी चार प्रकारना पुरुषार्थोनी साधना दुःशक्य छे) ॥ २२ ॥

जेम कफना रोगमां साकर आपवी अने तावमां स्निग्ध भोजन आपवुं उचित नथी, तेम अगीतार्थ साधुमां एकाकिता औचित्यने पामती नथी ॥ २३ ॥

एकलाने विषे प्रायः चोरनी कल्पना थाय छे, बे माणस साथे होय तो तेमना उपर 'ठग'नी शंका कराय छे, त्रण माणस साथे होय तो ते विश्वासनुं पात्र बने छे अने घणानो समुदाय होय तो ते राजानी जेम शोभे छे ॥ २४ ॥

जिन-प्रत्येकबुद्धादि-दृष्टान्तान्नैकतां श्रयेत् ।
न चर्म-चक्षुषां युक्तं, स्पर्द्धितुं ज्ञानदृष्टिभिः ॥ २५ ॥

चातुर्गतिक-संसारे, भ्राम्यतां सर्वजन्मिनाम् ।
पुण्य-पाप-सहायत्वान्नैकत्वं घटतेऽथवा ॥ २६ ॥

संज्ञा-कुलेश्या-विकथार्थचिका इव चापलम् ।
यस्यान्तर्धाम कुर्वन्ति, स एकाकी कथं भवेत् ? ॥ २७ ॥

शाकिनीवदविरति-संज्ञां नाट्यप्रिया सदा ।
ग्रासाय यतते यस्य, स एकाकी कथं भवेत् ? ॥ २८ ॥

पञ्चाग्निवदसन्तुष्टं, यस्येन्द्रियकुटुम्बकम् ।
देहं दहत्यसन्देहं, स एकाकी कथं भवेत् ? ॥ २९ ॥

दायादा इव दुर्दान्ताः, कषायाः क्षणमप्यहो ।
यद्विग्रहं न मुञ्चन्ति, कथं तस्यैकतासुखम् ? ॥ ३० ॥

स्वमनोवाक्तनूत्थानाः, कुव्यापाराः कुपुत्रवत् ।
भ्रंशाय यस्य यस्यन्ति, कथं तस्यैकतासुखम् ? ॥ ३१ ॥

'जिन, प्रत्येकबुद्ध वगेरे एकला विचरे छे,' एवा दृष्टांतथी बीजा मुनिओए एकाकीपणानो आश्रय न करवो जोईए; कारण के ज्ञानचक्षुवाळाओनी साथे चर्मचक्षुवाळाओए स्पर्धा करवी ए योग्य नथी ॥ २५ ॥

अथवा तो चार गतिरूप संसारमां परिभ्रमण करनारा सर्व प्राणीओने पुण्य अने पाप साथे होवाथी तेओमां एकलापणुं घटतुं नथी ॥ २६ ॥

चोनट करनारी स्त्रीओनी जेम आहारादि संज्ञाओ, कृष्णलेश्या वगेरे दुष्ट लेश्याओ अने स्त्रीकथा वगेरे विकथाओ जेमना अंतःकरणरूप गृहमां चपलताने उत्पन्न करे छे ते एकाकी कई रीतिए थई शके ? ॥ २७ ॥

डाकणनी जेम अविरति नामनी नटडी जेने कोळिओ करी जवा सदा मथती होय, ते एकाकी केम थई शके ? ॥ २८ ॥

पंचाग्निनी जेम असंतुष्ट एवुं पांच इन्द्रियोरूपी कुटुम्ब जेना शरीरने बाळ्या करे छे, ते एकलो संदेहरहितपणे केम रही शके ? ॥ २९ ॥

संपत्तिमां भाग मागनारा सगांवहालांओ दुर्दान्त (दुःखे करीने दबावी शकाय तेवा) कषायो क्षण वार पण जेना शरीरने छोडता नथी, तेने एकाकीपणानुं सुख . . . ॥ ३० ॥

. . . स्वेच्छाचारी पुत्रनी जेम . . . ॥

यस्य प्रमाद-मिथ्यात्व-रागाद्याश्छलवीक्षिणः।
कुप्रातिवेश्मिकायन्ते, कथं तस्यैकतासुखम् ? ॥ ३२ ॥

य एभिरु[1]ज्झितः सम्यक्, सजनेऽपि स एककः ।
जनाऽऽपूर्णेऽपि नगरे, यथा वैदेशिकः पुमान् ॥ ३३ ॥

एभिस्तु सहितो योगी, मुधैकाकित्वमश्नुते ।
वण्ठः शठश्चरश्चौरः, किमु भ्राम्यति नैककः ? ॥ ३४ ॥

क्षीरं क्षीरं नीरं नीरं, दीपो दीपं सुधा सुधाम् ।
यथा सङ्गत्य लभते, तथैकत्वं मुनिर्मुनिम् ॥ ३५ ॥

पुण्य-पाप-क्षयान्मुक्ते, केवले परमात्मनि ।
अनाहार[2]तया नित्यं, सत्यमैक्यं प्रतिष्ठितम् ॥ ३६ ॥

यद्वा श्रुतेऽत्र नाऽनुज्ञा, निषेधो वाऽस्ति सर्वथा ।
सम्यगाय-व्ययौ ज्ञात्वा, यतन्ते यति-सत्तमाः ॥ ३७ ॥

हूयते न दीयते न, न तप्यते न जप्यते ।
निष्क्रियैः साधुभिरहो साध्यते परमं पदम् ॥ ३८ ॥

छळने ज जोनारा प्रमाद, मिथ्यात्व अने रागादिक आन्तर शत्रुओ जेने दुष्ट पाडोशी जेवा थाय छे, तेने एकाकीपणानुं सुख शी रीते होय ? ॥ ३२ ॥

जेम मनुष्यथी भरपूर एवा नगरमां पण परदेशी माणस (कोईनी साथे संबंधवाळो नहीं होवाथी) एकलो ज कहेवाय छे, तेम जे पुरुष उपर कहेला दोषोथी रहित होय तो, ते जनसमूहमां रह्यो होय तो पण एकाकी ज छे। परंतु आ सर्व-संज्ञा, दुष्ट लेश्या, विकथा, इन्द्रिय, कषाय, दुष्टयोग, मिथ्यात्व अने रागादियी सहित एवा योगीनुं एकाकीपणुं फोगट छे। वंठ, धूर्त, गुप्तचर के चोर ए शुं एकलो नथी भमतो ? ॥ ३३-३४ ॥

दूध-दूध, पाणी-पाणी, दीप-दीप अने अमृत-अमृतनी जेम मुनि-मुनि पण साथे मळीने एकताने पामे छे ॥ ३५ ॥

पुण्य पापनो क्षय थवाथी मुक्त अने केवल एवा परमात्माने विषे अनाहारपणा वडे सदा साचुं एकाकीपणुं प्रतिष्ठित छे ॥ ३६ ॥

अथवा तो अहीं श्री जिनवचनने विषे एकांते विधि के निषेध नथी, तेथी श्रेष्ठ मुनिओ सारी रीते लाभालाभने जाणीने प्रवर्ते छे ॥ ३७ ॥

शैलेशीगत निष्क्रिय साधुओ वडे होम करातो नथी, दान देवातुं नथी, तप तपातो नथी अने जप जपातो नथी, छतां पण परमपद सधाय छे ते आश्चर्य छे ॥ ३८ ॥

---

१. ०रुच्छ्रितः क. । २. ०त्वमनित्यं, ख. ग. घ. हि. ।

हूहू-गीतैरपि सुधा-रसैर्मन्दार-सौरभैः ।
दिव्यतल्प-सुखस्पर्शैः, सुरीरूपैर्न ये हृताः ॥ ३९ ॥
तत् किं ते तरवो यद्वा, शिशवो यदि वा मृगाः ?
न ते न ते न ते किन्तु, मुनयस्ते निरञ्जनाः ॥ ४० ॥
'णं'-कारोऽयं भणत्येवं, त्रिरेखो विन्दु-शेखरः ।
गुप्तित्रये लब्धरेखाः सद्वृत्ताः स्युर्महर्षयः ॥ ४१ ॥
नवभेद-जीवरक्षा-सुधाकुण्ड-समाकृतिः ।
दत्तां नवाक्षरीयं मे, धर्मे भावं नवं नवम् ॥ ४२ ॥

इति पञ्चमः प्रकाशः समाप्तः ।

[षष्ठः प्रकाशः]

एष पञ्च-नमस्कारः, सर्व-पाप-प्रणाशनः ।
मङ्गलानां च सर्वेषां, मुख्यं भवति मङ्गलम् ॥ १ ॥
समिति-प्रयतः सम्यग्, गुप्तित्रय-पवित्रितः ।
अमुं पञ्च-नमस्कारं, यः स्मरत्युपवैणवम्* ॥ २ ॥

हूहू नामना गन्धर्वोना मनोहर गायनो, अमृतरस, कल्पवृक्षना पुष्पोनी सुगंध, दिव्यशय्यानो सुखकारक स्पर्श अने देवांगनाओना रूपो वडे पण जेओ आकर्षाता नथी, तेओ शुं वृक्षो छे! बाळको छे? के शुं हरणीया छे? ना! ना! ना! तेओ वृक्ष, बाळक के मृगलां नथी; परन्तु तेओ तो निरंजन मुनिओ छे ॥ ३९-४० ॥

णंकार त्रण रेखावाळो अने माथे अनुस्वारवाळो छे, ते अहीं एम जणावे छे के त्रण गुप्तिना पाळनमा रेखाने (पराकाष्टाने) पामेला महामुनिओ संपूर्ण सदाचारी होय छे ॥ ४१ ॥

नव प्रकारनी जीवरक्षारूप सुधाकुंड समान आकृतिवाळी 'नमो लोए सव्वसाहूणं ।' ए नवाक्षरी मने धर्मने विषे नवो भाव आपो ॥ ४२ ॥

छठ्ठो प्रकाश

आ पंचपरमेष्ठी नमस्कार सर्व पापोनो नाश करनार छे अने सर्व मंगलोमा श्रेष्ठ मंगल छे ॥ १ ॥

सम्यक् प्रकारे पांच समितिने विषे प्रयत्नवाळो अने त्रण गुप्तिथी पवित्र थयेलो जे आत्मा आ पंच-परमेष्ठि-नमस्कारनुं त्रिकाल ध्यान करे छे, तेने शत्रु मित्ररूप थाय छे, विष पण अमृतरूप बने छे,

---

* उपवैणव—त्रिसन्ध्यमित्यर्थः ।

शत्रुर्मित्रायते चित्रं, विषमप्यमृतायते ।
अशरण्याऽप्यरण्यानी, तस्य वासगृहायते ॥ ३ ॥
ग्रहाः सानुग्रहास्तस्य, तस्कराश्च यशस्कराः ।
समस्तं दुर्निमित्ताद्यमपि स्वस्ति फलेग्रहिः ॥ ४ ॥
न मन्त्र-तन्त्र-यन्त्राद्यास्तं प्रति प्रभविष्णवः ।
सर्वापि शाकिनी द्रोह-जननी जननी इव ॥ ५ ॥
व्यालास्तस्य मृणालन्ति, गुञ्जापुञ्जन्ति वह्नयः ।
मृगेन्द्रा मृगधूर्तन्ति, मृगन्ति च मतङ्गजाः ॥ ६ ॥
तस्य रक्षोऽपि रक्षायै, भूतवर्गोऽपि भूतये ।
प्रेतोऽपि प्रीतये प्रायश्चेटत्वायैव चेटकः ॥ ७ ॥
धनाय तस्य प्रधनं, रोगो भोगाय जायते ।
विपत्तिरपि सम्पत्त्यै, सर्वं दुःखं सुखायते ॥ ८ ॥
बन्धनैर्मुच्यते सर्वैः सर्पैश्चन्दनवज्जनः ।
श्रुत्वा धीरं ध्वनिं पञ्च-नमस्कार-गरुत्मतः ॥ ९ ॥
जल-स्थल-श्मशानाद्रि-दुर्गेष्वन्येष्वपि ध्रुवम् ।
नमस्कारैकचित्तानामपायाः प्रोत्सवा इव ॥ १० ॥

शरणरहित मोटुं जंगल पण रहेवा लायक घर जेवुं बनी जाय छे, सर्वे ग्रहो तेने अनुकूळ थई जाय छे, चोरो यश आपनारा थाय छे, अनिष्टसूचक सर्व अपशकुनादि पण शुभ फळने आपनारा थाय छे, बीजाए प्रयोग करेला मंत्र, तंत्र अने यंत्रादिक तेनो पराभव करी शकता नथी, सर्व प्रकारनी शाकिनीओ पण मातानी जेम रक्षण करनारी थाय छे, सर्पो तेनी पासे कमळना नाळ जेवा थई जाय छे, अग्नि चणोठीना ढगलारूप थाय छे, सिंहो शियाळ जेवा थाय छे, हाथीओ हरण जेवा थाय छे, राक्षस पण तेनुं रक्षण करे छे, भूतोनो समूह पण तेनी भूति (आबादी) ने माटे थाय छे, प्रेत पण प्रायः करीने तेने प्रीति करनारो थाय छे, चेटक (व्यंतर) पण तेनो चेट (दास) बनी जाय छे, युद्ध तेने लाभ आपनारुं थाय छे, रोगो तेने भोग अपनारा थाय छे, विपत्ति पण तेने संपत्तिने माटे थाय छे अने सर्व प्रकारनुं दुःख तेने सुख आपनारुं थाय छे ॥ २ थी ८ ॥

पंचनमस्काररूप गरुडनो गंभीर ध्वनि सांभळतां ज सर्पोथी चन्दनवृक्षनी जेम पुरुष सर्व बन्धनोथी मुक्त थाय छे ॥ ९ ॥

जेओनुं चित्त नमस्कारमां एकाग्र छे, तेओने जल, स्थल, श्मशान, पर्वत, दुर्ग अने तेवा बीजा पण स्थानोमां प्राप्त थतां कष्टो अवश्यमेव महोत्सवरूप बनी जाय छे ॥ १० ॥

हूहू-गीतैरपि सुधा-रसैर्मन्दार-सौरभैः ।
दिव्यतल्प-सुखस्पर्शैः, सुरीरूपैर्न ये हृताः ॥ ३९ ॥
तत् किं ते तरवो यद्वा, शिशवो यदि वा मृगाः ?
न ते न ते न ते किन्तु, मुनयस्ते निरञ्जनाः ॥ ४० ॥
'णं'-कारोऽयं भणत्येवं, त्रिरेखो बिन्दु-शेखरः ।
गुप्तित्रये लब्धरेखाः सद्वृत्ताः स्युर्महर्षयः ॥ ४१ ॥
नवभेद-जीवरक्षा-सुधाकुण्ड-समाकृतिः ।
दत्तां नवाक्षरीयं मे, धर्मे भावं नवं नवम् ॥ ४२ ॥

इति पञ्चमः प्रकाशः समाप्तः ।

[षष्ठः प्रकाशः]

एष पञ्च-नमस्कारः, सर्व-पाप-प्रणाशनः ।
मङ्गलानां च सर्वेषां, मुख्यं भवति मङ्गलम् ॥ १ ॥
समिति-प्रयतः सम्यग्, गुप्तित्रय-पवित्रितः ।
अमुं पञ्च-नमस्कारं, यः स्मरत्युपर्वैणवम्* ॥ २ ॥

हूहू नामना गन्धर्वोना मनोहर गायनो, अमृतरस, कल्पवृक्षना पुष्पोनी सुगंध, दिव्यशय्यानो सुखकारक स्पर्श अने देवांगनाओना रूपो वडे पण जेओ आकर्षाता नथी, तेओ शुं वृक्षो छे ! बाळको छे ! के शुं हरणीयां छे ? ना ! ना ! ना ! तेओ वृक्ष, बाळक के मृगलां नथी; परन्तु तेओ तो निरंजन मुनिओ छे ॥ ३९-४० ॥

णंकार त्रण रेखावाळो अने माथे अनुस्वारवाळो छे, ते अहीं एम जणावे छे के त्रण गुप्तिना पालनमां रेखाने (पराकाष्टाने) पामेला महामुनिओ संपूर्ण सदाचारी होय छे ॥ ४१ ॥

नव प्रकारनी जीवरक्षारूप सुधाकुंड समान आकृतिवाळी 'नमो लोए सव्वसाहूणं ।' ए नवाक्षरी मने धर्मने विषे नवो भाव आपो ॥ ४२ ॥

छट्ठो प्रकाश

आ पंचपरमेष्ठी नमस्कार सर्व पापोनो नाश करनार छे अने सर्व मंगलोमां श्रेष्ठ मंगल छे ॥ १ ॥

सम्यक् प्रकारे पांच समितिने विषे प्रयत्नवाळो अने त्रण गुप्तिथी पवित्र थयेलो जे आत्मा आ पंच-परमेष्ठि-नमस्कारनुं त्रिकाल ध्यान करे छे, तेने शत्रु मित्ररूप थाय छे, विष पण अमृतरूप बने छे,

---

* उपर्वैणव—त्रिसन्ध्यमित्यर्थः ।

शत्रुर्मित्रायते चित्रं, विषमप्यमृतायते ।
अशरण्याऽप्यरण्यानी, तस्य वासगृहायते ॥ ३ ॥

ग्रहाः सानुग्रहास्तस्य, तस्कराश्च यशस्कराः ।
समस्तं दुर्निमित्ताद्यमपि स्वस्ति फलेग्रहिः ॥ ४ ॥

न मन्त्र-तन्त्र-यन्त्राद्यास्तं प्रति प्रभविष्णवः ।
सर्वापि शाकिनी द्रोह-जननी जननी इव ॥ ५ ॥

व्यालास्तस्य मृणालन्ति, गुञ्जापुञ्जन्ति वह्नयः ।
मृगेन्द्रा मृगधूर्तन्ति, मृगन्ति च मतङ्गजाः ॥ ६ ॥

तस्य रक्षोऽपि रक्षायै, भूतवर्गोऽपि भूतये ।
प्रेतोऽपि प्रीतये प्रायश्चेटत्वायैव चेटकः ॥ ७ ॥

धनाय तस्य प्रधनं, रोगो भोगाय जायते ।
विपत्तिरपि सम्पत्त्यै, सर्वं दुःखं सुखायते ॥ ८ ॥

बन्धनैर्मुच्यते सर्वैः सर्पैश्चन्दनवज्जनः ।
श्रुत्वा धीरं ध्वनिं पञ्च-नमस्कार-गरुत्मतः ॥ ९ ॥

जल-स्थल-श्मशानाद्रि-दुर्गेष्वन्येष्वपि ध्रुवम् ।
नमस्कारैकचित्तानामपायाः प्रोत्सवा इव ॥ १० ॥

शरणरहित मोटुं जंगल पण रहेवा लायक घर जेवुं बनी जाय छे, सर्वे ग्रहो तेने अनुकूळ थई जाय छे, चोरो यश आपनारा थाय छे, अनिष्टसूचक सर्व अपशकुनादि पण शुभ फळने आपनारा थाय छे, बीजाए प्रयोग करेला मंत्र, तंत्र अने यंत्रादिक तेनो पराभव करी शकता नथी, सर्व प्रकारनी शाकिनीओ पण मातानी जेम रक्षण करनारी थाय छे, सर्पो तेनी पासे कमळना नाळ जेवा थई जाय छे, अग्नि चणोठीना ढगलारूप थाय छे, सिंहो शियाळ जेवा थाय छे, हाथीओ हरण जेवा थाय छे, राक्षस पण तेनुं रक्षण करे छे, भूतोनो समूह पण तेनी भूति (आबादी) ने माटे थाय छे, प्रेत पण प्रायः करीने तेने प्रीति करनारो थाय छे, चेटक (व्यंतर) पण तेनो चेट (दास) बनी जाय छे, युद्ध तेने लाभ आपनारुं थाय छे, रोगो तेने भोग अपनारा थाय छे, विपत्ति पण तेने संपत्तिने माटे थाय छे अने सर्व प्रकारनुं दुःख तेने सुख आपनारुं थाय छे ॥ २ थी ८ ॥

पंचनमस्काररूप गरुडनो गंभीर ध्वनि सांभळतां ज सर्पोथी चन्दनवृक्षनी जेम पुरुष सर्व बन्धनोथी मुक्त थाय छे ॥ ९ ॥

जेओनुं चित्त नमस्कारमां एकाग्र छे, तेओने जल, स्थल, श्मशान, पर्वत, दुर्ग अने तेवा बीजा पण स्थानोमां प्राप्त थतां कष्टो अवश्यमेव महोत्सवरूप बनी जाय छे ॥ १० ॥

पुण्यानुबन्धिपुण्यो यः, परमेष्ठि-नमस्कृतिम् ।
यथाविधि ध्यायति सः, स्यान्न तिर्यङ् न नारकः ॥ ११ ॥
चक्रि-विष्णु-प्रतिविष्णु-बलार्थैश्वर्य-सम्पदः ।
नमस्कार-प्रभावाब्धेस्तट-मुक्तादि-सन्निभाः ॥ १२ ॥
वश्य-विद्वेषण-क्षोभ-स्तम्भ-मोहादि-कर्मसु ।
यथाविधि प्रयुक्तोऽयं, मन्त्रः सिद्धिं प्रयच्छति ॥ १३ ॥
उच्छेदं परविद्यानां, निमेषार्धात् करोत्यसौ ।
क्षुद्रात्मनां पराश्वृत्ति-वेधं च विधिना स्मृतः ॥ १४ ॥
भूर्भुवःस्वस्त्रयीरङ्गे, यः कोप्यतिशयः किल ।
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावाऽपेक्षया चित्रकारकः ॥ १५ ॥
क्वचित् कथञ्चित् कस्यापि, श्रूयते दृश्यतेऽङ्गिनः ।
स सर्वोऽपि नमस्काराऽऽराध-माहात्म्यसम्भवः ॥ १६ ॥
तिर्यग्लोके चन्द्रमुख्याः, पाताले चमरादयः ।
सौधर्मादिषु शक्राद्यास्तदग्रेऽपि च ये सुराः ॥ १७ ॥
तेषां सर्वाः श्रियः पञ्च-परमेष्ठि-मरुत्तरोः ।
अङ्कुरा वा पल्लवा वा, कलिका वा सुमानि वा ॥ १८ ॥

पुण्यानुबंधि पुण्यवाळो जे पुरुष विधिपूर्वक पचपरमेष्ठी-नमस्कारनुं ध्यान करे छे, ते तिर्यंच् के नारक थतो नथी ॥ ११ ॥

चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव अने बळदेव वगेरेना ऐश्वर्यनी संपदाओ नमस्कारना प्रभावरूपी समुद्रना किनारे रहेला मुक्ताफल (मोती) वगेरे समान छे ॥ १२ ॥

विधिपूर्वक प्रयोग करायेल आ मंत्र वशीकरण, विद्वेषण, क्षोभ, स्तंभन अने मोहन वगेरे कार्योमां सिद्धिने आपनारो थाय छे ॥ १३ ॥

विधिपूर्वक स्मरण करेलो आ मंत्र अर्धनिमेषमात्रमां ज परप्रयुक्त मलिन विद्याओनुं उच्छेदन करे छे अने क्षुद्र जीवोए करेल रूपादिकना परावर्तनने (?) विंधी–विखेरी नांखे छे ॥ १४ ॥

स्वर्ग, मृत्यु अने पाताळ ए त्रण भुवनरूपी रंगमण्डपने विषे द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावने आश्रयीने जे कोई पण आश्चर्यकारक अतिशय कोई पण स्थळे, कोई पण प्रकारे, कोई पण प्राणीने थयेलो जोवामां के सांभळवामां आवे छे, ते सर्व नमस्कारमंत्रनी आराधनाना प्रभावथी ज उत्पन्न थयो छे, एम जाणवुं ॥१५-१६॥

तिर्यग्लोकमां जे चन्द्रप्रमुख ज्योतिष देवताओ छे, पाताळ लोकमां चमर वगेरे इन्द्रो छे, ऊर्ध्वलोकमां सौधर्मादिदेवलोकने विषे जे शक्र वगेरे इन्द्रो छे अने तेनी उपर पण जे अहमिन्द्र वगेरे देवताओ छे, तेओनी सर्वसमृद्धिओ पंचपरमेष्ठिरूप कल्पवृक्षना अंकुरा, पल्लवो, कळीओ के पुष्प समान छे ॥१७-१८॥

ते गतास्ते गमिष्यन्ति, ते गच्छन्ति परम्पदम् ।
आरूढा निरपायं ये, नमस्कार-महारथम् ॥ १९ ॥

यदि तावदसौ मन्त्रः, शिवं दत्ते सुदुर्लभम् ।
ततस्तदनुषङ्गोत्थे, गणना का फलान्तरे ॥ २० ॥

जपन्ति ये नमस्कार-लक्षं पूर्णं त्रिशुद्धितः ।
जिनसंघ-पूंजिभिस्तैस्तीर्थकृत्कर्म बध्यते ॥ २१ ॥

किं तपः-श्रुत-चारित्रैः, चिरमाचरितैरपि ।
सखे ! यदि नमस्कारे, मनो लेलीयते न ते ? ॥ २२ ॥

योऽसंख्य-दुःखक्षय-कारण-स्मृति-[2]
यं ऐहिकामुष्मिक-सौख्य-कामधुक् ।
यो दुष्पमायामपि कल्पपादपो,
मन्त्राधिराजः स कथं न जप्यते ? ॥ २३ ॥

न यद्दीपेन सूर्येण, चन्द्रेणाप्यपरेण वा ।
तमस्तदपि निर्नाम, स्यान्नमस्कार-तेजसा ॥ २४ ॥

जेओ अपायरहित एवा नमस्काररूप महारथमां आरूढ थया, तेओ परमपदने पाम्या छे, पामे छे अने पामशे ॥ १९ ॥

जो आ मंत्र अत्यन्त दुर्लभ एवा परमपदने पण आपे छे, तो तेनी पूर्वमां प्राप्त थतां आनुषंगिक एवां बीजां फळोनी गणत्री शी ? ॥ २० ॥

श्री जिनेश्वर देव अने श्री संघने पूजनारा जे भव्यात्माओ त्रिकरण शुद्धि वडे एक लाख नवकारनो जाप करे छे तेओ तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करे छे ॥ २१ ॥

हे मित्र ! जो तारुं मन नमस्कारनुं ध्यान करवामां लयलीन नथी थतुं, तो चिरकाल सुधी आचरण करेला तप, श्रुत अने चारित्रनी क्रियाओनुं शुं फळ ? ॥ २२ ॥

जेनी स्मृति असंख्य दुःखोना क्षयनुं कारण गणाय छे, जे आ लोक अने परलोकनां सुख आपवामां कामधेनु समान छे अने जे दुःषम काळमां पण कल्पवृक्ष समान छे ते मंत्राधिराज केम न जपाय ? ॥ २३ ॥

जे अंधकार दीवाथी, सूर्यथी, चन्द्रथी के बीजा कोई पण तेजथी नाश नथी पामतो, ते (मोहरूप) अंधकार पण नमस्कारना तेज वडे नामशेष थई जाय छे ॥ २४ ॥

---

१. ०पूजितैस्तै० हि. । २. स्मृतो हि. ।

कृष्ण-शाम्बादिवद् भाव-नमस्कार-परो भव ।
मा वीर-पालक-न्यायात्, मुधाऽऽत्मानं विडम्बय ॥ २५ ॥

यथा नक्षत्रमालायां, स्वामी पीयूषदीधितिः ।
तथा भाव-नमस्कारः, सर्वस्यां पुण्यसंहतौ ॥ २६ ॥

जीवेनाकृतकृत्यानि, विना भावनमस्कृतिम् ।
गृहीतानि विमुक्तानि, द्रव्यलिङ्गान्यनन्तशः ॥ २७ ॥

अष्टावष्टौ शतान्यष्टसहस्राण्यष्टकोटयः ।
विधिध्याता नमस्काराः, सिद्धयेऽन्तर्भवत्रयम् ॥ २८ ॥

धर्मबान्धव ! निश्छद्म पुनरुक्तं त्वमर्थ्यसे ।
संसारार्णव-बोहित्थे माऽत्र मन्त्रे श्लथो भव ॥ २९ ॥

अवश्यं यदसौ भाव-नमस्कारः परं महः ।
स्वर्गापवर्ग-सन्मार्गो, दुर्गति-प्रलयानिलः ॥ ३० ॥

शिवतातिः सदा सम्यक्, पठितो गुणितः श्रुतः ।
समनुप्रेक्षितो भव्यैर्विशिष्याऽऽराधना-क्षणे ॥ ३१ ॥

हे आत्मन् ! तुं कृष्ण अने शाम्ब वगेरेनी जेम भावनमस्कार करवामां तत्पर था, पण कृष्णना सेवक वीरा साळवी अने कृष्णना अभव्य पुत्र पालक वगेरेनी जेम द्रव्यनमस्कार करी फोगट आत्माने विडंबना न पमाड ॥ २५ ॥

जेम नक्षत्रोना समुदायनो स्वामी चन्द्र छे, तेम सर्व पुण्यसमूहनो स्वामी भावनमस्कार छे ॥ २६ ॥

आ जीवे अनन्तीवार द्रव्यलिंगो (साधुवेष) ग्रहण कर्या छे अने छोड्या छे पण भावनमस्कारनी प्राप्ति विना ते सर्व मोक्षरूपी कार्य साधवामां निष्फळ नीवड्या छे ॥ २७ ॥

शास्त्रोक्त विधिपूर्वक नमस्कारमन्त्रनो आठ करोड, आठ हजार, आठ सो अने आठ वार जाप कर्यो होय तो ते मात्र त्रण ज भवनी अंदर मोक्ष आपे छे ॥ २८ ॥

हे धर्मबन्धु ! सरळ भावे फरीथी तने प्रार्थना करुं छुं के संसार-समुद्रमां जहाज समान आ नमस्कार मंत्र गणवामां तुं प्रमादी न था ॥ २९ ॥

नक्की आ भावनमस्कार उत्कृष्ट—सर्वोत्तम तेज छे, स्वर्ग अने मोक्षनो साचो मार्ग छे, तथा दुर्गतिनो नाश करवामां प्रलयकाळना पवन समान छे ॥ ३० ॥

मोक्षनी सोपानपंक्ति समान आ भावनमस्कार भव्यो वडे सदा पठन करायो छे, गणायो छे, संभळायो अने चिंतन करायो छे; तेमां पण अंतिम मरणकालीन आराधनानी क्षणे ते विशेषे करीने पठन, गुणन, श्रवण अने चिंतन करायो छे ॥ ३१ ॥

---

१. ॰न्यायात् क. हि. । २. ॰यानलः ख. ग. हि. ।

प्रदीप्ते भवने यद्वच्छेषं मुक्त्वा गृही सुधीः ।
गृह्णात्येकं महारत्नमापन्निस्तारण-क्षमम् ॥ ३२ ॥

आकालिक-रणोत्पाते, यथा कोऽपि महाभटः ।
अमोघमस्त्रमादत्ते, सारं दम्भोलि-दण्डवत् ॥ ३३ ॥

एवं नाशक्षणे सर्व-श्रुतस्कन्धस्य चिन्तने ।
प्रायेण न क्षमो जीवस्तस्मात्तद्गत-मानसः ॥ ३४ ॥

द्वादशाङ्गोपनिषदं, परमेष्ठि-नमस्कृतिम् ।
धीरधीः सल्लसल्लेश्यः, कोऽपि स्मरति सात्त्विकः ॥ ३५ ॥

समुद्रादिव पीयूषं, चन्दनं मलयादिव ।
नवनीतं यथा दध्नो, वज्रं वा रोहणादिव ॥ ३६ ॥

आगमादुद्धृतं सर्व-सारं कल्याणसेवधिम् ।
परमेष्ठि-नमस्कारं, धन्याः केचिदुपासते ॥ ३७ ॥

संविग्न-मानसाः स्पष्ट-गम्भीर-मधुर-स्वराः ।
योगमुद्राधर-कराः, शुचयः कमलासनाः ॥ ३८ ॥

उच्चरेयुः स्वयं सम्यक्, पूर्णां पञ्च-नमस्कृतिम् ।
उत्सर्गतो विधिरयं, ग्लान्यौऽत्रैते न चेत्क्षमाः ॥ ३९ ॥

जेम घरमां आग लागे त्यारे बुद्धिशाळी घरनो मालीक बीजी बधी वस्तु मूकी दईने आपत्ति-समये रक्षण करवामां समर्थ एवा एक सारभूत महार्किमती रत्नने ज ग्रहण करे छे, अथवा कोई मोटो सुभट अकाळे प्राप्त थयेला रणसंग्राममां वज्रदंड समान सारभूत अमोघ शस्त्रने ज धारण करे छे, ए ज प्रमाणे मरणसमये के ज्यारे प्रायः सर्व श्रुतस्कंधनुं (सर्व शास्त्रोनुं) चिंतवन करी शकातुं नथी, त्यारे धीर बुद्धिवाळो अने विशुध्यमान शुभ लेश्यावाळो कोईक सात्त्विक जीव द्वादशांगीना सारभूत आ पंचपरमेष्ठि नमस्कारनुं ज एकाग्रचित्ते स्मरण करे छे ॥ ३२-३३-३४-३५ ॥

समुद्रमांथी अमृतनी जेम, मलयाचल पर्वतमांथी चंदननी जेम, दहींमांथी माखणनी जेम अने रोहणाचल पर्वतमांथी वज्ररत्ननी जेम, आगममांथी उद्धरेला सर्वश्रुतना सारभूत अने कल्याणना खजाना समान आ पंचपरमेष्ठि नमस्कारनुं कोईक धन्य पुरुषो ज मनन-चिंतवन करे छे ॥ ३६-३७ ॥

शरीरथी पवित्र बनीने, पद्मासने बेसीने, हाथ वडे योगमुद्रा धारण करीने अने संवेग (मोक्षनी अभिलाषा) युक्त मनवाळा भव्य प्राणीए स्पष्ट, गंभीर अने मधुर स्वरे संपूर्ण पंचनमस्कारनो उच्चार करवो। आ विधि उत्सर्गथी जाणवो ॥ ३८-३९ ॥

---

१. अका. ख. ग. हि. । २. यद्वा ख. ग. हि. । °न्या चैते ग. हि. ।

'असिआउसे'ति मन्त्रं, तन्नामाद्यक्षराङ्कितम् ।
स्मरन्तो जन्तवोऽनन्ताः, मुच्यन्तेऽन्तक-बन्धनात् ॥ ४० ॥
अर्हदरूपाचार्योपाध्याय-मुन्यादिमाक्षरैः ।
सन्धि-प्रयोग-संश्लिष्टैरोङ्कारं वा विदुर्जिनाः ॥ ४१ ॥
व्यक्ता मुक्तात्मनां मुक्तिर्मोह-स्तम्बेरमाङ्कुशः ।
प्रणीतः प्रणवः प्राज्ञैर्भवार्त्ति-च्छेद-कर्त्तरी ॥ ४२ ॥
ओमिति ध्यायतां तत्त्वं, स्वर्गार्गलक-कुञ्चिकाम् ।
जीविते मरणे चापि, भुक्तिर्मुक्तिर्महात्मनाम् ॥ ४३ ॥
सर्वथाऽप्यक्षमो दैवाद्, यद्वाऽन्ते धर्म-बान्धवात् ।
शृण्वन् मन्त्रममुं चित्ते, धर्मात्मा भावयेदिति ॥ ४४ ॥
अमृतैः किमहं सिक्तः, सर्वाङ्गं यदि वा कृतः ।
सर्वानन्दमयोऽकाण्डे, केनाऽप्यनघ-बन्धुना ॥ ४५ ॥
परं पुण्यं परं श्रेयः, परं मङ्गलकारणम् ।
यदिदानीं श्रावितोऽहं, पञ्चनाथ-नमस्कृतिम् ॥ ४६ ॥

(हवे अपवाद-विधि कहे छे.—) जो शारीरिक मांदगीना कारणे पोते सम्पूर्ण नमस्कारनो उचार करवा समर्थ न होय तो ए ज पच परमेष्टीना पहेला पहेला अक्षरथी उत्पन्न थयेला 'असिआउसा' ए मंत्रनुं स्मरण करे, कारण के आ पाच अक्षरना स्मरणथी पण जीवो अनंत एवा मरणना बधनथी मुक्त थया छे ॥४०॥

जेमने कोई प्राणान्त मांदगीमां उपर कहेला पांच अक्षररूप मंत्रनु स्मरण पण शक्य न होय तेमना माटे श्री जिनेश्वरोए अर्हत् (अरिहंत), अरूपी (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय अने मुनि ए पांच परमेष्टिना प्रथम अक्षरोने व्याकरणना संधि-नियमो लगाडीने सिद्ध थयेल (अ+अ=आ, आ+आ=आ, आ+उ=ओ, ओ+म्=) 'ॐ'कार कहेल छे, तेनुं स्मरण करवुं। कारण के तेमा पण पांच परमेष्टिओ आवी जाय छे ॥४१॥

प्राज्ञ पुरुषोए कह्यु छे के आ 'ॐ'कार मुक्तात्माओनी साक्षात् मुक्ति, मोहरूपी हाथीने वश करनार अंकुश अने संसारनी पीडाने छेदनारी कातर छे ॥ ४२ ॥

स्वर्गना दरवाजा उघाडवा माटे कुंची समान आ 'ॐ'काररूपी तत्त्वनुं ध्यान करनार महात्माओने जीवे त्यांसुधी भोगो मळे छे अने मर्या पछी मुक्ति मळे छे ॥ ४३ ॥

अथवा तो भाग्यवशात् मृत्यु समये सर्व प्रकारे आ ॐकारनु स्मरण करवामा पण पोते अशक्त होय तो ते साधर्मिक बंधु पासेथी आ मंत्रनुं श्रवण करे अने ते वखते चित्तमां आ प्रमाणे भावना भावे ॥ ४४ ॥

शुं कोईक पुण्यशाळी बधुए अकाळे मारा समग्र शरीरे अमृत छाटयु ? अथवा तो शु हुं तेना वडे सम्पूर्ण आनन्द-स्वरूप करायो ? कारण के हमणां मने तेणे श्रेष्ठ पुण्यरूप, श्रेष्ठ कल्याणरूप अने मगळना श्रेष्ठ कारणरूप पंचपरमेष्ठि-नमस्कार मंत्र संभळाव्यो ॥ ४५-४६ ॥

---

१. ०याउ० ख. ग. घ. हि. । २. ०न्तात् क. घ. । ३. मुक्ति० ख. ग. घ. टि. ।

अहो! दुर्लभ लाभो मे, ममाऽहो! प्रियसङ्गमः।
अहो! तत्व-प्रकाशो मे, सारमुष्टिरहो! मम ॥ ४७ ॥

अद्य कष्टानि नष्टानि, दुरितं दूरतो ययौ।
प्राप्तं पारं भवाम्भोधेः, श्रुत्वा पञ्च-नमस्कृतिम् ॥ ४८ ॥

प्रशमो देव-गुर्वाज्ञा-पालनं नियमस्तपः।
अद्य मे सफलं जज्ञे[1], श्रुत-पञ्च-नमस्कृतेः ॥ ४९ ॥

स्वर्णस्येवाग्नि-[2]सम्पातो, दिष्ट्या मे विपदप्यभूत्।
यल्लेभेऽद्य मया[3]ऽनर्घ्यं परमेष्ठिमयं महः ॥ ५० ॥

एवं शम-रसोल्लास-पूर्वं श्रुत्वा नमस्कृतिम्।
निहत्य क्लिष्टकर्माणि, सुधीः श्रयति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥

उत्पद्योत्तमदेवेषु, विपुलेषु कुलेष्वपि।
अन्तर्भवाष्टकं सिद्धः, स्यान्नमस्कार-भक्तिभाक् ॥ ५२ ॥

इति षष्ठः प्रकाशः समाप्तः ॥

अहो! आ पंचपरमेष्ठि-नमस्कारनुं श्रवण करवाथी मने दुर्लभ वस्तुनो लाभ थयो! अहो! मने प्रिय वस्तुनो समागम थयो! अहो! मने तत्त्वनो प्रकाश थयो अने अहो! मने सारभूत उत्तम वस्तुनुं सम्पूर्ण रहस्य प्राप्त थयुं छे ॥ ४७ ॥

आ पंचपरमेष्ठि-नमस्कारना श्रवणथी आजे मारां कष्टो नाश पाम्यां, मारुं पाप दूरथी चाल्युं गयुं अने आजे हुं संसारसागरना पारने पाम्यो ॥ ४८ ॥

पंचपरमेष्ठि-नमस्कार मंत्रनुं श्रवण करवाथी आजे मारो प्रशम, देव तथा गुरुनी आज्ञानुं पालन, नियम अने तप ए सघळुं य सफळ थयुं ॥ ४९ ॥

अग्निनो संयोग जेम सुवर्णने निर्मळ करे छे, ते ज़ रीतिए आ मांदगीनी विपत्ति पण मारे कल्याणने माटे थई, कारण के आजे परमेष्ठि-स्वरूप अमूल्य तेज में प्राप्त कर्युं ॥ ५० ॥

आ प्रमाणे प्रशम-रसना उल्लासपूर्वक पंचपरमेष्ठि-नमस्कारनुं श्रवण करी अने क्लिष्ट कर्मने नाश करी बुद्धिमान पुरुष सद्गतिने पामे छे ॥ ५१ ॥

नमस्कार मंत्रनी भावपूर्वक भक्ति करनार ते प्राणी त्यां (सद्गतिमां) उत्तम देवलोकोमां उत्पन्न थई त्यांथी च्यवी, श्रेष्ठ मनुष्यकुलोमां जन्म पामीने, आठ भवनी अंदर सिद्ध थाय छे ॥ ५२ ॥

---

१. जन्म, ख. ग. घ. हि.। २. सन्तापो, ख. हि.। ३. महानर्घ्यं ख. ग. हि.।

[सप्तमः प्रकाशः]

सदा नामाकृतिद्रव्य-भावैस्त्रैलोक्य-पावनाः ।
क्षेत्रे काले च सर्वत्र, शरणं मे जिनेश्वराः ॥ १ ॥

तेऽतीताः केवलज्ञानि-प्रमुखा ऋषभादयः ।
वर्त्तमाना भविष्यन्तः, पद्मनाभादयो जिनाः ॥ २ ॥

सीमान्धराद्या अर्हन्तो, विहरन्तोऽथ शाश्वताः ।
चन्द्रानन-वारिषेण-वर्द्धमानर्षभाश्च ते ॥ ३ ॥

संख्यातास्ते वर्त्तमानाः, अनन्तातीतभाविनः ।
सर्वेष्वपि विदेहेषु, भरतैरावतेषु च ॥ ४ ॥

ते केवलज्ञान-विकाश-भासुराः, निराकृताष्टादश-दोष-विद्रवाः ।
असंख्य-वास्तोष्पति-वन्दितांह्रयः, सत्प्रातिहार्यातिशयैः समाश्रिताः ॥ ५ ॥

जगत्त्रयी-बोधिद-पञ्च-संयुत-त्रिंशद्गुणालङ्कृत-देशना-गिरः ।
अनुत्तर-स्वर्गिगणैः सदा स्मृताः, अनन्यदेयाक्षर-मार्गदायिनः ॥ ६ ॥

सातमो प्रकाश

सर्व काळ अने सर्व क्षेत्रमां नाम, स्थापना, द्रव्य अने भाव वडे त्रण लोकने सदा पवित्र करनारा श्री जिनेश्वर भगवंतो मने शरण हो ॥ १ ॥

ते जिनेश्वरो अतीतकाळे श्री केवळज्ञानी स्वामी वगेरे थया हता, वर्तमानकाळे श्री ऋषभदेवस्वामी वगेरे थया छे अने आगामिकाळे श्री पद्मनाभ स्वामी वगेरे थवाना छे ॥ २ ॥

श्री सीमंधरस्वामी वगेरे वीस विहरमान तीर्थंकरो छे। श्री चन्द्रानन, श्री वारिषेण, श्री वर्धमान अने श्री ऋषभ ए नामना चार शाश्वत तीर्थंकरो छे ॥ ३ ॥

सर्व विदेह, सर्व भरत अने सर्व ऐरावतने विषे वर्तमानकाळे संख्याता जिनेश्वरो होय छे, अने अतीत तथा अनागत काळने आश्रयीने अनन्ता जिनेश्वरो होय छे ॥ ४ ॥

ते सर्व तीर्थंकर भगवंतो केवळज्ञानना प्रकाशथी देदीप्यमान, अढार दोषोना उपद्रवोथी रहित, असंख्य इन्द्रोथी वंदित चरणकमळवाळा, उत्तम प्रकारना आठ प्रातिहार्य अने चोत्रीश अतिशयो वडे शोभता, त्रण जगतना प्राणीओने समकित आपनार, पांत्रीश गुणोथी शोभता देशनाना वचनवाळा, अनुत्तरविमानमां रहेला देवो वडे सदा स्मरण करायेला अने बीजाओ न आपी शके तेवा मोक्षमार्गने आपनारा होय छे ॥ ५-६ ॥

दुरितं दूरतो याति, साधिव्याधिः प्रणश्यति ।
दारिद्र्यमुद्रा विद्राति, सम्यग्दृष्टे जिनेश्वरे ॥ ७ ॥
निन्द्येन मांसखण्डेन, किं तया जिह्वया नृणाम् ।
माहात्म्यं या जिनेन्द्राणां, न स्तवीति क्षणे क्षणे ॥ ८ ॥
अर्हच्चरित्र-माधुर्य-सुधास्वादानभिज्ञयोः ।
कर्णयोश्छिद्रयोर्वाऽपि, स्वल्पमप्यस्ति नान्तरम् ॥ ९ ॥
सर्वातिशय-सम्पन्नां, ये जिनार्चां न पश्यतः ।
न ते विलोचने किन्तु, वदनालय-जालके ॥ १० ॥
अनार्येऽपि वसन् देशे, श्रीमानार्द्रकुमारकः ।
अर्हतः प्रतिमां दृष्ट्वा, जज्ञे संसार-पारगः ॥ ११ ॥
जिन-बिम्बेक्षणाज्ज्ञात-तत्त्वः शय्यम्भव-द्विजः ।
निषेव्य सुगुरोः पादानुत्तमार्थमसाधयत् ॥ १२ ॥
अहो! सात्त्विक-मूर्द्धन्यो, वज्रकर्णो महीपतिः ।
सर्वनाशेऽपि योऽन्यस्मै, न ननाम जिनं विना ॥ १३ ॥

श्री जिनेश्वरनुं सम्यक् प्रकारे दर्शन थतां ज प्राणीओना पापो अत्यन्त दूर चाल्या जाय छे, आधि (मननी पीडा) अने व्याधि (शरीरनी पीडा) नाश पामे छे; तथा दरिद्रतानी मुद्रा जती रहे छे ॥ ७ ॥

जे जीभ श्री जिनेश्वरना माहात्म्यनी क्षणे क्षणे स्तुति न करे, ते निंदवा लायक मांसना टुकडा जेवी जिह्वा शा कामनी ? ॥ ८ ॥

जे कान श्री अरिहंतना चरित्रनी मधुरता रूप अमृतना आस्वादथी अजाण होय, ते कान अथवा छिद्रमां कंई पण तफावत नथी ॥ ९ ॥

सर्व अतिशयोथी संपन्न एवी श्री जिनप्रतिमाने जे नेत्रो जोता नथी ते नेत्र नथी, परंतु मुखरूपी घरनां जाळीयां छे ॥ १० ॥

अनार्य देशमां वसता एवा पण श्रीमान् आर्द्रकुमार श्रीअरिहंत भगवंतनी प्रतिमाने निहाळीने संसार-सागरना पारगामी थया हता ॥ ११ ॥

श्री जिनप्रतिमाना दर्शनथी श्रीशय्यंभव नामना ब्राह्मणे तत्त्वने जाण्युं अने ते पछी श्री सुगुरुना चरण-कमळनी सेवा करीने तेओ उत्तमार्थ-मोक्षने पाम्या ॥ १२ ॥

अहो ! सात्त्विक-शिरोमणि **श्रीवज्रकर्ण** नामना राजाए राज्य वगेरे सर्व वस्तुनो नाश उपस्थित थवा छतां पण एक जिनेश्वर देव विना बीजाने नमस्कार न कर्यो ते न ज कर्यो ॥ १३ ॥

देवतत्त्वे गुरुतत्त्वे, धर्मतत्त्वे स्थिरात्मनः ।
वालिनो वानरेन्द्रस्य, महनीयमहो ! महः ॥ १४ ॥

सुलसाया महासत्या भूयासमवतारणम् ।
सम्भावयति कल्याण-वार्त्तायां त्रिजगद्गुरुः ॥ १५ ॥

श्रीवीरं वन्दितुं यातावश्वौ दर्दुरावपि ।
मृत्वा सौधर्मकल्पान्तर्जातौ शक्रसमौ सुरौ ॥ १६ ॥

हासा-प्रहासा-पतिराभियोग्य-दुष्कर्म-निर्विण्णमनाः सुरोऽपि ।
देवाधिदेव-प्रतिमां क्षमायां, प्राकाशयत् स्वात्मविमोचनाय ॥ १७ ॥

जिनांह्रिसेवाहृत-पापतापः, त्रैलोक्य-कुक्षिम्भरि-सत्प्रतापः ।
श्रीचेटको नाम महाक्ष्मापः, सुरेन्द्र-चित्तेष्वपि वासमाप ॥ १८ ॥

अष्टाह्निका-पर्व सुपर्वनाथाः, कुर्वन्ति सर्वे जिनमन्दिरेषु ।
नित्येषु नन्दीश्वर-मुख्यतीर्था-लङ्कारभूतेषु भवाभिभूत्यै ॥ १९ ॥

देव तत्त्व, गुरु तत्त्व अने धर्म तत्त्वमां स्थिर आशयवाळा वानर द्वीपना स्वामी वाली राजानुं तेज-पराक्रम खरेखर पूजवा लायक हतुं ॥ १४ ॥

त्रण जगतना गुरु श्री महावीर परमात्माए पण सुख-शाताना समाचार कहेवरावयामां जेमने याद करी हती, ते महासती श्री सुलसाना हुं ओवारणां लउं छुं ॥ १५ ॥

श्री वीरप्रभुने भावथी वंदन करवा आवता बे देडकाओ पण रस्तामां ज मरीने सौधर्मदेवलोकमां इंद्रसमान देवताओ थया [सेडुक नामना ब्राह्मणनो जीव अने नंदमणियारनो जीव देडकाना भवमां श्री महावीर परमात्माने भावथी वंदन करवा जतां मार्गमां ज (श्रेणिक राजाना घोडाना पग तळे दबाईने) मरण पामी प्रभु वंदननुं ध्यान होवाथी सौधर्मदेवलोकमां शक्रेन्द्रनो सामानिक देव थयो] ॥ १६ ॥

कुमारनंदी सोनीनो जीव मरीने देवलोकमां हासा अने प्रहासा नामनी देवीओनो पति थया छतां पण आभियोगिक देवने योग्य हलकां कार्यो करवाथी मनमां अत्यन्त खेद पाम्यो हतो, तेथी तेणे पोताना आत्माने ते दुष्कर्मथी मुक्त करवा माटे देवाधिदेवनी प्रतिमा पृथ्वी उपर प्रगट करी हती ॥ १७ ॥

श्री चेटक (चेडा) नामना महाराजाए श्रीजिनेश्वरना चरणकमळनी सेवा वडे पोताना सर्व पापना तापनो नाश कर्यो हतो, तेथी तेमनो सुंदर प्रताप त्रणे भुवनमां प्रसरी गयो हतो अने तेओ इन्द्रोना हृदयोमां पण स्थान पाम्या हता ॥ १८ ॥

सर्व देवेन्द्रो संसारनो नाश करवा माटे नंदीश्वरादिक तीर्थोना अलङ्काररूप शाश्वता जिनमंदिरोमां अट्ठाई-महोत्सव करे छे ॥ १९ ॥

---

१. भूयाः सन्नवतारणम् क., भूयांसमवतारणं दि. । २. वानेरा या वाद्गुरुम् क., यानेरा यो जगद्गुरुः ख. ।

श्रूयते चरमाम्भोधौ, जिन-बिम्बाकृतेस्तिमेः ।
नमस्कृति-परो मीनो, जातस्मृतिर्दिवं ययौ ॥ २० ॥
नृ-सुरासुर-साम्राज्यं, भुज्यते यदशङ्कितम् ।
जिन-पाद-प्रसादानां लीलायित-लवो हि सः ॥ २१ ॥
नृलोके चक्रवर्त्याद्याः, शक्राद्याः सुरसद्मनि ।
पाताले धरणेन्द्राद्या जयन्ति जिन-भक्तितः ॥ २२ ॥
मुकुटीकृत-जैनाज्ञा, रुद्रा एकादशाऽप्यहो ! ।
केचित्तीर्णास्तरिष्यन्ति, परे[1] संसार-सागरम् ॥ २३ ॥
वह्नि-ज्वाला इव जले, विषोर्मय इवाऽमृते ।
जिनसाम्ये विलीयन्ते, हरादीनां कथा-प्रथाः ॥ २४ ॥
तानि जैनेन्द्र-वृत्तानि, सम्यग् विमृशतां सताम् ।
अत्राप्यानन्दमग्नानां, युक्तं मोक्षेऽपि न स्पृहा ॥ २५ ॥
यथा तोयेन शाम्यन्ति, तृषोऽन्नेन क्षुधो यथा ।
जिन-दर्शनमात्रेण, तथैकेन भवार्त्तयः ॥ २६ ॥

वळी शास्त्रोमां संभळाय छे के स्वयम्भूरमण नामना छेल्ला समुद्रमां जिनबिंबना आकारवाळा मत्स्यने जोई बीजा मत्स्यने जाति-स्मरण ज्ञान थयुं अने नमस्कार मंत्रनुं ध्यान करी त्यांथी मरीने देवलोकमां गयो ॥ २० ॥

मनुष्य, देव अने असुरोनुं स्वामीपणुं जे निःशंकपणे भोगवाय छे ते श्री जिनेश्वरभगवंतना चरणोनी कृपानी लीलानो एक लेश मात्र छे ॥ २१ ॥

मनुष्यलोकमां चक्रवर्ती वगेरे राजाओ, स्वर्गलोकमां इन्द्रादिदेवो अने पाताळ लोकमां धरणेन्द्र वगेरे भुवनपतिना इन्द्रो जिनेश्वरनी भक्तिथी ज जयवंता वर्ते छे ॥ २२ ॥

श्री जिनेश्वरनी आज्ञाने मुकुटनी जेम मस्तके धारण करीने अहो ! अगियारे रुद्रोमांथी केटलाक ए ज भवमां मोक्षे गया छे अने बाकीना आगामी भवोमां मोक्षे जवाना छे ॥ २३ ॥

जेम पाणीमां अग्निनी ज्वाला नाश पामी जाय छे अने जेम अमृतने विषे विषनो प्रभाव नष्ट थई जाय छे, तेम श्री जिनेश्वरभगवंतनी समता-चरित्रनी वर्णनामां शंकर वगेरे देवोनी कथाओनो विस्तार विलय पामे छे ॥ २४ ॥

श्री जिनेश्वरोना ते चरित्रोनुं सम्यक् प्रकारे चिंतन करनारा सत्पुरुषो आ संसारमां पण आनंदमग्न रहे छे अने तेथी खरेखर ! तेओने मोक्षमां पण स्पृहा रहेती नथी ॥ २५ ॥

जेम जल वडे तृषा शान्त थाय छे, तथा अन्न वडे क्षुधा शान्त थाय छे, तेम श्री जिनेश्वरना एक दर्शनमात्रथी ज संसारनी सर्व पीडाओ शान्त थई जाय छे—नाश पामे छे ॥ २६ ॥

---

१. पारेसं० ख. घ. ।

अतिकोटिः समाः सम्यक्, समाधीन् समुपासताम् ।
नार्हदाज्ञां विना यान्ति, तथापि शमिनः शिवम् ॥ २७ ॥

न दानेनाऽनिदानेन, न शीलैः परिशीलितैः ।
न शस्याभिस्तपस्याभिरजैनानां परं पदम् ॥ २८ ॥

भास्वता वासर इव, पूर्णिमेवाऽमृतांशुना ।
सुभिक्षमिव मेघेन, जिनेनैवाव्ययं महः ॥ २९ ॥

अक्षायत्तं यथा द्यूतं, मेघाधीना यथा कृषिः ।
तथा शिवपुरे वासो, जिन-ध्यान-वशंवदः ॥ ३० ॥

सुलभास्त्रिजगल्लक्ष्म्यः, सुलभाः सिद्धयोऽष्ट ताः ।
जिनांह्रि-नीरज-रजःकणिकास्त्वतिदुर्लभाः ॥ ३१ ॥

अहो ! कष्टमहो ! कष्टं, जिनं प्राप्यापि यज्जनाः ।
केचिन्मिथ्यादृशो गाढं, दिनेशमिव कौशिकाः ॥ ३२ ॥

जिन एव महादेवः, स्वयम्भूः पुरुषोत्तमः ।
परात्मा सुगतोऽलक्ष्यो, भूर्भुवःस्वस्त्रये(यी)श्वरः ॥ ३३ ॥

जितेन्द्रिय एवा अन्यदर्शनीओ भले करोडो वर्षोथी पण अधिक काळ सुधी समाधिओनी उपासना करे, परन्तु श्री जिनाज्ञा विना तेओ कदापि मोक्षे जता नथी ॥ २७ ॥

रागादि शत्रुओना जेता श्री जिनेश्वर परमात्मा जेओना देव नथी, तेओ भले नियाणारहित दान करे, निर्मळ शील पाळे, तथा प्रशंसा करवा योग्य तप करे, तो पण तेमने परमपदनी प्राप्ति नथी ॥ २८ ॥

जेम सूर्य वडे दिवस थाय छे, चन्द्र वडे पूर्णिमा थाय छे अने वृष्टि वडे सुभिक्ष (सुकाळ) थाय छे, तेम श्री जिनेश्वर वडे ज अविनाशी तेजनी-केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय छे ॥ २९ ॥

जेम जुगार पासाने आधीन छे अने खेती वृष्टिने आधीन छे, तेम शिवपुरमां वसवुं ते श्री जिनेश्वरना ध्यानने ज आधीन छे ॥ ३० ॥

त्रण जगतनी लक्ष्मी प्राप्त थवी सुलभ छे, तथा अणिमादिक आठ सिद्धिओनी प्राप्ति थवी सुलभ छे, परन्तु जिनेश्वरना चरणकमळना रजकणो प्राप्त थवा अत्यन्त दुर्लभ छे ॥ ३१ ॥

अहो ! खेदनी वात छे के जिनेश्वरने पामीने पण केटलाक जीवो सूर्यना प्रकाशमां घूवडनी जेम गाढ मिथ्यादृष्टि रहे छे ॥ ३२ ॥

जिनेश्वर ज महादेव छे, ब्रह्मा छे, विष्णु छे, परमात्मा छे, सुगत (बुद्ध) छे, अलक्ष्य छे तथा स्वर्ग, मृत्यु अने पाताळने विषे ईश्वर छे ॥ ३३ ॥

---

१. ग सुरेश्वर: ग.-दि., ख शिवेश्वर: ख. घ. ।

त्रैगुण्य-गोचरा संज्ञा, बुद्धेशानादिषु स्थिता ।
या लोकोत्तर-सत्त्वोत्था, सा सर्वाऽपि परं जिने ॥ ३४ ॥

रोहणाद्रेरिवाऽऽदाय, जिनेन्द्रात्परमात्मनः ।
नानाभिधान-रत्नानि, विदग्धैर्व्यवहारिभिः ॥ ३५ ॥

सुवर्णभूषणान्याशु, कृत्वा स्व-स्व-मतेष्वथ ।
तत्तद्देवेष्वाहितानि, कालात् तन्नामतामगुः ॥ ३६ ॥ युग्मम् ॥

यद्वा—

अमृतानि यथाऽब्दस्य, तडागादिषु पाततः ।
तज्जन्मानि जनाः प्राहुर्नामान्येवं तथाऽर्हतः ॥ ३७ ॥

लोकाग्रमधिरूढस्य, निलीनानि हरादिषु ।
तेषां सत्कानि गीयन्ते, लोकैः प्रायो बहिर्मुखैः ॥ ३८ ॥ युग्मम् ॥

किञ्च तान्येव नामानि, विद्धि योगीन्द्र-वल्लभम् ।
यानि लोकोत्तरं सत्त्वं, ख्यापयन्तिं प्रमाणतः ॥ ३९ ॥

संज्ञा रजस्तमःसत्त्वाभासोत्था अतिकोटयः ।
अनन्ते भववासेऽस्मिन्, मादृशामपि जज्ञिरे ॥ ४० ॥

बुद्ध अने महादेव वगेरे लौकिक देवोने सत्त्व, रजस् अने तमस् ए त्रण गुणना विषयवाळुं ज ज्ञान छे परन्तु लोकोत्तर सत्त्वथी उत्पन्न थवावाळुं सर्वज्ञान तो मात्र जिनेश्वरोने विषे ज रहेलुं छे ॥ ३४ ॥

रोहणाचल पर्वतना जेवा जिनेश्वर परमात्मा पासेथी विविध नामरूपी रत्नो लईने पंडितोरूपी वेपारीओए शीघ्र सारा वर्णवाळा नामरूपी आभूषणो बनावी पोतपोताना मानेला हरिहरादिक देवोने विषे स्थापन कर्या तेथी ते सारा वर्णवाळा नामो कालान्तरे ते ते देवोना नामथी प्रसिद्ध थया छे ॥ ३५-३६ ॥

जेम वरसादनुं जळ ज तळाव वगेरेमां पडयुं होय छे, तो पण लोको कहे छे के 'आ पाणी तळावमां उत्पन्न थयुं छे' ते ज प्रमाणे लोकाग्र उपर आरूढ थयेला अरिहंतना ज पर्यायवाची नामो हरिहरादिकने विषे छे, छतां ते नामो हरिहरादिकनां छे एम अज्ञानी लोको बोले छे ॥ ३७-३८ ॥

वळी, जे नामो प्रमाणथी लोकोत्तर सत्त्वने कहेनारां छे, ते ज नामो योगीन्द्रोने प्रिय एवा अरिहंतने जणावे छे, एम तुं जाण ॥ ३९ ॥

सत्त्व, रजस् अने तमोगुणना आभासथी उत्पन्न थयेलां करोडोथी पण वधारे नामो तो मारा जेवाने पण आ अनंत संसारमां प्राप्त थयां छे ॥ ४० ॥

अपि नाम सहस्रेण, मूढो हृष्टः स्वदेवते।
बदरेणापि हि भवेत्, शृगालस्य महो महान् ॥ ४१ ॥
सिद्धानन्त-गुणत्वेनानन्तनाम्नो जिनेशितुः।
निर्गुणत्वादनाम्नो वा, नाम-संख्यां करोतु कः? ॥ ४२ ॥
रजस्तमोबहिःसत्त्वातीतस्य परमेष्ठिनः।
प्रभावेण तमःपङ्के, विश्वमेतन्न मज्जति ॥ ४३ ॥
मन्येऽत्र लोकनाथेन, लोकाग्रं गच्छताऽर्हता।
मुक्तं पापाज्जगत्रातुं, पुण्य(ण्यं)वल्लभमप्यहो! ॥ ४४ ॥
पापं नष्टं भवारण्ये, समिति-प्रयतात् प्रभोः।
तद्ध्वंसाय ततः पुण्यं, सर्वं सैन्यमिवान्वगात् ॥ ४५ ॥
पुण्य-पापविनिर्मुक्तस्तेनासौ भगवान् जिनः।
लोकाग्रं सौधमारूढो, रमते मुक्ति-कान्तया ॥ ४६ ॥
जिनो दाता जिनो भोक्ता, जिनः सर्वमिदं जगत्।
जिनो जयति सर्वत्र, यो जिनः सोऽहमेव च ॥ ४७ ॥
इति ध्यान-रसावेशात्, तन्मयीभावमीयुषः।
परत्रेह च निर्विघ्नं, श्रृणुते सकलाः श्रियः ॥ ४८ ॥

इति सप्तमः प्रकाशः समाप्तः ॥

पोताना देवनां हजार नाम सांभळीने मूढ माणस हर्षित थाय छे, केमके शियाळने तो बोर मळवाथी पण मोटो उत्सव थाय छे ॥ ४१ ॥

श्री जिनेश्वरमां अनंत गुणो सिद्ध होवाथी तेमनां अनंत नामो छे, अथवा तो निर्गुण (सत्त्वादि गुण रहित) होवाथी तेमने नाम ज नथी, तो नामनी संख्या कोण करे? ॥ ४२ ॥

रजोगुण, तमोगुण अने बाह्य-सत्त्वगुणथी रहित एवा परमेष्ठीना प्रभावथी ज आ जगत् अज्ञानरूपी कादवमां डूबी जतुं नथी ॥ ४३ ॥

मने एम लागे छे के लोकना अग्रभागे जता त्रण लोकना नाथ श्री अरिहन्त परमात्मा जगतना जीवोने पापथी बचाववा माटे वल्लभ एवा पुण्यने पण अहीं ज मूकी गया ॥ ४४ ॥

समितिमां प्रयत एवा प्रभु पासेथी पाप भवरूपी अरण्यमां नासी गयुं! तेथी तेनो नाश करवा माटे समग्र पुण्य पण सैन्यनी जेम तेनी पाछळ पड्युं! ए रीते पुण्य-पाप बंनेथी विनिर्मुक्त जिनेश्वर देव लोकाग्ररूपी महेलमां आरूढ थई मुक्ति रूपी कान्ता साथे क्रीडा करे छे ॥ ४५-४६ ॥

जिन दाता छे, जिन भोक्ता छे, आ सर्व जगत् जिन छे, जिन सर्वत्र जय पामे छे अने जे जिन छे, ते ज हुं छुं। ए प्रमाणे ध्यानरसना आवेशथी पंचपरमेष्ठिमां तन्मयपणाने पामेला भव्य प्राणीओ आ लोक अने परलोकमां निर्विघ्नपणे सकल लक्ष्मीने पामे छे ॥ ४७-४८ ॥

[अष्टमः प्रकाशः]

अर्हतामपि मान्यानां, परिक्षीणाष्ट-कर्मणाम् ।
सन्तः पञ्चदशभिदां, सिद्धानां न स्मरन्ति के ? ॥ १ ॥
निरञ्जनाश्चिदानन्दरूपा रूपादि-वर्जिताः ।
स्वभाव-प्राप्त-लोकाग्राः, सिद्धानन्त-चतुष्टयाः ॥ २ ॥
साद्यनन्त-स्थितिजुषो, गुणैकत्रिंशताऽन्विताः ।
परमेशाः परात्मानः, सिद्धा मे शरणं सदा ॥ ३ ॥
शरणं मे गणधराः, षट्त्रिंशद्गुण-भूषिताः ।
सर्व-सूत्रोपदेष्टारो, वाचकाः शरणं मम ॥ ४ ॥
लीना दशविधे धर्मे, सदा सामायिके स्थिराः ।
रत्नत्रय-धरा धीराः, शरणं मे[1] सुसाधवः ॥ ५ ॥
भव-स्थिति-ध्वंसकृतां, शम्भूनामिव नान्तरम् ।
सूरि-वाचक-साधूनां, तत्त्वतो दृष्टमागमे ॥ ६ ॥
धर्मो मे केवलज्ञानि-प्रणीतः शरणं परम् ।
चराचरस्य जगतो, य आधारः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥

आठमो प्रकाश

अरिहंतोने पण माननीय तथा जेमना आठे कर्मो क्षीण थई गयां छे, एवा पंदर प्रकारना सिद्धोनुं कया सत्पुरुषो स्मरण नथी करता ? ॥ १ ॥

कर्मना लेप विनाना, चिदानंद स्वरूप, रूपादिथी रहित, स्वभावथी ज लोकना अग्रभागने पामेला, सिद्ध थयेल छे अनन्त चतुष्टय जेमने एवा, सादि-अनन्त स्थितिवाळा, एकत्रीश गुणोवाळा, परमेश्वररूप अने परमात्मस्वरूप श्री सिद्ध भगवंतोनुं निरंतर मने शरण हो ॥ २-३ ॥

छत्रीश गुणो वडे शोभता श्री गणधर(आचार्य)भगवंतोनुं मने शरण हो । सर्व सूत्रोना उपदेशक श्री उपाध्याय भगवंतोनुं मने शरण हो ॥ ४ ॥

क्षमादि दश प्रकारना धर्ममां लीन थयेला, सामायिकमां सदा स्थिर, ज्ञानादिक त्रण रत्नने धारण करनारा तथा धीर एवा श्री साधु भगवंतोनुं मने शरण हो ॥ ५ ॥

आगमोमां जेम भवस्थितिनो ध्वंस करनारा श्री सिद्ध-भगवंतोमां परस्पर भेद जोवायो नथी, तेम भवस्थितिना ध्वंसमां उद्यमशील एवा आचार्य, उपाध्याय अने साधु वच्चे पण परमार्थथी भेद नथी ॥ ६ ॥

जे चराचर जगतनो आधारभूत कहेलो छे एवो केवलि-भाषित धर्म मने परम शरण हो ॥ ७ ॥

---

१. मेऽस्तु सा. ख. ग. हि. ।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र-त्रयी-त्रिपथगोर्मिभिः ।
भुवन-त्रय-पावित्र्य-करो धर्मो हिमालयः ॥ ८ ॥
नानादृष्टान्त-हेतूक्ति-विचार-भर-बन्धुरे ।
स्याद्वाद-तत्त्वे लीनोऽहं, भग्नैकान्तमत-स्थितौ ॥ ९ ॥
नवतत्त्व-सुधा-कुण्डगर्भो गाम्भीर्य-मन्दिरम् ।
अयं सर्वज्ञ-सिद्धान्तः, पातालं प्रतिभाति मे ॥ १० ॥
सर्व-ज्योतिष्मतां मान्यो, मध्यस्थ-पदमाश्रितः ।
रत्नाकरावृतोऽनन्तालोकः श्रीमान् जिनागमः ॥ ११ ॥
स्थानं सुमनसामेकं स्यात्सुलोंकद्वयोरपि ।
निनिद्र-शाश्वत-ज्योतिर्भाति गीः परमेष्ठिनः ॥ १२ ॥
श्रीधर्मभूमीश्वर-राजधानी, दुष्कर्म-पाथोज-वनी-हिमानी ।
सन्देह-सन्दोह-लता-कृपाणी, श्रेयांसि पुष्णातु जिनेन्द्र-वाणी ॥ १३ ॥
एवं नमस्कृति-ध्यान-सिन्धु-मग्नान्तरात्मनः ।
आममृत्कुम्भवत्सर्व-कर्मग्रन्थिर्विलीयते ॥ १४ ॥

धर्मरूपी हिमालय पर्वत ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए रत्नत्रयीरूप गंगा नदीना तरंगो त्रण भुवनने पवित्र करनारो छे ॥ ८ ॥

विविध प्रकारना दृष्टान्तो, हेतुओ, सुवचनो अने सुंदर विचारणाओना समूहथी मनो अने भग्न कराई छे एकान्त मतोनी स्थिति जेना वडे एवा स्याद्वाद तत्त्वमां हुं लीन थयो छुं ॥ ९ ॥

नवतत्त्वरूपी अमृतनो कुंड जेना गर्भमां छे एवो अने गांभीर्यना मन्दिर समान आ स सिद्धान्त मने पाताल जेवो ऊंडो प्रतिभासे छे ॥ १० ॥

मध्यस्थ (रागद्वेषरहित) भावने आश्रित होवाथी, सुवचनरूप रत्नोनी खाणोथी व्याप्त होव अने अनंत प्रकाशवाळो होवाथी श्री जिनागम सर्व बुद्धिमान पुरुषोने मान्य छे ॥ ॥ ११ ॥

पवित्र मनवाळा पुरुषोनो एकमेव आधार, बन्ने लोकमां स्थायी अने निरन्तर शाश्वत ज्योति श्री जिनवाणी शोभे छे ॥ १२ ॥

श्री धर्मरूपी राजानी राजधानीरूप, दुष्कर्मोरूपी कमळना वनने बाळी नाखवामां हिम समूहरूप अने संदेहना समूहरूप लताने छेदवामां कुहाडी समान जिनेश्वरनी वाणी अमारा कल्याण पोषण करो ॥ १३ ॥

आ प्रमाणे नमस्कारना ध्यानरूप समुद्रमां जेनो अंतरात्मा मग्न थयेलो छे, तेनी बधी कर्मग्र गांठो काचा माटीना घडानी जेम विलय पामे छे ॥ १४ ॥

---

१. द्वयोरपि क. ग. घ. हि. ।

श्री-ह्री-धृति-कीर्त्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-लीला-प्रकाशकः ।
जीयात् पञ्च-नमस्कारः, स्वःसाम्राज्य-शिवप्रदः ॥ १५ ॥
'सिद्धसेन'-सरस्वत्या, सरस्वत्यापगातटे ।
'श्रीसिद्धचक्र(नमस्कार) माहात्म्यं,' गीतं श्रीसिद्धपत्तने ॥ १६ ॥

इति श्रीसिद्धसेनाचार्यविरचिते श्रीनमस्कारमाहात्म्ये अष्टमः प्रकाशः समाप्तः ॥

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि अने लक्ष्मीनी लीलाने प्रकाश करनार (आपनार) तथा स्वर्गनुं साम्राज्य अने मोक्षने आपनार पंच-नमस्कार मंत्र निरंतर जयवंत रहो ॥ १५ ॥

श्री सरस्वती नदीने कांठे आवेल श्री सिद्धपुर नगरमां श्री सिद्धसेनसूरिनी वाणीए आ श्री सिद्धचक्रनुं (नमस्कारनुं) माहात्म्य गायुं छे ॥ १६ ॥

परिचय

श्री 'नमस्कार माहात्म्य'नी एक पुस्तिका श्री केसरबाई ज्ञानमंदिर, पाटण, तरफथी प्रकाशित थयेली छे। तेमां मूल अने भावार्थ बंने छे। तेनुं संपादन प. पू. पं. श्री कान्तिविजयजी गणिवरे करेल छे। ए पुस्तिकाने सामे राखीने प्रस्तुत संदर्भ तैयार करेल छे।

आ कृतिना रचयिता श्री सिद्धसेनसूरि छे। तेओ अंतिम श्लोकमां कहे छे के "सरस्वती नदीना तीरे सिद्धपत्तन (सिद्धपूर-पाटण) नगरमां आ 'नमस्कार माहात्म्य' श्री सिद्धसेनसूरिनी वाणीए गायुं हतुं।"

आ ग्रंथनी रचना स्वयं कही आपे छे के तेना निर्माता कोई महान ज्योतिर्धर महापुरुष होवा जोईए; ते विना आवी श्रद्धारसनी महानदी समी आ कृतिनो प्रभव अशक्य छे। साहित्य, अध्यात्म, योग वगेरेनी दृष्टिए आ रचना स्वयं परिपूर्ण भासे छे।

आ ग्रंथना कर्ता विषे अधिक जाणवामां आव्युं नथी। संभव छे के आ सिद्धसेनसूरि ते सिद्धसेन दिवाकर अथवा श्री तत्त्वार्थाधिगमसूत्रनी 'सिद्धसेनी' टीकाना कर्ता श्री सिद्धसेनाचार्य होवा जोईए।

जाणे अष्टकर्मने छेदवा माटे ज न बनाव्या होय एवा आठ प्रकाशोमां आ कृति रचायेली छे। प्रथम प्रकाशमां ग्रंथनुं मंगल अने नवकारनुं प्रथम पद, द्वितीय प्रकाशमां द्वितीयपद, तृतीयमां तृतीय, चतुर्थमां चतुर्थ अने पंचममां पंचमपद गवायुं छे। अंतिम चार प्रकाशोमां नवकारने लगता अन्य सर्व विषयोने संक्षेपवामां आव्या छे।

आ कृतिनी अनेक विशेषताओ छे। तेमांनी एक विशेषता ए छे के नवकारना प्रथम ३५ अक्षरोमांना प्रत्येक अक्षर पर ए कृतिमां स्वतंत्र चिंतन छे।

नमस्कार-मंत्रने संक्षेपमां जाणवा इच्छनाराओ माटे आ कृति अत्यंत उपयोगी छे।



श्रीजिनप्रभसूरिरचिता

पञ्चनमस्कृतिस्तुतिः

[अनुष्टुप् छन्दः]

प्रतिष्ठितं तमःपारे, पारेवाग्वर्त्तिवैभवम् ।
प्रपञ्चं वेधसः 'पञ्च-नमस्कार'मभिष्टुमः ॥ १ ॥
अहो ! पञ्चनमस्कारः, कोऽप्युदारो जगत्सु यः ।
सम्पदोऽष्टौ स्वयं धत्ते, दत्तेऽनन्ताः स्तुतः सताम् ॥ २ ॥
दत्तेऽनुकूल एवान्यो, भुक्तिमात्रमपि प्रभुः ।
एष पञ्चनमस्कारः, प्रतिलोम्येऽपि मुक्तिदः ॥ ३ ॥
नमस्कारनरेन्द्रस्य, किमपि प्राभवं स्तुमः ।
यदीयफूत्कृतेनाऽपि, विद्रवन्ति द्विपः क्षणात् ॥ ४ ॥
सिद्धयोऽप्यणिमाद्यास्ता, नमस्कारमधिष्ठिताः ।
सप्तषष्ट्यक्षरात्माऽपि, यदसौ प्रणवेऽविशत् ॥ ५ ॥

अनुवाद

अंधकारनी पेले पार रहेला (प्रकाशरूप), वाणीमां रहेली शक्तिथी पर (एटले—जेनुं वर्णन करवामां वाणी असमर्थ छे) अने ब्रह्म(ज्ञान)ना विस्ताररूप (?) पंच-नमस्कारनी अमे स्तुति करीए छीए ॥ १ ॥

अहो ! (आ) पंचनमस्कार त्रण जगतमां कोई अद्वितीय उदार छे, जे स्वयं आठ संपदाओ (विश्राम-स्थानो) ने धारण करे छे, (पण) स्तुति करायेलो ते (पंच-नमस्कार) सज्जनोने अनन्त संपदाओ आपे छे ॥ २ ॥

बीजो स्वामी अनुकूल (प्रसन्न) थाय तो ज केवळ भुक्ति-भोग मात्रने आपे छे। (ज्यारे) आ पंच-नमस्कार प्रतिलोमे (व्युत्क्रमथी—पश्चानुपूर्वीथी गणता छतां) पण मुक्तिने आपनार छे ॥ ३ ॥

नमस्काररूपी महाराजाना महिमानुं अमे केटलुं वर्णन करीए के (नमस्कार नरेन्द्रना ते अनिर्वचनीय महिमाने अमे स्तवीए छीए के) जेना फूत्कारमात्रथी शत्रुओ एक क्षणमां नाश पामे छे ॥ ४ ॥

ते (अत्यन्त विख्यात) अणिमादि (आठ) सिद्धिओ पण नमस्कार(मंत्र)मां अधिष्ठित छे। तेथी सड(अड)सठ अक्षरवाळो होवा छतां पण आ मंत्र प्रणव-ओंकारमां समाई गयो छे ॥ ५ ॥

---

१. °नन्तास्तु ताः सताम् J । २. °लोम्योऽपि H । ३. बद्धमोक्षमित्याम्नायः । ४. माहात्म्यम् । ५. अष्टषष्ट्य° J ।

शिरस्त्रादिधिया धीरैः, स्वाङ्गदेशनिवेशिता ।
नमस्कृतेर्नवपदी, कटरे(?) वज्रपञ्जरः ॥ ६ ॥

वर्ण्यतां श्रीनमस्कारात्, कार्मणं किमतोऽधिकम्? ।
यत्सम्प्रयोगतः पांशुँरपि संवनयेज्जगत् ॥ ७ ॥

नमस्कारं स्तुमः सिद्धं, यत्पदस्पर्शपूतया ।
प्रत्याच्छादितसर्वाङ्गः, शान्तिमासादयेज्ज्वरी ॥ ८ ॥

नववर्णीं नमस्कृत्य, कृती प्रतिपदं जपेत् ।
विधत्ते विविधाऽनिघ्नविघ्नाऽविग्रहनिग्रहम् ॥ ९ ॥

कर्णिकाष्टदलाढ्ये हृत्पुण्डरीके निवेश्य यः ।
ध्यायेत् पञ्चनमस्कारं, संसारं सँन्तरेत्तराम् ॥ १० ॥

धीर-पुरुषोए नमस्कारनां नव पदो (वज्रपंजर-स्तोत्रमां बताव्या मुजब) शिरस्त्राण वगेरेनी बुद्धिथी पोताना शरीरना जुदा जुदा भागोमां स्थापेलां छे । आनी आगळ वज्रनुं पांजरुं पण शुं (शा कामनुं)?

(आ रीते पण न्यास करी शकायः—प्रथम पद 'नमो अरिहंताणं' बोलतां मस्तक परनी चोटलीना भाग उपर हाथ फेरववो, ए ज प्रमाणे—बीजुं पद बोलतां कपाळ उपर, त्रीजुं पद बोलतां जमणा काने, चोथुं पद बोलतां खाडो-आंख उपर, पांचमुं पद बोलतां जमणा कानने, छठ्ठुं पद बोलतां जमणा शंखे—ललाटना जमणा खुणामां अने बाकीना पदो वखते शेष विदिशाओमां हाथ फेरववो) ॥ ६ ॥

कहो, श्रीनमस्कार (मंत्र) थी वधीने बीजुं कयुं मोटुं कामण छे? जेना विधिपूर्वक संयोगथी धूळ पण जगतने वश करी शके छे (अर्थात् नमस्कार-मंत्रना संयोगथी सिद्ध करेली धूळमां पण विश्वने वशी-करण करवानुं सामर्थ्य छे) ॥ ७ ॥

ते सिद्धनमस्कारनी अमे स्तुति करीए छीए (मंत्रोद्धार—"नमः सिद्धम् ।") के जे मंत्रना पद-स्पर्शथी पवित्र थयेली कामळवडे (पोतानां) सर्व-शरीरने ढांकी देनार ताववाळो (माणस) शांतिने पामे छे । (अर्थात् सिद्ध नमस्कार गणीने ओढेला वस्त्रथी गमे तेवो ताव शांत थाय छे) ॥ ८ ॥

नववर्णी-'नमो लोए सव्व साहूणं' पदने नमस्कार करीने ए पदरूप मंत्रने पगले पगले (प्रतिक्षण) जपतो एवो धर्मी (पुण्यवान) पुरुष आवनारां विघ्नोने विग्रह (लडाई) विना सहेलाईथी रोकी शके छे (?) ॥ ९ ॥

कर्णिका सहित आठ पत्रवाळा हृदय-कमळमां पंचनमस्कार (ना नवपद) ने स्थापन करीने जे ध्यान करे ते संसारने शीघ्रतः तरी जाय छे ॥ १० ॥

---

६. प्रथमं पदं शिखायाम्, द्वितीयं भाले, तृतीयं दक्षिणकर्णोपरि, चतुर्थमवटौ, पञ्चमं सव्यश्रवणे षष्ठं दक्षिणशङ्खे—इत्यादिदिक्षु ।

७. संयोगतः वालुकाऽपि वशीकुरुते । ८. नुमः J । ९. सुधीः J । १०. स तरेत्तराम् ।

सप्तषष्टि-पदैर्वश्ये, वर्णमालिख्यते च यत् ।
क्रमादावर्चयन् सम्यगेति शांत(शान्ते)निशान्तताम् ॥ ११ ॥
आद्याक्षराण्यपीष्टार्थसिद्धयै स्युः परमेष्ठिनाम् ।
बिन्दुरप्यमृत(तं) किं न, नाशयेद् विषविक्रियाम् ॥ १२ ॥
कराङ्गुलीषु विन्यस्यार्हदादीन् ध्यानमानयन् ।
प्रेन्पूहपन्नगव्यूहव्यपोहे गरुडीयते ॥ १३ ॥
गुरून् पञ्च क्रमाद् ध्यायन्, मुद्रया परमेष्ठिनाम् ।
गूढप्ररूढमचिरात् कर्मग्रन्थिं विमोचयेत् ॥ १४ ॥
षोडशाक्षरसार्नं(?) श्रद्धापरमः परमेष्ठिनाम् ।
प्राणी प्रणिदधानोऽप्युपवासफलमेधते ॥ १५ ॥

नमस्कार महामन्त्र—सड(अड)सठ अक्षरो अथवा पदो वश्यादिने उद्देशीने जे (रक्तादि) वर्णमा आलेखवामां आवे ते वर्ण मुजब वश्यादि कृत्य थाय छे। वशीकरण द्वारा वश बनीने ते पग वगेरेने पूजतो आवे छे (आवीने पगे पडे छे) अने शान्तिनुं धाम बनी जाय छे—शान्त बनी जाय छे॥ ११ ॥

परमेष्ठिओना प्रारंभना अक्षरो (एटले अरिहंतनो अ, सिद्धनो सि, आचार्यनो आ, उपाध्यायनो उ अने साधुनो सा–असिआउसा) पण इच्छित वस्तुनी प्राप्ति माटे थाय छे। शुं बिन्दु (जेटलुं) पण अमृत झेरनी विक्रियानो नाश नथी करतुं ? अर्थात् करे ज छे ॥ १२ ॥

पाचे पदो बोलतां क्रमशः बन्ने अंगूठा वगेरेना संयोगथी अरिहंतादिनुं करांगुलीओमां न्यास करीने अरिहंतादिनुं ध्यान करतो पुण्यात्मा विघ्नरूप सर्पसमूहने विषे गरुडरूप थाय छे ॥ १३ ॥

परमेष्ठिमुद्रावडे अनुक्रमे पांच (अरिहंतादि) गुरुओनुं ध्यान करतो (आत्मा) गूढ अने वधेली (दृढ ··) कर्मग्रन्थिने शीघ्र छोडी नाखे छे। (मंत्रशास्त्रनी दृष्टिए १०८ जापथी बीजाए करेल कामणरूप ग्रन्थने छोडी नाखे छे) ॥ १४ ॥

अत्यन्त श्रद्धावाळो आत्मा परमेष्ठिओना सोळ अक्षरवाळा (अ–रि–हं–त–सि–द्ध–आ–य–रि–उज्झा–य–सा–हू) मंत्रनुं ध्यान करवाथी एक उपवासना फळने पामे छे* ॥ १५ ॥

११. °पदो पदे° J। १२. °षोडशेषु।

१३. पञ्चस्वपि पदेषु क्रमेणाङ्गुष्ठादिसंयोग.। १४. विघ्न°। १५. °नैव तीर्यते। १६. १०८ जापेन ···कार्मणग्रन्थिभेद·। १७. 'अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहु' इत्यक्षराणषोडशकमले सकर्णिके नवपदीं ···ध्यानमभुते। इमानि त्रीणि षड्वर्णं (अरिहंत सिद्ध) चत्वारि चतुरक्षरं (अरिहंत)पञ्च(अ॒ऽ)वर्णं जपन् योगी चतुर्थफलमश्नुते। १८. °नोऽप्यौपवसफल° J।

* अर्थात् बसो वार ए सोळ अक्षरोने कर्णिकासहित एवा कमळमां अरिहंतादि नवपदोने स्थापीने अथवा त्रणसो वार छ वर्णवाळो 'अरिहंत सिद्ध' एवो मंत्र, अथवा चारसो वार चार वर्णवाळो 'अरिहंत' एवो मंत्र, अथवा पांचसो वार 'अ(ऽ)' वर्णने जपतो योगी एक उपवासनुं फळ मेळवे छे। आ तो स्थूल फळ छे, खरी रीते तो ते स्वर्ग के अपवर्गने पण पामे छे।

विद्युज्जलाग्निभूपाल[19]-व्याल-चौरारि-मारिजम् ।
भयं वञ्चयते पञ्चनमस्कारं[20] च संस्मरन् ॥ १६ ॥
आराध्य विधिवत् पञ्चनमस्कारमुदारधीः ।
लक्षजापेन पापेन, मुक्त[21] आर्हन्त्यमश्नुते ॥ १७ ॥
ऐहिकं फलमीप्सूनामष्टकर्म्मप्रसाधिनी[22] ।
मुक्त्यर्थिनां च स्यादेषैवाष्टकर्म्मनिषेधिनी[23] ॥ १८ ॥

पंच-नमस्कारने सारी रीते स्मरण करनारो वीजळी, पाणी, अग्नि, राजा, हिंसक पशु, चोर, शत्रु अने मरकीथी उत्पन्न थता भयने दूर करे छे (अर्थात्—

'थंमेइ जलं जलणं चिंतिय मित्तो वि पंचनवकारो।
अरि-मारि-चोर-राउल-घोरुवसग्गं [अमुगस्स मम वा] पणासेइ ॥ स्वाहा ॥'

— आ मंत्रने चंदनकर्पूरवडे लींपेली भूमि पर मूकेली (?) एक वही उपर लखवो । तेनी नीचे अरिहंत वगेरे पांच टिक्किका-चिह्नो करीने पछी प्रथम नवकारनुं स्मरण करवुं अने ते पछी 'थंमेइ०' गाथानो प्रतिदिन १०८ वारनो अक्षतवडे जाप २१ दिवस करतां ए प्रकारना भयो नडता नथी ।) ॥ १६

उदार बुद्धिवाळो पुरुष विधिपूर्वक एक लाख जापथी पंच-नमस्कारनी आराधना करे तो पापथी मुक्त बनी तीर्थंकरपणाने पामे छे ॥ १७ ॥

आ (पंच नमस्कृति) सांसारिक फळोने चाहनाराओना आठ *कर्मोने सिद्ध करनारी अने मोक्षाभिलाषीओना (ज्ञानावरणादि) आठ कर्मोने नाश करनारी छे ज ॥ १८ ॥

सरखावो :— गुरुपंचकनामोत्था विद्या स्यात् षोडशाक्षरी ।
जपन् शतद्वयं तस्याश्चतुर्थस्याप्नुयात्फलम् ॥ ३९ ॥
शतानि त्रीणि षड्वर्णं चत्वारि चतुरक्षरं ।
पंचवर्णं जपन् योगी चतुर्थफलमश्नुते ॥ ४० ॥
प्रवृत्तिहेतुरेवैतदमीषां कथितं फलम् ।
फलं स्वर्गापवर्गौ तु वदन्ति परमार्थतः ॥ ४१ ॥
—श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यविरचित योगशास्त्रे अष्टमः प्रकाशः ।

१९. ॐ थंमेइ य (जलं) जलणं चिंतियमित्तोवि पंचनवकारो। अरि-मारि-चोर-राउल-घोरुवसग्गं [अमुगस्स मम वा] पणासेइ। स्वाहा ॥" एतत्कर्पूरचन्दनेनैकस्यां मौल्यां वहिकापट्टे लिखित्वा अधष्टिक्किकापञ्चकमर्हदादीनां कृत्वाऽऽदौ नमस्कारं स्मृत्वा, ततः "ॐ थंमेइ" इत्यादि १०८ तन्दुलैर्जपः कर्त्तव्यः दिनानि २१ यावत्।
२०. °स्कारस्य सं° J ।
२१. मुक्तमार्ह° J । २२. °प्रसाधनी H । २३. शान्तिक-पौष्टिक-विद्वेषण-मोहनोच्चाटन-मारण-वश्य-स्तम्भनाख्यानि ।

* स्तम्भं विद्वेषमाकृष्टिं, पुष्टिं शान्तिप्रचालनम् ।
वश्यं वधं च तं कुर्यात्, पूर्वाद्यभिमुखः क्रमात् ॥ २ ॥
—विद्यानुशासन (हस्तलिखित) पृष्ठ २०.

१ स्तम्भन, २ विद्वेषण, ३ आकर्षण, ४ पुष्टि, ५ शान्ति, ६ उच्चाटन, ७ वश्य अने ८ मारण आ आठ कर्म छे ।

विपदामभिचारस्योपादानस्याखिलश्रियाम् ।
स्मर्ता नमस्कृतेः स्वर्गिवर्गेण वरिवस्यते ॥ १९ ॥

चतुर्दशानां पूर्वाणामेषोऽस्त्युपनिषत् परा ।
आद्या सकलविद्यानां, बीजानां प्रकृतिः परा ॥ २० ॥

इदं पथ्योदनं पथ्यं, परलोकाध्वयायिनाम् ।
परमास्त्रं नृणां मोहराजयुद्धाय सज्जताम् ॥ २१ ॥

प्राणी प्राणप्रयाणस्य, क्षणे ध्यायन् नमस्क्रियाम् ।
लभते सुगतीर्नैकाः, पाप्मा न स्तुतपूर्व्यपि ॥ २२ ॥

नमस्कृतिं कृपाचित्तैः, श्रोत्रयोः प्राभृतीकृताः ।
स्वीकृत्य पुण्यसन्ध्यां च, तिर्यञ्चोऽपि ययुर्दिवम् ॥ २३ ॥

त्रिदण्डिनं निगृह्याऽसियष्टिना 'श्रेष्ठिनन्दनः' ।
नमस्कारस्य महसाऽसाधयत् स्वर्णपुरुषम् ॥ २४ ॥

विपत्तिओने दूर करवा माटे अभिचारमन्त्रप्रयोगरूप अने समग्र संपत्तिओना उपादान-मूळकारणरूप नमस्कारनु स्मरण करनार देव-समूहवडे पूजाय छे ॥ १९ ॥

आ (नमस्कार) चौद पूर्वोना परम साररूप छे, समस्त विद्याओनुं आदि कारण छे अने बीज-मंत्रोनी परा-उत्कृष्ट प्रकृति (जन्मभूमि) छे ॥ २० ॥

परलोकना मार्गे प्रयाण करनाराओने आ नमस्कार मार्गमां हितकारी एवु उत्तम भातुं छे अने मोहराज साथे युद्ध करवाने सज्ज थता मनुष्योनुं अमोघ अस्त्र छे ॥ २१ ॥

पहेला जेणे स्मरण नथी कर्युं एवो पापी प्राणी पण मरण समये नमस्कार-मंत्रनुं ध्यान करतो अनेक प्रकारनी सुगतिओने प्राप्त करे छे* ॥ २२ ॥

कृपाळु चित्तवाळा (सज्जनो) वडे कानमां नमस्कारनी भेट करायेला एवा तिर्यंचो पण पवित्र सन्ध्या (ध्यान) जेनी एवी नमस्कृतिने स्वीकारीने स्वर्गे गया ॥ २३ ॥

(शिवनामे) श्रेष्ठि-पुत्रे तलवारवडे त्रिदंडीनो निग्रह करीने नमस्कारना प्रभावथी सुवर्णपुरुषने सिद्ध कर्यो ॥ २४ ॥

---

२४. °मेषैत्रोप° J । २५. इयं H । २६. पथ्योदन H ।
२७. सुगति नैकान् पाप्मनः कृतपूर्व्यपि J । २८. कृपाविचैः J । २९. पुण्यसन्ध्यं च H । ३०. °सा साधयन् स्वर्णपौरुषम् J ।

* (पाठांतर मुजब-पूर्वे जेणे अनेक पापो कर्यां होय एवो प्राणी पण मरणसमये नमस्कारनुं ध्यान करे तो सुगतिने पामे छे ।)

स्मृत्वा पञ्चनमस्कारं, प्रविष्टायास्तमोगृहम् ।
घटन्यस्तो 'महासत्याः', पन्नगः पुंष्पमालवत् ॥ २५ ॥
नमस्कारेण सम्बोध्य, मातुलिङ्गवनान्तरम् ।
प्राणत्राणं स्वपरयोर्व्यधत्त 'श्राद्धपुङ्गवः' ॥ २६ ॥
यक्षतां 'हुण्डिकः' प्रापत्, सुंकुलं 'चण्डपिङ्गलः' ।
इतस्तादृग्गुणस्फातिं, 'सुदर्शनः' सुदर्शने ॥ २७ ॥
एष माता पिता स्वामी, गुरुर्नेत्रं भिषक् सखा ।
प्राणस्त्रांणं मतिर्दीपः, शान्तिः पुष्टिर्महन्महः ॥ २८ ॥
निधयः सन्निधौ कामधेनुरप्यनुगामिका ।
भूभृतो भृतकास्तस्य, यस्य नैष हृदा हिरुक् ॥ २९ ॥
नास्येयत्ता प्रभावाणां, क्रमवर्त्तितया गिरा ।
मितायुष्ट्वाच्च सर्वोऽपि, न्यक्षेण भणितुं क्षमः ॥ ३० ॥
सर्वाऽवस्थोचितं सर्वश्रुतसारं सनातनम् ।
परमेष्ठिमहामन्त्रं, भक्तितन्त्रमुपास्महे ॥ ३१ ॥

पंच-नमस्कारमंत्रनुं स्मरण करीने अंधारा घरमां गयेली (श्रीमती नामनी) महासतीने घडामां रहेलो सर्प फूलनी माळा बनी गयो ॥ २५ ॥

(जिनदास नामना) उत्तम श्रावके बीजोराना वनमां व्यन्तरदेवने नमस्कारमंत्रवडे प्रतिबोध करीने पोताना अने परना प्राणोनी रक्षा करी ॥ २६ ॥

नमस्कार-मंत्रना प्रभावथी हुंडिक नामनो चोर महर्धिक यक्षपणाने पाम्यो, चण्डपिंगल नामनो चोर उत्तमकुलने पाम्यो अने सुदर्शन नामना शेठ जिनमतने विषे उत्तम गुणोनी वृद्धिने पाम्या ॥ २७ ॥

आ नमस्कार-मंत्र माता, पिता, स्वामी, गुरु, नेत्र, वैद्य, मित्र, प्राण, रक्षण, बुद्धि, दीपक, शान्ति, पुष्टि अने महाज्योति छे ॥ २८ ॥

जेना हृदयथी आ (नमस्कार-मंत्र) दूर नथी, तेनी पासे (नव) निधिओ रहे छे, कामधेनु पण तेनी अनुगामिनी बने छे अने राजाओ तेना नोकर थईने रहे छे ॥ २९ ॥

आ नमस्कारना प्रभावो आटला ज छे एवुं नथी । वाणी तो क्रमवर्ती छे अने आयुष्य पण परिमित छे, तेथी आनो प्रभाव विस्तारथी कहेवा माटे कोई पण समर्थ नथी ॥ ३० ॥

बधी अवस्थाने योग्य, बधा शास्त्रोनां सारभूत, सनातन—शाश्वत अने भक्तिनां तंत्ररूप परमेष्ठि महामंत्रनी अमे उपासना करीए छीए ॥ ३१ ॥

---

३१. पुष्पमाल्यभूत् J । ३२. सत्कुलं J ।
३३. पृथक् J प्रतौ पाठान्तरम् । ३४. °णं गतिर्द्वीपः J । ३५. गामुका J ।

(शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्)

उच्चैर्योजनलक्षमानविदितो बिभ्रत् सुवर्णात्मतां,
भव्यानन्दनभद्रशालमहिमा, रोचिष्णुचूलाश्रितः ।
अस्तु श्रीजिनगेहभास्वररुचिस्थानं लसन्निर्जरः,
सोऽयं वः परमेष्ठिपञ्चकनमस्कारः सुमेरुः श्रिये ॥ ३२ ॥
साम्नायावयवां जिनप्रभगुरुर्यां ग्रथयामासिवान्,
दिव्यां 'पञ्च-नमस्कृति-स्तुतिमिमामानन्दनन्दन्मनाः ।
यस्यैपाञ्चति कण्ठसीमनि सदा मुक्तालताविभ्रमं,
तं मुञ्चन्त्यचिरेण विघ्ननिचयाः श्लिष्यन्ति च श्रीभराः ॥ ३३ ॥

जे लाखो माणसोमां अत्यन्त प्रसिद्ध छे, सुंदर वर्ण(अक्षर)मयताने धारण करनारो छे, भव्य पुरुषोने–मोक्षाभिलाषीओने आनद आपनारो तथा भद्रपुरुषोना शाळागृह समान छे, देदीप्यमान चूलिकाथी सुशोभित छे, जे श्रीजिनेश्वर भगवानने विषे मनवाळा पुरुषोनी अतिशयवाळी रुचिनुं स्थान छे अने जेमां देवताओनुं अधिष्ठान छे ते आ पच-परमेष्ठि-नमस्काररूपी सुमेरु तमारा कल्याणने माटे थाओ ।

(आ श्लोकमां मेरु पर्वतना *रूपकथी नमस्कारमंत्रने वर्णव्यो छे) ॥ ३२ ॥

आनन्दथी उल्लसित मनवाळा 'श्रीजिनप्रभसूरिए' आम्नायना अंशोवाळी दिव्य आ 'पञ्च-नमस्कृति' नामनी स्तुतिनी रचना करी छे; मोतीना हारनी समान शोभावाळी आ पंचनमस्कृति जेना कठ-प्रदेशमां सदा शोभे छे तेने विघ्नोनी परंपरा शीघ्र छोडी दे छे अने लक्ष्मीना समूहो भेटे छे ॥ ३३ ॥

परिचय

आ स्तुतिनी त्रण प्रतिओ मळी हती; जेमांनी एक प्रति वडोदरा, श्रीहंसविजयजी शास्त्रसंग्रह-जैनज्ञानमंदिरनी प्रति नं. १६२३ हती; बीजी मुंबई, रॉयल एशियाटिक सोसायटी प्रति नं. १३१६ हती; त्रीजी प्रति 'नमस्कारव्याख्यानटीका' ना पूर्वभागमां संग्रहरूपे आपेली हती, जेनी फोटोस्टेटिक कॉपी अमारा संग्रहमां छे । ए त्रणे प्रतिओ उपरथी पाठ सुधारीने अहीं आपेल छे, छेवटे मुनि श्रीजिनविजयजीए छपावेलां फॉर्म्स उपरथी पाठभेदो लई, तेमां छपायेली शब्दस्थलटिप्पणीनो पण अहीं समावेश कर्यो छे। आ रीते मूल, शब्द-टिप्पणी, पाठांतरो अने अनुवाद साथे आ स्तोत्रने अहीं प्रगट कर्युं छे ।

आ स्तोत्रना कर्ता खरतरगच्छीय श्रीजिनप्रभसूरि, चौदमी सदीमां, एक प्रतिभाशाळी विद्वान् तरीके जैन साहित्यमां प्रसिद्धि पामेला छे । तेमणे स्तोत्रसाहित्यमां अनेक कृतिओ रची छे, तेमनी मांत्रिक तरीकेनी ख्याति पण तेमना चरितवर्णनो अने कृतिओ नोंधे छे। श्रीजिनप्रभसूरिए नमस्कार विशे आ कृतिमां विशिष्ट माहिती आपी छे अने तेना आम्नायनुं सूचन पण कर्युं छे । बत्रीश अनुष्टुप् छंदमां आ कृति छे।

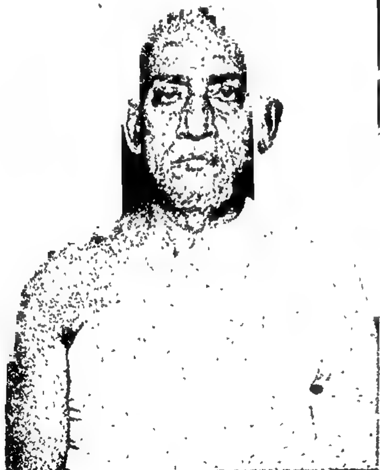
---

३६. भद्राणां शालागृहं भद्रशाल° । ३७. जिनगा जिनविषया ईहा येषां ते, भास्वरातिशायिनी रुचिर्यस्या तस्या. स्थानं विषयः ।

* मेरुना पक्षमां अर्थ :—

जे ऊंचाईमां एक लाख योजन प्रमाण प्रसिद्ध छे, सुवर्णमय शरीरने धारण करनार, उत्तम पुरुषोने आनंददायी एवा भद्रशाल वनथी युक्त छे, सुशोभित शिखरवाळो छे, देदीप्यमान कान्तिवाळा श्रीजिनालयोना सुंदर स्थानरूप छे, जेमां देवताओ क्रीडा करे छे, एवो ते सुमेरु पर्वत तमारा कल्याणने माटे थाओ ॥ ३२ ॥

३८. °विभ्रमा H ।



पू. मुनिश्री पुण्यविजयजीमहाराज
हस्तलिखित पाठ.

पंचमंगलमहासुयक्खंध सुत्तं

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं ।
एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥

[६१–१६]

श्रीजिनप्रभसूरिरचितः
पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारस्तवः ॥

(अनुष्टुप्-वृत्तम्)

स्वःश्रियं श्रीमदर्हन्तः, सिद्धाः सिद्धपुरीपदम् ।
आचार्याः पञ्चधाचारं, वाचका वाचनां वराम् ॥ १ ॥
साधवः सिद्धि-साहाय्यं, वितन्वन्तु विवेकिनाम् ।
मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं भवति मङ्गलम् ॥ २ ॥
अर्हमित्यक्षरं माया-बीजं च प्रणवाक्षरम् ।
एवं ज्ञानस्वरूपेण, ध्येयं ध्यायन्ति योगिनः ॥ ३ ॥
हृत्पद्मं षोडशदलं, स्थापितं षोडशाक्षरम् ।
परमेष्ठिस्थितं बीजं, ध्यायेदक्षरदं मुदा ॥ ४ ॥
मन्त्राणामादिमं मन्त्रं, तन्त्रं विघ्नौघनिग्रहम् ।
ये स्मरन्ति सदैवैनं, ते भवन्ति 'जिनप्रभाः' ॥ ५ ॥

अनुवाद

विवेकी पुरुषोने श्री अरिहंतो स्वर्गनी लक्ष्मी, सिद्धो सिद्धपद, आचार्यो पांच प्रकारनो आचार उपाध्यायो श्रेष्ठ शास्त्रज्ञान अने साधुओ सिद्धिमां (मोक्षमार्गमां) मदद आपो । ए पांच परमेष्ठिओने करायेल नमस्कार सर्व मंगलोमां प्रथम मंगल छे ॥ १–२ ॥

'ॐ ह्रीँ अर्हँ' रूप ध्येयनुं योगीओ ज्ञानरूपे (!) ध्यान करे छे ॥ ३ ॥

षोडशदल हृदयकमळनी सोळ पांखडीओमां सोळ स्वरो अथवा 'अ-रि-हं-त-सि-द्ध-आ-य-रि-य-उ-व-ज्झा-य-सा-हू' ए षोडशाक्षर अनुक्रमे स्थापवा । तेनी मध्यमां मोक्षदायक श्री परमेष्ठिबीज (ॐ अथवा ऽर्हँ) नुं प्रसन्नतापूर्वक ध्यान करवुं । ए बीज सर्व मंत्रोमां प्रथम मंत्र छे अने विघ्नसमूहनो नाश करनार महान तंत्र पण ए ज छे । जेओ एनुं सदैव ध्यान करे छे तेओ श्री जिनेश्वरनी कान्ति समान कान्तिवाळा थाय छे (अहीं 'जिनप्रभाः' पद वडे कर्ताए पोतानुं नाम पण श्लेषित कर्युं छे ।) ॥ ४–५ ॥

परिचय

आ स्तोत्रमां खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनप्रभसूरिए पांच अनुष्टुप् श्लोकोमां पांच परमेष्ठी भगवंतोनी स्तुति करी छे । ए स्तोत्र पूना, भांडारकर रिसर्च इन्स्टिटयूटनी आदिनाथ महाप्रभावक स्तोत्र नामनी हस्तलिखित प्रति नं. १२५० / १८८४–८७ मांथी प्राप्त थयुं छे । ए स्तोत्रने अहीं अनुवाद साथे प्रकाशित कर्युं छे ॥

[६२–१७]

श्रीकमलप्रभसूरिविरचितं
जिनपञ्जरस्तोत्रम्

ॐ ह्रॅं श्रीँ अर्हँ अर्हद्भ्यो नमो नमः ।
ॐ ह्रॅं श्रीँ अर्हँ सिद्धेभ्यो नमो नमः ।
ॐ ह्रँ श्रीँ अर्हँ आचार्येभ्यो नमो नमः ।
ॐ ह्रँ श्रीँ अर्हँ उपाध्यायेभ्यो नमो नमः ।
ॐ ह्रँ श्रीँ अर्हँ गौतम-प्रमुख-सर्वसाधुभ्यो नमो नमः ॥ १ ॥
एषः पञ्च-नमस्कारः, सर्व-पाप-क्षयङ्करः ।
मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं भवति मङ्गलम् ॥ २ ॥
ॐ ह्रँ श्रीँ जये विजये, अर्हँ परमात्मने नमः ।
कमलप्रभसूरीन्द्रो, भाषते जिनपञ्जरम् ॥ ३ ॥
एकभक्तोपवासेन, त्रिकालं यः पठेदिदम् ।
मनोऽभिलषितं सर्वं, फलं स लभते ध्रुवम् ॥ ४ ॥
भूशय्या-ब्रह्मचर्येण, क्रोध-लोभविवर्जितः ।
देवताग्रे पवित्रात्मा, षण्मासैर्लभते फलम् ॥ ५ ॥

अनुवाद

आ पंच-नमस्कार सर्व पापोनो नाश करनार छे अने सर्व मंगलोमां प्रथम-उत्कृष्ट मंगल छे ॥ २ ॥

"ॐ ह्रँ श्रीँ जये ! विजये ! अर्हँ परमात्मने नमः" ए मंत्र वडे परमात्माने नमस्कार करीने श्रीकमलप्रभसूरि श्रीजिनपंजर नामना स्तोत्रने कहे छे ॥ ३ ॥

जे (मनुष्य) एकासणु अथवा उपवास करीने त्रिकाल आ (स्तोत्र) ने भणे छे, ते निश्चयपूर्वक सर्व मनोवांछित फलने प्राप्त करे छे ॥ ४ ॥

क्रोध अने लोभथी रहित एवो जे पवित्र पुरुष भूशय्या अने ब्रह्मचर्य वडे आ स्तोत्रनी रोज नियमित साधना करे छे ते छ महिनामां फळने पामे छे ॥ ५ ॥

अर्हन्तं स्थापयेन्मूर्ध्नि, सिद्धं चक्षुर्ललाटके ।
आचार्यं श्रोत्रयोर्मध्ये, उपाध्यायं तु नासिके ॥ ६ ॥

साधुवृन्दं मुखस्याग्रे, मनःशुद्धिं विधाय च ।
सूर्य-चन्द्रनिरोधेन, सुधीः सर्वार्थसिद्धये ॥ ७ ॥

दक्षिणे मदनद्वेषी, वामपार्श्वे स्थितो जिनः ।
अङ्गसन्धिषु सर्वज्ञः परमेष्ठी शिवङ्करः ॥ ८ ॥

पूर्वाशां च जिनो रक्षेदाग्नेयीं विजितेन्द्रियः ।
दक्षिणाशां परं ब्रह्म, नैर्ऋतीं च त्रिकालवित् ॥ ९ ॥

पश्चिमाशां जगन्नाथो, वायव्यां परमेश्वरः ।
उत्तरां तीर्थकृत्सर्वामी(त्सार्वई)शानेऽपि निरञ्जनः ॥ १० ॥

पातालं भगवानर्हन्नाकाशं पुरुषोत्तमः ।
रोहिणीप्रमुखा देव्यो, रक्षन्तु सकलं कुलम् ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् पुरुष, सर्वार्थनी सिद्धि माटे सूर्यनाडी अने चन्द्रनाडीने रोकीने अने मननी पवित्रता करीने अरिहंतने मस्तकमां, सिद्धने ललाट पर भ्रूमध्यमां, आचार्यने बन्ने कानोनी मध्यमां, उपाध्यायने नासिका उपर अने साधुसमुदायने मुखना अग्र भाग उपर स्थापित करे ॥ ६–७ ॥

श्री अरिहंत परमात्मा कामनाशकरूपे दक्षिण पार्श्वनुं, जिनरूपे वामपार्श्वनुं अने सर्वज्ञ, परमेष्ठी अने शिवंकर रूपे अंगोना सन्धि स्थानोनुं रक्षण करो ॥ ८ ॥

श्री अरिहंत परमात्मा जिनेश्वररूपे पूर्व दिशानी रक्षा करो, विजितेन्द्रिय (इन्द्रियोने जीतनार) रूपे आग्नेयी विदिशानी रक्षा करो, परब्रह्मरूपे दक्षिण-दिशानी रक्षा करो अने त्रणे काळने जाणनार रूपे नैर्ऋती विदिशानी रक्षा करो । जगन्नाथरूपे पश्चिम दिशानी रक्षा करो, परमेश्वररूपे वायव्य विदिशानी रक्षा करो, तीर्थंकर अने सार्वरूपे उत्तरदिशानी रक्षा करो अने निरंजनरूपे ईशान विदिशानी रक्षा करो, भगवान अरिहंतरूपे पातालनी रक्षा करो अने पुरुषोत्तमरूपे आकाशनी रक्षा करो । रोहिणी वगेरे देवीओ समग्र कुलनुं रक्षण करो ॥ ९–१०–११ ॥

---

१. मुखाग्रेऽपि, S । २. न सर्वार्थं साधयेत् सुधीः S ।

ऋषभो मस्तकं रक्षेदजितोऽपि विलोचने ।
सम्भवः कर्णयुगलेऽभिनन्दनस्तु नासिके ॥ १२ ॥
ओष्ठौ श्रीसुमती रक्षेद्, दन्तान् पद्मप्रभो विभुः ।
जिह्वां सुपार्श्वदेवोऽयं, तालुं चन्द्रप्रभाभिधः ॥ १३ ॥
कण्ठं श्रीसुविधी रक्षेद्, हृदयं श्रीसुशीतलः ।
श्रेयांसो बाहुयुगलं, वासुपूज्यः करद्वयम् ॥ १४ ॥
अङ्गुलीर्विमलो रक्षेदनन्तोऽसौ नखानपि ।
श्रीधर्मोऽप्युदरास्थीनि, श्रीशान्तिर्नाभिमण्डलम् ॥ १५ ॥
श्रीकुन्थुर्गुह्यकं रक्षेदरो लोमकटीतटम् ।
मल्लिरूरुपृष्ठवंसं, जङ्घे च मुनिसुव्रतः ॥ १६ ॥
पादाङ्गुलीर्नमी रक्षेच्छ्रीनेमिश्चरणद्वयम् ।
श्रीपार्श्वनाथः सर्वाङ्गं, वर्धमानश्चिदात्मकम् ॥ १७ ॥
पृथिवी-जल-तेजस्क-वाय्वाकाशमयं जगत् ।
रक्षेदशेष-पापेभ्यो, वीतरागो निरञ्जनः ॥ १८ ॥

श्रीऋषभदेव भगवान मस्तकनी रक्षा करो, श्री अजितनाथ भगवान आंखोनी रक्षा करो, श्रीसंभवनाथ भगवान् बन्ने कानोनी रक्षा करो, श्री अभिनंदन स्वामी बन्ने नासिकानी रक्षा करो, श्रीसुमतिनाथ भगवान बन्ने ओष्ठनी रक्षा करो, श्री पद्मप्रभ स्वामी दांतोनी रक्षा करो, तथा श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान जीभनी रक्षा करो, श्री चन्द्रप्रभस्वामी तालुनी रक्षा करो, श्री सुविधिनाथ भगवान कंठनी रक्षा करो, श्री शीतलनाथ भगवान हृदयनी रक्षा करो, श्री श्रेयांसनाथ भगवान बन्ने बाहुनी रक्षा करो, श्री वासुपूज्य स्वामी बन्ने हाथनी रक्षा करो, श्री विमलनाथ भगवान आंगळीओनी रक्षा करो, श्री अनन्तनाथ भगवान नखोनी रक्षा करो, श्री धर्मनाथ भगवान उदर अने अस्थिओनी रक्षा करो, श्री शान्तिनाथ भगवान नाभिमण्डलनी रक्षा करो, श्री कुंथुनाथ भगवान गुह्य-प्रदेशनी रक्षा करो, श्री अरनाथ भगवान रोमराजी अने केडनी रक्षा करो, श्री मल्लिनाथ भगवान छाती, पीठ अने खभानी रक्षा करो, श्रीमुनिसुव्रतस्वामी बन्ने जंघाओनी रक्षा करो, श्रीनमिनाथ भगवान पगनी आंगळीओनी रक्षा, करो, श्री नेमिनाथ भगवान बन्ने चरणनी रक्षा करो, *श्रीपार्श्वनाथ भगवान सर्वांगनी—शरीरना सर्व अवयवोनी रक्षा करो* अने श्री महावीरस्वामी ज्ञान-स्वरूप आत्मानी रक्षा करो ॥ १२–१३–१४–१५–१६–१७ ॥

श्री अरिहंत परमात्मा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु अने आकाशात्मक जगतनुं वीतराग अने निरंजनरूपे सर्व पापथी रक्षण करो ॥ १८ ॥

---

३. °दरस्थाने S । ४. °पृष्ठिवंशं, पिण्डिका S । ५. पादगुल्फ न° S ।

राजद्वारे श्मशाने च, संग्रामे शत्रु-सङ्कटे ।
व्याघ्र-चौराग्नि-सर्पादि-भूत-प्रेत-भयाश्रिते ॥ १९ ॥

अकाले मरणे प्राप्ते, दारिद्र्यापत्समाश्रिते ।
अपुत्रत्वे महादुःखे, मूर्खत्वे रोगपीडिते ॥ २० ॥

डाकिनी-शाकिनीग्रस्ते, महाग्रहगणार्दिते ।
नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये, व्यसने चापदि स्मरेत् ॥ २१ ॥

प्रातरेव समुत्थाय, यः स्मरेज्जिनपञ्जरम् ।
तस्य किञ्चिद् भयं नास्ति, लभते सुखसम्पदः ॥ २२ ॥

जिन-पञ्जरनामेदं, यः स्मरेदनुवासरम् ।
कमलप्रभराजेन्द्र-,श्रियं स लभते नरः ॥ २३ ॥

(इन्द्रवज्रा-वृत्तम्)

प्रातः समुत्थाय पठेत् कृतज्ञो यः स्तोत्रमेतज्जिनपञ्जरस्य ।
आसादयेच्छ्रीकमलप्रभाख्यां लक्ष्मीं मनोवाञ्छितपूरणाय ॥ २४ ॥

श्रीरुद्रपल्लीयवरेण्यगच्छे, देवप्रभाचार्यपदाब्जहंसः ।
वादीन्द्रचूडामणिरेष जैनो, जीयाद् गुरुः श्रीकमलप्रभाख्यः ॥ २५ ॥

राजद्वारमां, स्मशानमां, संग्राममां, शत्रुओथी आवेली आपत्तिमां, वाघ, चोर, अग्नि, सर्प प्रमुख हिंसक प्राणीओ तथा भूत प्रेतना भय वखते, अकाळ मृत्यु वखते, दारिद्र्यरूप आपत्तिना समयमां, पुत्र प्राप्ति माटे, महान् दुःख वखते, मूर्खपणामां, रोगनी पीडामां डाकिनी अने शाकिनीना वळगाड वखते, मोटा ग्रहोना समुदायथी थता दुखमां, नदीने उतरती वखते, मार्गनी विषमतामां, कष्टमां अने आफतमां आ (जिनपंजर स्तोत्र) नुं स्मरण करवुं जोईए ॥ १९–२०–२१ ॥

प्रातःकाळमां ऊठीने जे 'जिन पंजर-स्तोत्र'नुं स्मरण करे, तेने कोई जातनो भय थतो नथी अने सुख-संपत्तिओ प्राप्त थाय छे ॥ २२ ॥

'जिनपंजर' नामना आ स्तोत्रनुं जे प्रतिदिन स्मरण करे छे, ते मनुष्य कमळ समान कान्तिवाळा चक्रवर्तीना समृद्धिने (?) प्राप्त करे छे । (आ श्लोकमां आ स्तोत्रना कर्ता श्रीकमलप्रभसूरिए पोतानुं नाम पण सूचव्युं छे ।) ॥ २३ ॥

प्रातःकाळमां ऊठीने जे कृतज्ञ पुरुष आ 'जिनपंजर' नामना स्तोत्रने भणे ते मनना अभिलाषोने पूर्ण करनारी श्रीकमलप्रभा नामे प्रसिद्ध (?) एवी लक्ष्मीने प्राप्त करे ॥ २४ ॥

श्रीरुद्रपल्लीय नामना श्रेष्ठ गच्छमां श्री देवप्रभाचार्यनां चरण-कमळने विषे हंस-समान अने जैनवादीन्द्रचूडामणि श्रीकमलप्रभ नामना सूरि जय पामो ॥ २५ ॥

---

६. कालम. S । ७. दारिद्र्येऽपि स° S । ८. ° म्ये विषमे वा यदि स्मरन् S । ९. °संपदम् S ।
१०. °भसूरीन्द्रः श्रेयांसि ल० S । ११. जीयादसौ श्री० S ।

परिचय

श्रीकमलप्रभसूरिरचित जिनपञ्जरस्तोत्र अनेक स्थळे प्रसिद्ध थयुं छे, छतां मुंबई श्रीशान्तिनाथजी मंदिरना हस्तलिखित संग्रहनी प्रति नं. २६७ नी एक शुद्ध प्रति अमने मळी हती तेना आधारे पाठभेदो लईने, अने मूलपाठ संशोधीने, अनुवाद साथे अहीं प्रगट करेल छे।

पंचपरमेष्ठी तेम ज चोवीश तीर्थंकरोनो शरीरमां कये कये स्थळे न्यास करवो अने ए प्रकारना न्यासनुं शुं फळ मळे, ते आ स्तोत्रमां जणाव्युं छे।



श्री नवकार महामन्त्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,

णमो आयरियाणं,

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं,

एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥



पू. पं. श्रीधुरंधरविजयजी गणिवर्य
हस्तलिखित पाठ.

[६३-१८]

महामहोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिविरचिता परमात्मपञ्चविंशतिका ।

परमात्मा परंज्योतिः, परमेष्ठी निरञ्जनः ।
अजः सनातनः शम्भुः, स्वयम्भूर्जयताज्जिनः ॥ १ ॥
नित्यं विज्ञानमानन्दं, ब्रह्म यत्र प्रतिष्ठितम् ।
शुद्धबुद्धस्वभावाय, नमस्तस्मै परात्मने ॥ २ ॥
अविद्याजनितैः, सर्वैर्विकारैरनुपद्रुतः ।
व्यक्त्या शिवपदस्थोऽसौ, शक्त्या जयति सर्वगः ॥ ३ ॥
यतो वाचो निवर्तन्ते, न यत्र मनसो गतिः ।
शुद्धानुभवसंवेद्यं, तद्रूपं परमात्मनः ॥ ४ ॥
न स्पर्शो यस्य नो वर्णो, न गन्धो न रस-श्रुती ।
शुद्धचिन्मात्रगुणवान्, परमात्मा स गीयते ॥ ५ ॥
माधुर्यातिशयो यद्वा, गुणौघः परमात्मनः ।
तथाऽऽख्यातुं न शक्योऽपि, प्रत्याख्यातुं न शक्यते ॥ ६ ॥

अनुवाद

परमात्मा, परंज्योति, परमेष्ठी, निरंजन, अज, सनातन, शम्भु अने स्वयंभू एवा श्री जिनेश्वर भगवान जयवंता वर्तो ॥ १ ॥

जेनामां नित्य विज्ञान (केवल ज्ञान), आनंद अने ब्रह्म प्रतिष्ठित छे अने जेओ शुद्ध अने बुद्ध स्वभाववाळा छे ते परमात्माने हुं नमस्कार करुं छुं ॥ २ ॥

अविद्याथी उत्पन्न थयेला सर्व विकारोथी अक्षुब्ध, व्यक्तिरूपे मोक्षमां रहेला किन्तु शक्तिरूपे सर्वव्यापी एवा परमात्मा जयवंता वर्ते छे ॥ ३ ॥

ज्यांथी (जे स्वरूपनुं वर्णन न करी शकवाथी) वाणीओ पाछी फरे छे अने ज्यां मननी गति नथी किन्तु केवळ शुद्ध अनुभव ज्ञानवडे जे संवेद्य छे ते परमात्मरूप छे ॥ ४ ॥

जेने स्पर्श नथी, वर्ण नथी, गन्ध नथी, रस नथी, तथा श्रुति नथी किन्तु जे शुद्ध चिन्मात्र गुणवाळा छे ते परमात्मा कहेवाय छे ॥ ५ ॥

अथवा परमात्माना गुणोनो समूह माधुर्यातिशयरूप छे । ते गुणसमूह यथार्थरीते कही शकातो नथी, छतां ते तेवी रीते नथी एम पण कही शकातुं नथी ॥ ६ ॥

बुद्धो जिनो हृषीकेशः, शम्भुर्ब्रह्माऽऽदिपुरुषः ।
इत्यादि नामभेदेऽपि, नार्थतः स विभिद्यते ॥ ७ ॥
धावन्तोऽपि नयाः नैके (सर्वे), तत्स्वरूपं स्पृशन्ति न ।
समुद्रा इव कल्लोलैः, कृतप्रतिनिवृत्तयः ॥ ८ ॥
शब्दोपरक्ततद्रूपबोधकृन्नयपद्धतिः ।
निर्विकल्पं तु तद्रूपं, गम्यं नानुभवं विना ॥ ९ ॥
केषां न कल्पनादर्वी, शास्त्रक्षीरान्नगाहिनी ।
स्तोकास्तत्त्वरसास्वादविदोऽनुभवजिह्वया ॥ १० ॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधा, दान्तात्मानः शुभाशयाः ।
परमात्मगतिं यान्ति, विभिन्नैरपि वर्त्मभिः ॥ ११ ॥
नूनं मुमुक्षवः सर्वे, परमेश्वरसेवकाः ।
दूरासन्नादिभेदस्तु, तद्भृत्यत्वं निहन्ति न ॥ १२ ॥
नाममात्रेण ये दृप्ता, ज्ञानमार्गविवर्जिताः ।
न पश्यन्ति परात्मानं, ते घूका इव भास्करम् ॥ १३ ॥

तेना बुद्ध, जिन, हृषीकेश, शंभु, ब्रह्मा, आदिपुरुष वगेरे भिन्न भिन्न नामो होवा छतां पण अर्थथी ते परमात्मामां भेद करी शकातो नथी ॥७॥

जेम समुद्रो पोताना तरंगोवडे मर्यादा बहारनी भूमिने स्पर्श करवा जाय छे छतां किनारा साथे अफडाईने पोताना तरंगो साथे पाछा फरे छे, तेम नयो पोतानी विकल्प जाळ वडे परमात्म-स्वरूपने स्पर्शवा दोडे छे—प्रयत्न करे छे, छता ते स्वरूपने पामी शकता नथी किन्तु पाछा फरे छे (तात्पर्य ए छे के परमात्मानु रूप सर्व नयपद्धतिओथी पर छे, तेथी ते नयोनी पकडमां शी रीते आवी शके!) ॥८॥

नय पद्धति तो शब्दथी उपरक्त एवा परमात्मरूपनो बोध करावनारी छे. ज्यारे तेनुं निर्विकल्प रूप तो अनुभव विना समजाय तेवुं नथी ॥९॥

क्या पुरुषनी कल्पनारूप कडछी शास्त्ररूप क्षीरान्नमां प्रवेश करती नथी? परन्तु अनुभवरूप जीभवडे तत्त्वना रसास्वादने जाणनारा पुरुषो तो थोडा ज होय छे ॥१०॥

जितेन्द्रिय, जितक्रोध, दान्त अने शुभ आशयवाळा महात्माओ भिन्न भिन्न मार्गोथी पण परमात्मगतिने प्राप्त करे छे ॥११॥

खरेखर सर्व मुमुक्षुओ परमेश्वरना सेवक छे, दूरपणानो के नजीकपणानो भेद परमात्माना सेवकपणामां व्याघात करी शकतो नथी। (कोई नजीकमां मोक्षे जनारा होय, तो कोई लांबा काळ पछी, पण तेथी परमात्मसेवकताना भेद पडतो नथी) ॥१२॥

'बुद्ध ज परमात्मा' छे', 'शंभु ज परमात्मा छे' इत्यादि रीते जेओ नाममात्रथी गर्वित छे तेओ ज्ञानमार्गथी दूर छे। जेम घुवडो सूर्यने जोई शकता नथी तेम तेओ परमात्माने जोई शकता नथी ॥१३॥

श्रमः शास्त्राश्रयः सर्वो, यज्ज्ञानेन फलेग्रहिः ।
ध्यातव्योऽयमुपास्योऽयं, परमात्मा निरञ्जनः ॥ १४ ॥
नान्तराया न मिथ्यात्वं, हासो रत्यरती च न ।
न भीर्यस्य जुगुप्सा नो, परमात्मा स मे गतिः ॥ १५ ॥
न शोको यस्य नो कामो, नाज्ञानाविरती तथा ।
नावकाशश्च निद्रायाः, परमात्मा स मे गतिः ॥ १६ ॥
रागद्वेषौ हतौ येन, जगत्त्रयभयङ्करौ ।
स त्राणं परमात्मा मे, स्वप्ने वा जागरेऽपि वा ॥ १७ ॥
उपाधिजनिता भावा, ये ये जन्मजरादिकाः ।
तेषां तेषां निषेधेन, सिद्धं रूपं परात्मनः ॥ १८ ॥
अतद्व्यावृत्तितो भिन्नं, सिद्धान्ताः कथयन्ति तम् ।
वस्तुतस्तु न निर्वाच्यं, तस्य रूपं कथञ्चन ॥ १९ ॥
जानन्नपि यथा म्लेच्छो, न शक्नोति पुरीगुणान् ।
प्रवक्तुमुपमाभावात्, तथा सिद्धसुखं जिनः ॥ २० ॥

शास्त्रने आश्रयीने करेलो परिश्रम जेना ज्ञानथी फळवाळो (सफळ) थाय छे, ते आ निरंजन एवा परमात्मा ध्यान करवा योग्य छे अने उपासना करवा योग्य छे ॥ १४ ॥

जेमने अंतरायो (पांच प्रकारना अंतरायकर्म) नथी, मिथ्यात्व नथी, हास्य नथी, रति नथी, अरति नथी, भय नथी, ते परमात्मा मने शरण हो ॥ १५ ॥

जेमने शोक नथी, काम नथी, अज्ञान नथी, अविरति नथी अने निद्रा नथी, ते परमात्मा मने शरण हो ॥ १६ ॥

त्रणे जगतने भयभीत करनार एवा राग अने द्वेषने जेमणे हण्या छे ते परमात्मा जागृत अवस्थामां अने स्वप्न अवस्थामां पण मने शरण हो ॥ १७ ॥

कर्मरूप उपाधिथी जनित एवा जन्म जरा वगेरे जे जे भावो छे ते ते बधा भावोना निषेधवडे परमात्मानुं स्वरूप सिद्ध थाय छे ॥ १८ ॥

सिद्धान्तो 'अ-तद्' रूप व्यावृत्तिवडे ('आ नहि, आ नहि' एम परमात्माथी भिन्न वस्तुओनी व्यावृत्ति द्वारा) परमात्माने इतर वस्तुओथी भिन्न कहे छे, परन्तु परमार्थथी तो ते परमात्मानुं स्वरूप कोई पण प्रकारे निर्वाच्य (संपूर्ण रीते कही शकाय तेवुं) नथी ॥ १९ ॥

जेम गामडिओ माणस नगरीना गुणोने जाणवा छतां पण उपमाना अभावमां कहेवाने शक्तिमान थतो नथी तेम सर्वज्ञ भगवान पण सिद्धना सुखनुं वर्णन उपमा न होवाथी करी शकता नथी ॥ २० ॥

---

१. जुओ श्री **आचारांग सूत्र** अ. ५, अंतिम सूत्र—'न सद्दे, न रूवे, न रसे...... ।'

सुरासुराणां सर्वेषां, यत् सुखं पिण्डितं भवेत् ।
एकत्रापि हि सिद्धस्य, तदनन्ततमांशगम् ॥ २१ ॥
अदेहा दर्शनज्ञानोपयोगमयमूर्त्तयः ।
आकालं परमात्मानः, सिद्धाः सन्ति निरामयाः ॥ २२ ॥
लोकाग्रशिखरारूढाः, स्वभावसमवस्थिताः ।
भवप्रपञ्चनिर्मुक्ताः, युक्तानन्तावगाहनाः ॥ २३ ॥
इलिका भ्रमरीध्यानात्, भ्रमरीत्वं यथाश्नुते ।
तथा ध्यायन् परात्मानं, परमात्मत्वमाप्नुयात् ॥ २४ ॥
परमात्मगुणानेवं, ये ध्यायन्ति समाहिताः ।
लभन्ते निभृतानन्दास्ते यशोविजयश्रियम् ॥ २५ ॥

॥ इति परमात्मपञ्चविंशतिका ॥

समग्र देवताओ अने असुरोनुं सुख एकत्र स्थळे पिंडित करवामां आवे तो पण ते सिद्धना सुखनो अनन्ततम भाग ज थाय ॥ २१ ॥

देह रहित, केवळ दर्शनोपयोग अने केवळ ज्ञानोपयोगमय रूपवाळा अने निरामय एवा सिद्ध परमात्माओ सर्वदा विद्यमान होय छे ॥ २२ ॥

ते सिद्ध भगवन्तो लोकाग्र (सिद्धशिला) रूप शिखर पर आरूढ, स्वभावमां समवस्थित अने भवप्रपंचथी विनिर्मुक्त छे। एक सिद्धनी अवगाहनावाळा आकाश प्रदेशोमां अनन्त सिद्धो रहेला छे ॥ २३ ॥

जेम इयळ भ्रमरीना ध्यानथी भ्रमरीपणाने पामे छे, तेम परमात्मानुं ध्यान करतो जीवात्मा परमात्मपणाने पामे छे, ॥ २४ ॥

ए रीते परमात्मगुणोनुं जेओ समाहित मनवडे ध्यान करे छे तेओ परमानंदथी परिपूर्ण बनीने (परिपूर्ण) यश अने (परिपूर्ण) विजयरूप मोक्षलक्ष्मीने पामे छे ॥ २५ ॥

परिचय

उपा० श्रीयशोविजयजीए रचेली आ पचीशी सुप्रसिद्ध छे। अनेक संग्रहग्रंथोमां ए प्रकाशित थयेल छे। तेमाना एक प्रकाशन उपरथी आ पचीशीनो, संग्रह करीने, तेने अनुवाद साथे अहीं प्रगट करी छे।

परमेष्ठी एवा जिनेश्वरनुं शुद्ध स्वरूप आ पचीशीमां उपाध्यायजी महाराजे सुंदर रीते प्रदर्शित कर्युं छे।

सत्तरमा सैकामां थयेला आ सर्वांगीण विद्वानो परिचय 'यशोविजयस्मृतिग्रंथ' मांथी जाणी शकाय एम छे।



॥श्रीपञ्चपरमेष्ठिनमस्कारमहामन्त्रः॥

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंचनमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं॥

पू. मुनिश्री जम्बूविजयजी महाराज
हस्तलिखित पाठ.

[६४–१९]

श्रीसिंहनन्दिभट्टारकविरचित-
पञ्चनमस्कृतिदीपकसंदर्भः ॥

नमाम्यहं तं देवेशं, लक्ष्मीरात्यन्तिकी स्वयम् ।
यस्य निर्धूतकर्मेन्धधूमस्यापि विराजते ॥ १ ॥

यस्य प्रभावो देवेशैरपि वक्तुं न शक्यते ।
तत्र मानुषव्यापारः, केवलं हास्यतास्पदम् ॥ २ ॥
विघ्न-चौरारि-मार्याद्याः, शाकिन्यादिगणा अपि ।
यस्य स्मरणमात्रेण, प्रलयं यान्ति तेऽखिलाः ॥ ३ ॥
यस्य प्रभावतो बुद्धिर्जायते जीवसंनिभा ।
तं नमस्कृत्य पञ्चाङ्गमन्त्रं तत्कल्पमुच्यते ॥ ४ ॥
तत्राधिकाराः पञ्चैव, साधनं ध्यान-कर्मणी ।
स्तवनं फलमित्येतद्, यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ ५ ॥
तदेव संक्षिप्यारभ्य, प्रक्रियाद्वारतः खलु ।
करोमि देयं नान्यस्य, दुष्टमिथ्यादृशः खलु ॥ ६ ॥
तदेव गायत्रीमन्त्रं, तदेवाष्टकमुच्यते ।
तदेव पञ्चकं प्रोक्तं, षट्द(दा)र्शनिकसम्मतम् ॥ ७ ॥

अनुवाद *

✓ते देवाधिदेवने हुं नमस्कार करुं छुं के कर्मरूपी इन्धननो धूमाडो दूर थवाथी (?) जेमनी संपूर्ण लक्ष्मी स्वयं अत्यंत शोभे छे ॥ १ ॥

जेमनो प्रभाव देवेंद्रो पण कहेवाने शक्तिमान नथी, त्यां मनुष्यनी प्रवृत्ति केवळ हांसीने पात्र गणाय ॥ २ ॥

✓जेमना स्मरणमात्रथी विघ्न, चोर, शत्रु अने मरकी वगेरे तेमज शाकिनी आदिना समूहो नाश पामे छे जेना प्रभावथी बुद्धि जीवसदृश असंमूढ बने छे (?) ते पंचांग (पंचमंगल) मंत्रने नमस्कार करीने हुं तेनो कल्प कहुं छुं ॥ ३–४ ॥

✓ते (कल्प) मां १ साधन, २ ध्यान, ३ कर्म-क्रिया, ४ स्तवन अने ५ फळ—ए पांच अधिकारो छे. (आ विषयमां) जे पूर्वाचार्योए कह्युं छे तेने ज संक्षेपीने अने प्रक्रिया द्वारथी शरु करीने हुं कहुं छुं। आ कल्प (अयोग्य एवा) अन्यने न आपवो अने दुष्ट एवा मिथ्यादृष्टिने तो न ज आपवो ॥ ५–६ ॥

✓ते (पंच मंगल) ज गायत्री मंत्र छे, ते ज अष्टक छे, अने ते ज छये दर्शनीओने मान्य एवुं पंचक छे ॥ ७ ॥

---

* मूल रचना भाषानी दृष्टिए विचित्र होवाथी केटलाक स्थळोमां मात्र भावानुवाद आपेल छे।

यन्त्रं चिन्तामणिर्नाम, कलिकुण्डाख्ययन्त्रकम् ।
पञ्चाराध्यपदं यन्त्रं, गणभृद्वलयाभिधम् ॥ ८ ॥
पार्श्वचक्रं वीरचक्रं, सिद्धचक्रं त्रिलोकयुक् ।
कर्मचक्रं योगचक्रं, ध्यानचक्रपिच्छेड(विच्छेद)कम् ॥ ९ ॥
भूतयन्त्रं(चक्रं) तीर्थचक्रं, जिनचक्रं वशीकरम् ।
ध्यानचक्रं मोक्षचक्रं, श्रेयश्चक्रं सुशान्तिकृत् ॥ १० ॥
सर्वरक्षाकरं वृद्धमृत्युञ्जयसुनामकम् ।
लघुमृत्युञ्जयं नाम, मोक्षदं वाञ्छितप्रदम् ॥ ११ ॥
फलदं ज्वालिनीचक्रं, शुभं चैवाम्बिकाचक्रम् ।
वरं चक्रेश्वरीचक्रं, बृहच्छान्तिकचक्रकम् ॥ १२ ॥
यागमण्डलसच्चक्रं, यन्त्रचक्रं मनोहरम् ।
भैरवं चक्रमिन्द्राख्यमित्यादि सकलं बहु ॥ १३ ॥
यन्त्रराजागमोक्तं यत्, तदेतेन विना न च ।
सिद्धेन सिद्ध्यत्येव, नियमोऽस्ति जिनागमे ॥ १४ ॥
यस्य स्मरणमात्रेण, वराङ्गस्य भयं गतम् ।
द्वीपिनोऽपि तथा श्रेष्ठी, सुदर्शन अपि स्वयम् ॥ १५ ॥
भयमुक्तो बभूवास्य, प्रभावेन महाजनाः ।
द्वात्रिंशदभिधानास्ते, गता द्वीपान्तरं मुदा ॥ १६ ॥
किमस्य वर्ण्यं माहात्म्यं, जिह्वया चैकया खलु ।
कोटिजिह्वादिभिर्ब्रूयाद्, गणेशोऽत्र किमुच्यते ॥ १७ ॥

(यंत्रोमां) चिन्तामणि नामनुं, कलिकुंड नामनुं, पंचाराध्यपद नामनुं, अने गणधरवलय नामनुं यंत्र छे, (ए सिवाय) पार्श्वचक्र, वीरचक्र, सिद्धचक्र, त्रिलोकयुक् (त्रिलोकचक्र), कर्मचक्र, योगचक्र, बीजाना ध्यानिश्वर ध्यानने छेदनार चक्र, भूतचक्र, तीर्थचक्र, जिनचक्र, वशीकरचक्र, ध्यानचक्र, मोक्षचक्र, शांतिने करनारुं श्रेयश्चक्र, सर्वनी रक्षा करनारुं वृद्धमृत्युञ्जय नामक चक्र, मोक्ष अने वांछित आपनारुं लघु-मृत्युंजय नामक चक्र, सफळ एवुं ज्वालिनीचक्र, शुभ एवुं अंबिकाचक्र, श्रेष्ठ एवुं चक्रेश्वरीचक्र, बृहद् शांतिचक्र, सुंदर एवुं यागमण्डलचक्र, मनोहर, यन्त्रचक्र, भैरवचक्र अने इन्द्रचक्र वगेरे जे अनेक चक्रो 'यंत्रराज आगम' मां कहेला छे ते बधा आ नमस्कार मंत्र (यंत्र) ने साध्या विना सिद्ध थतां नथी अने ए सिद्ध थतांज बधा सिद्ध थाय छे, एवो जिनागममां नियम छे ॥ ८–९–१०–११–१२–१३–१४॥

एना स्मरणमात्रथी वरांगनो हाथीनो भय गयो अने श्रेष्ठी सुदर्शन पण स्वयं भयमुक्त थया, आ (नमस्कार) ना प्रभावथी बत्रीश नामवाळा (?) महाजनो पण आनंदपूर्वक बीजा द्वीपमां गया ॥ १५–१६ ॥

खरेखर, आनुं माहात्म्य एक जीभे कई रीते वर्णवी शकाय? अहीं श्रीगणधर भगवान करोडो जिह्वाओ वडे कहे तो पण न कही शके, तो पछी अमे शी रीते कही शकीए? ॥ १७ ॥

अपवित्रे पवित्रेऽपि, सुस्थिते दुःस्थितेऽपि वा।
यत् सर्वकृत् परं मन्त्रं, न त्याज्यं विबुधैरिह ॥ १८ ॥
इदं चित्रं महत् स्याच्च, मोक्षदं यद् वशीकृति—।
प्रमुखानि च कर्माणि, चेप्सितानि ददाति नु ॥ १९ ॥
यमो मुनिर्महामूर्खो, मन्त्रपादैकजल्पनात्।
भूयो भूयः पदध्यानात्, सातर्द्धीः प्राप्तवान् किमु ॥ २० ॥

अथ साधनमाह—

पूर्वा ककुप् पुष्पमाला, शुक्ला पद्मासनं वरम्।
बोधमुद्रा मोक्षमुद्रा, कालः प्रभात इष्यते ॥ २१ ॥
क्षेत्रं शुद्धं तटाकादितीरं द्रव्यं मनोहरम्।
भावो मन्त्रलयो ज्ञेयः, स्वेष्टपल्लवयोजनम् ॥ २२ ॥
कर्म मोक्षप्रधानं स्याद्, गुणः श्वेतस्य चिन्तनम्।
सामान्यं मूलमन्त्रं स्याद्, विशेषस्तत्परो मतः ॥ २३ ॥
पूजाद्रव्यं कुङ्कुमं च, सदकं चरुसंचयम्।
रत्नदीपकं वामे च, धूपकुण्डं च दक्षिणे ॥ २४ ॥

अपवित्र के पवित्र, सुस्थित के दुःस्थित व्यक्ति विषे पण जे सर्व कार्यकर श्रेष्ठ मंत्र छे, तेनो डाह्या माणसोए त्याग न करवो जोईए ॥ १८ ॥

ए भारे आश्चर्य छे के जे (मन्त्र) मोक्ष आपनार छे ते ज वशीकरण वगेरे कर्मो (करी आपे छे) अने वळी वांछितो ने पण आपे छे ॥ १९ ॥

यम नामना मुनि (आ) मंत्रना एक पदना जल्पथी, अने वारंवार ए पदनुं ध्यान करवाथी साचे ज शाता अने ऋद्धिओ पाम्या हता (?) ॥ २० ॥

साधनप्रकार—

पूर्व[1] दिशा, श्वेत पुष्पनी माळा, श्रेष्ठ पद्मासन, बोध(ज्ञान)मुद्रा अथवा मोक्षमुद्रा अने समय प्रभातनो होवो जोईए ॥ २१ ॥

क्षेत्र-स्थान शुद्ध-स्वच्छ एवुं तळाव वगेरेना कांठानुं, (नैवेद्य आदि) द्रव्यो सुंदर, भाव मंत्रलयनो अने पोताने इष्ट एवा पल्लवनी योजना करवी ॥ २२ ॥

कर्म मोक्ष-प्रधान होवुं जोईए, श्वेतवर्णनुं चिंतन (श्वेत वर्णमां ध्यान) ते गुण छे, मूलमंत्र ते सामान्य छे अने तत्परता ते विशेष कहेवाय छे ॥ २३ ॥

पूजा द्रव्य, कुंकुम, सदक-एक जातनुं फळ (?) चरुसंचय-एक प्रकारनुं पात्र (?) डावी बाजुए रत्नदीपक अने जमणी बाजुए धूपकुंड करवो ॥ २४ ॥

---

१ अहींथी अनुक्रमे दिग्-आसन-मुद्रा-काल-क्षेत्र-द्रव्य-भाव-पल्लव-कर्म-गुण-सामान्य-विशेष वगेरेनुं वर्णन छे।

फलं देयं जिनेशस्य, पुरतो बीजपूरकम् ।
चु(चू)तं चोचाम्र-कदलीमुखं षट्कर्तुषु क्रमात् ॥ २५ ॥

कङ्कोलैला-लवङ्गादि-सर्वौषध्याभिषेचनम् ।
दधि-दुग्धेक्षु-सर्पिर्भिरभिषेको जिनस्य च ॥ २६ ॥

पश्चादुद्धृत्य तत्पीठान्मातृकायन्त्रपूजनम् ।
कृत्वा पीठे प्रतिस्था(ष्ठा)प्य, स्थिरां तां चिन्तयेदनु ॥ २७ ॥

चूर्णादिवासना पश्चाद्, वार्यधोवासना तथा ।
धान्यादिवासना चैव, फलवर्तिकवासना ॥ २८ ॥

पश्चाद् दिनत्रयं वस्त्रपरिधानं तथा ततः ।
मुखोद्घाटनमेतस्यानन्तरं स्यान्निराजना (नीराजना) ॥ २९ ॥

पश्चादाकरशुद्धिं च, कृत्वा मन्त्रं जपेदनु ।
मूलमन्त्रमुपन्यस्तप्रतिज्ञो व्रतसंयुतः ॥ ३० ॥

सः पौषधी निराहारी, नियतो विजितेन्द्रियः ।
मनोवाक्कायसंशुद्धः, पञ्चमन्त्रं जपेदनु ॥ ३१ ॥

जिनेश्वर प्रतिमा समक्ष फळमां—बीजोरं, आम्र, नारियेल, केरी अने केळां वगेरे तेम ज सोपारी, इलायची, लवींग वगेरे छ ऋतुमां थनारां फळो क्रमशः मूकवां जोईए अने बधा प्रकारनी औषधिओथी अभिषेक करवो जोईए, (उपरांत) दहीं, दूध, शेरडी अने घीथी श्री जिनेश्वरनी प्रतिमानो अभिषेक करवो ॥ २५–२६ ॥

ए पछी ते पीठथी उपाडीने मातृकायन्त्रनुं पूजन करी, पीठमां फरीथी स्थापना (प्रतिष्ठा) करवी, पछी ते प्रतिष्ठा स्थिर छे एम चिंतन करवुं ॥ २७ ॥

पछी चूर्ण–वासक्षेप वगेरेनी वासना आप्या पछी पाणीनी अधोवासना (?) आपवी, (ते पछी) धान्य वगेरेनी वासना तथा फळ अने दीवानी वासना आपवी ॥ २८ ॥

ए पछी मातृकायन्त्र त्रण दिवस सुधी वस्त्रथी ढांकी देवुं, वळी ते पछी तेनां मुखनुं उद्घाटन करवुं अने पछी आरती करवी ॥ २९ ॥

पछी कुंडनी शुद्धि करीने मंत्रजाप करवो । पछी व्रत करीने मूळमंत्रना अमुक जपादि विशे प्रतिज्ञाबद्ध थवुं ॥ ३० ॥

ते पछी पौषधवान, नियमवान, संयत, जितेंद्रिय अने मन-वचन-कायाथी संशुद्ध थया तेणे पंचनमस्कारमंत्रनो जाप करवो ॥ ३१ ॥

तद्विधाने पूर्वदिने (?), गत्वा तु जिनमन्दिरे ।
प्रतिमां श्रुतमभ्यर्च्य, कृत्वाऽनु गुरुपूजनम् ॥ ३२ ॥
गुरोराज्ञां समादाय, गुरुहस्तं समुद्धरेत् (?) ।
मस्तके न्यस्य (?) सद्भाग्यं, मत्वा गत्वान्तरे गृहे ॥ ३३ ॥
तत्र मन्त्र(न्त्रं) जपेद् यावत्, कार्यसिद्धिर्न संभवेत् ।
तावत् तत्र नियन्ता वा, याथातथ्येन योजयेत् ॥ ३४ ॥
मन्त्रस्याख्या तु पञ्चाङ्गं, नमस्कारस्तु पञ्चकम् ।
अनादिसिद्धमन्त्रोऽयं, न हि केनापि तत् कृतम् (स कृतः) ॥ ३५ ॥
पूर्वं येऽपि जिना यातास्ते वै यास्यन्ति यान्ति च ।
इत्यनेनैव हि मुक्त्यङ्गं, मूलमन्त्रमनादितः ॥ ३६ ॥
जानुदघ्ने जले वाऽपि, पर्वते वाऽऽतपस्थितौ ।
केनापि योगकार्येण, कार्यं साध्यं सुधीमता ॥ ३७ ॥
एतन्मन्त्रं च शोध्यं नाऽकडमादिकचक्रतः ।
स्वयंभूततया शुद्धः, शोधनेन किमु स्फुटम् ॥ ३८ ॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति, ध्यायमाने सुपञ्चके ॥ ३९ ॥

पछीना (?) दिवसे जिनमंदिरमां जई जिनप्रतिमा अने श्रुतज्ञानने पूजीने पछी गुरुनी पूजा करवी । पछी गुरुनी आज्ञा लईने गुरुनो हाथ लेई पोताना मस्तक उपर मूकवो (?) । ते वखते पोते भाग्यशाळी छे एम मानीने गृहना एकान्त भागमां जई त्यां कार्यनी सिद्धि न थाय त्यांसुधी मंत्रनो जाप करवो । ते समये त्यां यथार्थ रीतिए नियंता—उत्तरसाधकनी (?) पण योजना करवी ॥ ३२–३३–३४ ॥

'पंचांग' ए मंत्रनुं नाम छे, तेमां पांच नमस्कार छे । आ मन्त्र अनादिसिद्ध छे, ते कोईए रचेल नथी ॥ ३५ ॥

पूर्वे जे कोई जिनो मुक्तिमां गया, भविष्यमां जशे अने वर्त्तमानमां जाय छे, ते बधा आ पंचनमस्कार वडे ज । तेथी आ मूलमंत्र अनादि काळथी मुक्तिनुं अंग छे (?) ॥ ३६ ॥

ढींचण सुधीना पाणीमां, पर्वत पर, तडकामां अथवा कोई पण योगकार्य (आसनादि) द्वारा आ (मंत्र) ने बुद्धिशाळी पुरुषे साधवो जोइए ॥ ३७ ॥

आ मंत्रने 'अकडम'* आदि चक्रथी शोधवो नहीं । केमके ए स्वयंभूत-आप मेळे उत्पन्न थयेलो होवाथी शुद्ध छे, तेथी स्पष्ट छे के शोधवानुं कोई प्रयोजन नथी ॥ ३८ ॥

पंच परमेष्ठिनुं ध्यान करतां विघ्नना समूहो, तेम ज शाकिनी, भूत अने पन्नग-सर्प वगेरेना उपसर्गो नाश पामे छे अने विष निर्विष बनी जाय छे ॥ ३९ ॥

---

* 'अकडम' चक्र द्वारा पोताना माटे योग्य एवो मंत्र शोधी शकाय छे ।

'ॐ नमः सिद्ध'मित्याख्या, यथा कार्यस्य साध(धि)का ।
तथा सादृश्यतो ज्ञेयं, मन्त्रं पारमगौरुकम् ॥ ४० ॥
'ॐ नमोऽर्हद्‌भ्य' इत्याख्या, प्रथमा जायते पदी ।
'ॐ नमः सिद्धेभ्य' इति, जायते द्वितीया पदी ॥ ४१ ॥
'ॐ नमो(म) आचार्येभ्य'श्च, जायते तृतीया पदी ।
'ॐ नमः(म) उपाध्यायेभ्यो', जायते तुर्या सत्पदी ॥ ४२ ॥
'ॐ नमः सर्वसाधुभ्यो', जायते पञ्चमी पदी ।
[इति संस्कृतमन्त्रेण, सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥ ४३ ॥]

'ॐ नमः सिद्धम्' ए नामनो मंत्र जेम बधा कार्यो सिद्ध करे [illegible] तेम परमगुरुओ (पंचपरमेष्ठि) संबंधि आ मंत्र पण सर्व कार्योनी सिद्धि करे छे ॥ ४० ॥

'ॐ नमो अर्हद्‌भ्यः' ए नामनी प्रथमपदी (पद?) छे, तेम 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' ए द्वितीय पदी छे, 'ॐ नमो आचार्येभ्यः' ए त्रीजी पदी छे, 'ॐ नम उपाध्यायेभ्यः' ए चोथी सत्पदी छे, 'ॐ नम. सर्वसाधुभ्यः' ए पांचमी पदी छे। आ प्रमाणे (आ) संस्कृत मंत्रथी सर्व कार्योनी सिद्धि थशे ॥ ४१–४२–४३ ॥

परिचय

दिगंबर सम्प्रदायना, भट्टारक श्रीसिंहनंदिए रचेली 'पंचनमस्कृतिदीपक' नामनी कृति अमने कलकत्ता, रोयल एशियाटिक सोसायटीना संग्रहमांथी मळी आवी छे। नमस्कारमंत्र विषयक आ ग्रंथमां पांच अधिकारो आपेला छे—१ साधनअधिकार, २ ध्यानअधिकार, ३ कर्मअधिकार, ४ स्तवअधिकार, अने ५ फलअधिकार। प्रत्येक अधिकारमां मन्त्रविषयक अनेक हकीकतो गद्य अने पद्यमां आपेली छे।

आ ग्रंथना मंगलाचरणना ४३ श्लोको नमस्कार विशे सारी माहिती आपे छे अने धार्मिक व्यापक दृष्टिए नमस्कार विशे विचार दर्शावे छे। ते अहीं अनुवाद साथे प्रगट करेल छे।

श्लोक १–७ मंगलाचरण अने ग्रन्थनुं अभिधेय जणावे छे। श्लोक ८–१३ अनेक यन्त्रोनां नामो नोंधे [illegible]। श्लो० १४–१७ यन्त्रनु माहात्म्य जणावे छे। श्लो० १८–२० मंत्रनो महिमा दर्शावे छे। श्लो० २१–३४ मंत्रना साधनोनो विचार आप्यो छे अने श्लो० ३५–४३ नमस्कार मंत्रनो महिमा, न्यास, संस्कृत भाषामय मंत्र विशे प्रश्न अने समाधान तेम ज अरिहंतना अर्थ विशे माहिती आपे छे।

आ ४३ श्लोकोमां जेवी माहिती आपी छे तेवी ज माहितीथी भरेलो समग्र ग्रन्थ छे।

लगभग अढारमा सैकामां थयेला भट्टारक श्रीसिंहनंदिए आ रचना करी छे, अंतनी प्रशस्तिमां तेमणे पोतानी गुरुपरंपरा वगेरे माहिती आपी छे।



पू. पं. श्री भानुविजयजी गणिवर्ये हस्तलिखित पाठ.

[६५-२०]

श्रीसिंहनन्दिविरचित-पञ्चनमस्कृतिदीपकान्तर्गत-नमस्कारमन्त्राः ॥

[१-३] केवलिविद्या—

(१) 'ॐ ह्रीँ अर्हँ णमो अरिहंताणं ह्रीँ नमः ॥' अथवा—

(२) 'ॐ णमो अरिहंताणं श्रीमद्वृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो नमः ॥' अथवा—

(३) 'श्रीमद्वृषभादि-वर्धमानान्तेभ्यो नमः ॥'

[४-६] त्रिविधपिशाचीविद्याः—

(१) 'ॐ णमो अरिहंताणं ॐ।' इति कर्णपिशाची।

(२) 'ॐ णमो आइ(य)रियाणं।' इति शकुनपिशाची।

(३) 'ॐ णमो सिद्धाणं।' इति सर्वकर्मपिशाची।

फलम्—'इति भेदोऽङ्गपठनोद्युक्तमानसो(सश्च) मुनेः।
सिद्धान्तविषयि ज्ञानं, जायते गणितादिषु॥'

[७] अङ्गन्यासः—

'ॐ णमो अरिहंताणं' शिरोरक्षा। 'ॐ णमो सिद्धाणं' मुखरक्षा।
'ॐ णमो आयरियाणं' दक्षिणहस्तरक्षा। 'ॐ णमो उवज्झायाणं' वामहस्तरक्षा।
'ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं' इति कवचम् ॥

फलम्—'एषः पञ्चनमस्कारः, सर्वपापक्षयङ्करः।
मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं मङ्गलं मतः ॥'

[८] वज्रपञ्जरम्—

'ॐ' हृदि। 'ह्रीँ' मुखे। 'णमो' नाभौ। 'अरि' वामे। 'हंता' वामे। 'ताहं' शिरसि। 'ॐ' दक्षिणे बाहौ। 'ह्रीँ' वामे बाहौ। 'णमो' कवचम्। 'सिद्धाणं' अस्त्राय फट् स्वाहा।

फलम्—विपरीतकार्येऽङ्गन्यासः, शोभनकार्ये वज्रपञ्जरं स्मरेत्, तेन रक्षा।

[९] अपराजिताविद्या—

'ॐ णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रीँ फट् स्वाहा ॥'

फलम्—'इत्येषोऽनादिसिद्धोऽयं, मन्त्रः स्याच्चित्तचित्रकृत्।
इत्येषा पञ्चाङ्गी विद्या, ध्याता कर्मक्षयं कुरुते ॥'

[१०] परमेष्ठिबीजमन्त्रः—

'ॐ।' तत् कथमिति चेत्—

'अरिहंता असरीरा, आयरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खर(र)निप्पणो(ण्णो)ॐकारो पंचपरमेट्ठी॥'

'अकः सेदी· [ ] इति जैनेन्द्रसूत्रेण अ+अ इत्यस्य दीर्घः। आ+आ पुनरपि दीर्घः'। 'उ' तस्य पररूपगुणे कृते ओमिति जाते पुनरपि 'मोऽनुस्वारः' [ ] इति सूत्रेणानुस्वारे सति सिद्धपञ्चाङ्गमन्त्रं निष्पद्यते।

[११] षोडशाक्षरी विद्या—

'अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नमः॥''

माहात्म्यम्—'स्मर मन्त्रपदोद्भूतां, महाविद्यां जगद्धुताम्।
गुरुपञ्चकनामोत्थषोडशाक्षरराजिताम्॥'

फलम्—'अस्याः शतद्वयं ध्यानी, जपन्नेकाग्रमानसः।
अनिच्छन्नप्यवाप्नोति, चतुर्थतपसः फलम्॥

[१२] सप्तदशाक्षरी विद्या—

'ॐ ह्रीँ अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-साधुभ्यो ह्रीँ नमः॥

फलम्—'अनया वागवादकत्वं, समाप्नोति च मानवः॥'

[१३] देवत्रयीविद्या—

'ॐ ह्रीँ अर्हत्-सिद्ध-साधुभ्यो ह्रीँ नमः॥'

[१४] षडक्षरीविद्या—

'ॐ ह्रीँ अर्हँ नमः।'

फलम्—'इति षडक्षरी विद्या, कथिता दीक्षितार्पणे॥''

[१५] षड्वर्णसंभूता विद्या—

'अरिहंत सिद्ध।' अथवा—'अरिहंत साहु।' अथवा—'जिनसिद्धसाहु।'

फलम्—'विद्यां षड्वर्णसंभूतामजय्यां पुण्यशालिनीम्।
जपन् चतुर्थमभ्येति, फलं ध्यानी शतत्रयम्॥'

[१६] चतुर्वर्णमयो मन्त्रः—

'अरिहंत।' अथवा—'जिनसिद्ध।' अथवा—'अर्हत्सिद्ध।'

फलम्—'चतुर्वर्णमयं(यो) मन्त्रं(मन्त्रः), चतुर्वर्गफलप्रदम्(दः)।
चतुश्शतीं जपन् योगी, चतुर्थस्य फलं भजेत्॥'

[१७] द्विवर्णो मन्त्रः—

'सिद्ध।' अथवा—'जिन।' अथवा—'अर्हँ।'

[१८] एकाक्षरी मन्त्रः—'ॐ।'

फलम्—'ॐकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, प्रणवाय नमो नमः॥'

[१९] अकारध्यानं, तत्फलं च—'अ।'

'आदिमन्त्रार्हतो नाम्नोऽकारं पञ्चशतप्रमान्।
वारान् जपन् त्रिशुद्धया यः स चतुर्थफलं श्रयेत्॥'

[२०] पञ्चवर्णमयी विद्या—

'ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः।' अथवा— 'अ सि आ उ सा।'

संपुटे तु—'ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा नमः।' अथवा—

'ॐ असिआउसा नमः।' अथवा— 'ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः नमः।' इति भेदः।

माहात्म्यम्—'पञ्चवर्णमयीं विद्यां, पञ्चतत्त्वोपलक्षिताम्।
मुनिवी(व)रैः श्रुतस्कन्धाद्, वीजबुद्धया समुद्धृताम्॥'

फलम्—'वन्दिमोक्षे च प्रथमो, द्वितीयः शान्तये स्मृतः।
तृतीयो जनमोहार्थे, चतुर्थः कर्मनाशने॥
पञ्चमः कर्मषट्केषु, पञ्चैवं मुक्तिदाः स्मृताः।
तृतीयनियताभ्यासाद्, वशीकृतनिजाशयः॥
प्रोच्छिनत्त्याशु निःशङ्को, निगूढं जन्मवन्धनम्।'

[२१] मुक्तिदा विद्या—

'चत्तारि मंगलं। अरिहंत(ता)मंगलं। सिद्ध(द्धा)मंगलं। साहु(हू) मंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगो(गु)त्तमा। अरिहंत(ता) लोगो(गु)त्तमा। सिद्ध(द्धा) लोगो(गु)त्तमा। साहु लोगो(गु)त्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगो(गु)त्तमो।

चत्तारि श(स)रणं पवज्जामि। अरिहंत(ते) श(स)रणं पवज्जामि। सिद्ध(द्धे) श(स)रणं पवज्जामि। साहु(हू) श(स)रणं पवज्जामि। केवलिपण्णतो(त्तं) धम्मो(म्मं) श(स)रणं पवज्जामि॥ इति मुक्तिदा विद्या।

फलम्—'मङ्गल-शरणोत्तमनिकुरम्बं, यस्तु संयमी स्मरति।
अविकलमेकाग्रधिया, स चापवर्गश्रियं श्रयति॥'

[२२] विश्वातिशायिनी विद्या—

'ॐ अर्हत्सिद्धसयोगिकेवली स्वाहा।'

माहात्म्यम्—'सिद्धेः सौधं समारोढुमियं सोपानमालिका।
त्रयोदशाक्षरोत्पन्ना, विद्या विश्वातिशायिनी॥'

[२३] ऋषिमण्डलमन्त्रराजमंत्रः—

'ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रुँ ह्रूँ ह्रेँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः असि आउसा सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः।'

फलम्—'यो मव्यमनुजो मन्त्रमिमं सप्तविंशतिवर्णयुतं ऋषिमण्डलमन्त्रराजं ध्यायति जपति सहस्राष्टकं (८०००) स वाञ्छितार्थमिहपरलोकसुखं सर्वामीष्टं प्राप्नोति।'

[२४] मूलत्रयी विद्या—

'ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ नमः। अथवा नमो सिद्धाणं।' अथवा-'ॐ नमः सिद्धं।' इति मूलत्रयीविद्या वश्यमोहनपुष्टिदा ॥

[२५] (ॐ) 'नमो अरिहंताणं' इति मन्त्रस्य ध्यानप्रक्रिया—

'स्मरेन्दुमण्डलाकारं, पुण्डरीकं मुखोदरे।
दलाष्टकसमासीनं, वर्णाष्टकविराजितम् ॥
'ॐ नमो अरिहंताणं' इति वर्णानपि क्रमात्।
एकशः प्रतिपत्रं तु, तस्मिन्नेव निवेशयेत् ॥'

अकारादि—'स्वर्णगौरीं स्वरोद्भूतां, केशराली ततः स्मरेत्।
कर्णिकां च सुधाबीजं, प्रजन्तु भुवि भूषितम् ॥'

[२६] 'ह्रीँ' इति मन्त्रस्य ध्यानप्रक्रिया—

'प्रोद्यत्संपूर्णचन्द्राभं, चन्द्रबिम्बाच्छनैः शनैः।
समागच्छत्सुधाबीजं, मायावर्णं तु चिन्तयेत् ॥
विस्फुरन्तमतिस्फीतं, प्रभामण्डलमध्यगम्।
संचरन्तं मुखाम्भोजे, तिष्ठन्तं कर्णिकोपरि ॥
भ्रमन्तं प्रतिपत्रेषु, चरन्तं वियति क्षणे।
छेदयन्तं मनोध्वान्तं, स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥
व्रजन्तं तालुरन्ध्रेण, स्फुरन्तं भ्रूलतान्तरे।
ज्योतिर्मयमिवाचिन्त्यप्रभावं चिन्तयेन्मुनिः ॥'

उपर्युक्तमन्त्रद्वयस्य फलम्—

'ॐ नमो अरिहंताणं' इमेऽष्टौ वर्णाः, 'ह्रीँ' इमं महामन्त्रं स्मरन् योगी विघ्ननाशं प्राप्नोति। जपन् सन् सर्वशास्त्रपारगो भवति। निरन्तराभ्यासात् षड्भिर्मासैर्मुखमध्याद् धूमवर्ति पश्यति। ततः संवत्सरेण मुखान्महाज्वालां निःसरन्तीं पश्यति। ततः सर्वज्ञमुखं पश्यति। ततः सर्वज्ञं प्रत्यक्षं पश्यति ॥'

[२७] सप्तबीजमन्त्रध्यानम्—

'ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ' इति सप्तबीजमन्त्रं ध्यायन् सप्तर्द्धीः प्राप्नुते। यथा पुरा तथापि नो आप्यमिदमधुना मूलमेकं वेदमध्यं (?) वेष्टनत्रिकसंयुतं तस्य नीचैर्माया त्रिः वेकारबिन्दुसंयुता

नवाक्षरमिदं वीजमनाहतं समाज्ञातम्। एतस्य ध्यानेन सिद्धचक्रं मुक्तिस्थितमपि परं ब्रह्म त(य)दगम्यमवाच्यमचिन्त्यं तदपि ध्येयविषयं भवति। तदुक्तं जाप्यं यथारुचितो नानाविधमपि तदेव, सदृशत्वात्।

तदुक्तं नेमिचन्द्रसिद्धान्तिकैर्द्रव्यसंग्रहे—

[अत ऊर्द्ध्वं पदस्थं ध्यानं मन्त्रवाक्यस्थं यदुक्तं तस्य विवरणं कथयति—]

'पणतीस सोल छप्पण चदु दुगमेकं च जवह झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेणं ॥ ४९ ॥

[व्याख्या—'पणतीस' "णमो अरिहंताणं; णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" एतानि पञ्चत्रिंशदक्षराणि सर्वपा(प)दानि भण्यन्ते। 'सोलड' "अरिहंत सिद्ध आचार्य(यरिय) उवज्झाय साहू" एतानि षोडशाक्षराणि नामपदानि भण्यन्ते। 'छ' "अरिहंतसिद्ध" एतानि षडक्षराणि अर्हत्-सिद्धयोर्नामपदे द्वे भण्येते। 'पण' "असिआउसा" एतानि पञ्चाक्षराणि आदिपदानि भण्यन्ते। 'चदु' "अरिहंत" इदमक्षरचतुष्टयं नामपदम्। 'दुगं' ' "सिद्ध" इत्यक्षरद्वयं सिद्धस्य नामपदम्। 'एगं च' "अ" इत्येकाक्षरमर्हत आदिपदम्। अथवा "ॐ" एकाक्षरं पञ्चपरमेष्ठिनामादिपदम्। तत् कथमिति चेत् ?—

'अरिहंता असरीरा, आयरिया तह उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खरनिप्पण्णो, ॐकारो पंचपरमेट्ठी ॥

इति गाथाकथितप्रथमाक्षराणां 'समानः सवर्णे दीर्घो भवति' 'परश्चलोपम्' 'उवर्णे ऊ' इति स्वरसन्धिविधानेन ॐशब्दो निष्पद्यते। कस्मादिति—'जवह झाएह' एतेषां पदानां सर्वमन्त्रवादपदेषु मध्ये सारभूतानां इहलोकपरलोकेष्टफलप्रदानसमर्थं ज्ञात्वा पश्चादनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण वचनोच्चारणेन च जापं कुरुत। तथैव शुभोपयोगरूपत्रिगुप्तावस्थायां मौनेन ध्यायत। पुनरपि कथंभूता [ना]म् 'परमेट्ठिवाचयाणं'। 'अरिहंत' इति पदवाचकमनन्तज्ञानादिगुणयुक्तोऽर्हद्वाच्योऽभिधेय इत्यादिरूपेण पञ्चपरमेट्ठि(ष्ठि)वाचकानाम्। 'अण्णं च गुरूवएसेण' अन्यदपि द्वादशसहस्रप्रमितपञ्चनमस्कारग्रन्थकथितक्रमेण लघुसिद्धचक्रं, बृहत्सिद्धचक्रमित्यादिदेवार्चनविधानं भेदाभेदरत्नत्रयाराधकगुरुप्रसादेन ज्ञात्वा ध्यातव्यम्। इति पदस्थध्यानस्वरूपं व्याख्यातम् ॥ ४९ ॥—इत्येतद् द्रव्यसंग्रहस्य ब्रह्मदेवविरचितव्याख्यात उद्धृतम्]

[२८] अथाङ्गन्यासः—

तत्सिद्ध्यर्थम्—अ सि आ उ सा। 'अ' वर्णं नाभिकमले, सि मस्तककमले, आ कण्ठकञ्जे, उ हृदये, सा मुखकमले। वा—अ नाभौ, सि शिरसि, आ कण्ठे, उ हृदये, सा मुखे।

[२९] ॐ कारादीनां ध्यानप्रक्रिया—

अत्र ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ कारः, ह्रीँकारः, अकारः, अर्हँ इत्यादिकमुक्तं तत् क स्मरणीयम् ? तदेव [कथमपि]—

'नेत्रद्वन्द्वे श्रवणयुगले नासिकाग्रे ललाटे,
वक्त्रे नाभौ शिरसि हृदये तालुनि भ्रूयुगान्ते।
ध्यानस्थानान्यमलमतिभिः कीर्तितान्यत्र देहे,
तेष्वेकस्मिन् नियतविषये चित्तमालम्बनीयम्॥

[इति प्रथमेन प्रकारेण ध्यानविषयं गतम्॥]

[३०] ज्वरोत्तारणमन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं' इत्यादि प्रतिलोमतः।
पञ्चभिस्तेन आधेय मायाप्रेसरपूर्वकैः॥
पटीग्रन्थिं परिजप्य, दत्त्वाच्छाद्य नरोपरि।
तेन ज्वरं चोत्तरति, मूलचक्रे परं मतम्॥

[३१] पञ्चचत्वारिंशदक्षरा विद्या—

'ॐ ह्रीँ नमो अरिहंताणं, ॐ ह्रीँ नमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीँ नमो आयरियाणं, ॐ ह्रीँ नमो उवज्झायाणं, ॐ ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं।'

एषा पञ्चचत्वारिंशदक्षरा विद्या। यथा न श्रूयते तथा स्मर्तव्या। दुष्टचौरादिसङ्कटमहापथिस्थाने शान्त्यै, जलवृष्टये चोपांशु भण्यते। पञ्चनामादिपदानां पञ्चपरमेष्ठिमुद्रया जापे समस्तक्षुद्रोपद्रवनाशः कर्मक्षयश्च भवति।

[३२] देवगणी विद्या—(गणिविद्या)—

'ॐ अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-सव्वसाहु-सव्वधम्मतित्थयराणं ॐ नमो भगवईए सुयदेवयाए संतिदेवयाणं सव्वपवयणदेवयाणं दसण्हं दिसा(सा)पालाणं पञ्च(ण्हं)लोगपालाणं ॐ ह्रीँ अरिहंतदेवं नमः।'

एषा विद्या देवगणीति सरस्वतीमन्दिरे जाप्यमष्टोत्तरशतम्। जप्ता सती सर्वेषु कार्येषु सर्वसिद्धिं जयं च ददाति।

[३३] तस्करभयहरमन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ णमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीँ सिद्धदेवं नमः।'

अनेन सप्ताभिमन्त्रिते वस्त्रे ग्रन्थिर्बन्धनीया। पश्चाद् यत्र कुत्रापि महारण्ये तस्करभयं न भवति।

[३४] व्यालादिविषनाशनमन्त्रः—

'ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रैँ ह्रौँ ह्रः णमो सिद्धाणं विषं निर्विषीभवतु फट्।'
इत्यनेन व्यालादिविषं नश्यति।

[३५] व्याल-वृश्चिक-मूषकादिदूरीकरणमन्त्रः—

'ॐ णं सिद्धा णमो दूरीभवन्तु नागाः।'
इत्यनेन व्याल-वृश्चिक-मूषकादयो दूरतो यान्ति।

[३६] बन्दिविमोचनमन्त्रः—

'णं हू सा व्व स ए लो मो ण, णं या ज्झा व उ मो ण, णं या रि य आ मो ण, णं द्धा सि मो ण, णं ता हं रि अ मो ण।'

इति विपर्ययजपनाद् बन्दिमोक्षः। कार्यव्यतिरेकेण न जपनीयम्। कार्यव्यतिरेके कारणविशेषो बलवान् इति न्यायात्। कार्यं बन्दिमोक्षादिसाध्यं। कारणं प्रति कार्यस्य शान्तिकर्मादेर्मोचनादेर्व्यतिरेकोऽपि यथा स्यात् मोचकबन्धवद् वा द्वितीयो बन्धमोचकवत्॥

[३७] सर्वकर्मसमूहदायकमन्त्रः—

'ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ नमो सिद्धाणं, ॐ नमो आयरियाणं, ॐ नमो उवज्झायाणं, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं ॐ ह्रॉं ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः स्वाहा।' सर्वकर्मसमूहं कलौ पञ्चम-युगेऽपि ददाति।

[३८] चतुःषष्टिऋद्धिजननमन्त्रः—

'ॐ णमो आयरियाणं ह्रीं स्वाहा।' इत्यनेन चतुःषष्ट्य ऋद्धयः संभवन्ति।

[३९] कर्मक्षयार्थो मन्त्रः

'ॐ णमो हँ (हूँ) नमः।' इत्यनेन कर्मक्षयो भवति।

[४०] एकादशीविद्या—

'ॐ अरिहंतसिद्धसाहू नमः।' इत्येकादशी विद्या।

[४१-४२] त्रयोदशाक्षरीविद्ये—

(१) 'ॐ अर्हँ अरिहंतसिद्धसाहू नमः।' इति त्रयोदशाक्षरी विद्या।

(२) ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा।' इत्यपि।

[४३] सर्वकामदौ मन्त्रौ—

(१) 'ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा नमः।'

(२) 'ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ अ सि आ उ सा नमः।' द्वावपि मन्त्रौ सर्वकामदौ।

[४४] बन्दिमोचनमन्त्रः—

'ॐ नमो अरिहंताणं ज्म्ल्व्र्यूँ नमः, ॐ नमो सिद्धाणं घ्म्ल्व्र्यूँ नमः, ॐ नमो आयरियाणं स्म्ल्व्र्यूँ नमः, ॐ नमो उवज्झायाणं ह्म्ल्व्र्यूँ नमः, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं घ्म्ल्व्र्यूँ नमः अमुकस्य बन्दिमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा।'

पार्श्वनाथस्य प्रतिमां, संस्थाप्य पुरतस्ततः।
पट्टं प्रसार्य संलेख्यं, मन्त्रं पञ्चशतप्रमम्॥
नामसंपुटसंयुक्तं, बन्दिमोक्षह(क)रं परम्॥'

[४५] स्वप्नविद्या—

'ॐ ह्रीँ णमो अरिहंताणं स्वप्ने शुभाशुभं वद कू(कु)ष्माण्डिनी स्वाहा।' (स्वप्नविद्या।)

'मन्त्रोऽयं शतसंजप्तो, वक्ति स्वप्ने शुभाशुभम्।
चार्कयारे श्वेतपुष्पैर्वर्णपुष्पफलादिकैः॥'

[४६] धर्मद्रुह उच्चाटनमन्त्रः—

"ॐ ह्रीँ अ सि आ उ सा सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय मु(मू)कवत् कारय कारय अन्धय अन्धय ह्रीँ दुष्टान् ठः ठः।'

इदं मन्त्रं सुधिस्त्रिशो, वैरिणं प्रति संजपन्।
धर्मद्रुहो नाशनं च, करोत्युच्चाटनं तथा॥

[४७] भूतप्रेतादिनाशनमन्त्रः—

ॐ ह्रीँ अ सि आ उ सा प्रेतादिकान् नाशय नाशय ठः ठः।'
इदं मन्त्रं ह्येकविंशवारजप्तं करोति च।
भूत-प्रेतादिकध्वंसं, संशयो न हि सांप्रतम्॥

[४८] जाले मत्स्यानां निर्बन्धनमन्त्रः—

'ॐ नमो अरिहंताणं' इत्यादिपञ्च 'ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं ॐ हुलु चुलु चुलु मुलु मुलु स्वाहा।'

२१ जाप्यतो दत्तं जाले मत्स्याः नायान्ति॥

[४९] त्रिभुवनस्वामिनीविद्या—

'ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ह्रीँ अ सि आ उ सा चुलु चुलु हुलु हुलु चुलु चुलु इच्छियं मे कुरु कुरु स्वाहा।'

त्रिभुवनस्वामिनीविद्येयं चतुर्विंशतिसहस्रजापात् सर्वसंपत्[करी] स्यात्।

[५०] वादजयार्थो मन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ अ सि आ उ सा नमोऽर्हँ वद वद वाग्वादिनी सत्यवादिनी वद वद मम वक्त्रे व्यक्तवाचा ह्रीँ सत्यं ब्रूहि सत्यं ब्रूहि सत्यं वदास्खलितप्रचारं सदेव-मनुजासुरसदसि ह्रीँ अर्हँ अ सि आ उ सा नमः।

लक्षं जप्तमिदं मन्त्रं वादे संतनुते जयम्।

[५१] सर्वसिद्धिप्रदमहामन्त्रः—

'ॐ अ सि आ उ सा नमः।'
इदं मन्त्रं महामन्त्रं, सर्वसिद्धिप्रदं ध्रुवम्॥

[५२] त्रिभुवनस्वामिनी विद्या—

'ॐ अर्हते उत्पत उत्पत स्वाहा।' इति द्वितीया त्रिभुवनस्वामिनी विद्या।

[५३] वादजयकरीविद्या—

'ॐ अग्गिय मग्गिय अरिहं जिण आइय पंचमायधरा।
दुट्ठट्ठकम्मदड्ढा (द्ध) सिद्धाण णमो अरिहणणेभ्यः॥'

इति वादे जयं करोति।

[५४] संघरक्षार्थको मन्त्रः—

"ॐ नमो अरिहंताणं धणु धणु महाधणु महाधणु स्वाहा।'
इदं मन्त्रं ललाटे च, ध्येयं सत् चोरनाशनम्।
करोति चैतदुक्तं वा, कम्पनैर्मुनिनायकैः।
संघस्य रक्षार्थमिदं, ध्येयं नान्यत्र हेतुके॥

[५५] स्वप्ने शुभाशुभकथनमन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ अर्हँ क्ष्वीँ स्वाहा।'

चन्दनेन च तिलकं कृत्वा जापमष्टोत्तरशतं कृत्वा सुप्येत रात्रौ शुभाशुभं पश्यति।

[५६] निर्विषीकरणमन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ अर्हँ अ सि आ उ सा क्लीँ नमः।' इत्यनेन निर्विषीकरणत्वम्।

[५७] पञ्चाक्षरीविद्या—

'ॐ नमो जूं सः।'
इति पञ्चाक्षरीविद्या-मन्त्रयन्त्रे करोति च।
भव्यस्य शुभकल्याणं, त्वेवमेव मतं बुधैः॥
कर्णिकायां त्वेक[त]त्त्वं, तत्त्वतुर्यं चतुर्दिशि।
साष्टपत्रेषु सिद्धस्य, बीजं ज्ञेयं मुनीश्वरैः॥
तेजो-मायायुतं तत्त्वं, कामबीजेन संयुतम्।
हुतिप्रियामूलमन्त्रं, त्वेकमेव यशादिषु॥
वाऽन्यत्प्रकारमुक्तं च, कर्णिकायां च देवके-।
ति पदं साष्टपत्रेषु, णमोऽरिहंताणमेव च॥
भूपुरं वारिसुपुरं, यन्त्रकर्मारिनाशनम्।
कर्मचक्रमिदं ज्ञेयं, ध्यानचक्रं परं गतम्॥

कर्मचक्रम्	ध्यानचक्रम्
ॐ नमः	ॐ नमः
ॐ जूँ सः	ॐ जूँ सः
ॐ अर्हँ	धारकस्य
	शुभं भवतु

[५८] तस्करादर्शनमन्त्रः—

'ॐ णमो अरिहंताणं आभिणि मोहिणि मोहय मोहय स्वाहा।'

मार्गे गच्छद्भिरियं विद्या स्मरणीया, तस्करदर्शनमपि न भवति।

[५९] वशीकरणमन्त्रः दुष्टव्यन्तरादिशान्तिश्च—

'ॐ णमो अरिहंताणं अरे अरिणे अमुकं मोहय मोहय स्वाहा।' खटिकया श्रीखण्डेन वा इदं यन्त्रं लिखित्वाऽमुना मन्त्रेण श्वेतपुष्पैः श्वेताक्षतैर्वा जपेत्। यमाश्रित्य जपः क्रियते स वशीभवति। एतद्-यन्त्रमध्ये चात्मानमात्मना दीयते। ततः संध्यायेत्। पूर्वाशाभिमुखं पूर्वं पूर्वदलादारभ्याष्टाक्षरं मन्त्रं जपेत् ११००। ततः आग्नेयदलादारभ्यामुमेव मन्त्रं जपेत् ११००। एवमन्यदलेष्वपि यावदीशानदलम्। एवमष्टपात्रं जपे कृते दुष्टव्यन्तरादिसर्वप्रत्यूहशान्तिः।

[६०] धर्मद्रुहो व्यन्तरस्योच्चाटनमन्त्रः—

'ॐ णमो आयरियाणं आइरियाणं फट्।' इत्यनेन धर्मद्रुहो व्यन्तरस्योच्चाटनम्।

[६१] वादजयार्थको मन्त्रः—

'ॐ ह्रं सः ॐ ह्रीँ अर्हँ ऐँ श्रीँ असिआउसा नमः।'

एतन्मन्त्रं विवादविषये जयं करोति।

[६२] दाहशान्तिमन्त्रः—

'ॐ नमो ॐ अर्हँ अ सि आ उ सा नमो अरहंताणं नमः।'

हृदयकमले १०८ जपादुपवासफलम्। एतेन जलेन पानीयं मन्त्रितं कृत्वाऽग्नेर्वा दावानलस्याग्रे रेखां दद्यात् दाहशान्तिर्भवति॥

[६३] सर्वत्र जयार्थको मन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ अर्हँ असिआउसा अनाहतविज्ञा(द्या)यै अर्हँ नमः।'

प्रतिदिन त्रिकालमष्टोत्तर[शत]जपः, सर्वत्र जयो भवति।

[६४] सर्पभयनाशनमन्त्रः—

'ॐ नमो सिद्धाणं पंचेण्णं पंचेणं।' एतेन दीपरात्रिदिने गुणिते यावज्जीवं सर्पभयं (यो) नो भवेत्।

[६५] सर्वकार्यसिद्धिमन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ क्रोँ ब्लुँ अर्हँ नमः।' इदं मन्त्रं जपतः सर्वकार्याणि साधयति।

[६६] शत्रुवशीकरणमन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ श्रीँ अमुकं दुष्टं साधय साधय असिआउसा नमः।'

दिनानामेकविंशत्या, जपश्चाष्टोत्तरं शतम्।

यं शत्रुं च समुद्दिश्य, करोति वशं...तरेः (?)॥

[६७] सर्वसिद्धिकारकमन्त्रः—

'ॐ अरिहंताणं सिद्धाणं आयरियाणं उवज्झायाणं साहूणं नमः सर्वसमीहितसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।'

जपनादयुतस्यैव सर्वसिद्धिर्भवेन्ननु॥

[६८] कर्मक्षयार्थको मन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ अर्हँ अनाहतविद्यायैं नमः।' अथवा—'असिआउसा अनाहतविद्यायैं नमः।' इति कर्मक्षयः।

[६९] शुभाशुभादेशको मन्त्रः—

'ॐ नमो अरिहओ भगवओ बाहुबलिस्स पण्हसव(म)णस्स अमले विमले निम्मलनाणपयासणि, ॐ नमो सव्वं भासई अरिहा सव्वं भासई केवली एएणं सव्ववयणेण सव्वं सच्चं होउ मे स्वाहा।'

इत्यात्मानं शुचिं कृत्वा, बाहुयुग्मेन संजपन्।
संपूज्य कायोत्सर्गेण, जिनं वक्ति शुभाशुभम्॥

[७०] सर्वसिद्धिप्रदो मन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ णमो अरहंताणं मम ऋद्धिं वृद्धिं समीहितं कुरु कुरु स्वाहा।'

अयं मन्त्रो बुधेन शुचिना प्रातः सन्ध्यायां द्वात्रिंशद्वारं स्मरणीयः, सर्वसिद्धिप्रदः।

[७१] प्रणवचक्रध्यानं, तत्फलं च—

कर्णिकायामोमिति मूर्ध्नि ह्रीँ णमो अरिहंताणं इति सर्वतो भू-जलपुरयुतं चक्रं प्रणवाख्यं च कथ्यते।

ध्यानात् कर्मक्षयं चाऽऽशु, कुरुते वश्यवश्यकम्॥

[७२] ज्वराद्युत्तारणमन्त्रः—

'ॐ ऐं ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं।' इत्यनेनाभिमन्त्रितपट्यमा(पटा)च्छादनादेकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थ(हि)कं दुष्टवेला-ज्वरादिकं नाशयति।

[७३] ग्रहाणां शान्तिकरमन्त्राः—

'ॐ णमो अरिहंताणं', जापस्त्वयुतसम्प्रमः।
चन्द्रदोषं हरेदेतद्, लघौ होमो दशांशकः॥ १॥
'ॐ णमो सिद्धाणं' इत्येतज्जप्तं त्वयुतप्रमम्।
सूर्यपीडां हरेदेतत्, क्रूरे होमो दशांशकः॥ २॥
'ॐ ह्रीँ णमो आयरियाणं' जप्तं त्वयुतसंप्रमम्।
गुरुपीडां हरेदेतद्, दुःस्थिते तद्दशांशकम्॥ ३॥
ॐ ह्रीँ णमो उवज्झायाणं' जप्तं त्वयुतसंमितम्।
बुधपीडां हरेदेतत्, क्रूरे होमो दशांशकः॥ ४॥

'ॐ ह्रीँ णमो लोए सव्वसाहूणं' जप्तं त्वयुतसंप्रमम्।
शनिपीडां हरेदेतत्, कुर्रे होमो दशांशकः ॥ ५ ॥
'ॐ ह्रीँ णमो अरहंताणं' जप्तं दशसहस्रकम्।
शुक्रपीडां हरेदेतत्, कुर्रे होमो दशांशकः ॥ ६ ॥
'ॐ ह्रीँ णमो सिद्धाणं', जप्तं दशसहस्रकम्।
मङ्गलव्याधिहरणे, कुर्रे स्याच्च दशांशकः ॥ ७ ॥
'ॐ ह्रीँ णमो लोए सव्वसाहूणं' जापं दशसहस्रकम्।
राहु-केतुक्षये ज्ञेयं, कुर्रे होमो दशांशकः ॥ ८ ॥

[७४] रक्षामन्त्रः—

'ॐ ह्रीँ नमो अरिहंताणं पादौ रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ नमो सिद्धाणं कटिं रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ नमो आयरियाणं नाभिं रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ नमो उवज्झायाणं हृदयं रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ नमो लोए सव्वसाहूणं कण्ठं रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ एसो पंच नमस्कारो (णमोक्कारो) शिखां रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ सव्वपावप्पणासणो आसनं रक्ष रक्ष।'
'ॐ ह्रीँ मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ † मंगलं आत्मचक्षुः
परचक्षुः रक्ष रक्ष।' इति रक्षामन्त्रः ॥

[७५] सकलीकरणमन्त्राः

'ॐ नमो अरिहंताणं नाभौ।' 'ॐ नमो सिद्धाणं हृदये।' 'ॐ नमो आयरियाणं कण्ठे।' 'ॐ नमो उवज्झायाणं मुखे।' 'ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं मस्तके। सर्वाङ्गेषु मां रक्ष रक्ष हिलि हिलि मातङ्गिनी स्वाहा।' इति सकलीकरणमन्त्राः।

[७६] 'ॐ णमो अरिहंताणं स्वाहा'—इति शान्तौ।

[७७] 'ॐ णमो अरिहंताणं स्वधा'—पुष्टौ।

[७८] 'ॐ णमो अरिहंताणं वषट्'—वश्ये।

[७९] 'ॐ णमो अरिहंताणं वौषट्'—आकृष्टौ।

[८०] 'ॐ णमो अरिहंताणं ठः ठः'—स्तम्भने।

[८१] 'ॐ णमो अरिहंताणं हूँ'—विद्वेषे।

[८२] 'ॐ णमो अरिहंताणं फट् स्वाहा'—उच्चाटने।

---

† 'हवइ' पाठान्तरम्।

[८३] 'ॐ णमो अरिहंताणं घें घे'—मारणे ।

इत्यष्टौ मन्त्रास्तेजोऽग्निप्रियायुतसंपुटरीत्या पृथग्भूत्य जप्याः। एवमेव—ॐ णमो सिद्धाणं स्वाहा-स्वधादियोज्यम्। एवमेव सूरावुपाध्याये साधौ योज्याः। एवं (८×५=) चत्वारिंशन्मन्त्रा यथेच्छं जप्याः।

[८४] तर्पणमन्त्राः—

"ॐ नमोऽर्हद्भ्यः स्वाहा। ॐ नमः सिद्धेभ्यः स्वाहा। ॐ नमः आचार्येभ्यः स्वाहा। ॐ [नमः] उपाध्यायेभ्यो स्वाहा। ॐ [नमः] सर्वसाधुभ्यः स्वाहा।"—इति तर्पणमन्त्राः।

[८५] होममन्त्राः—

"ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यः स्वाहा, ॐ ह्रीँ सिद्धेभ्यः स्वाहा, ॐ ह्रूँ आचार्येभ्यः स्वाहा, ॐ ह्रौँ उपाध्यायेभ्यः स्वाहा, ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा।"—इति होममन्त्राः।

[८६] शाकिनी निवारणमन्त्रः—

'ॐ णमो अरिहंताणं भूत-पिशाच-शाकिन्यादिगणान् नाशय हुं फट् स्वाहा।'

१०८ जप्तोऽयं मन्त्रः शाकिन्यादीन् विनाशयति। अथवा चैकं साष्टपत्रं पद्मं चिन्तयेत्। तत्र कर्णिकायामाद्यं तत्त्वं शेषाणि चत्वारि शङ्खावर्तविधिना संस्थाप्य ध्यानात् शाकिन्यादयो न प्रभवन्ति।

[८७] बुद्धिवर्धनमन्त्रः—

'ॐ णमो अरिहंताणं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा।'

इत्यनेन मासं प्रति कङ्गुवस्तु (मालकाङ्गणीति प्रसिद्धं) चाभिमन्त्र्य मासं प्रति देयं चैवं षष्टिदिनप्रयोगे कृते बालस्य बुद्धिवृद्धिर्भवति।

[८८] सर्वकर्मकरमन्त्रः

'ॐ नमो अरिहंताणं, ॐ नमो सिद्धाणं, ॐ नमो आयरियाणं, ॐ नमो उवज्झायाणं, ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, ॐ नमो दंसणाय(णस्स), ॐ नमो णाणाय(णस्स), ॐ नमो चरित्ताय (त्तस्स), ॐ ह्रीँ त्रैलोक्यवशंकरी ह्रीँ स्वाहा।'

चैकविंशतिवारं यद्, जप्त्वा ग्रन्थिश्च यस्य च।
दत्ते स हि वशी तस्य, भवति न च संशयः॥
पानीयं चाभिमन्त्र्यैवमुञ्जने नेत्ररोगिणः।
रोगपीडाहरं दत्तं, वा शिरोऽर्द्धशिरोऽर्तिषु॥

[आ पहेला विषय नं. ६५—२० मां 'पंचनमस्कृतिदीपक' नामना ग्रंथमांथी नमस्कार—मन्त्रो उद्धृत करवामां आव्या छे। तेमां ३९ मन्त्रो नीचे जे फलादेश आदि कर्यां छे तेनो अहीं अनुवाद आपवामां आवे छे.]

अनुवाद

आगमनां ग्रंथो भणवामां उद्यमशील मुनिने त्रण प्रकारनी केवली विद्याओ अने त्रण प्रकारनी पिशाची विद्याओथी गणित वगेरे विषयोमां सिद्धान्त संबंधि ज्ञान थाय छे ॥ १–६ ॥

आ अंगन्यास माटेनो मंत्र छे।—आ पांचने करेलो नमस्कार सर्व पापोनो नाश करनारो छे। सर्व प्रकारना मंगलोमां आ नमस्कार प्रथम मंगल छे ॥ ७॥

आ वज्रपंजर मंत्र छे–विपरीत कार्योमां अंगन्यास करवो अने शोभन कार्योमां वज्रपंजरनुं स्मरण करवुं। ते बन्नेथी रक्षा थाय छे ॥ ८॥

आ अपराजितविद्या छे। आ अनादिसिद्ध मंत्र चित्तने चमत्कार पमाडनारो [illegible]। आ प्रकारे पचांगी विद्यानुं ध्यान करनार कर्मनो क्षय करे छे ॥ ९॥

आ परमेष्ठिओनो बीज-मंत्र छे।—अरिहंतनो अ, सिद्ध-अशरीरीनो अ, आचार्यनो आ, उपाध्यायनो उ अने मुनिनो म्, ए प्रकारे परमेष्ठीना पांच अक्षरोनी संधि करतां—अ+अ=आ+आ =आ+उ=ओ+म्=ॐकार निष्पन्न थाय छे। जैनेन्द्रव्याकरणना सूत्रोथी तेनी सिद्धि थई छे ॥ १०॥

आ षोडशाक्षरी विद्या छे—मन्त्रपदोमांथी निपजेली अने पांचे गुरुओना नाममांथी उत्पन्न सोळ अक्षरोथी शोभती महाविद्याने जगतना मनुष्योए नमस्कार करेल छे, तेनु तुं स्मरण कर। बसो वार आ विद्यानु एकाग्र मनथी जाप करनार ध्यानी पुरुष इच्छा न करे तो पण उपवासना तपनु फळ मेळवे छे ॥ ११ ॥

आ सत्तर अक्षरनी विद्या छे—आ विद्याथी मानवी वाणीमां वाद कुशळता मेळवे छे ॥ १२ ॥

आ त्रण देवोनी विद्या छे ॥ १३ ॥

आ [illegible] अक्षरनी विद्या छे—ते दीक्षा आपता कहेवामा आवे छे ॥ १४ ॥

आ [illegible] [illegible] वर्णोथी उत्पन्न थयेली विद्या छे—आ अजेय अने पवित्र विद्यानो त्रणसो वार जाप करनार ध्यानी पुरुष एक उपवासनु फळ मेळवे छे ॥ १५॥

आ चार वर्णात्मक मंत्र छे–आ मंत्र चार वर्ग–१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम अने ४ मोक्षने आपनारो छे। आ मंत्रनो चारसो वार जाप करनार योगी एक उपवासनुं फळ मेळवे छे ॥ १६॥

आ बे वर्णनो मंत्र छे ॥ १७॥

आ एकाक्षरी मंत्र छे—योगीओ सदा बिन्दु सहित ॐकारनुं ध्यान करे छे। ते कामनाओने पूर्ण करनारो छे अने मोक्षने पण आपे छे, ते प्रणव-ॐकारने नमस्कार थाओ ॥ १८॥

अकारनु ध्यान अने तेनु फळ—आदि मंत्रना अरिहंत नामना अकारनो एकाग्रतायी पाचसो वार जाप करनार एक उपवासनु फळ मेळवे छे ॥ १९॥

आ पाच वर्णमयी विद्या छे। ते विद्या पच तत्त्वथी उपलक्षित छे। श्रेष्ठ मुनिवरोए श्रुतस्कन्धमांथी ए विद्यानो बीजबुद्धिथी उद्धार करेलो छे। बंदीवासने छोडाववा माटे प्रथम मंत्र ह्रॉं अने शान्तिने माटे बीजो मंत्र ह्रीं दर्शावेलो छे। त्रीजो मंत्र ह्रूं लोकोनुं मोहन करवा उपयोगमां लेवाय छे। चोथो मंत्र ह्रौं कर्म नाश माटे छे। ज्यारे पाचमो मंत्र ह्रः छये कर्मो माटे छे। ए पांचे मंत्रो मुक्तिने आपनारा जणावेलाछे। पोताना मनने वश करीने त्रिसन्ध्य नियत-अभ्यास-जाप करवाथी साधक निःशंक थईने निगूढ एवा जन्मबंधनने जलदीथी छेदी नाखे छे ॥ २०॥

आ विद्या मुक्तिने आपनारी छे—जे संयमी पुरुष एकाग्र बुद्धिथी निरंतरपणे मंगल, शरण अने उत्तम एवा अरिहंत, सिद्ध, साधु अने धर्म ए चार वर्गोनुं स्मरण करे छे ते मोक्षलक्ष्मीनो आश्रय करे छे ॥ २१॥

आ विश्वातिशायिनी विद्या छे—सिद्धिना महेलमां चडवा माटे आ तेर अक्षरोवाळी विश्वातिशायिनी विद्या छे, ते ए (महेल)ना पगथियां स्वरूप छे ॥ २२ ॥

ऋषिमंडलमंत्रराजनो आ मंत्र छे—जे भव्य पुरुष सत्तावीश वर्णोवाळो आ 'ऋषिमंडलमन्त्रराज'नुं ध्यान करे छे अने आठ हजार वार जाप करे छे ते पोतानां वांछितोने प्राप्त करे छे अने सर्व मनुष्योने अभीष्ट एवां इहपरलोकनां सुखोने मेळवे छे ॥ २३ ॥

आ मूलत्रयी विद्या कहेवाय छे—ते वशीकरण, मोहन अने पुष्टि करनारी छे ॥ २४ ॥

'ॐ नमो अरिहंताणं' ए मंत्र माटेनी ध्यान प्रक्रिया बतावे छे—आठ दळमां आठ वर्णोथी शोभता अने चन्द्रमण्डलना आकारवाळा कमळनुं तुं मुखरूपी गुहामां स्मरण-ध्यान कर। "ॐ नमो अरिहंताणं" ए वर्णोने क्रमशः प्रत्येक पांदडी उपर ते (कमल)मां मूकवा जोईए। ते पछी (अकारादि) स्वरोवाळी अने सुवर्णना जेवी गौर वर्णवाळी कर्णिकानी केसरालीनुं स्मरण करवुं जोईए। जगतमां शोभायमान एवी आ कर्णिका सुधाबीजपणाने पामो ॥ २५ ॥

ह्रीँकार मंत्रनी ध्यान प्रक्रिया बतावे छे—चन्द्रबिंबमांथी ऊगता पूर्ण चन्द्र समान अमृतबीज सदृश मायावर्ण ह्रीँकार धीमे धीमे नीचे आवी रह्यो छे एम ध्यान करवुं। पछी अत्यन्त विकसित, अति विस्तृत अने प्रभामण्डलनी मध्यमां रहेलो ह्रीँकार मुखकमलमां प्रवेशे छे अने मुखकमलनी कर्णिका उपर बिराजमान छे, एवुं चिंतन करवुं। वळी ते वर्ण जाणे मुखकमलना प्रत्येक पत्रमां भमतो होय, क्षणमां (मुखमांना) आकाशमां विचरतो होय, मनना अंधकारने छेदतो होय, अमृतरसने झरतो होय, ताळवाना छिद्रमां पेसतो होय, भ्रूमध्यमां चमकतो होय अने जाणे ज्योतिर्मय होय, एवा अचिंत्य प्रभाववाळा ह्रीँकारनुं मुनिए ध्यान करवुं।

ॐ नमो अरिहंताणं अने ह्रीँकार ए बे मंत्रोनुं फळ :—

ॐ नमो अरिहंताणं ए आठ वर्णो अथवा ह्रींनुं स्मरण करनार योगी विघ्ननो नाश करे छे। एनो जाप करतां करतां सकल शास्त्रनो पारगामी थाय छे। एनो निरंतर अभ्यास करतां छ मासमां मुखमां रहेली धुमाडानी दीवेट जूए छे। पछी एक वर्ष थतां मुखमांथी महाज्वाळा नीकळती जूए छे। ते पछी सर्वज्ञनुं मुख जूए छे। ते पछी प्रत्यक्षरूपे सर्वज्ञने जूए छे ॥ २६ ॥

सात बीजवाळा मंत्रनुं ध्यान :—

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ए प्रकारे सात बीज मंत्रोनुं ध्यान करनार सात प्रकारनी ऋद्धि पामे छे। प्राचीन समयनी जेम आजे पण आपणा माटे ए जाप करवा योग्य छे। तेनुं मूळ एक ज छे। ते त्रण कुण्डलाकार वेष्टनथी युक्त छे। तेनी नीचे माया—ह्रीँकार पण (त्रण कुंडलाकारथी वेष्टित (?), ईकार अने बिंदुथी युक्त छे। आ नव अक्षरवाळुं बीज अनाहत कहेवाय छे। एनां ध्यानथी जे परब्रह्मरूप छे, अगम्य छे, अवाच्य छे एवुं सिद्धचक्र मुक्तिमां रहेलुं होवा छतां ते ध्येय विषय बने छे।

ए रीते 'ॐ' आदि जाप्यनुं वर्णन कर्युं। दरेकनी रुचि मुजब जाप्य (अरिहंतादि पदो) नाना प्रकारना होवा छतां बधां एक ज छे कारण के परस्पर सदृश छे।

श्री नेमिचन्द्र सैद्धांतिके रचेला द्रव्यसंग्रहमां ज़णाव्युं छे के—

[अहींथी आगळ (द्रव्यसंग्रहमां) मंत्रवाक्यमां रहेल जे पदस्थ ध्यान, तेनुं विवरण करे छे—]

परमेष्ठीना वाचक—पांत्रीश, सोल, छ, पांच, चार, बे अने एक वर्णवाळा मंत्रोने तमे जपो अने तेनुं ध्यान करो। बीजु गुरूपदेशथी समजो। (४९)

व्याख्या—णमो अरि०—०सव्वसाहूणं सुधीना आ पांत्रीश वर्णो (सर्वप्रद) (सर्वपापनाशक) कहेवाय छे। अरि०—साहू सुधीना सोळ अक्षरो 'नामपद' कहेवाय छे। अरिहंत सिद्ध—ए [illegible] अक्षरो अरिहंत अने सिद्धना 'नामपद' कहेवाय छे। अ सि आ उ सा ए पांच अक्षरो 'आदिपद' कहेवाय छे। अरिहत ए चार अक्षरो 'नामपद' छे। सिद्ध—ए बे अक्षरो सिद्धनां 'नामपद' छे। एक वर्णवाळो अ ए अक्षर अरिहंतनु अथवा अर्हँनु 'आदिपद' छे। अथवा ॐ ए एक अक्षर पांच परमेष्ठीनु 'आदिपद' छे। ते केवी रीते, तो कहे छे के:—

अरिहंत, अशरीरी—सिद्ध, आयरिय—आचार्य, उवज्झाय—उपाध्याय अने मुनिना प्रथम अक्षरोथी निष्पन्न थयेलो ॐकार ए पंच परमेष्ठीनो वाचक छे।

उपर्युक्त गाथा प्रमाणे पांचे परमेष्ठीओना आदि अक्षरो अ+अ+आ+उ+म् नी व्याकरण-सूत्रोमां कहेल स्वरसंधि विधान मुजब संधि करतां ॐ शब्द निष्पन्न थाय छे। शा माटे आनो जाप करो अने ध्यान करो एम कहेवामां आवे छे? तो कहे छे के—प्रथम समग्र मंत्रवादनां पदोनी अंदर सारभूत एवां आ पदो आ लोक अने परलोकनां इच्छितो पूरवामां समर्थ छे एम जाणवुं। ते पछी अनन्तज्ञान आदि गुणोना स्मरणरूपे अने वचनथी उच्चारवडे जाप करवो।

वळी, शुभ उपयोगरूप त्रण गुप्तिवाळी अवस्थामां मौनपणे ध्यान करवुं। 'अरिहंत' वगेरे पदो वाचक छे अने अनन्तज्ञान आदि गुणोथी युक्त अरिहंत वाच्य—अभिधेय छे एम कहेवाय छे। पांचे परमेष्ठिओनु वाच्य-वाचक रूपे ध्यान करवुं।

बीजा पण बार हजार श्लोक प्रमाणवाळा 'पंच नमस्कार' ग्रंथमां बतावेल क्रम मुजब लघु सिद्धचक्र, बृहत् सिद्धचक्र आदि देवपूजाना प्रकारो छे। तेने रत्नत्रयनी भेदाभेदथी आराधना करनार एवा सद्‌गुरुनी कृपाथी जाणीने तेनु ध्यान करवुं।

आ प्रकारे पदस्थ ध्यानना स्वरूपनुं वर्णन कर्युं छे। 'द्रव्यसंग्रह' मूळ ग्रन्थ उपर 'ब्रह्मदेवे' रचेली व्याख्यामांथी आ विवरण अहीं आप्युं छे॥ २७॥

अगन्यास मंत्र:—

तेनी सिद्धि माटे 'अ सि आ उ सा' ए वर्णो छे। अ नो नाभिकमलमां, सि नो मस्तकमां, आ नो कंठकमळमां, उ नो हृदयमां, सा नो मुख-कमलमां न्यास करवो। अथवा अ नो नाभिमां, सि नो मस्तकमां, आ नो कंठमां, उ नो हृदयमां अने सा नो मुखमां न्यास करवो॥ २८॥

ॐकार वगेरेनी ध्यानप्रक्रिया—

ॐ नमः सिद्धेभ्यः—एमां जे ॐकार छे तेनुं, तेमज ह्रीँ, अ, अर्हँ वगेरे जे मंत्रबीजो उपर कहेवामां आवेला छे तेमनुं क्या—क्या स्थले स्मरण करवुं जोईए? तो ते माटे आ रीते जणावे छे:—

बे आंखोमां, बे कानमां, नासिकाना अग्रभागमां, ललाट—भालस्थलमां, मुखमां, नाभिमां, मस्तकमां, हृदयमां, ताळवामां, अने बे भवांना अंत भागमां (भ्रूमध्यमां)—(आ मंत्रबीजोनुं ध्यान करवु जोइए।)

ए प्रकारे निर्मळ बुद्धिवाळाओए शरीरमां ध्याननां स्थानो कहेलां छे, ते पैकीना एक स्थानमां नियत विषयमां चित्तने जोडवु जोईए॥ २९॥

ताव उतारवानो मंत्र—'ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं' वगेरे पांचे पदोने ऊलटा क्रमे ॐकार तेम ज ह्रींकारपूर्वक बोलवा। ए प्रकारे मंत्रनो जाप करीने वस्त्रने गांठ देवी अने ते वस्त्र जेने ताव आवतो होय ते माणसने ओढाडी देवाथी ताव उतरी जाय छे, परंतु वस्त्र खास करीने नवुं होवुं जोईए; एम कहेलुं छे ॥ ३० ॥

पिस्तालीश अक्षरनी विद्या—'ॐ ह्रीँ नमो अरि०' थी '०साहूणं' सुधीनी पिस्तालीश अक्षरोनी आ विद्या छे। न संभळाय ए रीते एनो जाप करवो। दुष्ट मनुष्यो अने चोर वगेरेनुं संकट आवी पडतां, महा आपत्तिना स्थानमां शान्तिने माटे अथवा वरसाद लाववा माटे आ मंत्रनो उपांशु जाप करवो जोईए। पांचे नामो (अरिहंतादि)ना आदि पदोनो ('अ सि आ उ सा' नो) पंचपरमेष्ठी मुद्रावडे .जाप करतां समग्र क्षुद्र उपद्रवोनो नाश थाय छे अने कर्मनो क्षय थाय छे ॥ ३१ ॥

देवगणि विद्या (गणि विद्या)—ॐ अरिहंतथी नमः सुधीनो मंत्र ए देवगणि (गणिविद्या) नामथी कहेवाय छे। तेनो सरस्वतीदेवीना मंदिरमां १०८ वार जाप करवो। जाप कर्या पछी सर्व कार्योमां सिद्धि अने विजय आपे छे ॥ ३२ ॥

चोरनो भय दूर करवानो मंत्र—आ मंत्रथी मंतरेला वस्त्रमां गांठ बांधवी। पछी गमे तेवा मोटा जंगलमां पण चोरनो भय लागतो नथी ॥ ३३ ॥

सर्प वगेरेनां झेर दूर करवानो मंत्र—आ मंत्रथी सर्प वगेरेनां विष नाश पामे छे ॥ ३४ ॥

साप, वींछी, उंदर वगेरेने दूर करवानो मंत्र—आ मंत्रथी साप, वींछी, उंदर वगेरे दूरथी नासी जाय छे ॥ ३५ ॥

बंदीवानने मुक्त बनाववानो मंत्र—पांचे पदोना वर्णोने ऊलटा क्रमे बोलवाथी—जाप करवाथी बंदीवान छूटी जाय छे। बीजा कार्योमां आ मंत्रनो जाप न करवो। बीजां कार्योमां कारण विशेष बलवान होय छे, एवो न्याय छे। शान्तिकर्म वगेरे कार्यो, बंदीने छोडाववा रूप कार्यथी जुदा स्वरूपनां छे। तेथी छूटो माणस बंधाई जाय अने बंधायेलो छूटे एवुं आ मंत्रनुं फळ छे (?) ॥ ३६ ॥

सर्वकर्मसमूहदायक मंत्र—आ कळियुगमां—पंचम काळमां पण आ मंत्र समग्र कृत्यकारी कर्मोनो समूह आपे छे। (अर्थात् एनाथी शांतिक, पौष्टिक, वशीकरण इत्यादि कार्यो थाय छे) ॥ ३७ ॥

परिचय

६४-१९ विभागमां जे परिचय आपेल छे ते ज प्रमाणे समजवो।

[६६–२१]

आत्मरक्षानमस्कारस्तोत्रम्

(अनुष्टुप्-वृत्तम्)

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकम् ।
आत्मरक्षाकरं वज्रपञ्जराभं स्मराम्यहम् ॥ १ ॥
'ॐ नमो अरिहंताणं', शिरस्कं शिरसि स्थितम् ।
'ॐ नमो सव्वसिद्धाणं', मुखे मुखपटं वरम् ॥ २ ॥
'ॐ नमो आयरियाणं', अङ्गरक्षाऽतिशायिनी ।
'ॐ नमो उवज्झायाणं', आयुधं हस्तयोर्दृढम् ॥ ३ ॥
'ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं', मोचके पादयोः शुभे ।
'एसो पंचनमुक्कारो', शिला वज्रमयी तले ॥ ४ ॥
'सव्व-पाव-प्पणासणो', वप्रो वज्रमयो बहिः ।
'मंगलाणं च सव्वेसिं', खादिराङ्गार-खातिका ॥ ५ ॥
'स्वाहा'न्तं च पदं ज्ञेयं, 'पढमं हवइ मंगलं'।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देह-रक्षणे ॥ ६ ॥

अनुवाद

सारभूत, नवपदमय, वज्रना पांजरानी माफक आत्मरक्षा करनार एवा परमेष्ठि-नमस्कारनुं हुं ॐकारपूर्वक स्मरण करुं छुं ॥ १ ॥

'ॐ नमो अरिहंताणं' ए पद मस्तक पर रहेल शिरस्त्राण छे । 'ॐ नमो (सव्व) सिद्धाणं' ए पद मुख पर श्रेष्ठ मुखपट (मुख-रक्षक-वस्त्र) छे ॥ २ ॥

'ॐ नमो आयरियाणं' ए पद उत्तम अंग-रक्षा (कवच-बख्तर) छे, 'ॐ नमो उवज्झायाणं' ए पद बन्ने हाथोमां रहेलुं मजबूत हथियार छे ॥ ३ ॥

'ॐ नमो लोए सव्व-साहूणं' ए पद बन्ने पगोनी पवित्र मोचक-पगनी रक्षा माटेनी घूंटण सुधीनी मोजडीओ छे । 'एसो पंच-नमुक्कारो' ए पद तळीयामां रहेली वज्रमय शिला छे ॥ ४ ॥

'सव्व-पाव-प्पणासणो' ए पद बहारनो वज्रमय किल्लो छे, अने 'मंगलाणं च सव्वेसिं' ए पद (किल्लाने फरती) खेरना अंगारावाळी खाई छे ॥ ५ ॥

'स्वाहा' अंतवाळु एटले 'पढमं हवइ मंगलं' (पढमं हवइ मंगलं स्वाहा।) 'स्वाहा' ए पद शरीरनी रक्षा माटे किल्ला उपर रहेलुं वज्रमय ढांकण छे ॥ ६ ॥

महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव-नाशिनी ।
परमेष्ठि-पदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठि-पदैः सदा ।
तस्य न स्याद् भयं व्याधिराधिश्चापि कदाचन ॥ ८ ॥

परमेष्ठिपदोथी बनेली आ रक्षा महाप्रभाववाळी छे, क्षुद्र उपद्रवोनी नाशक छे अने पूर्वाचार्योए कही छे ॥ ७ ॥

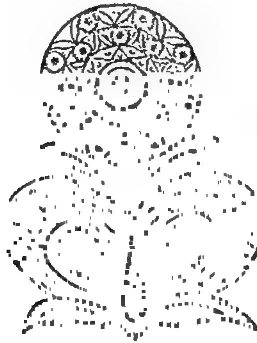
जे (जीव) परमेष्ठि-पदोवडे आ प्रमाणे सदा रक्षा करे छे, तेने क्यारेय भय, रोग अने मानसिक चिंताओ थती नथी ॥ ८ ॥

परिचय

आ स्तोत्र केटलांक प्रकाशनोमां प्रसिद्धि पाम्युं छे अने जैन समाजमां तेनो पाठ करवानो ठीक ठीक प्रचार छे । आ स्तोत्र 'बृहन्नमस्कारस्तोत्र' अथवा 'वज्रपञ्जर' नामे ओळखाय छे । आ स्तोत्रमां आठ पद्यो छे ।

आ स्तोत्रनी बे हस्तलिखित प्रतिओ अमने मळी हती । एक प्रति, पूना-भांडारकर रिसर्च इन्स्टिटयूटना संग्रहनी प्रति नं० ५ / १८४—८६ नी हती, ज्यारे बीजी प्रति लींबडी, शेठ आणंदजी कल्याणजीना हस्तलिखित भंडारनी प्रति नं. ७६५ नी हती । आ बंने प्रतिओने सामे राखी स्तोत्रनो मूल पाठ लेवामां आव्यो छे, ते स्तोत्र अमे अहीं अनुवाद साथे प्रगट कर्युं छे ।

आ स्तोत्रना कर्ता विशे माहिती मळी नथी ।



[६७-२२]

पञ्चपरमेष्ठिस्तवनम्

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

नम्राऽमरेश्वरकिरीटनिविष्टशोणा-
रत्नप्रभापटलपाटलिताङ्घ्रिपीठाः ।
'तीर्थेश्वराः' शिवपुरीपथसार्थवाहा,
निःशेषवस्तुपरमार्थविदो जयन्ति ॥ १ ॥

लोकाग्रभागभुवना भवभीतिमुक्ताः,
ज्ञानावलोकितसमस्तपदार्थसार्थाः ।
स्वाभाविकस्थिरविशिष्टसुखैः समृद्धाः,
'सिद्धा' विलीनघनकर्ममला जयन्ति ॥ २ ॥

आचारपञ्चकसमाचरणप्रवीणाः,
सर्वज्ञशासनधुरैकधुरन्धरा ये ।
ते 'सूरयो' दमितदुर्दमवादिवृन्दा,
विश्वोपकारकरणप्रवणा जयन्ति ॥ ३ ॥

अनुवाद

विनय सहित नमेला इन्द्रोना मुकुटमा जडेला अरुण रत्नोनी कान्तिना समूहथी अरुण वर्णवाळुं थयु छे पादपीठ जेमनुं एवा, मोक्षपुरीना मार्गमा सार्थवाह समान तथा सम्पूर्ण वस्तुओना परम अर्थने जाणनारा 'तीर्थंकरो' जय पामे छे ॥ १ ॥

लोकना अग्रभाग पर छे निवास जेमनु एवा, संसारना भयोथी मुक्त, केवलज्ञानद्वारा समस्त पदार्थोना समूहने जाणनारा, स्वाभाविक, स्थिर तथा विशिष्ट प्रकारना सुखोथी समृद्ध अने विलीन थयो छे घनकर्मरूप मल जेमनो एवा 'सिद्धो' जय पामे छे ॥ २ ॥

ज्ञानादि पाच आचारोना परिपालनमा निपुण, जिन-शासननी धुराने वहन करवामां समर्थ, दुर्जेय एवा वादि-समूहनुं दमन करनारा अने विश्वपर उपकार करवामा कुशल एवा 'आचार्यो' जय पामे छे ॥ ३ ॥

सूत्रं यतीनतिपटुस्फुटयुक्तियुक्तं,
युक्ति-प्रमाण-नय-भङ्गगमैर्गभीरम् ।
ये पाठयन्ति वरसूरिपदस्य योग्या-
स्ते 'वाचका'श्चतुरचारुगिरो जयन्ति ॥ ४ ॥

सिद्ध्यङ्गनासुखसमागमबद्धवाञ्छाः,
संसारसागरसमुत्तरणैकचित्ताः ।
ज्ञानादिभूषणविभूषितदेहभागा,
रागादिघातरतयो 'यतयो' जयन्ति ॥ ५ ॥

अर्हतस्त्रिजगद्वन्द्यान्, त्रिलोकेश्वरपूजितान् ।
त्रिकालभावसर्व(सर्वभाव)ज्ञान्, त्रिविधेन नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

सर्वजगदर्चनीयान्, सिद्धान् लोकाग्रसंस्थितान् ।
अष्टविधकर्ममुक्तान्, नित्यं वन्दे शिवालयान् ॥ ७ ॥

पञ्चविधाचाररतान्, व्रत-संयमनायकान् ।
आचार्यान् सततं वन्दे, शरण्यान् भवदेहिनाम् ॥ ८ ॥

द्वादशाङ्गोरुपूर्वाख्य-श्रुतसागरपारगान् ।
उपदेष्टॄनुपाध्यायानुभयोः सन्ध्ययोः स्तुमः ॥ ९ ॥

जेओ साधुओने प्रमाण, नय, भंग अने गमो वडे गंभीर एवा सूत्र (श्रुत) ने अत्यन्त कुशळतापूर्वक तथा स्पष्ट युक्तिओ वडे भणावे छे, अने जेओ उत्तम एवा सूरिपदने योग्य छे, ते चतुर अने मधुर वाणीवाळा 'उपाध्यायो' जय पामे छे ॥ ४ ॥

सिद्धि-वधूना सुखकारक समागमनी दृढ अभिलाषावाळा, संसार-समुद्रने सारी रीते तरी जवामां निपुण चित्तवाळा, ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप आभूषणोथी सुशोभित देहवाळा अने रागादि (दोषो) ने नाश करवानी प्रबल कामनावाळा 'साधुओ' जय पामे छे ॥ ५ ॥

त्रणे लोकने वंदन करवा योग्य, त्रणे लोकना अधिपति (इन्द्रो) वडे पूजित अने त्रणे कालना सर्व भावोने जाणनारा अरिहंतोने हुं मन-वचन-कायाथी नमस्कार करुं छुं ॥ ६ ॥

समग्र विश्वने पूजनीय, लोकना अग्रभागे रहेला, आठ प्रकारना कर्मोथी रहित अने कल्याणना निकेतन रूप सिद्धोने हुं हंमेशा वंदन करुं छुं ॥ ७ ॥

पांच प्रकारना आचार (ने पाळवा) मां तत्पर, व्रत अने संयमना नायक अने संसारी प्राणीओने शरणरूप आचार्योने हुं निरंतर वंदन करुं छुं ॥ ८ ॥

बार अंग अने (चौद) महापूर्वरूपी श्रुतसमुद्रना पारगामी तथा उपदेश करनारा उपाध्यायोनी अमे बन्ने संध्याए स्तुति करीए छीए ॥ ९ ॥

निर्वाणसाधकान् साधून्, सर्वजीवदयापरान् ।
व्रत-शील-तपोयुक्तान्, वन्दे सद्गतिकाङ्क्षिणः ॥ १० ॥
एवं पञ्चनमस्कारः, सर्व पापप्रणाशनः ।
मङ्गलानां च सर्वेषां, प्रथमं भवतु मङ्गलम् ॥ ११ ॥

मोक्षमार्गना साधनारा, सर्व जीवोनी दयामां तत्पर, व्रत, शील अने तपथी युक्त तथा सद्गतिने चाहनारा साधुओने हु वदन करु छुं ॥ १० ॥

आ पचनमस्कार सर्व पापोने नाश करनार अने बधा मंगलोमां प्रथम-उत्कृष्ट मगल थाओ ॥११॥

परिचय

१ आ स्तवन 'श्री श्रुतज्ञान अमीधारा' नामक पुस्तकमाथी लेवामा आव्युं छे, जेना सग्राहक प० पू० पन्यास श्रीक्षमाविजयजी गणिवर छे, अने जे निर्णयसागर प्रेसमा सन् १९३६ मां छपाईने प्रकाशित थयेल छे।

प्रारंभना पाच पद्यो वसन्ततिलकावृत्तमां छे अने अन्तिम ■ पद्यो अनुष्टुप्मां छे। आ स्तवनना कर्ता विशे जाणवामा आवेल नथी।

[६८–२३]

नमस्कारस्तवनम्

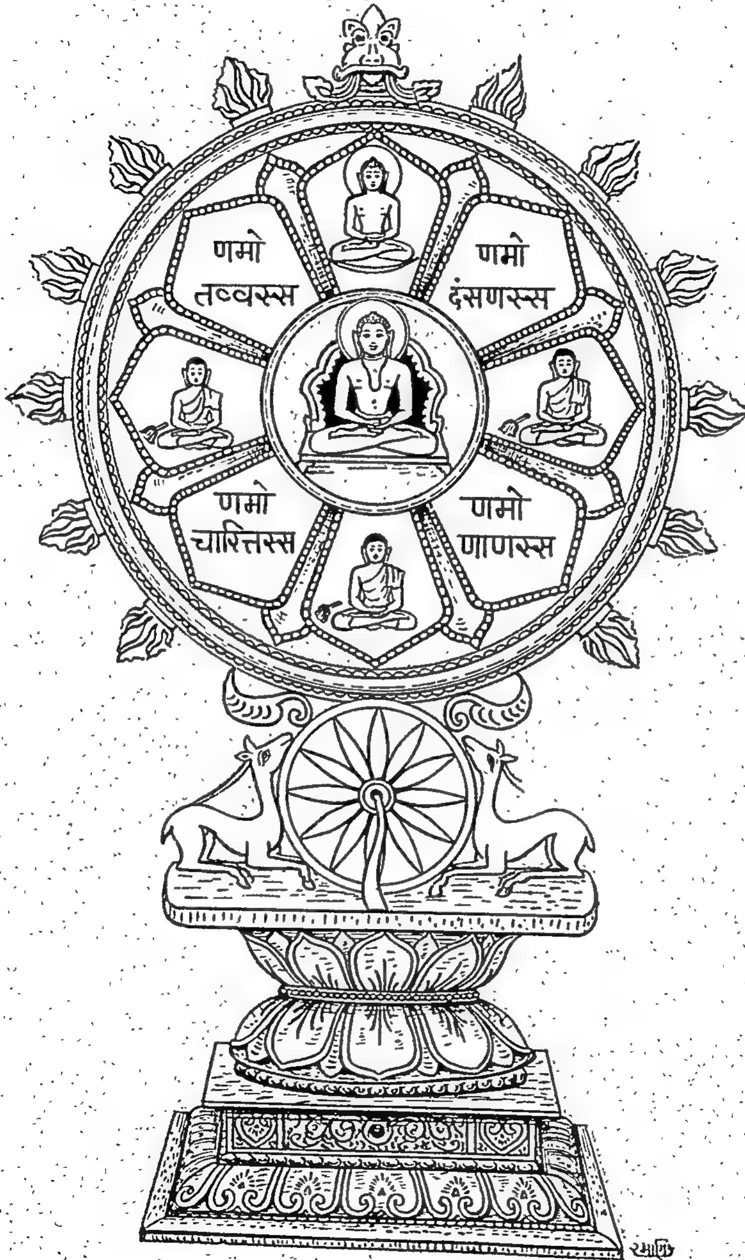
अर्हतः सकलान् वन्दे, वन्दे सिद्धांश्च शाश्वतान् ।
आचार्यानादराद् वन्दे, वन्दे श्रीवाचकानपि ॥ १ ॥
सर्वसाधूनहं वन्दे, नास्ति वन्द्यमतः परम् ।
परमा पात्रता मेऽभूत्, वन्द्यसर्वस्ववन्दनात् ॥ २ ॥
तदेषां कीर्तनादस्तु, कीर्तिः कल्याणमेव च ।
वचनातिक(तीत)लाभं हि, नामाऽपि श्रीमहात्मनाम् ॥ ३ ॥

अनुवाद

हु सर्व अरिहतोने वदन करु छु, शाश्वत एवा सिद्धोने हु वंदन करुं छुं, आचार्योने आदरथी वदन करुं छुं, वाचक उपाध्यायोने वदन करुं छु. सर्व साधुओने वदन करुं छु—आनाथी (पंच परमेष्ठीथी) उत्कृष्ट कोई वदनीय नथी। वदन करवा योग्यने पोतानां सर्व शक्तिथी वंदन करवाथी मारामां उत्कृष्ट पात्रता आवी छे। एमना कीर्तनथी (सौने) कीर्ति अने कल्याण प्राप्त थाओ। महात्माओनुं नाम पण वचनातीत लाभ ने आपनार होय छे ॥ १–३ ॥

परिचय

आ स्तवननी एक प्रति मुंबई श्री शांतिनाथ जैन मंदिर स्थित ज्ञानभंडारमांथी मळी हती। त्रण अनुष्टुप् श्लोकात्मक आ कृतिना कर्ता कोण हशे ते जाणवामां आव्यु नथी। आ स्तोत्र अहीं अनुवाद साथे अमे प्रगट कर्युं छे ॥



श्रीसिद्धचक्रम् (दिगम्बरीय नवदेवता-चित्रना आधारे)

[६९-२४]

लक्षनमस्कारगुणनविधिः ॥

(१)

मूलनायकस्य स्नात्रं कृत्वा पूजा क्रियते। ततः पञ्चशक्रस्तवैर्देवा वन्द्यन्ते। ततः पञ्चपरमेश्वराराधनार्थं २४ लोगस्स-कायोत्सर्गं कृत्वा पञ्चपरमेष्ठिप्रतिमा मण्ड्यन्ते। ततो वासकर्पूरादिभिः पूजा विधीयते ततो नमस्कारान् गणयद्भिः पञ्चपरमेष्ठिपञ्चवर्णाश्चित्ते चिन्त्यन्ते। यथा—

'ससिधवला अरहंता, रत्ता सिद्धा य सूरिणो कणगं।
मरगयभा उवज्झाया, सामा साहू सुहं दिंतु॥'

ततो नमस्कारं नमस्कारं प्रतिदेवस्य तिलकपुष्पारोपणवासक्षेपधूपोद्ग्राहनप्रदीपाखण्डकाक्षतोपढौकनवन्दनानि क्रियन्ते। सहस्रे संपूर्णे सति पूगीफलोपढौकनपूर्वं च तिसृभिः स्तुतिभिर्देवा वन्द्यन्ते, सन्ध्यायां च यदा गुणनमुच्यते तदा पञ्चशक्रस्तवैर्देवा वन्दनीयाः पञ्चपरमेष्ठ्याराधनार्थं २४ लोगस्स-कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः। मोचने चापि। आसातना हुई ते सवि हुं मन-वचन-काया करी मिच्छा० (मिच्छामि दुक्कडं)। निर्विकृतिकाचाम्लोपवासादितपः क्रियते। स्त्रीसंघट्टादिकं वर्जनीयम्।

इति लक्षनमस्कारगुणनविधिः॥

यो लक्षं जिनबद्धलक्षसुमनाः सुव्यक्तवर्णक्रमः,
श्रद्धावान् विजितेन्द्रियो भवहरं मन्त्रं जपेच्छ्रावकः।
पुष्पैः श्वेतसुगन्धिभिश्च विधिना लक्षप्रमाणैर्जिनं,
यः संपूजयति स्म विश्वमहितः श्रीतीर्थराजो भवेत्॥

[इति] लक्षनमस्कारगणनफलम्॥

लक्ष नउकार जापविधि॥

प्रभाति मूलनायकरहइं स्नात्र करी पूजा करी पंच शक्रस्तव देव वांदीइ। पछइ पंचपरमेष्ठि-आराधनार्थ चउवीस लोगस्स काउस्सग कीजइ। पछइ पंचपरमेष्ठि पांच प्रतिमा मांडी, पूजा वास कपूरइं करी कीजइ। नउकार गुणतां पंच परमेष्ठिना पांच वर्ण चींतवीइं। यथा—अरिहंत धवलवर्ण, सिद्ध रक्तवर्ण, आचार्य सुवर्णवर्ण, उपाध्याय नीलवर्ण, महात्मा श्यामवर्ण। ए पांचे वर्णे हीआमाहि चींतवीइ। नउकार गुणतां नउकारि नउकारि देव रहिइं टीली कीजइ, फूल चडावीइ, वासक्षेप कीजइ, धूप ऊगाहीइं, दीवउ कीजइ, चोखउ ढोईइ। जेती कीजइ सहस्र पूरइ हुइ। सोपारी ढोईइ, देव वांदीइं। सांझइं गुणवउं। मूंकतां पंचशक्रस्तवे देव वांदीइं। पंचपरमेष्ठि आराधनार्थ चउवीस लोगस्स काउस्सग कीजइ, मूंकतां 'अविधि आशातना हुई ते सवि हं मनि वचनि काय करी मिच्छामि दुक्कडं।' यथाशक्ति निवी, आंबिल, उपवास तप करिवउ। पुरयइं स्त्रीसंघट्ट वर्जिवउ। ए नउकार लाख गुणइ जिको विधिपूर्वक

तेहनउ जीव एकाग्रभाव छतइ तीर्थंकर कर्म ऊपार्जइ। मध्यममाव छतइ विद्याधर, चक्रवर्ति, वासुदेव, प्रतिवासुदेव कर्म ऊपार्जइ। थोडइ भाव छतइ एकातपत्र राज्य पामइ ॥

इति लक्ष नउकार जापविधिः ॥
शुभं भवतु श्रीचतुर्विधसंघस्य ॥
नवकार इक अक्खर, पावं फेडेइ सत्तअयराणं।
पन्नासं च पयणं, सागर पणसय समग्गेणं ॥

श्रीरस्तु श्रमणसंघस्य ॥

परिचय

आ विधिनी एक प्रति पालीताणा, श्रीआगम जैन मंदिरना ज्ञानभडारनी प्रति नं. १९९९ नी त्रण पानानी मळी हती, तेमा 'नवकारसारथवण' स्तोत्र हतुं, तेनी अंते आ प्रकारे विधि लखी हती ते विधि अमे अहीं संग्रहीत करी छे। आ नानी विधि लाख नमस्कारनी आराधना माटे अत्यंत उपयोगी छे।

लाख नवकार जापनी बीजी विधिनी एक प्रति डभोई, मुक्ताबाई जैन ज्ञानमंदिर प्रति न. ४३२७ नी मळी हती, जेमां प्रथम 'संक्षिप्त नमस्कार अर्थ' जणाव्यो हतो ने ते पछी आ विधि दर्शावी हती। आ विधि जूनी गुजराती भाषामां छे, उपर्युक्त संस्कृत विधिनो अनुवाद छे तेथी तेने गुजराती विभागमा न मूकता अहीं आपी छे।

आ संस्कृत अने गुजराती विधि उपरथी स्पष्ट थाय छे के लाख नवकार जापनी आ विधि कोई काळे खूब प्रचलित हशे।

त्रीजी विधि अमने एक हस्तलिखित छूटा पाना परथी मळी आवी छे। ते विधि ते ते इष्टकारित्व माटे होय एम जणाय छे ॥



[७०–२५]

श्रीमन्नागसेनाचार्य-विरचित-'तत्त्वानुशासन' संदर्भः

स्वाध्यायः परमस्तावज्जपः पञ्चनमस्कृतेः ।
पठनं वा जिनेन्द्रोक्तशास्त्रस्यैकाग्रचेतसा ॥ ८० ॥

स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां, ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत् ।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या, परमात्मा प्रकाशते ॥ ८१ ॥

× × × ×

नाम च स्थापनं द्रव्यं, भावश्चेति चतुर्विधम् ।
समस्तं व्यस्तमप्येतद् , ध्येयमध्यात्मवेदिभिः ॥ ९९ ॥

वाच्यस्य वाचकं नाम, प्रतिमा स्थापना मता ।
गुण-पर्ययवद् द्रव्यं, भावः स्याद् गुणपर्ययौ ॥ १०० ॥

आदौ मध्येऽवसाने यद्, वाङ्मयं व्याप्य तिष्ठति ।
हृदि ज्योतिष्मदुद्गच्छन्नामध्येयं तदर्हताम् ॥ १०१ ।

अनुवाद

एकाग्र मनथी पंचपरमेष्टि नमस्कार महामंत्रनो जाप अथवा श्रीजिनेश्वरदेवे कहेलां शास्त्रोनुं अध्ययन ए सर्वोत्कृष्ट स्वाध्याय छे. ८०.

स्वाध्यायथी ध्यानमां चढे अने ध्यानथी स्वाध्यायने सविशेष चिंतवे, एम ध्यान अने स्वाध्याय रूप संपत्तिथी परमात्मतत्त्वनो (शुद्धात्मस्वरूपनो) प्रकाश थाय छे. (ध्यानमां ज्यारे न रही शके त्यारे स्वाध्यायनो आश्रय ले, एवो पण बीजा चरणनो अर्थ थई शके छे.) ८१.

चतुर्विध–ध्येय—

नामध्येय, स्थापनाध्येय, द्रव्यध्येय अने भावध्येय एम ध्येय चार प्रकारनुं छे. अध्यात्मना जाणकार महात्माओए एनुं (चतुर्विध-ध्येयनुं) भेगुं अथवा प्रत्येकनुं जुदुं जुदुं ध्यान करवुं जोईए. ९९.

वाच्य–अभिधेय पदार्थना वाचक शब्दने नाम अने प्रतिमाने स्थापना कहेवाय छे. गुण अने पर्यायवाळुं ते द्रव्य छे; अने गुण अने पर्याय ते भाव छे. १००.

नामध्येय—

जे (वाङ्मय–सर्वशास्त्रनी) आदिमां, मध्यमां अने अंतमां एम सकल वाङ्मयने व्यापीने रहेलुं छे ते, ज्योतिर्मय अने ऊर्ध्वगामी एवा श्री अरिहंत भगवंतोना नामनुं हृदयमां ध्यान करवुं जोईए (नामध्येय—'अरिहंत-अर्हँ' वगेरे). १०१.

हृत्पङ्कजे चतुःपत्रे, ज्योतिष्मन्ति प्रदक्षिणम् ।
'अ-सि-आ-उ-सा'क्षराणि, ध्येयानि परमेष्ठिनाम् ॥ १०२ ॥

ध्यायेद् 'अ-इ-उ-ए-ओ' च, तद्वन्मन्त्रानुदर्चिषः ।
मत्यादि-ज्ञान-नामानि, मत्यादि-ज्ञानसिद्धये ॥ १०३ ॥

सप्ताक्षरं महामन्त्रं, मुखरन्ध्रेषु सप्तसु ।
गुरूपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिकम् ॥ १०४ ॥

हृदयेऽष्टदलं पद्मं, वर्गैः पूरितमष्टभिः ।
दलेषु कर्णिकायाञ्च, नाम्नाऽधिष्ठितमर्हताम् ॥ १०५ ॥

गणभृद्वलयोपेतं, त्रिःपरीतं च मायया ।
क्षोणीमण्डलमध्यस्थं, ध्यायेदभ्यर्चयेच्च तत् ॥ १०६ ॥

अकारादि-हकारान्ता मन्त्राः परमशक्तयः ।
स्वमण्डलगता ध्येया लोकद्वयफलप्रदाः ॥ १०७ ॥

चार दलवाळा हृदयकमळमां ज्योतिर्मय एवा 'अ-सि-आ-उ-सा' ए परमेष्ठिओना आद्य अक्षरोनु प्रदक्षिणामां ध्यान करवु जोईए.

	सि	
सा	अ	आ
	उ	

१०२.

ते ज रीते 'अ-इ-उ-ए-ओ' ए उज्ज्वल मंत्रोनु ध्यान करे, तथा मत्यादि ज्ञानोनी सिद्धिमाटे मत्यादि ज्ञानोना नामोनु ध्यान करे. १०३.

दूरश्रवणादि लब्धिओने इच्छता साधके 'नमो अरिहंताणं' ए सप्ताक्षर मंत्रनुं (बे काननां, बे नाकना बे आंखना अने एक मुखनु एम) सात मुखछिद्रोमां श्रीसद्गुरुना उपदेशथी ध्यान करवु जोईए (चक्षुः आदिनी सीमाथी बहार रहेला रूपादिनु प्रत्यक्ष वगेरे पण आ मंत्रना ध्यानथी थाय छे). १०४.

कर्णिकामां श्रीअरिहंत भगवंतोना नाम ('अर्हं') थी अधिष्ठित अने आठ-दलोमां अष्ट-वर्गो ('अ-क-च-ट-त-प-य-श')थी पूरित एवा अष्टदल कमलनुं हृदयमां ध्यान करवुं. ते पद्म, गणधर-वलय (अडतालीश लब्धिपदो) थी सहित अने माया-'ह्रीँ'कारथी त्रण वखत वेष्टित छे, एम चिंतववुं. आ ध्यान पूर्वे ए बधाने भूमिमंडलपर आलेखीने एनी पूजा पण करी शकाय. (अहीं 'मूलाधारचक्र ज्यां पृथ्वी तत्त्वनु प्राधान्य छे, तेमां ध्यान करे, ए अर्थ पण लई शकाय.) ॥ १०५-१०६ ॥

'अ' थी '■' सुधीना अक्षरो इहलोक अने परलोकना फळने आपनारा परमशक्तिवाळा मंत्रो छे. तेमनु आधारादि *स्वचक्रोमां ध्यान करवु. १०७.

---

* विशेष माटे जुओ—श्रीसिंहतिलकसूरिकृत 'परमेष्ठिविद्यायन्त्रकल्प' न. स्वा० पृ. १११ थी १२६.

इत्यादीन् मन्त्रिणो मन्त्रानर्हन्मन्त्रपुरस्सरान् ।
ध्यायन्ति यदिह स्पष्टं, नामध्येयमवैहि तत् ॥ १०८ ॥
जिनेन्द्रप्रतिबिम्बानि, कृत्रिमाण्यकृतानि च ।
यथोक्तान्यागमे तानि, तथा ध्यायेदशङ्कितम् ॥ १०९ ॥
यथैकमेकदा द्रव्यमुत्पित्सु स्थास्नु नश्वरम् ।
तथैव सर्वदा सर्वमिति तत्त्वं विचिन्तयेत् ॥ ११० ॥
चेतनोऽचेतनो वाऽर्थो यो यथैव व्यवस्थितः ।
तथैव तस्य यो भावो याथात्म्यं तत्त्वमुच्यते ॥ १११ ॥
अनादि-निधने द्रव्ये, स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति, जलकल्लोलवज्जले ॥ ११२ ॥
यद्विवृत्तं यथा पूर्वं, यच्च पश्चाद् विवर्त्स्यति ।
विवर्तते यदत्राद्य, तदेवेदमिदं च तत् ॥ ११३ ॥
सहवृत्ता गुणास्तत्र, पर्यायाः क्रमवर्तिनः ।
स्यादेतदात्मकं द्रव्यमेते च स्युस्तदात्मकाः ॥ ११४ ॥

'अर्हँ' मंत्रथी पुरस्कृत एवा पूर्वोक्त अने बीजा मंत्रो, जेमनुं मांत्रिको ध्यान करे छे, ते बधाने तमे अहीं **नामध्येय** तरीके स्पष्टरीते जाणो ॥ १०८ ॥

शाश्वत अने अशाश्वत एवी जिनप्रतिमाओनुं आगममां जेवी रीते वर्णन कर्युं छे, तेवी रीते शंका विना ध्यान करो (अहीं **स्थापनाध्येयनुं** वर्णन छे) ॥ १०९ ॥

द्रव्यध्येय—

जेम एक द्रव्य एकदा उत्पादशील, ध्रुव अने नश्वर छे, तेवी ज रीते सर्व द्रव्यो सर्वदा (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त) छे, ए तत्त्वने चिंतववुं ॥ ११० ॥

चेतन के अचेतन पदार्थ, जेवी रीते व्यवस्थित छे, तेनो ते प्रकारनो जे भाव (स्वरूप) ते 'याथात्म्य' तत्त्व कहेवाय छे ॥ १११ ॥

जलमां जलतरंगोनी जेम अनादि-अनंत द्रव्यमां पोताना पर्यायो प्रतिक्षण उत्पन्न थाय छे अने लय पामे छे ॥ ११२ ॥

जेवी रीते जे (द्रव्य) पूर्वे विवर्त्युं (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यने पाम्युं) हतुं, जे (द्रव्य) पछी विवर्त (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) ने पामशे अने जे (द्रव्य) आजे—वर्तमानमां-विवर्ते (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यने पामे) छे, ते ज आ छे अने आ ज ते छे. तात्पर्य के प्रत्येक द्रव्य द्रव्यरूपे सर्वकाळ एक सरखुं ज रहे छे ॥ ११३ ॥

तेमां सहभावी ते गुणो छे अने क्रमभावी ते पर्यायो छे. द्रव्य गुणपर्यायात्मक छे अने गुणपर्यायो द्रव्यात्मक छे ॥ ११४ ॥

एवंविधमिदं वस्तु, स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकम् ।
प्रतिक्षणमनाद्यन्तं, सर्वं ध्येयं यथास्थितम् ॥ ११५ ॥
अर्थव्यञ्जनपर्याया, मूर्त्तामूर्त्ता गुणाश्च ये ।
यत्र द्रव्ये यथावस्थास्तांश्च तत्र तथा स्मरेत् ॥ ११६ ॥
पुरुषः पुद्गलः कालो, धर्माधर्मौ तथाऽम्बरम् ।
षड्विधं द्रव्यमाम्नातं, तत्र ध्येयतमः पुमान् ॥ ११७ ॥
सति हि ज्ञातरि ज्ञेयं, ध्येयतां प्रतिपद्यते ।
ततो ज्ञानस्वरूपोऽयमात्मा ध्येयतमः स्मृतः ॥ ११८ ॥
तत्राऽपि तत्त्वतः पञ्च, ध्यातव्याः परमेष्ठिनः ।
चत्वारः सकलास्तेषु, सिद्धः स्वामीति निष्कलः ॥ ११९ ॥
अनन्तदर्शन-ज्ञानसम्यक्त्वादिगुणात्मकम् ।
स्वोपात्तानन्तरत्यक्तशरीराकारधारिणम् ॥ १२० ॥
साकारञ्च, निराकारममूर्त्तमजरामरम् ।
जिनबिम्बमिव स्वच्छस्फटिकप्रतिबिम्बितम् ॥ १२१ ॥

एवी जातनी आ वस्तु प्रतिक्षण स्थिति-उत्पत्ति-व्ययात्मक अने अनादि-अनंत छे। सर्व ध्येयने यथास्थितरूपे (जे जेवुं होय, तेवुं ते प्रकारे) ध्यान करवुं जोईए ॥ ११५॥

जे द्रव्यमां अर्थपर्यायो, व्यंजनपर्यायो अने मूर्त के अमूर्त गुणो जेवी रीते रहेला होय, तेवी रीते तेमनुं स्मरण करवुं ॥ ११६॥

आत्मा, पुद्गल, काल, धर्म, अधर्म अने आकाश, ए छ प्रकारनुं द्रव्य मानवामां आव्युं छे। तेमां आत्मा ते ध्येयतम (श्रेष्ठ ध्येय) छे ॥ ११७॥

भावध्येय—

ज्ञाता होय तो ज ज्ञेय ध्येयताने पामे छे तेथी ज्ञानस्वरूप आ आत्माने ध्येयतम कह्यो छे ॥ ११८॥

जीव द्रव्योमां पण तत्त्वथी पांच परमेष्ठिओ ध्येय छे। तेमां अरिहंत, आचार्यादि सकल (कर्मादि उपाधि सहित) छे अने सिद्ध स्वामी (?) होवाथी निष्कल (निरुपाधि) छे ॥ ११९॥

अनंत एवा दर्शन, ज्ञान, सम्यक्त्व वगेरे गुणोवाळा, चरम भवमां जे देह पोताने प्राप्त थयो हतो अने जे पोते तजी दीधो तेना आकार (चरम देहाकार) ने धारण करनारा, (ए अपेक्षाए) साकार, निराकार, अमूर्त, जरारहित, मृत्युरहित, निर्मल स्फटिक रत्नमां प्रतिबिंबित थयेल जिनबिंबसदृश, लोकना

---

१ 'घट' शब्दना पर्यायवाची शब्दो—कलश, कुंभ, वगेरे 'व्यंजन (शब्द) पर्यायो' कहेवाय छे अने 'घट' पदार्थना रक्तत्व, मृण्मयत्व, वगेरे 'अर्थपर्यायो' कहेवाय छे। अथवा त्रिकालवर्ती पर्याय ते व्यंजन पर्याय अने वर्तमान कालवर्ती सूक्ष्म पर्याय ते अर्थ पर्याय। जेम आत्माना विषयमां केवलज्ञान ते शुद्ध व्यंजनपर्याय अने तत्कालवर्ती केवलज्ञानोपयोग ते अर्थपर्याय।

लोकाग्रशिखरारूढमुदूढसुखसम्पदम् ।
सिद्धात्मानं निराबाधं, ध्यायेन्निर्धूतकल्मषम् ॥ १२२ ॥

तथाद्यमाप्तमाप्तानां, देवानामधिदैवतम् ।
प्रक्षीणघातिकर्माणं, प्राप्तानन्तचतुष्टयम् ॥ १२३ ॥

दूरमुत्सृज्यभूभागं, नभस्तलमधिष्ठितम् ।
परमौदारिकस्वाङ्गप्रभाभर्त्सितभास्करम् ॥ १२४ ॥

चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः, प्रातिहार्यैश्च भूषितम् ।
मुनि-तिर्यङ्-नर-स्वर्गि-सभाभिः सन्निषेवितम् ॥ १२५ ॥

जन्माभिषेकप्रमुखप्राप्तपूजातिशायिनम् ।
केवलज्ञाननिर्णीतविश्वतत्त्वोपदेशिनम् ॥ १२६ ॥

प्रभास्वल्लक्षणाकीर्णसम्पूर्णोदग्रविग्रहम् ।
आकाशस्फटिकान्तःस्थज्वलज्ज्वालानलोज्ज्वलम् ॥ १२७ ॥

तेजसामुत्तमं तेजो, ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ।
परमात्मानमर्हन्तं, ध्यायेन्निःश्रेयसाप्तये ॥ १२८ ॥

वीतरागोऽप्ययं देवो, ध्येयमानो मुमुक्षुभिः ।
स्वर्गापवर्गफलदः, शक्तिस्तस्य हि तादृशी ॥ १२९ ॥

अग्रभागरूप शिखरपर आरूढ, सुखसंपत्तिने वरेला, पीडारहित अने निष्कर्म एवा श्री सिद्धात्मानुं ध्यान करवुं ॥१२०-१२२॥

तथा आप्तोमां आद्य आप्त, देवोना पण अधिदैवत, घातिकर्मरहित, अनंत चतुष्टयने पामेला, पृथ्वीतलने दूर छोडीने (ऊंचे) आकाश प्रदेशमां रहेला, पोताना परम औदारिक शरीरनी प्रभाथी सूर्य करतां पण अधिक तेजस्वी, महाआश्चर्यभूत चोत्रीश अतिशयो अने आठ प्रातिहार्योथी शोभता, मुनिवरो, तिर्यंचो, मनुष्यो अने देवताओनी पर्षदाओथी घेरायेला, जन्माभिषेक वगेरेमां प्राप्त थयेल पूजाना कारणे सौथी चढियाता, केवलज्ञानवडे निर्णीत विश्वतत्त्वोना उपदेशक, उज्ज्वल एवा अनेक लक्षणोथी व्याप्त, सर्वांग परिपूर्ण अने उन्नत देहवाळा, निर्मल (महान) स्फटिक रत्नमां प्रतिबिंबित प्रदीप्त ज्वालाओवाळा अग्नि समान उज्ज्वल, सर्व तेजोमां उत्तम तेज अने सर्व ज्योतिओमां उत्तम ज्योति स्वरूप एवा श्री अरिहंत परमात्मानुं मोक्षनी प्राप्ति माटे ध्यान करवुं ॥१२३-१२८॥

मुमुक्षुओवडे ध्यान कराता एवा आ देवाधिदेव वीतराग होवा छतां स्वर्ग के मोक्ष फळने आपनारा छे, कारण के तेमनी शक्ति ज ते प्रकारनी अचिंत्य छे ॥१२९॥

सम्यग्ज्ञानादिसम्पन्नाः, प्राप्तसप्तमहर्द्धयः ।
यथोक्तलक्षणा ध्येयाः, सूर्युपाध्यायसाधवः ॥ १३० ॥

एवं नामादिभेदेन, ध्येयमुक्तं चतुर्विधम् ।
अथवा द्रव्यभावाभ्यां, द्विधैव तदवस्थितम् ॥ १३१ ॥

द्रव्यध्येयं बहि-र्वस्तु, चेतनाऽचेतनात्मकम् ।
भावध्येयं पुनर्ध्येयसन्निभध्यानपर्ययः ॥ १३२ ॥

ध्याने हि बिभ्रति स्थैर्यं, ध्येयरूपं परिस्फुटम् ।
आलेखितमिवाभाति, ध्येयस्याऽसन्निधावपि ॥ १३३ ॥

धातुपिण्डे स्थितश्चैवं, ध्येयोऽर्थो ध्यायते यतः ।
ध्येयं पिण्डस्थमित्याहुरत एव च केवलम् ॥ १३४ ॥

यदा ध्यानबलाद्ध्याता, शून्यीकृत्य स्वविग्रहम् ।
ध्येयस्वरूपविष्टत्वात्, तादृक् सम्पद्यते स्वयम् ॥ १३५ ॥

तदा तथाविधध्यानसंवित्तिध्वस्तकल्पनः ।
स एव परमात्मा स्याद्, वैनतेयश्च मन्मथः ॥ १३६ ॥

सम्यग्ज्ञानादिथी संपन्न, सात महाऋद्धिओवाळा (?) अने शास्त्रोक्त लक्षणोवाळा आचार्य, उपाध्याय अने साधु भगवंतोनुं ध्यान करवु ॥ १३० ॥

एवी रीते नामादिभेदोथी चार प्रकारनुं ध्येय कह्यु, अथवा ते (ध्येय) द्रव्य अने भावभेदे बे प्रकारनुं ज छे ॥ १३१ ॥

चेतन के जडरूप बाह्य वस्तु ते द्रव्य-ध्येय छे अने ध्येय (अरिहंतादि) सदृश जे ध्याननो पर्याय ते भाव-ध्येय छे ॥ १३२ ॥

ध्यान ज्यारे स्थिरताने धारण करे छे, त्यारे ध्येय नजीक न होवा छतां पण जाणे (सामे) आलेखित होय एवु अत्यंत स्पष्ट भासे छे ॥ १३३ ॥

ए ज प्रकारे ज्यारे सप्त धातुना पिंडमां (देहमां) ध्येय वस्तुनुं ध्यान कराय छे त्यारे ते ध्येयने (ध्यानने) पिंडस्थ कहेवाय छे एथी ज केवल (कैवल्य, केवलज्ञान ?) प्राप्त थाय छे ॥ १३४ ॥

ज्यारे ध्याता ध्यानना बळे स्वदेहने (स्वआकृतिने) शून्य करीने ध्येयस्वरूपे विष्ट होवाथी स्वयं तेना जेवो बनी जाय छे, त्यारे तेवा प्रकारना ध्यानना संवेदनथी नाश पाम्या छे सर्व विकल्पो जेना एवो ते पोते ज परमात्मा, गरुड[1] अथवा कामदेव बनी जाय छे ॥ १३५-१३६ ॥

---

१ गरुड अने कामदेवना विशेषार्थ माटे जुओ श्लोक २०५।

सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतम् ।
एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वयफलप्रदः ॥ १३७ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन, ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वतः ।
ध्येयं समस्तमप्येतन्माध्यस्थ्यं तत्र बिभ्रता ॥ १३८ ॥
माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा, वैराग्यं साम्यमस्पृहा ।
वैतृष्ण्यं परमा शान्तिरित्येकोऽर्थोऽभिधीयते ॥ १३९ ॥
संक्षेपेण यदत्रोक्तं, विस्तरात्परमागमे ।
तत्सर्वं ध्यातमेव स्याद्ध्यातेषु परमेष्ठिषु ॥ १४० ॥

× × × ×

'अ'कारं मरुताऽऽपूर्य, कुम्भित्वा 'रेफ'वह्निना ।
दग्ध्वा स्ववपुषा कर्म, स्वतो भस्म विरेच्य च ॥ १८३ ॥
'ह' मन्त्रो नभसि ध्येयः, क्षरन्नमृतमात्मनि ।
तेनाऽन्यत्तद्विनिर्माय, पीयूषमयमुज्ज्वलम् ॥ १८४ ॥
तत्रादौ पिण्डसिद्ध्यर्थं, निर्मलीकरणाय च ।
मारुतीं तैजसीमाप्यां, विदध्याद्धारणां क्रमात् ॥ १८५ ॥

(आवी रीते परमात्मा साथेनो ध्यातानो अभेद) ते आ 'समरसीभाव' छे। ते ज 'एकीकरण' कहेवायुं छे। ए ज उभय लोकनां फळोने आपनारी 'समाधि' छे ॥ १३७ ॥

अहीं बहु कहेवाथी शुं? तात्त्विक रीते जाणीने, तेवी ज रीते तेना पर श्रद्धा करीने अने ए विषयमां *माध्यस्थ्य धारण करीने आ बधुं ध्यान करवुं जोइए ॥ १३८ ॥

माध्यस्थ्य, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, निःस्पृहता, वैतृष्ण्य, परमशान्ति—अे बधा शब्दो वडे एक ज अर्थ कहेवाय छे ॥ १३९ ॥

पंच परमेष्ठिओनुं ध्यान थतां ज, अहीं (पूर्वे) जे संक्षेपमां कह्युं छे अने परम आगमोमां जे विस्तारथी कहेवामां आव्युं छे, ते बधुं ध्यान थई ज जाय छे (अर्थात्—परमेष्ठिध्यानमां बीजुं बधुं सद्ध्यान आवी ज जाय छे) ॥ १४० ॥

'अर्हँ'नुं ध्यान

(पूरकना) वायुवडे 'अ'कारने पूरित करीने अने (कुंभकवडे) कुंभित करीने रेफमांथी नीकळता अग्निवडे पोताना शरीरनी साथे (शरीरने अने) कर्मोने बाळवां. पछी शरीर अने कर्मोना दहनथी थयेल भस्मनुं पोतामांथी विरेचन करवुं (ते भस्मने पोतामांथी दूर करवी). पछी जे आत्मा उपर अमृत झरावी रह्युं छे एवा 'ह'कार मन्त्रनुं आकाशमां ध्यान करवुं. पछी ते अमृतथी एक नवा अमृतमय उज्ज्वल

---

* माध्यस्थ्य शब्दना विशेष अर्थ माटे जुओ श्लोक १३९।

ततः पञ्चनमस्कारैः, पञ्चपिण्डाक्षरान्वितैः ।
पञ्चस्थानेषु विन्यस्तैर्विधाय सकलीक्रियाम् ॥ १८६ ॥
पश्चादात्मानमर्हन्तं, ध्यायेन्निर्दिष्टलक्षणम् ।
सिद्धं वा ध्वस्तकर्माणममूर्तं ज्ञानभास्वरम् ॥ १८७ ॥
नन्वनर्हन्तमात्मानमर्हन्तं ध्यायतां सताम् ।
अतस्मिंस्तद्ग्रहो भ्रान्तिर्भवतां भवतीति चेत् ॥ १८८ ॥
तन्न चोद्यं यतोऽस्माभिर्भावार्हन्नयमर्पितः ।
स चार्हद्ध्याननिष्ठात्मा, ततस्तत्रैव तद्ग्रहः ॥ १८९ ॥
परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति ।
अर्हद्ध्यानाविष्टो भावार्हन् स्यात्स्वयं तस्मात् ॥ १९० ॥
येन भावेन यद्रूपं, ध्यायत्यात्मानमात्मवित् ।
तेन तन्मयतां याति, सोपाधिः स्फटिको यथा ॥ १९१ ॥

शरीरनुं निर्माण करवु। तेमां प्रथम देह (पिंड)नी रचना माटे मारुती (वायवीय) धारणा करवी अने पछी देहने निर्मल बनाववा माटे तेजस्वी अने जलीय धारणा क्रमशः करवी, ते पछी पाच * पिंडाक्षरोथी युक्त अने शरीरना पांच स्थानोमां न्यास करायेला एवा पंच नमस्कारो वडे सकलीकरण करवुं। ते पछी जेमनुं स्वरूप पूर्वे कहेवामां आव्यु छे एवा श्री अरिहंत परमात्मारूपे अथवा कर्मरहित, अमूर्त अने ज्ञानवडे प्रकाशमान एवा श्री सिद्ध भगवंतरूपे पोताना आत्मानुं ध्यान करवुं ॥ १८३-१८७ ॥

शंका—

जो तमारो आत्मा अरिहंत नथी तो पछी तेनु अरिहंतरूपे ध्यान करता एवा तमने अतत्मां (जे जेवो नथी तेमां) तत्नी (तेवानी) मान्यतारूप भ्रान्ति तो नथी थती ने! ॥ १८८ ॥

समाधान—

एवी शंका न करवी, कारण के अमे अमारा आत्मानी भाव-अरिहंतरूपे अर्पणा (चिंतवना) करीए छीए। अरिहंतना ध्यानमां निष्ठ एवो आत्मा ते भाव-अरिहंत छे। तेथी अतत्मां तद्ग्रहरूप भ्रान्ति नथी किन्तु तत्मां (तेमां) ज तत्नी (तेनी) यथार्थ मान्यता छे ॥ १८९ ॥

जे (अरिहंतादि) भाववडे आत्मा परिणमे छे, ते (अरिहंतादि) भाववडे ते (आत्मा) तन्मय (अरिहंतादिमय) बने छे; तेथी अरिहंतना ध्यानमां निष्ठ एवो आत्मा ते (अरिहंतभाव) थकी पोते ज भाव अरिहंत थाय छे। उपाधि सहित एवा स्फटिक रत्ननी जेम आत्मज्ञ पुरुष जे (अरिहंतादि) भाववडे जे (अरिहंतादि) रूपे आत्मानु ध्यान करे छे, ते (अरिहंतादि) भाववडे तन्मयता (तद्भावरूपता)ने पामे छे (अर्थात् जेम स्फटिक-मणि सामे रहेली वस्तुनु रूप धारण करे छे, तेम आत्मा पण ध्यानवडे ध्येयमय बने छे) ॥ १९०-१९१ ॥

---

* आ पाच पिंडाक्षरो प्राय: ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः होवा जोईए।

अथवा भाविनो भूताः स्वपर्यायास्तदात्मकाः ।
आसते द्रव्यरूपेण, सर्वद्रव्येषु सर्वदा ॥ १९२ ॥
ततोऽयमर्हत्पर्यायो, भावी द्रव्यात्मना सदा ।
भव्येष्वास्ते सतश्चास्य, ध्याने को नाम विभ्रमः ॥ १९३ ॥
किञ्च भ्रान्तं यदीदं स्यात्, तदा नातः फलोदयः ।
न हि मिथ्याजलाज्जातु, विच्छित्तिर्जायते तृषः ॥ १९४ ॥
प्रादुर्भवन्ति चामुष्मात्, फलानि ध्यानवर्तिनाम् ।
धारणावशतः शान्तक्रूररूपाण्यनेकधा ॥ १९५ ॥
गुरूपदेशमासाद्य, ध्यायमानः समाहितैः ।
अनन्तशक्तिरात्मायं, मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति ॥ १९६ ॥
ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण, चरमाङ्गस्य मुक्तये ।
तद्ध्यानोपात्त-पुण्यस्य, स एवान्यस्य भुक्तये ॥ १९७ ॥
ज्ञानं श्रीरायुरारोग्यं, तुष्टिः पुष्टिर्वपुर्धृतिः ।
यत्प्रशस्तमिहान्यच्च, तत्तद्ध्यातुः प्रजायते ॥ १९८ ॥

बीजी रीते समाधान—

अथवा सर्व द्रव्योमां द्रव्यात्मक एवा भूत अने भविष्यना स्वपर्यायो द्रव्यरूपे सदा रहे छे—(अर्थात् प्रत्येक द्रव्यमां तेना भूत-भावि सर्व पर्यायो वर्तमानमां द्रव्यरूपे रहेला छे), तेथी सर्व भव्योमां भविष्यमां थनारा एवा आ 'अर्हत्पर्याय' द्रव्यरूपे सदा रहेला छे। तो पछी विद्यमान एवा ए पर्यायनुं ध्यान करवामां भ्रांति शी? ॥ १९२-१९३ ॥

वळी बीजा प्रकारे समाधान—

जो आ ध्यानने भ्रान्त मानवामां आवे तो, जेम कल्पित जलथी तृषानो नाश कदापि न ज थाय, तेवी रीते ए ध्यानथी फल प्राप्ति न थवी जोईए। किन्तु एथी ध्यानीओने धारणना बळे शान्त अने क्रूररूप अनेक प्रकारनां फळोनी प्राप्ति थती देखाय छे। एथी आत्मानुं अर्हद्रूपे ध्यान करवुं ते भ्रान्ति नथी ॥ १९४–१९५ ॥

ध्याननुं फळ—

श्री सद्गुरुना उपदेशने प्राप्त करीने समाहित योगीओ वडे ध्यायमान आ अनंत शक्तिशाळी आत्मा मुक्ति अने भुक्तिने आपे छे ॥ १९६ ॥

अर्हन्त अथवा सिद्धरूपे जेनुं ध्यान करायुं छे एवो आ आत्मा चरम शरीरीनी मुक्ति माटे थाय छे, अथवा ते ध्यानवडे प्राप्त कर्युं छे पुण्य जेणे एवा अन्य(अचरमशरीरी)नी भुक्ति माटे थाय छे ॥ १९७ ॥

(भुक्तिने बतावे छे—) ते ते प्रकारनुं ध्यान करनारने आ लोकमां अने परलोकमां जे जे प्रशंसनीय छे ते बधुं—ज्ञान, लक्ष्मी, दीर्घायु, आरोग्य, तुष्टि, पुष्टि, सुंदर शरीर, धैर्य, वगेरे प्राप्त थाय छे ॥ १९८ ॥

तद्ध्यानाविष्टमालोक्य, प्रकम्पन्ते महाग्रहाः ।
नश्यन्ति भूतशाकिन्यः, क्रूराः शाम्यन्ति च क्षणात् ॥ १९९ ॥
यो यत्कर्मप्रभुर्देवस्तद्ध्यानाविष्टमात्मनः ।
ध्याता तदात्मको भूत्वा, साधयत्यात्मवाञ्छितम् ॥ २०० ॥
पार्श्वनाथो भवन्मन्त्री, सकलीकृतविग्रहः[1] ।
महामुद्रां महामन्त्रं, महामण्डलमाश्रितः ॥ २०१ ॥
तैजसीप्रभृतीर्बिभ्रद्धारणाश्च यथोचितम् ।
निग्रहादीनुदग्राणां, ग्रहाणां कुरुते द्रुतम् ॥ २०२ ॥
स्वयमाखण्डलो भूत्वा, महामण्डलमध्यगः ।
किरीटकुण्डली वज्री, पीतभूषाम्बरादिकः ॥ २०३ ॥
कुम्भकी स्तम्भमुद्राद्यः(?), स्तम्भनं(न)मन्त्रमुच्चरन् ।
स्तम्भकार्याणि सर्वाणि, करोत्येकाग्रमानसः ॥ २०४ ॥
स स्वयं गरुडीभूय, क्ष्वेडं क्षपयति क्षणात् ।
कन्दर्पश्च स्वयं भूत्वा, जगन्नयति वश्यताम् ॥ २०५ ॥
एवं वैश्वानरो भूत्वा, ज्वलज्ज्वालाशताकुलः ।
शीतज्वरं हरत्याशु, व्याप्य ज्वालाभिरातुरम् ॥ २०६ ॥

अरिहंत अथवा सिद्धना ध्यानमां लयलीन एवा महात्माने जोईने मोटा मोटा ग्रहो पण कंपे छे. भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी, वगेरे दूरथी भागी जाय छे अने अत्यंत क्रूर एवा जंतुओ पण क्षणवारमां शांत बनी जाय छे ॥ १९९ ॥

जे देवता जे (शान्त्यादि) कर्मने साधवामां समर्थ होय तेना ध्यानथी आविष्ट एवो ध्याता तद्रूप (ते देवतारूप) थईने मनोवांछितने साधे छे ॥ २०० ॥

यथोचित रीते सकलीकरण विधानद्वारा शरीरने सुरक्षित करनार, महामुद्रा, महामंत्र अने महामंडलनो आश्रय करनार अने तैजसी वगेरे धारणाओ धारण करतो एवो मांत्रिक (स्वयं) पार्श्वनाथ थईने (श्री पार्श्वनाथनु अभेद ध्यान करीने) मोटा मोटा ग्रहोनो पण तरत ज निग्रह करे छे ॥ २०१-२०२ ॥

मुकुट, कुंडल वगेरे पहेरेला, हाथमां वज्र धारण करेला अने पीत वस्त्र तथा अलंकारोथी शोभता एवा इन्द्र जेवो ते बने छे अने महामंडलना मध्यभागमां रहीने तथा कुंभक प्राणायाम, स्तंभनमुद्रा वगेरे करीने स्तंभन-मंत्रने एकाग्र मनथी उच्चरतो ते सर्व स्तंभन कार्यो करे छे ॥ २०३-२०४ ॥

ते स्वयं गरुड थईने क्षणमात्रमां विषने हरे छे, तथा स्वयं कामदेव बनीने जगतने वश करे छे ॥२०५॥

एवी ज रीते जेमांथी सेंकडो जाज्वल्यमान ज्वाळाओ नीकळी रही छे एवा अग्निरूप बनीने पोतानी ज्वाळाओथी शीतज्वरथी पीडाती व्यक्तिने व्यापीने शीतज्वरने तरत ज हरे छे ॥ २०६ ॥

---

१ पाठान्तरम्— सफलीकृतविग्रहः ।

स्वयं सुधामयो भूत्वा, वर्षन्नमृतमातुरे ।
अथैनमात्मसात्कृत्य, दाहज्वरमपास्यति ॥ २०७ ॥

क्षीरोदधिमयो भूत्वा, प्लावयन्नखिलं जगत् ।
शान्तिकं पौष्टिकं योगी विदधाति शरीरिणाम् ॥ २०८ ॥

किमत्र बहुनोक्तेन, यद्यत्कर्म चिकीर्षति ।
तद्देवतामयो भूत्वा, तत्तन्निर्वर्तयत्ययम् ॥ २०९ ॥

शान्ते कर्मणि शान्तात्मा, क्रूरे क्रूरो भवन्नयम् ।
शान्तक्रूराणि कर्माणि, साध्यत्येव साधकः ॥ २१० ॥

आकर्षणं वशीकारः, स्तम्भनं मोहनं द्रुतिः ।
निर्विषीकरणं शान्तिर्विद्वेषोच्चाट-निग्रहाः ॥ २११ ॥

एवमादीनि कार्याणि, दृश्यन्ते ध्यानवर्त्तिनाम् ।
ततः समरसीभावसफलत्वान्न विभ्रमः ॥ २१२ ॥

यत्पुनः पूरणं कुम्भो, रेचनं दहनं प्लवः ।
सकलीकरणं मुद्रामन्त्रमण्डलधारणाः ॥ २१३ ॥

कर्माधिष्ठातृदेवानां, संस्थानं लिङ्गमासनम् ।
प्रमाणं वाहनं वीर्यं, जातिर्नाम द्युतिर्दिशा ॥ २१४ ॥

स्वयं अमृतमय थईने पीडित उपर अमृतने वरसावतो योगी, एने (पीडितने) आत्मसात् (स्वाधीन अथवा अमृतमय) करीने एना दाहज्वरने दूर करे छे ॥ २०७ ॥

स्वयं क्षीरसागरमय थईने सकल जगतने प्लावित (तृप्त) करतो योगी प्राणीओना शांतिकृत्य अने पुष्टिकृत्यने करे छे ॥ २०८ ॥

आ विषयमां बहु कहेवाथी शुं ? योगी जे जे कर्मने करवानी इच्छा करे छे ते ते कर्मना देवतारूपे स्वयं थईने ते ते कर्मनुं संपादन करे छे ॥ २०९ ॥

शांत कर्मोमां शांत थईने अने क्रूर कर्मोमां क्रूर थईने आ साधक शांत अने क्रूर कर्मोने साधे छे ॥२१०॥

ध्यान करनाराओमां आकर्षण, वशीकरण, स्तंभन, मोहन, द्रुति, निर्विषीकरण, शांति, विद्वेष, उच्चाटन, निग्रह, वगेरे अनेक कार्यो जोवामां आवे छे, तेथी ए रीते समरसीभाव (ध्याननी एकाग्रता) नी सफळता थती होवाथी ध्यान भ्रान्तिरूप नथी ॥ २११-२१२ ॥

ध्याननी सामग्री—

पूरक, कुंभक, रेचक, दहन, प्लावन, सकलीकरण, मुद्रा, मंत्र, मंडल, धारणा, ते ते कर्मना अधिष्ठायक देवताओनां संस्थान, चिह्न, आसन, प्रमाण, वाहन, वीर्य, जाति, नाम, कांति, दिशा,

भुजवक्त्रनेत्रसंख्या, भावः क्रूरस्तथेतरः ।
वर्णः स्पर्शः स्वरोऽवस्था, वस्त्रं भूषणमायुधम् ॥ २१५ ॥
एवमादि यदन्यच्च, शान्तक्रूराय कर्मणे ।
मन्त्रवादादिषु प्रोक्तं, तद्ध्यानस्य परिच्छदः ॥ २१६ ॥
यदात्रिकं फलं किञ्चित्, फलमामुत्रिकं च यत् ।
एतस्य द्वितयस्यापि, ध्यानमेवाग्रकारणम् ॥ २१७ ॥
ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो, हेतुरेतच्चतुष्टयम् ।
गुरूपदेशः श्रद्धानं, सदाभ्यासः स्थिरं मनः ॥ २१८ ॥

× × × ×

रत्नत्रयमुपादाय, त्यक्त्वा बन्धनिबन्धनम् ।
ध्यानमभ्यस्यतां नित्यं, यदि योगिन् मुमुक्षसे ॥ २२३ ॥
ध्यानाभ्यासप्रकर्षेण, त्रुटयन्मोहस्य योगिनः ।
चरमाङ्गस्य मुक्तिः स्यात्, तदाऽन्यस्य च क्रमात् ॥ २२४ ॥

भुजा-मुख-नेत्रोनी संख्या, क्रूर तथा शांतभाव, वर्ण, स्पर्श, स्वर, अवस्था, वस्त्र, आभूषण, आयुध वगेरे अने बीजुं जे कांई मंत्रशास्त्रादिमां शान्त तथा क्रूर कर्ममाटे कह्युं छे ते बधुं ध्याननुं साधन समजवुं ॥ २१३-२१६ ॥

जे कंई इहलौकिक फळ छे अने जे कंई पारलौकिक फळ छे, ते बन्नेनुं मुख्य कारण ध्यान ज छे ॥ २१७ ॥

ध्यानना मुख्य चार हेतुओ—

ध्यानना आ चार मुख्य हेतुओ छे—गुरुनो उपदेश, श्रद्धा, सदा अभ्यास अने स्थिर मन ॥ २१८ ॥

× × × ×

ध्यानाभ्यास माटे प्रेरणा—

हे योगिन् ! जो तने मुक्त थवानी इच्छा होय तो कर्मबंधना (परिग्रहादि) कारणोनो त्याग करीने अने रत्नत्रयनो अंगीकार करीने तु सदा ध्याननो अभ्यास कर ॥ २२३ ॥

ध्यानमां फळो—

ध्यानाभ्यासनी उत्तरोत्तर वृद्धि थवाथी नाश पामी रह्यो छे मोह जेनो एवो योगी जो ते चरमशरीरी होय तो ते ज भवमां तेनो मोक्ष थाय छे, बीजानी क्रमशः (थोडाक भवोमां) मुक्ति थाय छे ॥ २२४ ॥

तथा ह्यचरमाङ्गस्य, ध्यानमभ्यस्यतः सदा ।
निर्जरा संवरश्च स्यात्, सकलाऽशुभकर्मणाम् ॥ २२५ ॥

आश्रवन्ति च पुण्यानि, प्रचुराणि प्रतिक्षणम् ।
यैर्महर्द्धिर्भवत्येष, त्रिदशः कल्पवासिषु ॥ २२६ ॥

तत्र सर्वेन्द्रियामोदि, मनसः प्रीणनं परम् ।
सुखामृतं पिबन्नास्ते, सुचिरं सुरसेवितः ॥ २२७ ॥

ततोऽवतीर्य मर्त्येऽपि, चक्रवर्त्यादिसम्पदः ।
चिरं भुक्त्वा स्वयं मुक्त्वा, दीक्षां दैगम्बरीं श्रितः ॥ २२८ ॥

वज्रकायः स हि ध्यात्वा, शुक्लध्यानं चतुर्विधम् ।
विधूयाष्टापि कर्माणि, श्रयते मोक्षमक्षयम् ॥ २२९ ॥

× × × ×

सारश्चतुष्टयेऽप्यस्मिन्, मोक्षः सद्ध्यानपूर्वकः ।
इति मत्वा मया किञ्चिद्ध्यानमेव प्रपञ्चितम् ॥ २५२ ॥

यद्यप्यत्यन्तगम्भीरमभूमिर्मादृशामिदम् ।
प्रावर्तिषि तथाप्यत्र, ध्यानभक्तिप्रचोदितः ॥ २५३ ॥

अचरमशरीरीने प्राप्त थतां ध्यानां फळो—

अचरमशरीरीनी मुक्ति आ रीते थाय छेः—सदा ध्याननो अभ्यास करता अचरमशरीरी योगीने सर्व अशुभ कर्मोनी निर्जरा अने संवर थाय छे; अने प्रतिक्षण तेवा प्रचुरपुण्यकर्मोनो आश्रव थाय छे के जेमना उदयथी ते भवांतरमां कल्पवासी देवोमां महर्द्धिक देव थाय छे। त्यां (स्वर्गमां) सर्व इन्द्रियोने आल्हादक तथा मनने प्रसन्नता आपनार एवा श्रेष्ठ सुखरूप अमृतनुं पान करतो अने चिरकाल सुची देवोथी सेवातो ते सुखेथी रहे छे। ते पछी त्यांथी च्यवीने मर्त्य लोकमां पण चक्रवर्ति आदि पदोनी संपत्तिओने लांबा काळ सुची भोगवीने पोते ज (वैराग्यथी) छोडी दे छे अने दीक्षाने अंगीकार करे छे। ते काळे वज्रऋषभनाराच संघयणवाळो ते चार प्रकारनां शुक्लध्यानने आराधीने अने तेथी आठे प्रकारनां कर्मोनो नाश करीने अने अक्षय एवा मोक्षने पामे छे ॥२२५-२२९॥

× × × ×

'आ ग्रंथमां चार सारभूत तत्त्वो कह्यां छे—बंध, बंधना हेतुओ, मोक्ष अने मोक्षना हेतुओ। ए बधामां पण सारभूत मोक्ष छे। ते प्रशस्त ध्यानपूर्वक ज होय छे,' एम समजीने आ ग्रंथमां में ध्याननुं ज कंईक वर्णन कर्युं छे ॥२५२॥

जो के आ ध्यानविषय अत्यंत गंभीर छे, मारा जेवानी तेमां पहोंच नथी, छतां पण केवळ ध्यानपरनी भक्तिथी प्रेरायेला में अहीं प्रयत्न कर्यो छे ॥२५३॥

यदत्र स्खलितं, किञ्चिच्छाद्मस्थ्यादर्थशब्दयोः ।
तन्मे भक्तिप्रधानस्य क्षमतां श्रुतदेवता ॥ २५४ ॥
वस्तुयाथात्म्यविज्ञानश्रद्धानध्यानसम्पदः ।
भवन्तु भव्यसत्त्वानां, स्वस्वरूपोपलब्धये ॥ २५५ ॥

× × × ×

जिनेन्द्राः सद्ध्यानज्वलनहुतघातिप्रकृतयः,
प्रसिद्धाः सिद्धाश्च प्रहततमसः सिद्धिनिलयाः ।
सदाचार्या वर्याः सकलसदुपाध्यायमुनयः,
पुनन्तु स्वान्तं नस्त्रिजगदधिकाः पञ्च गुरवः ॥ २५८ ॥
देहज्योतिषि यस्य मज्जति जगद्दुग्धाम्बुराशाविव,
ज्ञानज्योतिषि च स्फुरत्यतितरां ॐभूर्भुवः-स्वस्त्रयी ।
शब्दज्योतिषि यस्य दर्पण इव स्वार्थाश्चकासत्यमी,
स श्रीमानमरार्चितो जिनपति-ज्योतिस्त्रयायाऽस्तु नः ॥ २५९ ॥

छद्मस्थताना कारणे अहीं शब्दोमां के अर्थमां जे कांई स्खलन थयुं होय तेनी भक्तिप्रधान एवा मने श्रुतदेवता क्षमा आपे ॥ २५४ ॥

भव्य जीवोने स्वस्वरूपनी प्राप्ति माटे यथार्थ विज्ञान, यथार्थ श्रद्धान अने यथार्थ ध्यानरूप संपत्तिओ प्राप्त थाओ ॥ २५५ ॥

× × ×

जेओए शुक्लध्यानरूप दावानलमां चार घातिकर्मनी प्रकृतिओने होमी दीधी छे एवा अरिहंत भगवंतो; जेओए अज्ञानांधकारनो नाश कर्यो छे तथा जेमनु निवासस्थान सिद्धिगति छे, एवा प्रसिद्ध सिद्ध भगवंतो; श्रेष्ठ एवा आचार्य भगवंतो; पूज्य एवा उपाध्याय भगवंतो अने साधु भगवंतो रूप पांच गुरुओ त्रणे लोकमां श्रेष्ठ छे। तेओ सौना हृदयने पवित्र करो ॥ २५८ ॥

जेमनी 'देहज्योतिमां' जगत जाणे क्षीरसमुद्रमां मज्जन करतुं होय एवुं देखाय छे, जेमनी 'ज्ञान-ज्योतिमां' पृथ्वी, पाताल अने स्वर्गरूप त्रयी अत्यंत स्पष्ट रीते प्रकाशे छे अने जेमनी 'शब्दज्योतिमां' (पांत्रीश गुणयुक्त वाणीमां) आ सर्व अर्थो दर्पणमां चमके तेम चळके छे ते अंतरंग-अनंत ज्ञानादि अने बहिरंगसमवसरणादिलक्ष्मीथी युक्त अने देवेन्द्रोथी पण पूजाएला एवा श्रीजिनपति अमारा ज्योतित्रय—(देह-ज्ञान-शब्द-ज्योति) माटे थाओ ॥ २५९ ॥

परिचय

श्रीमान् नागसेनाचार्यप्रणीत 'तत्त्वानुशासन' ए ध्यानविषयनो अद्भुत ग्रंथ छे। प्रत्येक ध्यानना अभ्यासी माटे तेनुं अवलोकन अत्यंत आवश्यक छे। अमारा तरफथी (जैनसाहित्यविकास मंडळ तरफथी) ए ग्रंथ अनुवाद साथे पूर्वे प्रगट थयल छे। ए ग्रंथमांथी अमे अहीं प्रस्तुत ग्रंथने योग्य 'सदर्भ' तारव्यो छे। आ बधु वर्णन सामान्यतः व्यवहार-ध्याननुं छे। ए ग्रंथमां निश्चय-आत्मालंबन ध्याननुं पण सुंदर वर्णन छे। ग्रंथकारनी अद्भुत प्रतिभाशक्तिने ग्रंथ स्वयं कही आपे छे। ए ग्रंथनी शैली उत्तम छे।

[७१-२६]

श्रीचन्द्रतिलकोपाध्यायरचितः
श्रीअभयकुमारचरित-संदर्भः

(क)

परमेष्ठिन एतेऽत्रार्हन्तः सिद्धाश्च सूरयः।
उपाध्याया मुनिश्रेष्ठा इति पञ्च भवन्त्यहो ! ॥ ३६ ॥
अर्हन्तः प्रातिहार्याद्यां, पूजामर्हन्ति तामिति।
विख्याता अरिहन्तारः, कर्मारिहननात् पुनः ॥ ३७ ॥
तथा भवन्त्यरुहन्तः, कर्मबीजौघदाहतः।
सर्वकर्मक्षयात् सिद्धाः, पञ्चदशभिदा इति ॥ ३८ ॥
स्त्रीस्वान्यगृहिलिङ्गैकतीर्थतीर्थकरेतर—
पुंपण्ढानेकप्रत्येकस्वयंबुद्धान्यबोधिताः ॥ ३९ ॥
ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपो-वीर्यस्वरूपकैः।
आचारैः पञ्चभिर्युक्ता, आचार्या अनुयोगिनः ॥ ४० ॥
उपाध्यायाः सदा शिष्यस्वाध्यायाध्ययनोद्यताः।
क्रियासमुदयैर्मोक्षं, साधयन्तश्च साधवः ॥ ४१ ॥

अनुवाद

अहीं अरिहंतो, सिद्धो, आचार्यो, उपाध्यायो अने मुनिवरो ए पांच परमेष्ठीओ छे ॥ ३६ ॥

प्रातिहार्य वगेरे पूजाने योग्य होवाथी 'अर्हन्त' कहेवाय छे अथवा कर्मरूप शत्रुने हणनारा होवाथी 'अरिहंत' नामे विख्यात छे तथा कर्मबीजोना समूहने बाळी नाखेल होवाथी तेओ 'अरुहन्त' पण कहेवाय छे। सकल कर्मोनो क्षय करवाथी 'सिद्धो' कहेवाय छे। तेओ पंदर प्रकारे छे ॥ ३७-३८ ॥

ते पंदर भेद आ प्रकारे छेः—

१ स्वलिंगसिद्ध, २ अन्यलिंगसिद्ध, ३ गृहिलिंगसिद्ध, ४ तीर्थसिद्ध, ५ अतीर्थसिद्ध, ६ एकसिद्ध, ७ अनेकसिद्ध, ८ तीर्थंकरसिद्ध, ९ अतीर्थंकरसिद्ध, १० पुंलिंगसिद्ध, ११ स्त्रीलिंगसिद्ध, १२ नपुंसकलिंगसिद्ध, १३ स्वयंबुद्धसिद्ध, १४ बुद्धबोधितसिद्ध अने १५ प्रत्येकबुद्धसिद्ध ॥ ३९ ॥

आचार्यो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप अने वीर्यरूप पांच आचारोथी युक्त अने आगम ग्रंथोनो अनुयोग (व्याख्यानादि) करनारा होय छे ॥ ४० ॥

शिष्योने स्वाध्याय कराववामां अने पोताना अध्ययनमां सदा उद्यमशील होवाथी 'उपाध्यायो' कहेवाय छे, अने क्रिया समूहो (विविध प्रकारनी क्रियाओ) वडे मोक्षने साधनारा 'साधुओ' कहेवाय छे ॥ ४१ ॥

दिवा रात्रौ सुखे दुःखे, शोके हर्षे गृहे बहिः।
क्षुधि तृप्तौ गमे स्थाने, ध्यातव्याः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

परमेष्ठिनमस्कारः, सारः सद्धर्मकर्मसु।
नवनीतं यथा दध्नि, कवित्वे च यथा ध्वनिः ॥ ४३ ॥

मातसारं स्मृतादस्माज्ज्वलनोऽपि जलायते।
मालायते भुजङ्गोऽपि, विषमप्यमृतायते ॥ ४४ ॥

हारायते कृपाणोऽपि, सिंहोऽपि हरिणायते।
मित्रायते सपत्नोऽपि, दुर्जनः सज्जनायते ॥ ४५ ॥

अरण्यानि गृहाणीव, स्वचौरा अपि रक्षकाः।
क्रूरा अपि ग्रहाः सानुग्रहाः क्षिप्रं भवन्ति च ॥ ४६ ॥

जनयन्ति सुशकुनफलं कुशकुना अपि।
दुःस्वप्ना अपि सुस्वप्ना, इव स्युरचिरादपि ॥ ४७ ॥

जनन्य इव शाकिन्यो, वात्सल्यं दधतेतराम्।
कराला अपि वेताला, जायन्ते जनका इव ॥ ४८ ॥

दुर्मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रादिप्रयोगाः प्रभवेयु च।
किंयद् घूका विजृम्भते, सहस्रकिरणोदये ॥ ४९ ॥

दिवसे के रात्रे, सुखमां के दुःखमां, शोकमां के हर्षमां, घरमां के बहार, भूखमां के तृ
गमनमां के स्थानमां (स्थिरतामां) परमेष्ठीओनुं ध्यान करवुं जोईए ॥ ४२ ॥

जेम दहींमां माखण अने कवितामां ध्वनि सारभूत छे तेम जिनोक्त धर्मानुष्ठानोमां परमेष्ठि-नम
सारभूत छे ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठ मातृपूर्वक पंचपरमेष्ठि नमस्कार महामंत्रनुं स्मरण करवाथी अग्नि जल बनी जाय छे,
पण पुष्पनी माळा बनी जाय छे अने विष पण अमृत बनी जाय छे, कृपाण पण हाररूप बनी जाय
सिंह पण हरण बनी जाय छे, शत्रु पण मित्र बनी जाय छे, दुर्जन पण सज्जन बनी जाय छे, अ
पण घरो बनी जाय छे, चोरो पण रक्षक बनी जाय छे, क्रूर एवा ग्रहो पण शीघ्रतः अनुग्रह क
बनी जाय छे, नठारा शकुनो पण सारां शकुनो जेवुं फळ आपे छे, दुष्ट स्वप्नो पण सारां स्वप्नो
तरूप बनी जाय छे, शाकिनीओ पण अत्यन्त वात्सल्यभाव बतावनारी माता जेवी बनी जाय
विकराळ वेताळो पण पिता जेवा (हितकर) बनी जाय छे अने दुष्ट मंत्रो, तंत्रो अने यंत्रो वगेरेना प्र
पण असमर्थ बनी जाय छे। सूर्यनो उदय थया पछी घूवडो क्यां सुधी क्रीडा करी शके ! ॥ ४४-४९

अत एव महामन्त्र, एषः स्मर्यत कोविदैः ।
जागरे शयने स्थाने, गमने स्खलने क्षुते ॥ ५० ॥
इह लोकेऽर्थ-कामाद्या, नमस्कारप्रभावतः ।
परत्र सत्कुलोत्पत्तिः, स्वर्गः सिद्धिश्च जायते ॥ ५१॥

एथी ज पंडित पुरुषो जागृत स्थितिमां अने शयनकाले, स्थिरतामां अने गमनमां, स्खलनमां अने छींक पछी आ महामंत्रनुं स्मरण करे छे ॥ ५० ॥

नमस्कारना प्रभावथी आ लोकमां अर्थ, काम वगेरेनी प्राप्ति अने परलोकमां उच्चकुलमां जन्म वगेरे तथा स्वर्ग अथवा मोक्षनी प्राप्ति थाय छे ॥ ५१ ॥

परिचय

श्रीचन्द्रतिलक उपाध्याये रचेला 'श्रीअभयकुमारचरित' ना सर्ग ११, पृ० ६४४–६४६ मांथी पंचपरमेष्ठी संबंधी आ संदर्भ तारवीने तेने अनुवाद साथे अहीं प्रगट कर्यो छे।

श्रीचन्द्रतिलक उपा० श्रीजिनेश्वरसूरिना शिष्य हता, तेमणे ९०३६ श्लोक प्रमाणनो 'श्री अभय-कुमारचरित' ग्रंथ वि सं० १३१२ मां रच्यो हतो।

आ संदर्भमां पांच परमेष्ठीओनो महिमा अने तेमनी आराधनानुं फल दर्शाव्युं छे।

श्रीरत्नमण्डनगणिविरचितः सुकृतसागरसंदर्भः

(ख)

मन्त्रः पञ्चनमस्कारः, कल्पकारस्कराधिकः ।
अस्ति प्रत्यक्षराष्टाग्रोत्कृष्टविद्यासहस्रकः ॥ ७६ ॥
चौरो मित्रमहिर्माला, वह्निर्वारि जलं स्थलम् ।
कान्तारं नगरं सिंहः, शृगालो यत्प्रभावतः ॥ ७७ ॥

अनुवाद

पंचनमस्कार-मंत्र कल्पवृक्षथी अधिक (प्रभाववाळो) छे। तेना प्रत्येक अक्षर उपर एक हजार ने आठ महा-विद्याओ रहेली छे, तेना प्रभावथी चोर मित्र बने छे, सर्प माला बने छे, अग्नि जल बने छे, जल स्थल बने छे, अटवी नगर बने छे अने सिंह शियाळ बने छे ॥ ७६-७७ ॥

लोकद्विट्प्रियानर्थघातकादेः स्मृतोऽपि यः ।
मोहनोच्चाटनाकृष्टिकार्मणस्तम्भनादिकृत् ॥ ७८ ॥
दूरयत्यापदः सर्वाः, पूरयत्यथ कामनाः ।
राज्य-स्वर्गापवर्गांस्तु, ध्यातो योऽमुत्र यच्छति ॥ ७९ ॥
श्रीपार्श्वप्रतिमापूजाधूपोत्क्षेपादिपूर्वकम् ।
तमेकाग्रमनाः पूतवपुर्वस्त्रोऽनिशं जपेत् ॥ ८० ॥

ते (पंच-नमस्कार-मंत्र) स्मरणमात्रथी पण लोक, द्वेषी, प्रिया (स्त्री), अनर्थ करवा योग्य अने घातक मारनार वगेरेविशे अनुक्रमे मोहन (मोह पमाडवुं), उच्चाटन (उचाटो लागवुं), आकर्षण (खेंचवुं), कामण (वश करवुं), अने स्तम्भन (थमावी देवुं) वगेरे करनार थाय छे ॥ ७८ ॥

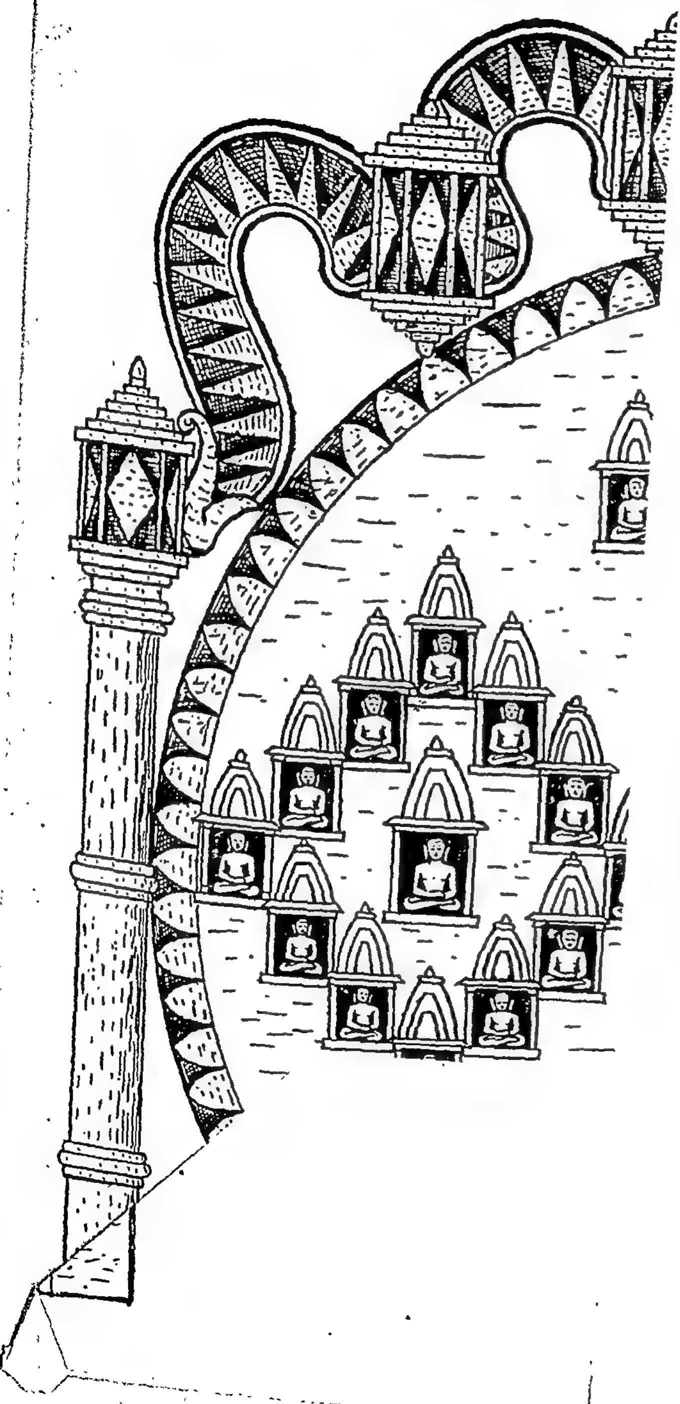
(सारी रीते) ध्यान करायेलो (पंच—नमस्कार मंत्र) आ लोकमां सर्व आपदाओने दूर करे छे तथा सर्व कामनाओने पूर्ण करे छे, तथा जे परलोकमां राज्य, स्वर्ग अने मोक्ष आपे छे ॥ ७९ ॥

ते मंत्रनो श्री पार्श्वनाथ भगवाननी प्रतिमानी पूजा तथा धूपोत्क्षेपादिपूर्वक, पवित्र शरीर अने वस्त्र वडे तथा मननी एकाग्रता वडे तुं निरंतर जाप कर ॥ ८० ॥

परिचय

आ संदर्भ 'सुकृत-सागर' अपर नाम 'पेथडचरित्र'ना पञ्चम तरङ्ग पृष्ठ २१ परथी लेवामां आव्यो छे। आ ग्रन्थ श्री आत्मानंद जैन सभा, भावनगरथी वि. सं. १९७१ मां प्रकाशित थयो छे। तेना ग्रन्थना कर्ता श्रीसोमसुन्दरसूरिना शिष्य श्रीरत्नमण्डनगणि छे। तेओ विक्रमनी पंदरमी शताब्दिमां थयेल छे। 'जल्प-कल्पलता' नामनो तेमनो कवित्वपूर्ण ग्रन्थ सुप्रसिद्ध छे। आ संदर्भमां नवकारनो महिमा वर्णव्यो छे अने विविध प्रकारना उपद्रवो आ नवकारना स्मरणथी शमी जाय छे तेम जणाव्युं छे।





(शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्)

विश्वस्मिन्नपि विष्टपे दिनकरीभूतं महातेजसा,
यैरर्हद्भिरितेषु तेषु नियतं मोहान्धकारं महत्।
जातं तत्र च दीपतामखिलतां प्रापुः प्रकाशोद्गमा-
दाचार्याः प्रथयन्तु ते तनुभृतामात्म-प्रबोधोदयम् ॥ ४ ॥

(उपजाति-वृत्तम्)

पाषाण-तुल्योऽपि नरो यदीयप्रसाद-लेशाल्लभते सपर्याम्।
जगद्धितः पाठक-संचयः स कल्याणमालां वितनोत्वभीक्ष्णम् ॥ ५ ॥

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

संसारनीरधिमवेत्य दुरन्तमेव,
यैः संयमाख्य-वहनं प्रतिपन्नमाशु।
ते साधकाः शिवपदस्य जिनाभिषेके (?),
साधुव्रता विरचयन्तु महाप्रबोधम् ॥ ६ ॥

समग्र विश्वमां महान् तेजवडे सूर्यरूपे थईने रहेला एवा तीर्थंकरोना निर्वाण प[...] मोहान्धकार फेलाई गयो, ते वखते जेओ प्रकाशना उद्गमथी अखंड दीपकपणाने पाम्या, ते [...] प्राणीओना आत्मज्ञानना विकासनो विस्तार करो ॥ ४ ॥

जेमनी कृपाना लेशथी पत्थर समान पुरुष पण पूजाने प्राप्त करे छे, ते जगतनुं हि[...] उपाध्याय-वर्ग निरन्तर कल्याणनी परंपरानो विस्तार करो ॥ ५ ॥

'संसार समुद्र दुःखे करीने पार पामी शकाय एवो छे', एम जाणीने जेमणे चारित्ररूपी [...] शीघ्र अंगीकार कर्युं, ते शिवपदना साधक मुनिवरो (?) महाप्रबोधनी रचना करो ॥ ६ ॥

परिचय

आचार्य श्री वर्धमानसूरिविरचित 'आचार-दिनकर' (प्रका० : खरतरगच्छ ग्रन्थमाला पांजरापोळ, लालबाग, मुंबई-४; मुद्रक : निर्णयसागर प्रेस, मुंबई-२) नामक ग्रंथना द्वितीय पृष्ठ १५९ परथी आ श्लोको तारववामां आव्या छे।

श्रीरत्नमंदिरगणिविरचितः
उपदेशतरङ्गिण्यान्तर्गतः संदर्भः

(घ)

विमुच्य निद्रां चरमे त्रियामा-यामार्धभागे शुचिमानसेन ।
दुष्कर्मरक्षोदमनैकदक्षो ध्येयस्त्रिधा श्रीपरमेष्ठिमन्त्रः ॥ १ ॥

किमत्र मन्त्रौषधि-मूलिकाभिः, किं गारुड-स्वर्ग-मणीन्द्रजालैः ।
स्फुरन्ति चित्ते यदि मन्त्रराज-पदानि कल्याण-पद-प्रदानि ॥ २ ॥

श्रीमन्नमस्कार-पदानि सर्व-सिद्धान्तसाराणि नवापि नूनम् ।
आद्यानि पञ्चातिमहान्ति तेषु, मुख्यं महाध्येयमिहामनन्ति ॥ ३ ॥

पञ्चतायाः क्षणे पञ्च, रत्नानि परमेष्ठिनाम् ।
आस्ये ददा(धा)ति यस्तस्य, सद्गतिः स्याद् भवान्तरे ॥ ४ ॥

अनुवाद

रात्रिना छेल्ला प्रहरनो अर्धभाग बाकी रहे त्यारे निद्राने छोडीने दुष्ट-कर्मरूपी राक्षसनुं दमन करवामां अत्यन्त चतुर एवा श्री परमेष्ठिमंत्रनुं पवित्र मनवाळा थईने मन-वचन-कायाथी ध्यान करवुं जोईए ॥ १ ॥

जो चित्तने विषे कल्याणनां पदने आपनारां पंच-परमेष्ठि-नमस्कार रूपी मंत्रराजनां पदो स्फुरायमान छे, तो पछी मंत्र अने औषधिओनां मूळो वडे के गारुड (मरकत) मणि, चिंतामणि के इन्द्रजालोनुं शुं काम छे? ॥ २ ॥

श्री नमस्कारनां नवे पदो खरेखर सर्व सिद्धान्तमां सारभूत छे। तेमां पहेलां पांच पदो अति-महान् छे अने तेमां पण मुख्य पहेला पदने सत्पुरुषो महाध्येय तरीके स्वीकारे छे[1] ॥ ३ ॥

मरणना क्षणे पांच परमेष्ठिरूपी पांच रत्नोने जे मुखने विषे धारण करे छे, तेनी भवान्तरने विषे सद्गति थाय छे ॥ ४ ॥

---

१ छेल्ला बे चरणनो बीजो अर्थ—तेमां पण प्रथम पांच पदो अति महान् छे। कारण के विद्वानो तेमने प्रधान ध्येय तरीके माने छे।

श्रीवर्धमानसूरिविरचितः
आचारदिनकरसंदर्भः

(ग)

(उपजाति-वृत्तम्)

अर्हन्त ईशाः सकलाश्च सिद्धा, आचार्यवर्या अपि पाठकेन्द्राः ।
मुनीश्वराः सर्व-समीहितानि, कुर्वन्तु रत्नत्रय-युक्तिभाजः ।। १ ।।

(शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्)

विश्वाग्र-स्थितिशालिनः समुदयासंयुक्त-सन्मानसा-
नानारूप-विचित्र-चित्र-चरिताः सन्त्रासितान्तर्द्विपः ।
सर्वाध्व-प्रतिभासनैक-कुशलाः सर्वैर्नताः सर्वदा,
श्रीमत्तीर्थकरा भवन्तु भविनां व्यामोह-विच्छित्तये ।। २ ।।

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

यद्दीर्घकाल-सुनिकाचित-बन्धबद्ध-,
मष्टात्मकं विषम-चारमभेद्य-कर्म ।
तत्सन्निहत्य परमं पदमापि यैस्ते,
सिद्धा दिशन्तु महतीमिह कार्यसिद्धिम् ।। ३ ।।

अनुवाद

रत्नत्रयनी सम्यक्ताने धारण करनारा ऐश्वर्यशाली अरिहंतो, सर्व सिद्धो, आचार्यवर्यो, उपाध्यायो अने मुनीश्वरो सौनी बधी अभिलाषाओ (पूर्ण) करो ॥ १ ॥

(विशिष्ट प्रकारना तथाभव्यत्वना कारणे आ) विश्वमां सर्वदा उत्तम स्थितिथी शोभता, सर्व जीवोना परम हितने विषे पोताना सुंदर मानसने जोडनारा, नाना प्रकारना चित्रविचित्र चरित्रवाळा, आन्तरशत्रुओने सारी रीते त्रास पमाडनारा, (मोक्षना) बधा मार्गोने (योगोने) प्रकाशित करवामां अद्वितीय कुशल, सर्व जीवो वडे नमन करायेला अने सर्व इच्छितने आपनारा एवा तीर्थंकरो भव्य-प्राणीओना मोहनो विच्छेद करनारा थाओ ॥ २ ॥

लांबी स्थितिवाळा, अत्यन्त निकाचित (गाढ) बन्धथी बंधायेला, विषम विपाकवाळा अने दुर्भेद्य एवा आठे प्रकारना कर्मोनो सारी रीते नाश करीने जेमणे परम-पद(मुक्ति)ने प्राप्त कर्युं ते सिद्धो अहीं महान् कार्यसिद्धि आपो ॥ ३ ॥

(शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्)

विश्वस्मिन्नपि विष्टपे दिनकरीभूतं महातेजसा,
यैरर्हद्भिरितेषु तेषु नियतं मोहान्धकारं महत् ।
जातं तत्र च दीपतामविकलां प्रापुः प्रकाशोद्गमा-
दाचार्याः प्रथयन्तु ते तनुभृतामात्म-प्रबोधोदयम् ॥ ४ ॥

(उपजाति-वृत्तम्)

पाषाण-तुल्योऽपि नरो यदीयप्रसाद-लेशाल्लभते सपर्याम् ।
जगद्धितः पाठक-संचयः स कल्याणमालां वितनोत्वभीक्ष्णाम् ॥ ५ ॥

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

संसारनीरधिमवेत्य दुरन्तमेव,
यैः संयमास्त्य-वहनं प्रतिपन्नमाशु ।
ते साधकाः शिवपदस्य जिनाभिषेके (?),
साधुमता विरचयन्तु महाप्रबोधम् ॥ ६ ॥

समग्र विश्वमां महान् तेजवडे सूर्यरूपे थईने रहेला एवा तीर्थंकरोना निर्वाण पछी महान् मोहान्धकार फेलाई गयो, ते वखते जेओ प्रकाशना उद्गमथी अखंड दीपकपणाने पाम्या, ते आचार्यो प्राणीओना आत्मज्ञानना विकासनो विस्तार करो ॥ ४ ॥

जेमनी कृपाना लेशथी पत्थर समान पुरुष पण पूजाने प्राप्त करे छे, ते जगतनुं हित करनार उपाध्याय-वर्ग निरंतर कल्याणनी परंपरानो विस्तार करो ॥ ५ ॥

'संसार समुद्र दुःखे करीने पार पामी शकाय एवो छे', एम जाणीने जेमणे चारित्ररूपी वहाणने शीघ्र अंगीकार कर्युं, ते शिवपदना साधक मुनिवरो (?) महाप्रबोधनी रचना करो ॥ ६ ॥

परिचय

आचार्य श्री वर्धमानसूरिविरचित 'आचार-दिनकर' (प्रका० : खरतरगच्छ ग्रन्थमाला पुष्प २, पांजरापोळ, लालबाग, मुंबई-४; मुद्रक : निर्णयसागर प्रेस, मुंबई-२) नामक ग्रंथना द्वितीय विभागना पृष्ठ १५९ परथी आ श्लोको तारववामां आव्या छे।

श्रीरत्नमंदिरगणिविरचितः
उपदेशतरङ्गिण्यान्तर्गतः संदर्भः

(घ)

विमुच्य निद्रां चरमे त्रियामा-यामार्धभागे शुचिमानसेन ।
दुष्कर्मरक्षोदमनैकदक्षो ध्येयस्त्रिधा श्रीपरमेष्ठिमन्त्रः ॥ १ ॥

किमत्र मन्त्रौषधि-मूलिकाभिः, किं गारुड-स्वर्ग-मणीन्द्रजालैः ।
स्फुरन्ति चित्ते यदि मन्त्रराज-पदानि कल्याण-पद-प्रदानि ॥ २ ॥

श्रीमन्नमस्कार-पदानि सर्व-सिद्धान्तसाराणि नवापि नूनम् ।
आद्यानि पञ्चातिमहान्ति तेषु, मुख्यं महाध्येयमिहामनन्ति ॥ ३ ॥

पञ्चतायाः क्षणे पञ्च, रत्नानि परमेष्ठिनाम् ।
आस्ये ददा(धा)ति यस्तस्य, सद्गतिः स्याद् भवान्तरे ॥ ४ ॥

अनुवाद

रात्रिना छेल्ला प्रहरनो अर्धभाग बाकी रहे त्यारे निद्राने छोडीने दुष्ट-कर्मरूपी राक्षसनुं दमन करवामां अत्यन्त चतुर एवा श्री परमेष्ठिमंत्रनुं पवित्र मनवाळा थईने मन-वचन-कायाथी ध्यान करवुं जोईए ॥ १ ॥

जो चित्तने विषे कल्याणनां पदने आपनारां पंच-परमेष्ठि-नमस्कार रूपी मंत्रराजनां पदो स्फुरायमान छे, तो पछी मंत्र अने औषधिओनां मूळो वडे के गारुड (मरकत) मणि, चिंतामणि के इन्द्रजालोनुं शुं काम छे ? ॥ २ ॥

श्री नमस्कारनां नवे पदो खरेखर सर्व सिद्धान्तमां सारभूत छे । तेमां पहेलां पांच पदो अतिमहान् छे अने तेमां पण मुख्य पहेला पदने सत्पुरुषो महाध्येय तरीके स्वीकारे छे। ॥ ३ ॥

मरणना क्षणे पांच परमेष्ठिरूपी पांच रत्नोने जे मुखने विषे धारण करे छे, तेनी भवान्तरने विषे सद्गति थाय छे ॥ ४ ॥

---

१ छेल्ला बे चरणनो बीजो अर्थ—तेमां पण प्रथम पांच पदो अति-महान् छे। कारण के विद्वानो तेमने प्रधान ध्येय तरीके माने छे।



पञ्चादौ यत्पदानि त्रिभुवनपतिभिर्व्याहृता पञ्चतीर्थी,
तीर्थान्येवाष्टषष्टिर्जिनसमय-रहस्यानि यस्याक्षराणि ।
यस्याष्टौ सम्पदश्चानुपमभतमहासिद्धयोऽद्धैत शक्ति-
र्जीयाल्लोकद्वयस्याभिलषित-फलदः 'श्रीनमस्कारमन्त्रः' ॥ ५ ॥
भोअणसमए सयणे, विबोहणे पवेसणे भए वसणे ।
पंच-नमुक्कारं खलु, समरिज्जा सव्वकालं पि ॥ ६ ॥
याताः प्रयान्ति यास्यन्ति, पारं संसार-वारिधेः ।
परमेष्ठि-नमस्कारं, स्मारं स्मारं घना जनाः ॥ ७ ॥
स्वस्यैकच्छत्रतां विश्वे, पापानि विमृशन्तु मा ।
अघमर्षण-मन्त्रेऽस्मिन्, सति श्रीजिन-शासने ॥ ८ ॥
सिंहेनेव मदान्ध-गन्धकरिणो मित्रांशुनेव क्षपा-
ध्वान्तौघा विधुनेव तापनतयः कल्पद्रुणेवाधयः ।
तार्क्ष्येणेव फणाभृतो घनकदम्बेनेव दावाग्नयः,
सत्त्वानां परमेष्ठिमन्त्रमहसा यान्ति नोपद्रवाः ॥ ९ ॥

जेना पहेलां पांच पदोने त्रैलोक्यपति श्रीतीर्थंकर देवोए पंचतीर्थी* तरीके कह्यां छे, जेना जिनसिद्धान्तना रहस्य-सारभूत एवा अडसठ अक्षरोने अडसठ तीर्थो तरीके वखाण्या छे, जेनी आठ सम्पदाओने अत्यन्त अनुपम एवी आठ सिद्धिओ तरीके वर्णवेली छे, जेनी शक्तिनी जगतमां जोड नथी अने जे बन्ने लोकने विषे इच्छित फल आपनार छे ते श्री नमस्कारमंत्र जय पामो ॥ ५ ॥

भोजन समय, शयन समय, जागवानो समय, प्रवेश समय, भय समय, संकट समय, वगेरे सर्व समये पंच-नमस्कारनुं अवश्य स्मरण करो ॥ ६ ॥

परमेष्ठि-नमस्कारने वारंवार स्मरण करीने घणा लोको संसार-सागरना पारने पाम्या छे, पामे छे अने पामशे ॥ ७ ॥

श्री जिनशासनने विषे पापनो नाश करनार आ मंत्र विद्यमान छते "विश्वमां पोतानी एक छत्रता छे" एम पापो—दुष्कर्मो कदी पण न विचारे—(न माने)। ॥ ८ ॥

सिंहथी जेम मदोन्मत्त गन्धहस्तिओ, सूर्यथी जेम रात्रिसंबंधी अंधकारना समूहो, चन्द्रथी जेम ताप-संतापनी परंपराओ, कल्पवृक्षथी जेम मननी चिंताओ, गरुडथी जेम फणीधर-विषधरो अने मेघ-समुदायथी जेम दावानलो शान्त थाय छे, तेम श्री-पंच-परमेष्ठि-मंत्रना तेजथी प्राणिओना उपद्रवो नाश पामे छे ॥ ९ ॥

---

* अरिहंतना आद्य अक्षर 'अ' थी अष्टापदतीर्थ, सिद्धना आद्य अक्षर 'सि' थी सिद्धाचल, आचार्यना आद्य अक्षर 'आ' थी आबूजी, उपाध्यायना आद्य अक्षर 'उ' थी उज्जयन्त (गिरनारजी) अने साधुना आद्य अक्षर 'स' थी सम्मेतशिखर, ए रीते पांच तीर्थो लई शकाय।

सङ्ग्राम-सागर-करीन्द्र-भुजङ्ग-सिंह-
दुर्व्याधि-वह्नि-रिपु-बन्धन-सम्भवानि ।
चौर-ग्रह-भ्रम-निशाचर-शाकिनीनां,
नश्यन्ति पञ्च-परमेष्ठि-पदैर्भयानि ॥ १० ॥

ध्यातोऽपि पापशमनः परमेष्ठि-मन्त्रः,
किं स्यात्तपःप्रबलितो विधिनार्चितश्च ।
दुग्धं स्वयं हि मधुरं क्वथितं तु युक्त्या,
सम्मिश्रितं च सितया वसुधा-सुधेव ॥ ११ ॥

आकृष्टिं सुर-सम्पदां विदधती मुक्ति-श्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततां मोहस्य सम्मोहनम् ,
पायात् पञ्च-नमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥ १२ ॥

यो लक्षं जिनबद्ध-लक्ष्य-सुमनाः सुव्यक्त-वर्णक्रमः,
श्रद्धावान् विजितेन्द्रियो भवहरं मन्त्रं जपेच्छ्रावकः ।
पुष्पैः श्वेत-सुगन्धिभिश्च विधिना लक्ष-प्रमाणैर्जिनं,
यः सम्पूजयते स विश्वमहितः श्रीतीर्थराजो भवेत् ॥ १३ ॥

पंच-परमेष्ठिनां पदोवडे रण-संग्राम, सागर, हाथी, सर्प, सिंह, दुष्टव्याधि, अग्नि, शत्रु अने बंधनथी उत्पन्न तथा चोर, ग्रह, भ्रम, राक्षस अने शाकिनीथी थनारां भयो नाश पामे छे ॥ १० ॥

परमेष्ठि-मंत्र स्मरण करवा मात्रथी पापने शमावनारो थाय छे, तो पछी तपथी प्रबल करायेलो अने विधिथी पूजायेलो (आ मंत्र) शुं न करे? दूध पोतानी मेळे ज मधुर छे, पण युक्तिथी उकाळेलुं अने साकरथी मिश्रित करेलुं होय तो ते पृथ्वीना अमृत-तुल्य बने छे ॥ ११ ॥

ते पंच-परमेष्ठि-नमस्क्रियाना अक्षर स्वरूप आराधना देवता (तमारुं) रक्षण करो के जे सुर-संपदाओनुं आकर्षण छे, मुक्तिरूपी लक्ष्मीनुं वशीकरण करे छे, संसारनी चार गतिओमां रहेली विपदाओनुं उच्चाटन करे छे, आत्माना पापोनुं विद्वेषण करे छे, दुर्गतिमां जवा माटे प्रयत्न करता जीवोनुं स्तम्भन करे छे अने मोहनुं संमोहन करे छे ॥ १२ ॥

श्री जिनेश्वरमां दृढ थयुं छे लक्ष्य (ध्यान) जेनुं एवो अने एथी पवित्र मनवाळो, सुस्पष्ट वर्णक्रम-(वर्णोच्चार)वाळो, श्रद्धावान् अने जितेन्द्रिय एवो जे श्रावक संसारनो नाश करनार आ (पंच-परमेष्ठी) मंत्रनो जाप करे छे अने श्वेत सुगन्धी एक लाख पुष्पोवडे श्री जिनेश्वरनी विधिपूर्वक सम्यक् प्रकारे पूजा करे छे, ते विश्वपूज्य तीर्थंकर बने छे ॥ १३ ॥

स्वस्थाने पूर्णमुचारं, मार्गे चार्धं समाचरेत् ।
पादमाकस्मिकातङ्के, स्मृतिमात्रं मरणान्तिके ॥ १४ ॥

पोतानां स्थाने होय त्यारे पूर्ण-उचार पूर्वक, मार्गमां होय त्यारे अर्ध-उचारपूर्वक, अकस्मात् आतंक एटले तीव्र रोग अथवा वेदना थई आवे त्यारे चोथा भागना उचारपूर्वक अने मरण नजीक होय त्यारे केवल मानसिक स्मरण वडे नवकार गणवो जोईए ॥ १४ ॥

परिचय

आ संदर्भ 'उपदेशतरंगिणी' नामक ग्रन्थमाथी लेवामां आव्यो छे। आ ग्रन्थ श्रीयशोविजय ग्रन्थमाला, बनारसथी वीर सं० २४३७ मा प्रकट थयेल छे। तेमां पृष्ठ १४६-१४७ पर आ संदर्भ 'नमस्कार स्मरण' रूपे आपेल छे।

आ ग्रन्थना कर्ता श्रीसोमसुंदरसूरिना शिष्य श्रीनन्दिरत्नगणिना शिष्य श्रीरत्नमंदिरगणि छे। भोजप्रबन्ध नामनो तेमनो ग्रंथ प्रसिद्ध छे अने तेमां तेमनो जीवन समय सोळमी शताब्दि होवानो उल्लेख छे।

श्रीविजयवर्णिविरचित-
'मन्त्रसारसमुच्चयापरनाम-ब्रह्मविद्याविधि-'
ग्रन्थादर्हदादिबीजस्वरूपसंदर्भः ॥ *

(च)

ह्रींकारस्वरूपम्—

सान्तान्तं रेफमारूढं, चतुर्थस्वरयोजितम् ।
नाद-बिन्दु-कलोपेतं, धर्मकामार्थसाधनम् ॥ १ ॥
नादो विश्वात्मकः प्रोक्तो, बिन्दुः स्यादुत्तमं पदम् ।
कलापीयूषनिःष्यन्दीत्याहुरेवं जिनोत्तमाः ॥ २ ॥
नाद-बिन्दु-कलायुक्तं, पूर्णचन्द्रकलाधरम् ।
त्वनुस्वारं भवेद् बिन्दुः, त्वर्धमात्रं विशेषतः ॥ ३ ॥

हृल्लेखा । लोकराजः । जगदधिपः । लोकपतिः । भुवनेश्वरी । माया । त्रिदेहम् । तत्त्वम् । शक्तिः । शक्तिप्रणवमित्यादि ॥ ह्रीँ ॥

* आ संदर्भनो अनुवाद आपेल नथी।

ॐकारस्वरूपम्—

त्रयोदशस्वरं तच्च, सर्वतत्त्वप्रकाशकम् ।
पूर्णचन्द्रेण संयुक्तं, प्रणवं सर्वसाधनम् ॥ ४ ॥

अन्यच्च—

स्मरदुःखानलज्वालाप्रशान्त्यै नवनीरदम् ।
प्रणवं वाङ्मयज्ञानप्रदीपं पुण्यशासनम् ॥ ५ ॥

तारः । तेजः । वामः । विनयः । सर्वात्मवीजम् ॥ प्रणवमित्यादि ॥ ॐ ॥

× × ×

अर्हँस्वरूपम्—

अथ मन्त्रपदाधीशं, सर्वतत्त्वैकनायकम् ।
आदि-मध्यान्तभेदेन, स्वर-व्यञ्जनसम्भवम् ॥ ६ ॥
अकारादि-हकारान्तं, रेफमध्यं सविन्दुकम् ।
तदेव परमं तत्त्वं, यो जानाति स तत्त्ववित् ॥ ७ ॥
बुद्धः कैश्चिदजः कैश्चिद्धरिः कैश्चिन्महेश्वरः ।
शिवः सार्वस्तथेशानः, सोऽयं वर्णः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

× × ×

सर्वात्मकं महातारं, सर्वज्ञं सर्वशक्तिकम् ।
सर्वमन्त्रमुखं ध्यायेत्, समर्थं सर्वशक्तिकम्(दम्) ॥ ९ ॥

× × ×

अर्हद्वीजं महापिण्डं, संजडा (? ज्ञाना)क्षरमुत्तमम् ।
वीजाक्षरं तत् सर्वं, सिद्धारिनैव शोधयेत् ॥ १० ॥

× × ×

आत्मनः विशुद्धिपरिणामार्थं पूज्यपूजार्थं वा । यथापूर्वं वारपञ्चोपचाराणि कार्याणि । प्रणवध्यानं सर्वात्मकमित्यादि ॥

कोमलकदलीपत्रं, स्फटिकं वालार्कहेमनीलाभम् ।
पञ्चपरमेष्ठिवर्णं, क्रमेण भव्यभवनाशनम् ॥ ११ ॥

इति प्रणवभक्तिः ॥

परिचय

आ संदर्भ श्री जैनसिद्धान्त भवन, आरा नी प्रति 'मन्त्रसारसमुच्चयापरनाम ब्रह्मविद्याविधि' मां थी लेवामां आव्यो छे ।

श्रीरत्नचन्द्रगणिविरचितः
मातृकाप्रकरणसंदर्भः ।

(छ)

अर्हन्तोऽजा अथाचार्या उपाध्याया मुनीश्वराः ।
मिलित्वा यत्र राजन्ते, तद् 'ॐ'कारपदे मुदा (दं मतम्)
अ अ आ उ म् ॥ (२७२) ॥ १ ॥

बीजं-मूलं-शिखाऽत्रास्त्र्येमेकक-त्रि-त्रि-पञ्चभिः ।
अक्षरैः 'ॐ नमः सिद्धं', जपानन्तफलैः(लं) क्रमात् ॥
ॐ १ । ॐ नमः २ । ॐ सिद्धम् ३ । ॐ नमः सिद्धम् ॥
ॐ इत्यनुवर्तते ॥ २ ॥

नन्ता हन्त ! भवत्येको भवत्येकश्च शंसिता ।
शंसिता लभते कामान्, नन्ता लभति वा न वा ॥ ३ ॥

अनुवाद

अरिहंत, अज, आचार्य, उपाध्याय अने मुनि ए पांचे ज्यां सम्मिलित रीते शोभे छे, तेने विद्वानो ॐकार पद कहे छे । (पांचे नामोना प्रथम अक्षरोनी संधि थी ॐकार निष्पन्न थाय छे) ॥ १ ॥

'ॐ नमः सिद्धम्' ए मंत्रमां त्रण पद छे । पहेलुं पद जे एकाक्षर ॐ ते प्रणव छे अने ते मंत्रनुं 'बीज' छे । पहेलुं अने बीजुं पद 'ॐ नमः' त्रण अक्षरवाळुं छे ते मंत्रनुं 'मूल' छे अने त्रीजुं पद 'ॐ सिद्धम्' पण त्रण अक्षरवाळुं छे ते मंत्रनी 'शिखा' छे, आखो सळंग अथवा संपूर्ण मंत्र 'ॐ नमः सिद्धम्' पांच अक्षरनो छे । ए प्रमाणे अक्षरना विभागथी अनुक्रमे चार प्रकारे जो मंत्रनो जाप थाय तो ते अनन्त फल आपनार थाय छे ॥ २ ॥[1]

एक नमे छे अने बीजो प्रशंसा (अनुमोदना) करे छे, प्रशंसक इच्छित वस्तुने अवश्य पामे छे; नमनार पामे अथवा न पामे ! ॥ ३ ॥

---

१ चारो के मंत्रनो १२५०० संख्या प्रमाण जाप करवानो होय तो पहेला 'बीज' एटले केवल ॐकारनो १२५०० संख्या प्रमाण जाप करवो; पछी 'मूल' एटले 'ॐ नमः' नो १२५०० संख्या प्रमाण जाप करवो पछी 'शिखा' एटले 'ॐ सिद्धम्' नो १२५०० संख्या प्रमाण जाप करवो अने अंते संपूर्ण मंत्र 'ॐ नमः सिद्धम्' नो पण १२५०० संख्या प्रमाण जाप करवो । आ प्रमाणे जाप करवाथी प्रयास अने परिश्रम वधे पण फळ अनंतगुणुं थाय छे ॥ २ ॥

'हूँ' अर्हद्--धरणाचार्योपाध्याय-मुनिगोचरम् । ह् र् ऊ उ म् ।
सूर्युपाध्याय-मुनयः, स्पृशन्ति 'ॐ' कारमादरात् ॥ ऊ उ म् ॥ ४ ॥
'ॐ' जिनाऽजनुराचार्य-मुनितः प्रादुरस्तीह ॥ अ अ आ म् ।
अर्हद्-धरण-वाग्देव्यो 'ह्रीँ' कारस्य निबन्धनम् ॥ ह् र् ईँ ॥ ५ ॥
आद्युपान्त्यान्तिमार्हन्तो गीश्च 'अर्ह' पदमास्थिताः
(गीश्चा' ऽर्हँ 'पद-मास्थिताः) ।
ज्ञान-दर्शन-चारित्रमुक्तयो भान्ति तत्र वा ॥ अ र् हँ ॥ ६ ॥

बीजाक्षर 'हूँ'कारमां पांच वर्णो आ प्रमाणे छे-ह्+र्+ऊ+उ+म्— आ पांच अंशमांथी पहेला अंश 'ह' कारथी अर्हत् (अरिहंत), बीजा अंश 'र' कारथी धरण (धरणेन्द्र ?) त्रीजा अंश 'ऊ'कारथी सूरि, चोथा अंश 'उ'कारथी उपाध्याय अने पांचमा अंश 'म' कारथी मुनिना अर्थने बतावे छे ॥

बीजाक्षर 'ॐ'कारमां सूरि आदिना त्रण वर्णो आ प्रमाणे छे—ऊ+उ+म्—आ त्रण अंशमांथी पहेला अंश 'ऊ'कारथी सूरि, बीजा अंश 'उ'कारथी उपाध्याय अने त्रीजा अंश 'म्'थी मुनि ॐकारने आदर पूर्वक स्पर्शे छे ॥ ४ ॥

बीजाक्षर 'ॐ'कारमां चार वर्णो आ प्रमाणे छे—अ+अ+आ+म् आ चार अंशमांथी पहेलो अंश 'अ' अरिहंतथी, बीजो अंश 'अ' अजनु अर्थात् सिद्धथी, त्रीजो अंश 'आ' आचार्यथी अने चोथो अंश 'म्' मुनि शब्दथी उत्पन्न थयेल छे ।

बीजाक्षर 'ह्रीँ'कारमां त्रण वर्णो आ प्रमाणे छे—ह्+र्+ईँ—आ त्रण अंशमांथी पहेलो अंश 'ह्' अरिहंत'थी, बीजो अंश 'र्' धरण(धरणेन्द्र ?)थी अने त्रीजो अंश 'ईँ' वागुदेवी एटले सरस्वतीथी निष्पन्न थाय छे ॥ ५ ॥

अर्हँ पदमां त्रण वर्णो आ प्रमाणे छे—अ+र्+हँ—आ त्रण अंशोमां आदि अंश 'अ', उपान्त्य अंश 'र्' अने अन्तिम अंश 'हँ'—ए त्रण अंशो मळीने बनेलो 'अर्हँ' अक्षर अरिहंतनो वाचक छे;[1] अने वाणी एटले वाङ्मय वर्णमाला ('अ' थी 'ह्' सुधीना वर्णो)नो वाचक छे[2]। अथवा ते पदमां प्रथम अंश 'अ' थी ज्ञान, 'र्' थी दर्शन अने 'ह्' थी चारित्र—ए त्रण रत्नो अने तेमनुं फल 'मुक्ति' शोभे छे, एम थाय छे ॥ ६ ॥

---

१ सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासनमां श्रीहेमचन्द्रसूरिए प्रथम मंगलाचरणरूपे जे 'अर्हँ' सूत्र रच्युं छे तेनी व्याख्या करतां जे 'अर्हँ इत्येतदक्षरं परमेश्वरस्य परमेष्ठिनो वाचकम्' एम कह्युं छे । 'अर्हँ' ऊपर तेमणे पोते रचेला बृहन्न्यासमां सविस्तर निरूपण कर्युं छे, ते आ ग्रन्थमां ज अन्यत्र आपेलुं छे ।

२ सरखावो :—"अक्खर आइ अयारं हयारमंतक्खरं च मज्झेणु ।
मज्झे वण्णसमुच्चयरयणत्तयभूसियं अरहं ॥"— नवकारसारथवणं न. स्वा. प्राकृतविभाग.

अर्हँनो आद्य अक्षर 'अ' बाराखडीना प्रथमाक्षरने, 'ह्' बाराखडीना अंतिम अक्षरने अने 'र्' बाकीना वर्णोना समुच्चयने सूचवे छे। 'अर्हँ' थी सम्पूर्ण मातृका सूचवाय छे; अथवा संपूर्ण 'अर्हँ' रत्नत्रयथी शोभता अरिहंतने सूचवे छे।
अहम् एटले आत्मा, ए ज्यारे रेफ—रत्नत्रयीथी युक्त बने छे, त्यारे 'अर्हँ' कहेवाय छे ।

'श्रीँ' कारे श्रुत-धरणौ पद्मावन्यृषयः परम् । श् र् ई म् ।
'ह्रौँ' अर्हद्-धा(ध)रणाऽदेह-वाचकर्षिजमीरितम् ह् र् अ उ म् ॥ ७ ॥
अर्हन्त-धरणाऽदेहस्तपसा 'ह्रः' समाश्रितम् । ह् र् अ म् ।
'हंसः' जिनाऽजनुर्योगी, श्रद्धा-श्रुत-तपांसि च ॥ ह अ म् स् अ
'अत्यल्पमेतद् याक्षीयम्' ॥ स् ॥ ८ ॥

बीजाक्षर 'श्रीँ' कारमा चार वर्णो आ प्रमाणे छे—श्+र्+ई+म्—आ चार अंशोमांथी पहेलो अंश 'श्' श्रुतज्ञाननो, बीजो अंश 'र्' धरणेन्द्रनो, त्रीजो अंश 'ई' पद्मावतीनो अने चोथो अंश 'म्' मुनिनो वाचक छे।

बीजाक्षर 'ह्रौँ' कारमा पांच वर्णो आ प्रमाणे छे—ह्+र्+अ+उ+म्—आ पांच अंशोमांथी प्रथम अंश 'ह्' अरिहंतनो, बीजो अंश 'र्' धरणेन्द्रनो (?), त्रीजो अंश 'अ' अदेह एटले सिद्धनो, चोथो अंश 'उ' उपाध्यायनो अने पांचमो अंश 'म्' मुनिनो वाचक छे, एम (विद्वानोए) कहेलुं छे ॥ ७ ॥

बीजाक्षर 'ह्रः' मा चार वर्णो आ प्रमाणे छे—ह्+र्+अ+स्—आ चार अंशोमांथी प्रथम अंश 'ह्' अरिहंतवडे, बीजो अंश 'र्' धरणेन्द्रवडे (?), त्रीजो अंश 'अ' अदेह एटले सिद्धवडे अने चोथो अंश 'स्' (विसर्ग) तपवडे समाश्रित छे।

'हंस' पदमां [illegible] वर्णो आ प्रमाणे छे—ह्+अ+म्+स्+अ+म्—आ [illegible] अंशोमांथी प्रथम अंश 'ह्' अरिहंतनो, बीजो अंश 'अ' 'सिद्धनो, त्रीजो अंश 'म्' मुनिनो, चोथो अंश 'स्' श्रद्धानो, पांचमो अंश 'अ' श्रुतज्ञाननो अने छट्ठो अंश 'स्' (विसर्ग) तपसूनो वाचक छे॥

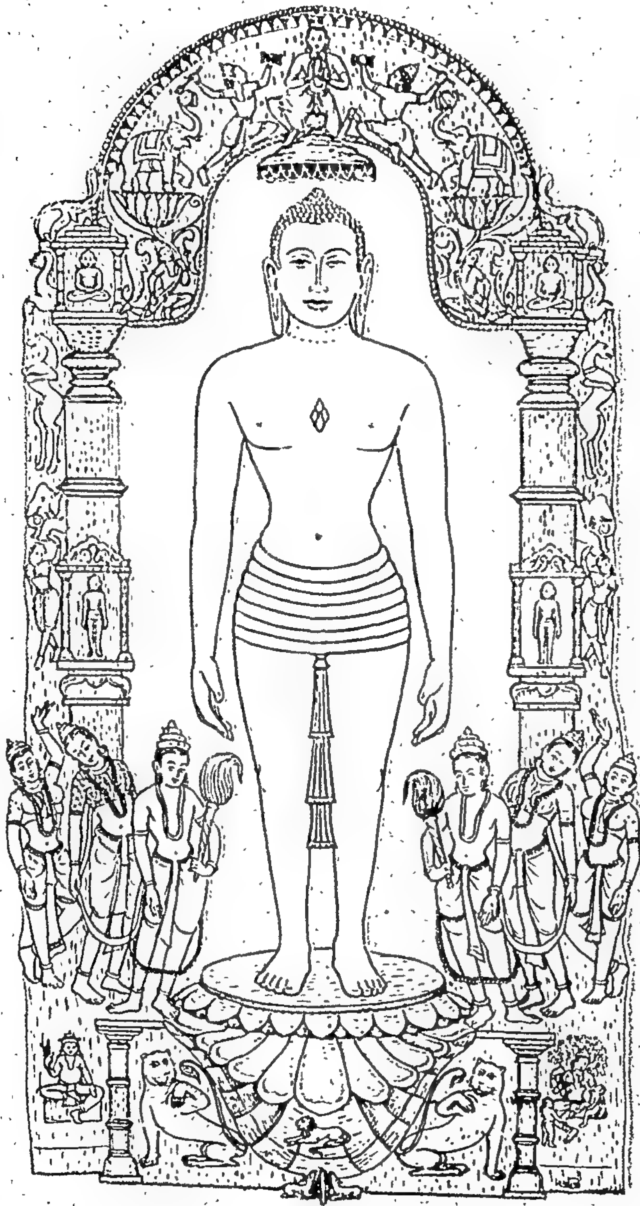
'आ अल्पाक्षरी यक्षोनी (संकेत) वाणी (?) छे' ॥ ८ ॥

परिचय

'मातृकाप्रकरण' नी एक ह० लि० प्रति पू० मु० श्रीयशोविजयजी म० पासेथी मळी हती, तेमां भाषाना संधिनियमो, छंद, वर्णप्रस्तार, उच्चारविधि वगेरे अनेक विषयोनो संग्रह करेलो छे. ते प्रथमां ज यक्षोनी अल्पाक्षरी संकेतविधि (?) आठ श्लोकमां दर्शावी छे, जे नमस्कार अने तेनां मंत्रबीजो उपर सुंदर प्रकाश पाथरे छे।

ए आठ श्लोकोनो संदर्भ अहीं अनुवाद साथे आप्यो छे।

आ मातृकाप्रकरणना कर्ता पायचंदगच्छीय श्रीरत्नचंद्रगणि छे, तेओ प्रायः सत्तरमा सैकामां थया हशे एवुं अनुमान छे।



श्रीमहावीरप्रभुः (कायोत्सर्गमुद्रामां)

श्रीहेमचन्द्राचार्य-विरचितः
अर्हन्नामसहस्रसमुच्चयः

अर्हं नामापि कर्णाभ्यां, शृण्वन् वाचा समुच्चरन् ।
जीवः पीवरपुण्यश्रीर्लभते फलमुत्तमम् ॥ १ ॥
अत एव प्रतिप्रातः, समुत्थाय मनीषिभिः ।
भक्त्याऽष्टाग्रसहस्रार्हन्नामोच्चारो विधीयते ॥ २ ॥
श्रीमानर्हन् जिनः स्वामी, स्वयम्भूः शम्भुरात्मभूः ।
स्वयंप्रभुः प्रभुर्भोक्ता, विश्वभूरपुनर्भवः ॥ ३ ॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो, विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।
विश्वविद् विश्वविद्ये(श्वे)शो, विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ४ ॥
विश्वदृश्वा विभुर्धाता, विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधुर्वेधाः, शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ ५ ॥
विश्वपो विश्वतः पादो, विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो, विश्वज्योतिरनश्वरः ॥ ६ ॥
विश्वसृड् विश्वसूर्विश्वेट्, विश्वभुग् विश्वनायकः ।
विश्वाशी विश्वभूतात्मा, विश्वजिद् विश्वपालकः ॥ ७ ॥
विश्वकर्मा जगद्विश्वो, विश्वमूर्त्तिर्जिनेश्वरः ।
भूतभाविभवद्भर्त्ता, विश्ववैद्यो यतीश्वरः ॥ ८ ॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः, सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः, सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥
सर्वगः सुश्रुतः सुश्रूः, सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः, सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ १० ॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा, पञ्चब्रह्ममयः शिवः ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो, ब्रह्मयोनिरयोनिजः ॥ ११ ॥
ब्रह्मनिष्ठः परं ब्रह्म, ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः ।
ब्रह्मेड् ब्रह्मपतिर्ब्रह्मचारी ब्रह्मपदेश्वरः ॥ १२ ॥
विष्णुर्जिष्णुर्जयी जेता, जिनेन्द्रो जिनपुङ्गवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः, परमेष्ठी सनातनः ॥ १३ ॥ इति श्री प्रथमशतप्रकाशः ॥ १०० ॥

जिननाथो जगन्नाथो, जगत्स्वामी जगत्प्रभुः ।
जगत्पूज्यो जगद्वन्द्यो, जगदीशो जगत्पतिः ॥ १ ॥
जगन्नेता जगज्जेता, जगन्मान्यो जगद्विभुः ।
जगज्ज्येष्ठो जगच्छ्रेष्ठो, जगद्ध्येयो जगद्धितः ॥ २ ॥
जगदर्च्यो जगद्बन्धुर्जगच्छास्ता जगत्पिता ।
जगन्नेत्रो जगन्मैत्रो, जगद्दीपो जगद्गुरुः ॥ ३ ॥

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा, परंतेजः परंमहः ।
परमात्मा शर्मी शान्तः, परंज्योतिस्तमोऽपहः ॥ ४ ॥
प्रशान्तारिरनन्तात्मा, योगी योगीश्वरो गुरुः ।
अनन्तजिदनन्तात्मा, भव्यबन्धुरबन्धनः ॥ ५ ॥
शुद्धबुद्धिः प्रबुद्धात्मा, सिद्धार्थः सिद्धशासनः ।
सिद्धः सिद्धान्तविद् ध्येयः, सिद्धः साध्यः सुधीः सुगीः ॥ ६ ॥
सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः, प्रभविष्णुर्भवोद्भवः ।
स्वयम्भूष्णुरसम्भूष्णुः, प्रभूष्णुरभयोऽव्ययः ॥ ७ ॥
दिव्यभाषापतिर्दिव्यः, पूतवाक् पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥ ८ ॥
निर्मोहो निर्मदो निःस्वो, निर्दम्भो निरुपद्रवः ।
निराधारो निराहारो, निर्लोभो निश्चलोऽचलः ॥ ९ ॥
निष्कामी निर्ममो निष्पक्, निष्कलङ्को निरञ्जनः ।
निर्गुणो नीरसो निर्भीर्निर्व्यापारो निरामयः ॥ १० ॥
निर्निमेषो निराबाधो, निर्द्वन्द्वो निष्क्रियोऽनघः ।
निःशङ्कश्च निरातंको, निष्कलो निर्मलोऽमलः ॥ ११ ॥ इति द्वितीयशतप्रकाशः ॥ २०० ॥

तीर्थकृत् तीर्थसृट् तीर्थङ्करस्तीर्थंकरः सुदृक् ।
तीर्थकर्ता तीर्थभर्ता, तीर्थेशस्तीर्थनायकः ॥ १ ॥
सुतीर्थोऽधिपतिस्तीर्थसेव्यस्तीर्थिकनायकः ।
धर्मतीर्थकरस्तीर्थप्रणेता तीर्थकारकः ॥ २ ॥
तीर्थाधीशो महातीर्थस्तीर्थस्तीर्थविधायकः ।
सत्यतीर्थकरस्तीर्थसेव्यस्तीर्थिकनायकः ॥ ३ ॥
तीर्थनाथस्तीर्थराजस्तीर्थेट् तीर्थप्रकाशकः ।
तीर्थवन्द्यस्तीर्थमुख्यस्तीर्थाराध्यः सुतीर्थिकः ॥ ४ ॥
स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः, प्रेष्ठः प्रष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठो, श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठधीः ॥ ५ ॥
विभवो विभयो वीरो, विशोको विरजोऽजरन् ।
विरागो विमदोऽव्यक्तो, विविक्तो वीतमत्सरः ॥ ६ ॥
वीतरागो गतद्वेषो, वीतमोहो विमन्मथः ।
[illegible]

सुयज्वा यजमानात्मा, सुत्रामस्तोमपूजितः ।
ऋत्विग् यज्ञपतिर्याज्यो, यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥ ९ ॥
सोममूर्त्तिः सुसौम्यात्मा, सूर्यमूर्त्तिर्महाप्रभः ।
व्योममूर्तिरमूर्त्तात्मा, नीरजा वीरजाः शुचिः ॥ १० ॥
मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री, मन्त्रमूर्त्तिरनन्तरः ।
स्वतन्त्रः सूत्रकृत् स्वत्रः, कृतान्तश्च कृतान्तकृत् ॥ ११ ॥ इति तृतीयशतप्रकाशः ॥ ३०० ॥

कृती कृतार्थः संस्कृत्यः, कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः ॥ १ ॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः, प्रभूतविभवोऽभवः ।
स्वयंप्रभः प्रभूतात्मा, भवो भावो भवान्तकः ॥ २ ॥
महाशोकध्वजोऽशोकः, कः स्रष्टा पद्मविष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः, पद्मनाभिरनुत्तरः ॥ ३ ॥
पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
स्तवनार्हो हृषीकेशोऽजितो जेयः कृतक्रियः ॥ ४ ॥
विशालो विपुलो ज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः ।
सुसंवृत्तः सुगुप्तात्मा, शुभंयुः शुभकर्मकृत् ॥ ५ ॥
एकविद्यो महावैद्यो, मुनिः परिवृढो दृढः ।
यतिर्विद्यानिधिः साक्षी, विनेता विहतान्तकः ॥ ६ ॥
पिता पितामहः पाता, पवित्रः पावनो गतिः ।
त्राता भिषग्वरो वर्यो, वरदः पारदः पुमान् ॥ ७ ॥
कविः पुराणपुरुषो, वर्षीयान् ऋषभः पुरुः ।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ८ ॥
श्रीवत्सलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः ।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः, पुष्कलः पुष्कलेक्षणः ॥ ९ ॥
सिद्धिदः सिद्धसङ्कल्पः, सिद्धात्मा सिद्धशासनः ।
बुद्धबोध्यो महाबुद्धिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥ १० ॥
वेदाङ्गो वेदविद् वेद्यो, जातरूपो विदांवरः ।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो, विवेदो वदतांवरः ॥ ११ ॥ इति चतुर्थशतप्रकाशः ॥ ४०० ॥

सुधर्मा धर्मधीर्धर्मो, धर्मात्मा धर्मदेशकः ।
धर्मचक्री दयाधर्मः शुद्धधर्मा वृषध्वजः ॥ १ ॥
वृषकेतुर्वृषाधीशो, वृषाङ्कश्च वृषोद्भवः ।
हिरण्यनाभिर्भूतात्मा, भूतभृद् भूतभावनः ॥ २ ॥
प्रभवो विभवो भास्वान्, मुक्तः शक्तोऽक्षयोऽक्षतः ।
कूटस्थः स्थाणुरक्षोभ्यः, शास्ता नेताऽचलस्थितिः ॥ ३ ॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्गण्यो, गण्यगण्यो गणाग्रणीः ।
गणाधिपो गणाधीशो, गणज्येष्ठो गणार्चितः ॥ ४ ॥
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणवान् गुणी ।
गुणादरो गुणोच्छेदी, सुगुणोऽगुणवर्जितः ॥ ५ ॥
शरण्यः पुण्यवाक् पूतो, वरेण्यः पुण्यगीर्गुणः ।
अगण्यपुण्यधीः पुण्यः, पुण्यकृत् पुण्यशासनः ॥ ६ ॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियोऽधीन्द्रो, महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् ।
अतीन्द्रियो महेन्द्राच्यों [अनिद्रोऽहमिन्द्राच्यों (पाठांतर)],–महेन्द्रमहितो महान् ॥ ७ ॥

उद्भवः कारणं कर्त्ता, पारगो भवतारकः ।
अग्राह्यो गहनं गुह्यः, परर्द्धिः परमेश्वरः ॥ ८ ॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽत्यग्रः, प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥ ९ ॥
प्राणकः प्रणवः प्राणः, प्राणदः प्राणितेश्वरः ।
प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ॥ १० ॥ इति पंचमशतप्रकाशः ॥ ५०० ॥

महाजिनो महायुद्धो, महाब्रह्मा महाशिवः ।
महाविष्णुर्महाजिष्णुर्महानाथो महेश्वरः ॥ १ ॥
महादेवो महास्वामी, महाराजो महाप्रभुः ।
महाचन्द्रो महादित्यो, महाशूरो महागुरुः ॥ २ ॥
महातपा महातेजा, महोदर्को महोमयः ।
महायशो(यशा) महाधामा(म), महासत्त्वो महाबलः ॥ ३ ॥
महाधैर्यो महावीर्यो, महाकान्तिर्महाद्युतिः ।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाधृतिः ॥ ४ ॥
महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महाकृतिः ।
महाकीर्तिर्महास्फूर्तिर्महाप्रज्ञो महोदयः ॥ ५ ॥
महाभागो महाभोगो, महारूपो महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो, महाशास्ता महामहाः ॥ ६ ॥
महामुनिर्महामौनी, महाध्यानो महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो, महायोगो महालयः ॥ ७ ॥
महाव्रतो महायज्ञो, महाश्रेष्ठो महाकविः ।
महामन्त्री महातन्त्रो, महोपायो महानयः ॥ ८ ॥
महाकारुणिको मन्ता, महानादो महायतिः ।
महामोदो महायोगी, महेज्यो महसां पतिः ॥ ९ ॥
महावीरो महाधीरो, महाधुर्यो महेष्वाकू ।
महात्मा महसां धाम, महर्षिर्महितोदयः ॥ १० ॥
महामुक्तिर्महागुप्तिर्महासत्यो महार्जवः ।
महाबुद्धिर्महासिद्धिर्महाशौचो महावशी ॥ ११ ॥
महाधर्मो महाशर्मा, महात्मज्ञो महाशयः ।
महामोक्षो महासौख्यो, महानन्दो महोदयः ॥ १२ ॥
महाभयाब्धिसन्तारी, महामोहारिसूदनः ।
महायोगीश्वराराध्यो, महामुक्तिपदेश्वरः ॥ १३ ॥ इति षष्ठशतप्रकाशः ॥ ६०० ॥

आनन्दो नन्दनो नन्दो, वन्द्यो नन्द्योऽभिनन्दनः ।
कामहा कामदः काम्यः, कामधेनुररिञ्जयः ॥ १ ॥
मनःक्लेशापहः साधुरुत्तमोऽघहरो हरः ।
असंख्येयः प्रमेयात्मा, शमात्मा प्रशमाकरः ॥ २ ॥
सर्वयोगीश्वरश्चि(रोऽचि)न्त्यः, श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः ।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो, योगात्मा योगसाधकः ॥ ३ ॥

प्रमाणपरिधिर्दक्षो, दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ।
प्रक्षीणबन्धः कर्मारिः, क्षेमकृत् क्षेमशासनः ॥ ४ ॥
क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः, क्षेमध(क)र्मा क्षमापतिः ।
अग्राह्यो ज्ञानिविज्ञेयो, ज्ञानिगम्यो जिनोत्तमः ॥ ५ ॥
जिनेन्दुर्जनितानन्दो, मुनीन्दुर्दुन्दुभिस्वनः ।
मुनीन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो, यतीन्द्रो यतिनायकः ॥ ६ ॥
असंस्कृतः सुसंस्कारः, प्राकृतो वै कृतान्तवित् ।
अन्तकृत् कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ॥ ७ ॥
अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जितामित्रो, जितक्लेशो जितान्तकः ॥ ८ ॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः, सत्यवाक् सत्यशासनः ।
सत्याशीः सत्यसन्धानः, सत्यः सत्यपरायणः ॥ ९ ॥
सदायोगः सदाभोगः, सदातृप्तः सदाशिवः ।
सदागतिः सदासौख्यः, सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः, सुखदः सुहितः सुहृत् ।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता, गुप्ताक्षो गुप्तमानसः ॥ ११ ॥ इति सप्तमशतप्रकाशः ॥ ७०० ॥

बृहद् बृहस्पतिर्वाग्मी, वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमान्, शेमुषीशो गिरांपतिः ॥ १ ॥
नैकरूपो नयोत्तुङ्गो, नैकात्मा नैकधर्मकृत् ।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा, कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो, रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो, हेमगर्भः सुदर्शनः ॥ ३ ॥
लक्ष्मीशः सदयोऽध्यक्षो, दृढयोनिर्नयीशिता ।
मनोहरो मनोज्ञोऽर्हो, धीरो गम्भीरशासनः ॥ ४ ॥
धर्मयूपो दयायागो, धर्मनेमिर्मुनीश्वरः ।
धर्मचक्रायुधो देवः, कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥
स्थेयान् स्थवीयान् नेदीयान्, दवीयान् दूरदर्शनः ।
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक् सुस्थो, नीरजस्को गतस्पृहः ॥ ६ ॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा, निःसपत्नो जितेन्द्रियः ।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥
अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा, योगात्मा योगिवन्दितः ।
सर्वत्रगः सदाभावी, त्रिकालविषयार्थदृक् ॥ ८ ॥
शङ्करः सुखदो दान्तो, दमी क्षान्तिपरायणः ।
स्वानन्दः परमानन्दः, सूक्ष्मवर्चाः परापरः ॥ ९ ॥
अमोघोऽमोघवाक् स्वाज्ञो दिव्यदृष्टिरगोचरः ।
सुरूपः सुभगस्त्यागी, मूर्त्तोऽमूर्त्तः समाहितः ॥ १० ॥
एकोऽनेको निरालम्बोऽनीदृग् नाथो निरन्तरः ।
प्रार्थ्योऽभ्यर्थ्यः समभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः ॥ ११ ॥ इति अष्टमशतप्रकाशः ॥ ८०० ॥

ईशोऽधीशोऽधिपोऽधीन्द्रो, ध्येयोऽमेयो दयामयः ।
शिवः शूरः शुभः सारः, शिष्टः स्पष्टः स्फुटोऽस्फुटः ॥ १ ॥
इष्टः पुष्टः क्षमोऽक्षामोऽकायोऽमायोऽस्मयोऽमयः ।
ह्रस्वोऽह्रस्वोऽणुः स्थूलो, जीर्णो नव्यो गुरुर्लघुः ॥ २ ॥
स्वभूः स्वात्मा स्वयंबुद्धः, स्वेशः स्वैरीश्वरः स्वरः ।
आद्योऽलक्ष्योऽपरोऽरूपोऽस्पर्शोऽशब्दोऽरिहाऽर्हः ॥ ३ ॥
दीप्तोऽलेश्योऽरसोऽगन्धोऽच्छेद्योऽभेद्योऽजरोऽमरः ।
प्राज्ञो धन्यो यतिः पूज्यो, महोऽर्च्यः प्रशमी यमी ॥ ४ ॥
श्रीशः श्रीन्द्रः शुभः सुश्रीरुत्तमश्रीः श्रियः पतिः ।
श्रीपतिः श्रीपरः श्रीपः, सच्छ्रीः श्रीयुक् श्रिया श्रितः ॥ ५ ॥
ज्ञानी तपस्वी तेजस्वी, यशस्वी बलवान् बली ।
दानी ध्यानी मुनिर्मौनी, लयी लक्ष्यः क्षयी क्षमी ॥ ६ ॥
लक्ष्मीवान् भगवान् श्रेयान्, सुगतः सुतनुर्बुधः ।
बुद्धो वृद्धः स्वयंसिद्धः, प्रोच्चः प्रांशुः प्रभामयः ॥ ७ ॥ इति नवमशतप्रकाशः ॥ ९.०० ॥

आदिदेवो देवदेवः, पुरदेवोऽधिदेवता ।
युगादीशो युगाधीशो, युगमुख्यो युगोत्तमः ॥ १ ॥
दीप्तः प्रदीप्तः सूर्याभोऽरिघ्नोऽविघ्नोऽघनो घनः ।
शत्रुघ्नः प्रतिघस्तुङ्गोऽसङ्गः स्वङ्गोऽग्रगः सुगः ॥ २ ॥
स्याद्वादी दिव्यगीर्दिव्यध्वनिरुद्दामगीः प्रगीः ।
पुण्यवागर्थ्यवागर्धमागधीयोक्तिरिद्धगीः ॥ ३ ॥
पुराणपुरुषोऽपूर्वोऽपूर्वश्री पूर्वदेशकः ।
जिनदेवो जिनाधीशो, जिननाथो जिनाग्रणीः ॥ ४ ॥
शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः, शिवतातिः शिवप्रदः ।
शान्तिकृत् शान्तिदः शान्तिः, कान्तिमान् कामितप्रदः ॥ ५ ॥
श्रियां निधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः पृ(प्र)थीयान् प्रथितः पृथुः ॥ ६ ॥
पुण्यराशिः श्रियोराशिस्तेजोराशिरसंशयी ।
ज्ञानोदधिरनन्तौजा, ज्योतिर्मूर्त्तिरनन्तधीः ॥ ७ ॥
विज्ञानोऽप्रतिमो भिक्षुर्मुमुक्षुर्मुनिपुङ्गवः ।
अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूकः प्रभामयः ॥ ८ ॥
कर्मण्यः कर्मठोऽकुण्ठो, रुद्रो भद्रोऽभयङ्करः ।
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकेशो लोकवत्सलः ॥ ९ ॥
त्रिलोकीशस्त्रिकालज्ञस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ।
त्र्यम्बकः केवलालोकः, केवली केवलेक्षणः ॥ १० ॥
समन्तभद्रः शान्तार्चिर्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी सुमार्गज्ञः, कृपालुर्मार्गदर्शकः ॥ ११ ॥

प्रातिहार्योज्ज्वलस्फीतातिशयो विमलाशयः ।
सिद्धानन्तचतुष्कश्रीर्जीयाच्छ्रीजिनपुङ्गवः ॥ १२ ॥

इति अष्टोत्तरशतनामयुक्तो दशमप्रकाशः ॥ (१००८) ॥

उपसंहारः

एतदष्टोत्तरं नामसहस्रं श्रीमदर्हतः ।
भव्याः पठन्तु सानन्दं, महानन्दैककारणम् ॥ १११ ॥
इत्येतज्जिनदेवस्य जिननामसहस्रकम् ।
सर्वापराधशमनं, परं भक्तिविवर्धनम् ॥ ११२ ॥
अक्षयं त्रिपु लोकेपु, सर्वस्वर्गैकसाधनम् ।
स्वर्गलोकैकसोपानं, सर्वदुःखैकनाशनम् ॥ ११३ ॥
समस्तदुःखहं सद्यः, परं निर्वाणदायकम् ।
कामक्रोधादिनिःशेपमनोमलविशोधनम् ॥ ११४ ॥
शान्तिदं पावनं नृणां, महापातकनाशनम् ।
सर्वेपां प्राणिनामाशु, सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ११५ ॥
जगज्जाड्यप्रशमनं, सर्वविद्याप्रवर्त्तकम् ।
राज्यदं राज्यभ्रष्टानां, रोगिणां सर्वरोगहृत् ॥ ११६ ॥
वन्ध्यानां सुतदं चाशु, क्षीणानां जीवितप्रदम् ।
भूत-ग्रह-विषध्वंसि, श्रवणात् पठनाज्जपात् ॥ ११७ ॥

श्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितः श्रीअर्हन्नामसहस्रसमुच्चयः समाप्तः ।

परिचय

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत 'अर्हन्नामसहस्रसमुच्चय' 'श्री जैनधर्म प्रसारक सभा,' भावनगरथी वीर सं. २४६५ मां प्रकाशित थयेली पुस्तिका ना आधारे लेवामां आव्युं छे, अने ते अति सरल होवाथी मूळ मात्र आप्युं छे।

पाठांतरः—प्रातिहार्योज्ज्वलः कान्त्यतिशयो विमलाशयः ।

[७३–२८]

महामहोपाध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचितम्
श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्रम्

नमस्ते समस्तेप्सितार्थप्रदाय, नमस्ते महार्हत्यलक्ष्मीप्रदाय।
नमस्ते चिदानन्दतेजोमयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥ १॥

नमस्ते जगन्नाथ! विश्वैकनेतः!, नमस्ते महामोहमल्लैकजेतः!।
नमस्ते सतां मोक्षशिक्षाविनेतः!, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥ २॥

नमस्ते जिनेन्द्र! प्रभो! वीतराग!, नमस्ते स्वयम्भो! जगद्गन्धनाग!।
नमस्ते स्फुरज्ज्ञानजाग्रद्विराग!, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥ ३॥

नमस्ते जगज्जन्तुजीवातुजन्म!, नमस्ते प्रभो! भाग्यलभ्याङ्घ्रिपद्म!।
नमस्ते लसत्सत्यसन्तोषसद्म!, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥ ४॥

अनुवाद

सर्व कामित अर्थोने आपनार आपने नमस्कार थाओ। महान् आर्हत्यलक्ष्मी—अरिहंत पदने आपनार आपने नमस्कार थाओ। अनंत ज्ञान, अनंत सुख अने अनंत वीर्यमय एवा आपने नमस्कार थाओ। *आपने नमस्कार थाओ! आपने नमस्कार थाओ! आपने नमस्कार थाओ! आपने नमस्कार थाओ! ॥ १॥

जगत्‌ना नाथ! विश्वना परम नेता! आपने नमस्कार थाओ। महामोहरूप मल्लना श्रेष्ठ विजेता! आपने नमस्कार थाओ। सज्जनोने मोक्षनी शिक्षा (मोक्षमार्ग) आपनार! आपने नमस्कार थाओ॥ २॥

जिनेन्द्र! प्रभो (सर्व प्रकारे समर्थ)! वीतराग (रागद्वेष रहित)! आपने नमस्कार थाओ। हे स्वयंभू (विशिष्ट प्रकारना तथाभव्यत्वथी स्वयं तीर्थंकर थयेला)! हे जगद्गंधनाग (जगतमां गंधहस्तीसमान, अन्य वादिओरूप हाथीओना मदनो नाश करनारा)! आपने नमस्कार थाओ! निर्मल ज्ञान अने निश्चल वैराग्यवाळा आपने नमस्कार थाओ॥ ३॥

जगतना जतुओने (षट्कायना प्राणीओने) जीवाडवा माटे (अभयदान आपनार अने अपावनार) जन्म लेनारा, हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। परम भाग्योदयथी ज प्राप्य छे चरणकमळ जेमना एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। सुंदर सत्य अने संतोषना निकेतन हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ॥ ४॥

---

* दरेक छंदना चोथा चरणनो अर्थ आ मुजब समजवो।

नमस्तेऽत्र धर्मार्थिनां धर्मबन्धो !, नमस्ते सतां पुण्यकारुण्यसिन्धो ! ।
नमस्ते निरुद्धातिदुष्टाश्रवान्धो !, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५ ॥

नमस्ते महस्विन् ! नमस्ते यशस्विन् !, नमस्ते वचस्विन् नमस्ते तपस्विन् ! ।
नमस्ते गुणैरद्भुतैरद्भुताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६ ॥

नमस्ते महात्मन् ! नमस्ते चिदात्मन् !, नमस्ते शिवात्मन् ! नमस्ते परात्मन् ! ।
नमस्ते स्थिरात्मन् ! नमस्तेऽन्तरात्मन् !, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७ ॥

नमस्ते गुणानन्त्यमाहात्म्यधाम्ने, नमस्ते मुनिग्रामणे ध्येयनाम्ने ।
नमस्ते विशुद्धावबोधात्मकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८ ॥

नमस्ते भवप्रान्तरस्वर्द्रुमाय, नमस्ते कृतास्मन्मनोविश्रमाय ।
नमस्ते गलज्जन्ममृत्युश्रमाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९ ॥

नमस्ते सुधाधोरणीवल्लभाय, नमस्ते भवेऽस्मिन् भृशं दुर्लभाय ।
नमस्तेऽत्र लब्धाय पुण्यैः(ण्य) प्रकर्षैः, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १० ॥

आ लोकमां रहेला धर्मार्थी जीवोना धर्मबन्धु ! आपने नमस्कार थाओ। सत्पुरुषोने माटे पुण्य अने करुणाना सिंधु हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। अतिदुष्ट एवा आश्रवोरूपी अंधकूपमां पडता प्राणीओने रोकनार (पडवा नहीं देनार) हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ ॥ ५ ॥

महस्विन् ! (महातेजवाळा) ! आपने नमस्कार थाओ। यशस्विन् ! आपने नमस्कार थाओ। वचस्विन् (पांत्रीश गुणोथी युक्त वचनवाळा) ! आपने नमस्कार थाओ। तपस्विन् ! आपने नमस्कार थाओ। अद्भुत गुणोवडे अद्भुत (सर्वोत्तम गुणवान) एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६ ॥

महात्मन् ! आपने नमस्कार थाओ। चिदात्मन् ! आपने नमस्कार थाओ। शिवात्मन् ! आपने नमस्कार थाओ। परमात्मन् ! आपने नमस्कार थाओ। स्थिरात्मन् ! आपने नमस्कार थाओ। अन्तरात्मन् ! आपने नमस्कार थाओ ॥ ७ ॥

अनन्त गुण अने अनन्त माहात्म्यना धाम ! आपने नमस्कार थाओ। मुनि समूहना अधिपति ! ध्यान करवा लायक नामवाळा हे प्रभो आपने नमस्कार थाओ। विशुद्ध ज्ञानमय आपने नमस्कार थाओ ॥ ८ ॥

भवरूप अरण्यमां आश्रय लेवा माटे कल्पवृक्ष समान आपने नमस्कार थाओ। अमारा मनने विश्राम आपनार आपने नमस्कार थाओ। जन्म अने मरणना श्रमथी रहित आपने नमस्कार थाओ ॥ ९ ॥

अमृत तुल्य गोष्टी करनारा भव्य जीवोना वल्लभ एवा आपने नमस्कार थाओ। आ भवमां अत्यन्त दुर्लभ छे दर्शन जेमनुं एवा आपने नमस्कार थाओ। पुण्यना प्रकर्षवडे प्राप्त थयेला एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १० ॥

नमस्ते सुधासारनेत्राञ्जनाय, नमस्ते सदाऽस्मन्मनोरञ्जनाय।
नमस्ते भवभ्रान्तिभीभञ्जनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११ ॥

नमस्ते शुचिज्ञानरत्नाकराय, नमस्ते सतां कल्पकारस्कराय।
नमस्ते जगज्जीवभद्रङ्कराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२ ॥

नमो मण्डिताखण्डभूमण्डलाय, नमो भक्तिनम्राखिलाखण्डलाय।
नमो युक्तयोगाय योगीश्वराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३ ॥

नमस्ते सदा सुप्रसन्नाननाय, नमः सिद्धिसम्पल्लताकाननाय।
नमो दत्तविद्वन्मनस्सम्मदाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १४ ॥

नमस्तेऽवतीर्णाय विश्वोपकृत्यै, नमस्ते कृतार्थाय सद्धर्मकृत्यैः।
नमस्ते प्रकृत्या जगद्वत्सलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १५ ॥

नमस्तीर्थकृन्नामकर्मार्जिताय, नमोऽचिन्त्यसामर्थ्यविस्फूर्जिताय।
नमो योगिने योगमुद्रान्विताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १६ ॥

अमृतना सार सादृश सम्यग्ज्ञानथी अमारा नेत्रोनु अंजन[1] करनारा! आपने नमस्कार थाओ। अमारा मननुं सदा रंजन करनारा आपने नमस्कार थाओ। भव भ्रमणना भयनो नाश करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११ ॥

पवित्र ज्ञानना रत्नाकर एवा आपने नमस्कार थाओ। सज्जनोना वांछित पूरवाने कल्पवृक्ष समान आपने नमस्कार थाओ। जगतना जीवोनु कल्याण करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ १२ ॥

सकल भूमंडलना आभूषण समान आपने नमस्कार थाओ। भक्तिवडे नम्या छे सर्व इंद्रो जेमने एवा आपने नमस्कार थाओ। योगवडे युक्त अने योगीश्वर एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १३ ॥

निरंतर सुप्रसन्न मुखवाळा आपने नमस्कार थाओ। सिद्धिसंपत्तिरूपकल्पलताना उद्यान समान आपने नमस्कार थाओ। विद्वानोना मनने अनुपम आनंद आपनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ १४ ॥

विश्वना उपकार माटे अवतरेला आपने नमस्कार थाओ। सद्धर्मानुष्ठान वडे कृतार्थ थयेला आपने नमस्कार थाओ। स्वभावथी ज विश्ववत्सल एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १५ ॥

श्रीतीर्थंकर नामकर्म उपार्जित करनार आपने नमस्कार थाओ। अचिन्त्य सामर्थ्यवडे ओजस्वी एवा आपने नमस्कार थाओ। योगमुद्रा युक्त एवा योगीश्वर आपने नमस्कार थाओ ॥ १६ ॥

---

१ 'उपमिति'मां स्थान श्री सिद्धर्षिए आ अर्थमां माटे 'विमलालोक' शब्दनो प्रयोग कर्यो छे।

नमोऽनुत्तरस्वर्गिभिः पूजिताय, नमस्तन्मनःसंशयच्छेदकाय ।
नमोऽनुत्तरज्ञानलक्ष्मीश्वराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १७ ॥

नमस्ते धरित्रीव(त्र्येव) सर्वंसहाय, नमस्तेऽन्तरङ्गारिभिर्दुस्सहाय ।
नमस्ते तपस्सत्यधूर्धूर्वहाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १८ ॥

नमस्ते शुभोपार्जितार्हत्पदाय, नमस्ते तृतीये भवे निश्चिताय ।
नमो धर्मसम्य फलावञ्चिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १९ ॥

नमो नव्यदिव्योपभोगाभिधाय, नमस्तेषु तत्रापि वैरङ्गिकाय ।
नमो योगसात्म्यैकतासङ्गताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २० ॥

नमस्ते भुवि स्वर्गलोकच्युताय, नमस्ते सतीकुक्षिकोशङ्गताय ।
नमस्ते त्रिलोकोपकारोद्यताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २१ ॥

नमस्ते शुभस्वप्नसंसूचिताय, नमस्ते जनन्याप्तसद्दोहदाय ।
नमस्ते भवत्तद्वपुः सौष्ठवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २२ ॥

अनुत्तरविमानना देवो वडे पूजित एवा आपने नमस्कार थाओ। अनुत्तर विमानमां रहेला देवोना मनमां उत्पन्न थनारा संशयने छेदनारा आपने नमस्कार थाओ। अनुत्तर एवी ज्ञानलक्ष्मीना (केवळज्ञानना) स्वामी एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १७ ॥

पृथ्वीनी जेम सर्वंपह (सर्व परिपह—उपसर्गोने सहन करनार) आपने नमस्कार थाओ। अंतरंग शत्रुओने दुस्सह एवा आपने नमस्कार थाओ। तप अने सत्यरूपी धुराने वहन करवामां वृषभ समान आपने नमस्कार थाओ ॥ १८ ॥

पुण्यप्रकर्षथी अरिहंत पदने उपार्जन करनारा आपने नमस्कार थाओ। त्रीजे भवे तीर्थंकरपदने निश्चित (निकाचित) करनारा आपने नमस्कार थाओ। धर्मना सम्यक् फळथी अवंचित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १९ ॥

नव्य (सुंदर) दिव्योपभोगने पामेला (?) एवा आपने नमस्कार थाओ (आ विशेषण त्रीजे भवे तीर्थंकर नामकर्म निकाचित कर्या पछी प्राप्त थयेल देवपणाने अंगे छे)। देवभवमां पण भोगोथी विरक्त एवा आपने नमस्कार थाओ। योगोनी सात्म्यरूप एकताने पामेला आपने नमस्कार थाओ ॥ २० ॥

स्वर्गमांथी च्यवीने पृथ्वीपर अवतरेला आपने नमस्कार थाओ। मनुष्यपणामां सती स्त्रीना गर्भमां रहेला आपने नमस्कार थाओ। त्रिलोकना उपकार माटे उद्यत थयेला आपने नमस्कार थाओ ॥ २१ ॥

शुभ स्वप्नवडे सूचित अवतारवाळा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी माताने शुभ दोहला उत्पन्न थया छे एवा आपने नमस्कार थाओ। माताना शरीरने सुखकारक एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ २२ ॥

नमस्ते जनुर्भूषिताढ्यान्वयाय, नमो रत्नवृष्टिपूर्णालयाय ।
नमो वर्द्धमानद्धिधार्वभवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २३ ॥

नमो दिक्कुमारीकृतस्वोचिताय, नमस्ताभिरर्चाविधिस्वञ्चिताय ।
नमो ज्ञानरत्नत्रयोदञ्चिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २४ ॥

नमो द्योतिताशेषविश्वत्रयाय, नमः सर्वलोकैकसौख्यावहाय ।
नमः प्रोल्लसज्जङ्गमस्थावराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २५ ॥

नमः सुप्रसन्नीकृताशामुखाय, नमस्ते समुज्जृम्भितोर्वीसुखाय ।
नमो नारकेभ्योऽपि दत्तोत्सवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २६ ॥

नमस्तेऽद्भुतङ्कम्पितेन्द्रासनाय, नमस्ते मुदा तैः कृतोपासनाय ।
नमः कल्पितध्वान्तनिर्वासनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २७ ॥

नमस्ते सुराद्रौ सुरैः प्रापिताय, नमस्ते कृतस्नात्रपूजोत्सवाय ।
नमस्ते विनीताप्सरःपूजिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २८ ॥

जन्म वडे वंशने शोभित अने समृद्ध करनारा आपने नमस्कार थाओ। (देवोए करेली) रत्न ने सुवर्णनी वृष्टिथी घरने पूर्ण करनारा आपने नमस्कार थाओ। बन्ने प्रकारना (द्रव्य ने भाव) वैभवथी वधता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ २३ ॥

दिक्कुमारीओए जेमनुं स्वोचित (प्रसूति) कर्तव्य कर्युं छे एवा आपने नमस्कार थाओ। तेओ वडे अर्चा विधिथी पूजित एवा आपने नमस्कार थाओ। जन्मथी ज त्रण ज्ञान वडे युक्त एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ २४ ॥

जन्मकल्याणक वखते समस्त विश्वत्रयने द्योतित करनारा आपने नमस्कार थाओ। जन्मकल्याणक वखते सर्व लोकने अनुपम सुखने आपनारा आपने नमस्कार थाओ। (तीर्थंकरना जन्म वखते जगतना सर्व जीवो क्षणमात्र सुखी थाय छे।) ते वखते जंगम ने स्थावर सर्व वस्तुने उल्लासायमान करनार आपने नमस्कार थाओ ॥ २५ ॥

सर्व दिशाओना मुखने सुप्रसन्न करनारा आपने नमस्कार थाओ। पृथ्वीना सुखमां वृद्धि करनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। नारकोने पण आनंद आपनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ २६ ॥

अद्भुत रीते इन्द्रना आसनने कंपावनारा आपने नमस्कार थाओ। हर्ष वडे इन्द्रोथी स्तवायेला आपने नमस्कार थाओ; (अहीं शक्रस्तव वडे इन्द्रे करेली स्तवना सूचवी छे) अज्ञानअंधकारनो नाश करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ २७ ॥

देवताओ वडे मेरु पर्वत उपर लावायेला एवा आपने नमस्कार थाओ। त्यां जेमनो स्नात्रपूजानो उत्सव करवामां आव्यो एवा आपने नमस्कार थाओ। विनीत अप्सराओथी पूजित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ २८ ॥

नमोऽङ्गुष्ठपीयूपपानोच्छ्रिताय, नमस्ते वपुःसर्वनष्टामयाय ।
नमस्ते यथायुक्तसर्वाङ्गकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ २९ ॥

नमस्ते मलस्वेदखेदोज्झिताय, नमस्ते शुचिक्षीररक्तशोणिताय ।
नमस्ते मुखश्वासहृीणाम्बुजाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३० ॥

नमस्ते मणिस्वर्णजिद्गौरभाय, नमस्ते प्रसर्पद्वपुःसौरभाय ।
नमोऽनीक्षिताहारनीहारकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३१ ॥

नमस्ते सुरौघैरनुक्रीडिताय, नमस्ते शिशुक्रीडया व्रीडिताय ।
नमस्ते सुराधीश्वरैरीडिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३२ ॥

नमो राजहंसेभगोवद्गताय, नमश्चातुरीमाधुरीसङ्गताय ।
नमः सर्वशास्त्राब्धिपारंगताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३३ ॥

नमः कोमलालापपीयूपवर्ष !, नमो बाललीलाकृतज्ञातिहर्ष ।
नमस्ते प्रभो ! प्राज्यपुण्यप्रकर्ष !, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३४ ॥

अंगूठामां इन्द्रे संचारेला अमृतना पान वडे उछरता एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमना शरीरना सर्व रोगो नाश पाम्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ। सर्व अंगनी यथोचित रचनाथी शोभता एवा आपने नमस्कार थाओ (अहीं प्रभुनुं उत्कृष्ट समचतुरस्र संस्थान सूचव्युं छे) ॥ २९ ॥

मल, प्रस्वेद अने खेदथी रहित शरीरवाळा आपने नमस्कार थाओ। पवित्र एवा दुग्ध समान श्वेतवर्णी रुधिरवाळा आपने नमस्कार थाओ। मुखना श्वासनी सुगंधवडे कमळने पण शरमावनारा (कमळ जेवा सुगंधी श्वासोच्छ्वासवाळा) आपने नमस्कार थाओ ॥ ३० ॥

मणि अने सुवर्णने जीतनारी गौर (उज्ज्वल) कांतिवाळा आपने नमस्कार थाओ। जेमना शरीरनी सुगंध चारे बाजु प्रसरी रही छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनो आहार-नीहार छद्मस्थ मनुष्यो जोई शकता नथी एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३१ ॥

(२९ श्लो. थी अहीं सुधी जन्मथी थनारा चार अतिशय सूचव्या छे।)

बाळपणामां देवोना समूहो वडे रमाडाता एवा आपने नमस्कार थाओ। बाळपणानी क्रीडाथी लज्जा पामेला एवा आपने नमस्कार थाओ। (बाळपणामां पण) इन्द्रो वडे प्रशंसित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३२ ॥

राजहंस, हस्ती अने वृषभ जेवी गतिवाळा आपने नमस्कार थाओ। चतुरता अने मधुरताथी युक्त एवा आपने नमस्कार थाओ। सर्व शास्त्ररूप समुद्रना पारने पामेला एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३३ ॥

कोमळ आलापरूप अमृतने वरसावनारा हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। बाळक्रीडा वडे ज्ञातिजनने हर्ष पमाडनारा हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। अतिशय पुण्यना प्रकर्षवाळा हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ ॥ ३४ ॥

नमः स्फारकौमारलीलालसाय, नमस्ते स्वतस्त्यक्तदुर्लालसाय ।
नमस्ते शुचित्वेऽपि (?) निःसाध्वसाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३५ ॥

नमस्ते कृतान्वर्थयुक्ताभिधाय, नमस्ते स्वतःसिद्धविद्याविधाय ।
नमस्ते स्वतो लब्धशिक्षोपधाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३६ ॥

नमोऽष्टाढ्यसाहस्रसल्लक्षणाय, नमस्ते कृतप्राणिसंरक्षणाय ।
नमोऽक्षीणदाक्षिण्यधीदक्षिणाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३७ ॥

नमोऽनङ्कराकेन्दुजैत्राननाय, नमो दक्षहृल्लक्ष्यसन्दानकाय ।
नमस्ते कपोलान्तशान्तस्मिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३८ ॥

नमोऽनन्तगाम्भीर्यवर्याशयाय, नमः संवृतानन्तशक्त्याश्रयाय ।
नमो धैर्यनिर्जितेन्द्राचलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ३९ ॥

नमो यौवनेऽप्युद्धतस्थावराय, नमः प्रातिभोत्थव्यवस्थावराय ।
नमो विष्वगुद्यत्प्रभाभासुराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४० ॥

कुमारावस्थानी विपुल क्रीडाओमां मंद (विरक्त) एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनो दुष्ट लालसाओए स्वयं त्याग कर्यो छे एवा आपने नमस्कार थाओ। (शरीर) पवित्र अने निर्भय (?) एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३५ ॥

जेमनु सार्थक अने युक्त एवुं वर्द्धमानादि नाम पाडवामां आव्युं एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमने नानाविध विद्याओ स्वत. सिद्ध हती एवा आपने नमस्कार थाओ। पोतानी मेळे ज शिक्षणना उपायो मेळवनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३६ ॥

उत्तम एवा एक हजार ने आठ लक्षणोवाळा आपने नमस्कार थाओ। सर्व प्राणिओना रक्षणहार आपने नमस्कार थाओ। अक्षीण एवी दक्षिणता अने बुद्धिना कारणे दक्ष एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३७ ॥

पूर्णिमाना निर्मल चन्द्रने जीतनार मुखवाळा आपने नमस्कार थाओ। निपुण पुरुषोना हृदयना लक्ष्यने पोतामा बांधी लेनारा आपने नमस्कार थाओ। जेना कपोळमां शान्त स्मित रमी रह्युं छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३८ ॥

अनन्त गांभीर्यरूप (अथवा अनत गांभीर्यना कारणे) श्रेष्ठ आशयवाळा एवा आपने नमस्कार थाओ। संवृत एवी अनन्त शक्तिओना आश्रयरूप आपने नमस्कार थाओ। धैर्य वडे मेरुपर्वतने पण अधरित करनार [मेरु करतां पण अधिक धैर्यवान (स्थिर)] एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ३९ ॥

यौवनावस्थामां पण अत्यन्त स्थिरतावाळा (विषयोमां चचलतारहित) आपने नमस्कार थाओ। उच्च प्रकारनी प्रतिभाथी प्राप्त थयेल श्रेष्ठ औचित्यवाळा आपने नमस्कार थाओ। देहमांथी चोतरफ प्रगटती प्रभा वडे शोभता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४० ॥

नमो जन्मतोऽप्यार्यमार्गाध्वगाय, नमो रुद्धदुर्नीतिचर्यापगाय ।
नमस्ते विनाऽध्यापकं शिक्षिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४१ ॥

नमो यौवने प्राप्तपाणिग्रहाय, नमो मुक्तभोगोपभोगाग्रहाय ।
नमस्ते कृतप्राच्यकर्मौपधाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४२ ॥

नमस्ते त्रिवर्गक्रियासाधकाय, नमस्ते यथार्हं तदाराधकाय ।
नमस्तुर्यवर्गेऽप्यनिर्बाधकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४३ ॥

नमो दान्तपञ्चेन्द्रियान्तःस्थलाय, नमःकीलिताजस्रकम्रोच्चलाय ।
नमो ज्ञानधाराधुतान्तर्मलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४४ ॥

नमो बिभ्रते सात्त्विकश्चित्तवृत्तिं, नमो बिभ्रते मानसैनोनिवृत्तिं ।
नमः पश्यते सर्वतस्तत्त्वदृष्ट्या, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४५ ॥

नमो भोगभङ्गीप्रसङ्गानुगाय, नमो नोपलिप्ताय तत्तद्रजोभिः ।
नमः प्रोल्लसत्पुण्डरीकोपमाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४६ ॥

जन्मथी ज आर्य (नीति) मार्गना पथिक एवा आपने नमस्कार थाओ। दुर्नीतिनी चर्यारूप नदीना प्रवाहने रोकनारा आपने नमस्कार थाओ। अध्यापक विना पण शिक्षणने प्राप्त थयेला एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४१ ॥

यौवनावस्थामां पाणिग्रहणने (लग्नने) पामेला एवा आपने नमस्कार थाओ। भोगोपभोगमां आसक्ति रहित एवा आपने नमस्कार थाओ। भोगोपभोगमां पण पूर्वार्जित कर्मोनुं औपध (क्षपण) करनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४२ ॥

यथायोग्यपणे प्रथम त्रण पुरुषार्थोनी क्रियाने साधता एवा आपने नमस्कार थाओ। तेने उचित रीते आराधनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। ते वखते चोथा मोक्ष पुरुषार्थने पण बाधा नहीं पमाडनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४३ ॥

पांचे इन्द्रियोना मर्मने दमनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। निरंतर चंचल एवा मनने ध्येयरूप खीले बांधता एवा आपने नमस्कार थाओ। ज्ञानधारावडे अंतरमळने धोनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४४ ॥

सात्त्विक चित्तवृत्तिने धारण करनारा आपने नमस्कार थाओ। मानसिक पापोनी निवृत्तिने धारण करनारा आपने नमस्कार थाओ। सर्व तरफ तत्त्वदृष्टिथी जोता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४५ ॥

अनेक भोगोना प्रसंगोने अनुसरतां (भोगोने भोगवतां) छतां पण ते वखते ते ते भोगोनी रज (कर्माश्रव) थी अलिप्त एवा आपने नमस्कार थाओ। विकस्वर पुंडरीक कमळनी उपमावाळा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४६ ॥

---

१ उच्चल = मन (शब्दरत्नमहोदधि कोश)।

नमः सम्पतद्देवलोकान्तिकाय, नमस्तैः स्तुताङ्घ्रिद्वयोपान्तिकाय ।
नमो ज्ञाततीर्थप्रवृत्त्यर्थनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४७ ॥
नमो निश्चितात्मीयदीक्षाक्षणाय, नमो ज्ञानशुद्धोपयोगेक्षणाय ।
नमस्ते निरीहाय वीतस्पृहाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४८ ॥
नमस्ते कृतज्ञातिवर्गार्हणाय, नमः प्रीणितैतत्कृतोद्बृंहणाय ।
नमस्तेऽर्पितस्वापतेयाय तेभ्यो, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ४९ ॥
नमो दत्तसांवत्सरोत्सर्जनाय, नमो विश्वदारिद्र्यनिस्तर्जनाय ।
नमस्ते कृतार्थी-कृतार्थिव्रजाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५० ॥
नमः प्रत्यहं कारितोद्घोषणाय, नमो भो शृणीतेति लोकम्पृणाय ।
नमो दानवीराधिवीरोद्धुराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५१ ॥
नमस्तेऽर्पितानेकगर्जद्गजाय, नमस्तेऽर्पितानेकवाहव्रजाय ।
नमस्ते समुत्तानदानध्वजाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५२ ॥

जेमनी पासे लोकान्तिक देवो भेगा थईने आव्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ। तेओए चरणद्वय पासे आवीने जेमनी स्तुति करी छे एवा आपने नमस्कार थाओ। तीर्थप्रवर्तननी प्रार्थनाने जाणनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। ॥ ४७ ॥

पोताना दीक्षा समयने निश्चित करनारा आपने नमस्कार थाओ। ज्ञानरूप शुद्ध उपयोग वडे जोता एवा आपने नमस्कार थाओ, निरीह अने निःस्पृह एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४८ ॥

ज्ञातिवर्गनो धनदानादि वडे सत्कार करता एवा आपने नमस्कार थाओ। प्रसन्न थयेला ज्ञातिवर्गे प्रशंसा करी छे एवा आपने नमस्कार थाओ; स्वजनोने संपत्तिनो योग्य भाग आपता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ४९ ॥

सांवत्सरिक दानने आपनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। विश्वना दारिद्र्यनी निस्तर्जना (दारिद्र्यने दूर) करनारा आपने नमस्कार थाओ। अर्थिवर्गने कृतार्थ (सन्तुष्ट) करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ५० ॥

दररोज दाननी उद्घोषणा करावनार आपने नमस्कार थाओ। 'हे लोको! मागो! मागो' वगेरे कहेवा वडे जगतने आनंद आपनार आपने नमस्कार थाओ, दानवीरोमां श्रेष्ठमां श्रेष्ठ एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ५१ ॥

गर्जना करता अनेक हाथीओ दानमां आपनार आपने नमस्कार थाओ। अश्वोना अनेक समूहो दानमां आपनार आपने नमस्कार थाओ। जेमना दाननो ध्वज सर्वत्र ऊंचे फरकी रह्यो छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ५२ ॥

नमस्ते प्रभो ! दत्तदिव्याम्बराय, नमस्तेऽर्पितस्वर्णरत्नोत्कराय ।
नमो दीनदीनारधाराधराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५३ ॥
नमः प्रत्यहं यच्छते हेमकोटिं, नमो यच्छतेऽष्टौ च लक्षाणि तेषाम् ।
नमो यच्छतेऽन्यद्यथेच्छं जनानाम्, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५४ ॥
नमस्ते वदान्यीभवन्मार्गणाय, नमस्ते धनापूर्णगेहाङ्गणाय ।
नमस्ते कृतानेककोटिध्वजाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५५ ॥
नमस्ते मनःकामकल्पद्रुमाय, नमस्ते प्रभो ? कामधेनूपमाय ।
नमस्ते निरस्तार्थिनामाश्रमा(या)य, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५६ ॥
नमस्त्यक्तसप्ताङ्गराज्येन्दिराय, नमस्त्यक्तसत्सुन्दरीमन्दिराय ।
नमस्त्यक्तमाणिक्यमुक्ताफलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५७ ॥
नमस्तत्क्षणोपागतस्वर्धवाय, नमस्तत्कृतप्रौढदीक्षोत्सवाय ।
नमस्तत्र तत्तत्स्फुरद्वैभवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५८ ॥

दिव्य वस्त्रो दानमां आपनार एवा हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ । रत्न ने सुवर्णनां ढगलांओ दानमां आपनार आपने नमस्कार थाओ । दीन जनोने दीनाररूप[1] जलनुं दान देवामां मेघ समान एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ५३ ॥

दररोज दानमां एक करोड ने आठ लाख सोनैया आपनार आपने नमस्कार थाओ। अर्थी जनोने इच्छा मुजब बीजुं पण आपनार आपने नमस्कार थाओ ॥ ५४ ॥

याचकोने माटे उदार दातारूप थता एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनुं गृहाङ्गण धन वडे पूर्ण छे एवा आपने नमस्कार थाओ। अनेक जनोने कोटिध्वज करनार आपने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ ५५ ॥

मनोवांछित आपवाने कल्पवृक्ष सरखा आपने नमस्कार थाओ। मनोवांछित आपवाने कामधेनु समान आपने नमस्कार थाओ। 'अर्थी' एवा नामना आश्रयनो निरास करनार आपने नमस्कार थाओ। (प्रभुए एटलुं बधुं दान आप्युं के जगतमां कोई अर्थी ज रह्यो नहीं ! तेथी 'अर्थी' एवुं नाम पण न रह्युं !) ॥ ५६ ॥

सप्तांग[2] राज्यलक्ष्मीनो त्याग करनारा आपने नमस्कार थाओ। सुंदर स्त्रीओथी युक्त एवा अन्तः-पुरनो त्याग करनार आपने नमस्कार थाओ। मणिओ अने मोतीओनो त्याग करनार आपने नमस्कार थाओ ॥ ५७ ॥

दीक्षाना महोत्सव माटे जेमनी पासे तत्काळ इंद्रो आव्या एवा आपने नमस्कार थाओ। तेओए जेमनो प्रौढ दीक्षा महोत्सव कर्यो एवा आपने नमस्कार थाओ। त्यां (दीक्षा महोत्सवमां) ते ते प्रकारना दिव्य वैभवथी शोभता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ५८ ॥

---

१ सिक्को ।

२ स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग (किल्लो) अने सैन्य ।

नमस्ते प्रभो! याप्ययानस्थिताय, नमस्तेऽवनाय प्रभो! प्रस्थिताय।
नमस्ते शमस्पृग्मनःसुस्थिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ५९ ॥
नमो यानधुर्यीभवद्वासवाय, नमो दूरविक्षिप्तगर्वासवाय।
नमः शुद्धभावावरुद्धाश्रवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६० ॥
नमस्तेऽग्रगच्छन्महेन्द्रध्वजाय, नमस्तेऽग्रगच्छद्गजाश्वव्रजाय।
नमस्तेऽभितःसञ्चरद्राजकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६१ ॥
नमोऽमर्त्यसङ्कीर्णितोर्वीतलाय, नमो देवदीप्यन्नभोमण्डलाय।
नमस्ते नदद्दिव्यतूर्यत्रिकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६२ ॥
नमो दीप्ररत्नप्रभाडम्बराय, नमो वन्दिशब्दोर्जिताशाम्बराय।
नमो नागरीनागरैर्वीक्षिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६३ ॥
नमस्त्यक्तसर्वाङ्गिकाभूषणाय, नमो निर्गतत्रिविधादूषणाय।
नमः पञ्चमुष्ट्याऽलकोल्लुञ्चकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६४ ॥

दीक्षायोग्य वाहन(शिबिका)मां रहेला आपने हे प्रभो! नमस्कार थाओ। जगतना जीवोनुं रक्षण करवा माटे प्रयाण करता (दीक्षा माटे वन तरफ जता एवा) हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। शान्तिमां मग्न मनना कारणे सुस्थित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ५९ ॥

जेमनी दीक्षाशिबिकाने इन्द्रोए वहन करी छे एवा आपने नमस्कार थाओ। गर्वरूपी मदिराने दूर फेंकनार एवा आपने नमस्कार थाओ। शुद्ध भाववडे आश्रवोने रोकनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६० ॥

दीक्षाना वरघोडामां जेमनी आगळ महेन्द्रध्वज चाले छे एवा आपने नमस्कार थाओ। त्यारपछी हाथीओ अने अश्वोना समूहो जेमना वरघोडामां चाले छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी चारे बाजुए राजाओनो समूह चाले छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६१ ॥

जेमनां दर्शनादि माटे ऊतरता देवो वडे पृथ्वीतल संकीर्ण थयुं छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमना दर्शनादि माटे ऊतरता देवो वडे आकाशमंडल दीपी रह्युं छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी आगळ त्रण प्रकारना दिव्यवाजित्रो वागी रह्यां छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६२ ॥

देदीप्यमान रत्न सदृश प्रभा वडे शोभता आपने नमस्कार थाओ। जेमना वंदीजनोए करेल 'जय जय' आदि शब्दोथी दिशाओ अने आकाश निनादित थया एवा आपने नमस्कार थाओ। नगरना पुरुषो अने स्त्रीओथी दर्शन कराता आपने नमस्कार थाओ ॥ ६३ ॥

सर्व अंगोनां सर्व आभूषणोनो त्याग करता आपने नमस्कार थाओ। जेमना त्रिविध त्रिविध दूषणो नाश पाम्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ। पांच मुष्टिवडे केशनुं लुंचन करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६४ ॥

नमस्ते समुद्गीर्णसामायिकाय, नमः सर्वदैव त्रिधाऽमायिकाय ।
नमस्सर्वसावद्ययोगोज्झिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६५ ॥

नमस्ते मनःपर्यवज्ञानशालिन् !, नमश्चारुचारित्रपावित्र्यमालिन् ॥
नमो नाथ ! षड्जीवकायावकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६६ ॥

नमस्ते समुद्यद्विहारक्रमाय, नमःकर्मवैरिस्फुरद्विक्रमाय ।
नमः स्वीयदेहेऽपि ते निर्ममाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६७ ॥

नमो ग्राम एकैकरात्रोषिताय, नमः पत्तने पञ्चरात्रोषिताय ।
नमो भावशुद्धैषणापोषिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६८ ॥

नमस्तुल्यरूपाय रात्रौ दिवा वा, नमस्तुल्यरूपाय तेऽन्तर्बहिश्च ।
(नमस्तुल्यचित्ताय दुःखे सुखे वा), नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ६९ ॥

नमस्तुल्यचित्ताय मित्रे रिपौ वा, नमस्तुल्यचित्ताय लोष्टे मणौ वा ।
नमस्तुल्यचित्ताय गालौ स्तुतौ वा, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७० ॥

सामायिकव्रतनो उच्चार करता आपने नमस्कार थाओ। सर्वदा त्रिविधे अमायी एवा आपने नमस्कार थाओ। सर्व सावद्ययोगोथी रहित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६५ ॥

दीक्षासमये प्राप्त थयेल मनःपर्यवज्ञान वडे शोभता हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। मनोहर चारित्रनी पवित्रताथी शोभता हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। षड्जीवनिकायनुं रक्षण करनार हे नाथ ! आपने नमस्कार थाओ ॥ ६६ ॥

उद्यत विहारनी परंपरावाळा आपने नमस्कार थाओ। कर्मवैरीनो नाश करवामां प्रखर पराक्रमवाळा आपने नमस्कार थाओ। पोताना देह उपर पण ममता विनाना आपने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ ६७ ॥

गाममां एक एक रात्रि रहेता आपने नमस्कार थाओ। नगरमां पांच पांच रात्रि रहेता आपने नमस्कार थाओ। भावशुद्ध एषणा वडे पोषित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ६८ ॥

रात्रिमां के दिवसमां समभाववाळा आपने नमस्कार थाओ। आंतरिक अने बाह्य वस्तुओमां समान भाववाळा आपने नमस्कार थाओ। (सुखमां के दुःखमां समान चित्तवाळा आपने नमस्कार थाओ)॥ ६९ ॥

शत्रु के मित्रमां, लोष्ट (ढेफुं) के मणिमां समान चित्तवाळा आपने नमस्कार थाओ। निंदा के स्तुतिमां सम चित्तवाळा आपने नमस्कार थाओ ॥ ७० ॥

---

१ सावद्य योगोनुं मन-वचन-कायाथी करण-'करावण-अनुमोदन'।

नमस्तुल्यचित्ताय मोक्षे भवे वा, नमस्तुल्यचित्ताय जीर्णे नवे वा।
नमस्तुल्यचित्ताय मेध्येऽशुचौ वा, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७१ ॥

नमस्ते प्रभो! मृत्युतो निर्भयाय, नमस्ते प्रभो! जीविते निःस्पृहाय।
नमस्ते प्रभो! ते स्वरूपे स्थिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७२ ॥

नमस्ते प्रभोऽनुत्तरक्षान्तिकर्त्रे, नमस्ते प्रभो! मुक्तिसम्भुक्तिकर्त्रे।
नमस्ते प्रभो! मार्दवाढ्यार्जवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७३ ॥

नमस्ते प्रभो! सत्तपस्संयमाय, नमस्ते स्फुरद्ब्रह्मणेऽकिञ्चनाय।
(नमस्ते प्रभो! सत्यशौचान्विताय), नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७४ ॥

नमस्ते प्रभो! युक्तिमन्निर्णयाय, नमो गुप्तवाक्कायचेतस्त्रयाय।
नमो धर्मसद्ध्यानतानैकताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७५ ॥

नमः श्रेणिमारोहते निष्प्रपातं, नमस्तन्वते सप्तदृग्मोहघातम्।
नमस्ते प्रभो! निर्गतायुस्त्रयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७६ ॥

मोक्ष के संसारमा समान चित्तवाळा आपने नमस्कार थाओ। जीर्ण के नवीनमा समान चित्तवाळा आपने नमस्कार थाओ। पवित्र के अशुचिमां सम चित्तवाळा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ७१ ॥

मृत्युथी निर्भय एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। जीवितमां पण स्पृहा विनाना एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। स्वरूपमां स्थित एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ ॥ ७२ ॥

अनुत्तर क्षांति (क्षमा) ने करनारा (धरनारा) एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। निर्लोभिता मुक्तने करनारा (अनुभवनारा) एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। मृदुताथी सहित ऋजुतावाळा एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ ॥ ७३ ॥

श्रेष्ठ तप अने संयमवाळा हे प्रभु! आपने नमस्कार थाओ। श्रेष्ठ ब्रह्मचर्यवाळा तथा अकिंचनतावाळा एवा आपने नमस्कार थाओ। (सत्य अने शौचथी युक्त एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ) ॥ ७४ ॥

युक्तिसंगत निर्णयवाळा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ। मन वचन ने कायाथी गुप्त एवा आपने नमस्कार थाओ। श्रेष्ठ प्रकारना धर्मध्यानमां एकतान एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ७५ ॥

अप्रतिपातिनी (क्षपक) श्रेणि पर आरोहण करता आपने नमस्कार थाओ। सात प्रकारना दर्शनमोहनीयनो घात करता आपने नमस्कार थाओ। त्रण प्रकारना आयुःकर्म (देवायु, तिर्यंचायु अने नारकायु) नी सत्ताथी रहित एवा हे प्रभो! आपने नमस्कार थाओ ॥ ७६ ॥

नमस्ते क्रमोद्यद्गुणस्थानकाय, नमस्ते परिक्षीणनिद्राभयाय ।
नमस्तेऽजुगुप्साय वेदोज्झिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७७ ॥

नमो विप्रमुक्ताय हास्येन रत्या, नमो विप्रमुक्ताय शोकारतिभ्याम् ।
नमस्ते क्षरन्नोकषायाय मूलात्, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७८ ॥

नमश्छिन्दते क्रोधमानौ दुरन्तौ, नमो निघ्नते दम्भलोभौ समूलम् ।
नमस्ते यथाख्यातचारित्रराज्ञे, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ७९ ॥

नमः क्षीणमोहाय सुस्नातकाय, नमो घातिकर्मद्विषद्घातकाय ।
नमो जातकर्मत्रिषष्टिक्षयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८० ॥

नमः प्रज्वलद्ध्यानदावानलाय नमोदग्धनिश्शेषकर्मोपलाय (कर्मेन्धनाय) ।
नमस्ते चतुःकर्मशेषोदयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८१ ॥

नमस्तेऽत्र कर्मद्वयोदीरकाय, नमस्सत्तयाऽशीतियुक्पञ्चकाय ।
नमो बध्नते त्रिक्षणस्थायिसातं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८२ ॥

क्रमथी गुणठाणे चडता एवा आपने नमस्कार थाओ । त्रण निद्रा, भय, जुगुप्सा, अने त्रण वेदनो क्षय करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ७७ ॥

हास्य ने रति थी रहित एवा आपने नमस्कार थाओ । शोक ने अरतिथी विमुक्त एवा आपने नमस्कार थाओ । नवे नोकषायनो मूळथी क्षय करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ७८ ॥

दुरंत एवा क्रोध अने माननो छेद करनारा आपने नमस्कार थाओ । दंभ (माया) तथा लोभनो समूळ नाश करनारा आपने नमस्कार थाओ । यथाख्यात चारित्रना राजा (स्वामी) एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ७९ ॥

क्षीणमोह गुणठाणे पहोंचेला ने सुस्नातक (वीतराग) एवा आपने नमस्कार थाओ । चार घातीकर्मरूपी शत्रुनो घात करनारा आपने नमस्कार थाओ । जेमनी त्रेसठ कर्मप्रकृतिओनो क्षय थयो छे एवा आपने नमस्कार थाओ (आठ कर्मनी १४८ प्रकृतिनी गणनाए ६३ प्रकृति जतां ८५ प्रकृति रहे छे । तेनो क्षय चौदमे गुणठाणे ज थाय छे ।) ॥ ८० ॥

जेमनो ध्यानरूपी दावानल प्रज्वलित छे एवा आपने नमस्कार थाओ । सकल घातिकर्मरूप इन्धनने भस्मसात करनार आपने नमस्कार थाओ। जेमने शेष चार अघातिकर्मो उदयमां छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ८१ ॥

नाम अने गोत्र कर्मनी उदीरणा करनार आपने नमस्कार थाओ। जेमने सत्तामां ८५ प्रकृतिओ रहेली छे एवा आपने नमस्कार थाओ । त्रिक्षणनी स्थितिवाळा सातावेदनीयने बांधनारा आपने नमस्कार थाओ । (पहेले समये बंधाय, बीजे समये वेदाय ने त्रीजे समये क्षय थाय ॥ ८२ ॥

नमो ध्यातशुक्लाद्यभेदद्वयाय, नमस्ते तृतीयान्तरालस्थिताय ।
नमः शुक्ललेश्यास्थितौ निश्चलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८३ ॥

नमः केवलज्ञानसद्दर्शनाय, नमस्ते कृतार्हत्पदस्पर्शनाय ।
नमस्ते हताष्टादशाऽऽदीनवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८४ ॥

नमो जानते पश्यते सर्वलोकमलोकं तथैवाशु विद्वन्नमस्ते ।
नमो द्रव्यभावावबोधात्मकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८५ ॥

नमस्तत्क्षणायातदेवासुराय, नमोऽनुत्तरर्द्धिप्रभाभासुराय ।
नमो रत्नरैरूप्यवप्रत्रयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८६ ॥

नमस्ते चतुर्दिग्विराजन्मुखाय, नमस्तेऽमितः संसदां सत्सुखाय ।
नमो योजनच्छायचैत्यद्रुमाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८७ ॥

नमो योजनासीनतावज्जनाय, नमश्चैकवाग्बुद्धनानाजनाय ।
नमो भानुजैत्रप्रभामण्डलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८८ ॥

शुक्लध्यानना प्रथमना बे पायाओनुं ध्यान करता आपने नमस्कार थाओ । ध्यानांतरिकामां (बीजा त्रीजा पायाना आंतरामां—१३ मे गुणठाणे) वर्तना आपने नमस्कार थाओ । शुक्ललेश्यानी स्थितिमां निश्चळ एवा आपने नमस्कार थाओ ॥८३॥

केवळज्ञान अने केवळदर्शनवाळा आपने नमस्कार थाओ । अरिहंत पदनी स्पर्शना करनार (तीर्थंकर नामकर्मने धर्मोपदेश वडे वेदता) आपने नमस्कार थाओ । अढार दोषथी रहित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ८४ ॥

सर्व लोकने जोता अने जाणता आपने नमस्कार थाओ । तेवी ज रीते शीघ्र, अलोकने जाणता आपने नमस्कार थाओ । सकल द्रव्यो अने तेमना सकल भावोना अवबोधरूप आपने नमस्कार थाओ ॥ ८५ ॥

जेमनी पासे तत्क्षण (केवळज्ञान थतां ज) सुरो अने असुरो आव्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ । अनुत्तर एवी ऋद्धि अने प्रभाथी देदीप्यमान एवा आपने नमस्कार थाओ । जेमना समवसरणमां रत्न, सुवर्ण अने रूपाना त्रण गढ छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ८६ ॥

जेमनुं मुख चारे दिशाओमां शोभी रह्युं छे (चतुर्मुख) एवा आपने नमस्कार थाओ । चारे दिशाओमां बेठेली पर्षदाने श्रेष्ठ सुख आपनारा आपने नमस्कार थाओ । समवसरण पर एक योजनप्रमाण छाया करनार अशोकवृक्षनी नीचे शोभता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ८७ ॥

जेमना समवसरणनी योजनप्रमाण भूमिमां करोडो जनो समाईने बेसी गया छे एवा आपने नमस्कार थाओ । एक ज वाणीथी अनेक जनोने जुदी जुदी रीते समजावनारा (वाणीना ३५ गुणोवाळा) आपने नमस्कार थाओ । सूर्यना तेजने जीतनार भामंडलवाळा आपने नमस्कार थाओ ॥ ८८ ॥

नमो दूरनष्टेतिवैरज्वराय, नमो नष्टदुर्वृष्टिरुग्विड्वराय ।
नमो नष्टसर्वप्रजोपद्रवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ८९ ॥

नमो धर्मचक्रत्रसत्तामसाय, नमः केतुहृष्यत्सुदृग्मानसाय ।
नमो व्योमसञ्चारिसिंहासनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९० ॥

नमश्चामरैरष्टभिर्वीजिताय, नमः स्वर्णपद्माहिताङ्घ्रिद्वयाय ।
(नमो नाथ ! छत्रत्रयेणान्विताय), नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९१ ॥

नमोऽधोमुखाग्रीभवत्कण्टकाय, नमो ध्वस्तकर्मारिनिष्कण्टकाय ।
नमस्तेऽभितो नम्रमार्गद्रुमाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९२ ॥

नमस्तेऽनुकूलीभवन्मारुताय, नमस्ते सुखाकृद्विहायोरुताय ।
नमस्तेऽम्बुसिक्ताभितो योजनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९३ ॥

नमो योजनाजानुपुष्पोच्चयाय, नमोऽवस्थितश्मश्रुकेशादिकाय ।
नमस्ते सुपञ्चेन्द्रियार्थोदयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९४ ॥

जेमनां संनिधानना कारणे इति, जातिवैर अने ज्वरो दूर नासी गया छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनां संनिधानथी भयंकर वृष्टि, व्याधि अने अपशब्दो नाश पाम्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनां संनिधानथी प्रजाना सर्व उपद्रवो नाश पाम्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ८९ ॥

जेमनां धर्मचक्र (ना प्रकाश) वडे अंधकार त्रास पाम्यो छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमना धर्मध्वजने जोवाथी सुदृष्टि जीवोनां मन हर्ष पाम्यां छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी साथे सिंहासन पण आकाशमां चाले छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९० ॥

आठ चामर वडे वींझाता आपने नमस्कार थाओ। स्वर्णकमळ उपर चरणद्वयने मूकनारा आपने नमस्कार थाओ। (हे नाथ ! छत्रत्रयथी सहित एवा आपने नमस्कार थाओ) ॥ ९१ ॥

जेमनां मार्गमांना कांटाओ अधोमुख थई जाय छे एवा आपने नमस्कार थाओ। कर्मशत्रुनो नाश करवाथी निष्कंटक थयेला आपने नमस्कार थाओ। जेमनी आजुबाजुना मार्गवृक्षो नमी रह्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९२ ॥

जेमनां संनिधानमां पवन अनुकूल वाय छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनां संनिधानमां पक्षिओ मधुर ध्वनि करी रह्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी आजुबाजु एक योजनमां सुगंधी जलनो छंटकाव थाय छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९३ ॥

जेमना एक योजन प्रमाण समवसरणमां जानु पर्यंत पुष्पोनो समुच्चय (ढगलो) थाय छे एवा आपने नमस्कार थाओ; जेमना मस्तकना अने दाढी मूछना केश वगेरे अवस्थित रहे छे (दीक्षा लीधा पछी वधता नथी) एवा आपने नमस्कार थाओ। पांचे इन्द्रियोने अनुकूल विषयोनी प्राप्तिवाळा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९४ ॥

नमो नाकिकोट्याऽविविक्तान्तिकाय, नमो दुन्दुभिप्रष्टभूमित्रिकाय।
नमोऽभ्रंलिहाग्रोद्दितेन्द्रध्वजाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९५ ॥
नमः प्रातिहार्याष्टकालङ्कृताय, नमो योजनव्याप्तवाक्यामृताय।
नमस्ते विनालङ्कृतिं सुन्दराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९६ ॥
नमस्तेऽन्वहं द्विर्भवद्देशनाय, नमस्साक्षतत्त्वाश्रितोद्देशनाय।
नमः प्रोक्तषड्द्रव्यरूपत्रयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९७ ॥
नमस्ते मतोत्पत्तिसत्त्वव्ययाय, नमस्ते त्रिपद्यात्तविश्वत्रयाय।
नमस्त्रासितैकान्तवादिद्विपाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९८ ॥
नमः क्लृप्ततीर्थस्थितिस्थापनाय, नमः सचतुःसङ्घसत्थापनाय।
नमस्ते चतुर्भेदधर्मार्पकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ९९ ॥
नमः प्रोक्तनिःश्रेयसश्रीपथाय, नमो नाशितश्रावकान्तर्व्यथाय।
नमस्तेऽस्तु रत्नत्रयीदीपकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०० ॥

जेमनी सेवामां जघन्यथी एक करोड देवताओ सदा रहे छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी पासे वागती दुदुभिनो नाद त्रण गढनी अन्तर्गत भूमिमां प्रसरी रहे छे एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनी आगल चालतो इन्द्रध्वज ऊँचे आकाशने स्पर्शे छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९५ ॥

उपर प्रमाणेना आठ प्रातिहार्यथी अलंकृत एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमनुं वचनामृत योजन सुधी प्रसरे छे एवा आपने नमस्कार थाओ। अलंकार विना पण अत्यन्त सुंदर एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९६ ॥

दररोज बे वखत देशना आपता एवा आपने नमस्कार थाओ। सात तत्त्वने आश्रयीने देशना देनारा आपने नमस्कार थाओ। षड्द्रव्यना त्रण प्रकारनां[1] स्वरूपने कहेनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९७ ॥

वस्तुमात्र उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य स्वरूप छे, एवु जेमने अभिमत छे, एवा आपने नमस्कार थाओ। त्रिपदीवडे विश्वत्रयने ग्रहण करनार (जाणनार अने जणावनार) एवा आपने नमस्कार थाओ। एकान्तवादीरूप हस्तिओने त्रास पमाडनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९८ ॥

केवलज्ञानवडे तीर्थनी मर्यादाने जाणीने तेने स्थापनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। चतुर्विध संघनी सत्यापना (स्थापना) करनारा आपने नमस्कार थाओ। चतुर्विध[2] धर्मने आपनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ ९९ ॥

मोक्षलक्ष्मीने प्राप्त करवानो मार्ग कहेनारा आपने नमस्कार थाओ। श्रावकोनी अन्तर्व्यथानो नाश करनार आपने नमस्कार थाओ, रत्नत्रयीना दीपक–प्रकाशक एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०० ॥

---

१ उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य।
२ दान-शील तप-भावरूप।

नृतिर्यक्सुरासस्वसामायिकाय, नमस्ते नमोऽमोघवाक्जायुकाय ।
नमो द्वादशप्रौढपर्षत्प्रियाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०१ ॥

नमः स्वार्थवाहाय मुक्त्यध्वगानाम्, नमोऽवारपाराय सूक्त्यापगानाम् ।
विहारैर्नमः पावितोर्वीतलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०२ ॥

नमो द्वादशाङ्गीनदीभूधराय, नमः सप्तभङ्गीचमूदुर्धराय ।
नमस्ते प्रमाणोपपन्नागमाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०३ ॥

नमो बुद्धतत्त्वाय तद्बोधकाय, नमः कर्ममुक्ताय तन्मोचकाय ।
नमस्तीर्णजन्माब्धये तारकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०४ ॥

नमो लोकनाथाय लोकोत्तमाय, नमस्ते त्रिलोकप्रदीपोपमाय ।
नमो निर्निदानं जनेभ्यो हिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०५ ॥

नमः पावनेभ्योऽपि ते पावनाय, नमः सिद्धियोगैः(गे) कृतोद्भावनाय ।
नमो दत्तनिःशेषजीवाभयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०६ ॥

जेमनी पासेथी मनुष्य, तिर्यंच अने देवोए स्वयोग्य सामायिक स्वीकार्युं छे एवा आपने नमस्कार थाओ। अमोघ वाणीवडे (भव्य जीवोनां हृदयने) जीतनारा आपने नमस्कार थाओ। प्रौढ बार पर्षदाओने प्रिय एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०१ ॥

मुक्तिमार्गे गमन करनाराओना सार्थवाह (मुक्तिमार्गना पथिकोना स्वार्थ-योगक्षेमने वहन करनारा) एवा आपने नमस्कार थाओ। सूक्तिरूपी नदीओना समुद्र एवा आपने नमस्कार थाओ (जेम नदीओनो स्वामी समुद्र छे तेम सूक्तिओना स्वामी परमात्मा छे)। विहारो वडे पृथ्वीतलने पवित्र करनार एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०२ ॥

द्वादशांगी-नदीना पर्वत—उद्गमस्थानभूत आपने नमस्कार थाओ। सप्तभंगीरूप सेनाथी दुर्धर एवा आपने नमस्कार थाओ। जेमना आगमो प्रमाणोवडे उपपन्न—युक्तिसंगत छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०३ ॥

स्वयं तत्त्वने जाणनारा अने बीजाओने ते जणावणारा एवा आपने नमस्कार थाओ। स्वयं कर्मोथी मुक्त थयेला अने बीजा जीवोने कर्मोथी मुक्त करनारा एवा आपने नमस्कार थाओ। स्वयं संसार समुद्रने तरेला अने बीजाओने तारनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०४ ॥

लोकना नाथ अने लोकमां उत्तम एवा आपने नमस्कार थाओ। त्रणे लोकने प्रकाशवामां प्रदीप तुल्य एवा आपने नमस्कार थाओ। जीवोनुं निष्कारण (स्वभावथी ज) हित करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०५ ॥

पवित्रोथी पण पवित्र एवा आपने नमस्कार थाओ। मोक्षना योगोवडे (योगोनी) प्रभावना करनारा [सिद्धिना योग माटे तैयार थयेला (?)] आपने नमस्कार थाओ। सर्व जीवोने अभय आपनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०६ ॥

नमोऽन्तर्मुहूर्तावशिष्टे यताय, नमः सारशैलेश्यवस्थोचिताय ।
नमस्ते चतुःकर्मतुल्यांशताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०७ ॥

नमस्ते क्रमाद्रुद्धयोगत्रयाय, नमो लेश्यया शुक्लयाऽप्युज्झिताय ।
नमः पूर्णशुक्लान्त्यभेदद्वयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०८ ॥

नमस्ते विशुद्धया महानिर्जराय, नमोऽशीतियुक्पञ्चकर्मोत्किराय ।
नमस्ते त्रिभागोनदेहोच्छ्रयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०९ ॥

नमस्ते पतत्कार्मणौदारिकाय, नमोऽनादिसम्बन्धमुक्ताणुकाय ।
नमस्तत्क्षणाप्तस्थिरस्थानकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११० ॥

नमस्तत्र गत्याऽस्पृशन्त्या गताय, नमः सिद्धबुद्धाय पारङ्गताय ।
नमः साद्यनन्तस्थितिस्थायुकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १११ ॥

नमो वीतसंसारसत्क(त्का)कथाय, नमो निर्जराजन्ममृत्युव्यथाय ।
नमः शाश्वतायामलायाचलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११२ ॥

आयुष्य अंतर्मुहूर्त बाकी रहे त्यारे योग निरोध माटे तैयार थयेला आपने नमस्कार थाओ । सारभूत एवी शैलेशी अवस्थाने योग्य एवा आपने नमस्कार थाओ । चार अघाति कर्मोना अंशोने केवलिसमुद्घातवडे सरखा करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०७ ॥

अनुक्रमे त्रण योगोने रोकनारा आपने नमस्कार थाओ । शुक्ललेश्याथी पण रहित एवा आपने नमस्कार थाओ । शुक्ल ध्यानना अंत्य बे भेदने पूर्ण करता आपने नमस्कार थाओ ॥ १०८ ॥

आत्म विशुद्धिवडे महानिर्जरा करनारा आपने नमस्कार थाओ । सत्तामा रहेली ८५ कर्मप्रकृतिने उखेडी नाखनारा आपने नमस्कार थाओ । जेमना देहनी ऊंचाई त्रिभागोन थयेल छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०९ ॥

जेमना कार्मण अने औदारिक शरीर खरी रह्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ । अनादि सबंधवाळा परमाणुओथी रहित बनेला आपने नमस्कार थाओ । ते ज क्षणमां (अेक ज समयमां) मोक्षस्थान ने प्राप्त करनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११० ॥

अस्पृशद् गतिवडे सिद्धस्थानमां गयेल आपने नमस्कार थाओ । सिद्ध, बुद्ध अने पारगत एवा आपने नमस्कार थाओ । सादि-अनन्त स्थितिवडे (सिद्धस्थानमां) स्थित थयेला आपने नमस्कार थाओ ॥ १११ ॥

संसार संबंधी कथाथी रहित एवा आपने नमस्कार थाओ । जरा, जन्म ने मरणनी व्यथाथी रहित एवा आपने नमस्कार [illegible] शाश्वत, अम[illegible] अचल एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११२ ॥

नमः केवलज्ञानदृग्लक्षणाय, नमोऽनुक्रमैकैकबोधक्षणाय ।
नमो ज्ञातदृष्टाखिलार्थप्रथाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११३ ॥

नमस्तेऽनुपाख्येयसौख्याह्वयाय, नमः स्वोत्थितानन्तवीर्योदयाय ।
नमोऽर्वागदृशां वाङ्मनोऽगोचराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११४ ॥

नमो देहभृद्देहदेवालयाय, नमस्तेऽत्र चैत्याय चैतन्यमूर्त्त्या ।
नमः स्वाविभेदेन दक्षेक्षिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११५ ॥

नमो निर्विकाराय नीरञ्जनाय, नमो योगिलक्ष्याय निर्व्यञ्जिताय ।
नमस्तेऽनुमानोपमानातिगाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११६ ॥

नमः स्थापनाद्रव्यनामात्मकाय, नमस्ते पुनानाय कालत्रयेऽस्मान् ।
नमो भागधेयाय भव्याङ्गभाजां, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११७ ॥

नमस्ते प्रभो ! श्रीयुगादीश्वराय, नमस्तेऽजिताय प्रभो ! शम्भवाय ।
नमो नाथ ! सैद्धार्थतीर्थेश्वराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११८ ॥

केवलज्ञान ने केवलदर्शन स्वरूप आपने नमस्कार थाओ। क्रमसर (समयांतरे) ज्ञानदर्शनना बोध (उपयोग) वाळा आपने नमस्कार थाओ। सर्व पदार्थोना विस्तार (सर्व पर्यायो) ने जाणनारा अने जोनारा एवा आपने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ ११३ ॥

जेमनुं सुख वाणीद्वारा कही शकाय तेवुं नथी एवा आपने नमस्कार थाओ। आत्मामांथी ज उत्पन्न थयेला अनन्तवीर्यना उदयवाळा आपने नमस्कार थाओ। छद्मस्थोनी वाणीने अने मनने अगोचर एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११४ ॥

प्राणीओनो देह छे मंदिर जेमनुं एवा आपने नमस्कार थाओ। ते मंदिरमां चैतन्यमूर्तिवडे चैत्यरूप आपने नमस्कार थाओ। दक्ष जनो वडे अविभेदपणे (अभेद ध्यानवडे) जोवाता एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११५ ॥

निर्विकार अने निरंजन एवा आपने नमस्कार थाओ। योगी जनोने लक्ष्य, तथा जेमनुं स्वरूप व्यंजना वृत्तिथी जाणी शकाय तेवुं नथी एवा आपने नमस्कार थाओ। अनुमान अने उपमान प्रमाणथी पण पर स्वरूपवाळा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११६ ॥

स्थापना, द्रव्य अने नामात्मक एवा आपने नमस्कार थाओ। अमने (संसारी जीवोने) त्रणे काळमां पवित्र करता एवा आपने नमस्कार थाओ। भव्य प्राणिओना भाग्यरूप आपने नमस्कार थाओ ॥ ११७ ॥

श्रीयुगादीश्वर रूप हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। श्रीअजितनाथ तथा श्रीसंभवनाथरूप हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। हे नाथ ! श्रीसिद्धार्था माताना पुत्र श्रीअभिनंदन, आपने नमस्कार थाओ ॥ ११८ ॥

---

१. अहींथी सामान्य अरिहंत (आर्हन्त्य शक्ति) नी स्तुति होवाथी एक वचननो प्रयोग समजवो।

नमोऽन्तर्मुहूर्तावशिष्टे यताय, नमः सारशैलेश्यवस्थोचिताय ।
नमस्ते चतुःकर्मतुल्यांशताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०७ ॥

नमस्ते क्रमाद्रुद्धयोगत्रयाय, नमो लेश्यया शुक्लयाऽप्युज्झिताय ।
नमः पूर्णशुक्लान्त्यभेदद्वयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०८ ॥

नमस्ते विशुद्ध्या महानिर्जराय, नमोऽशीतियुक्पञ्चकर्मोत्किराय ।
नमस्ते त्रिभागोनदेहोच्छ्रयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १०९ ॥

नमस्ते पतत्कार्मणौदारिकाय, नमोऽनादिसम्बन्धमुक्ताणुकाय ।
नमस्तत्क्षणाप्तस्थिरस्थानकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११० ॥

नमस्तत्र गत्याऽस्पृशन्त्या गताय, नमः सिद्धबुद्धाय पारङ्गताय ।
नमः साद्यनन्तस्थितिस्थायुकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १११ ॥

नमो धौतसंसारसत्क(त्का)थाय, नमो निर्जराजन्ममृत्युव्यथाय ।
नमः शाश्वतायामलायाचलाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११२ ॥

आयुष्य अंतर्मुहूर्त बाकी रहे त्यारे योग निरोध माटे तैयार थयेला आपने नमस्कार थाओ । सारभूत एवी शैलेशी अवस्थाने योग्य एवा आपने नमस्कार थाओ । चार अघाति कर्मोना अंशोने केवलिसमुद्घातवडे सरखा करनारा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०७ ॥

अनुक्रमे त्रण योगोने रोकनारा आपने नमस्कार थाओ । शुक्ललेश्याथी पण रहित एवा आपने नमस्कार थाओ । शुक्ल ध्यानना अंत्य बे भेदने पूर्ण करता आपने नमस्कार थाओ ॥ १०८ ॥

आत्म विशुद्धिवडे महानिर्जरा करनारा आपने नमस्कार थाओ । सत्तामां रहेली ८५ कर्मप्रकृतिने उखेडी नाखनारा आपने नमस्कार थाओ । जेमना देहनी ऊंचाई त्रिभागोन थयेल छे एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १०९ ॥

जेमनां कार्मण अने औदारिक शरीर खरी रह्यां छे एवा आपने नमस्कार थाओ । अनादि संबंधवाळा परमाणुओथी रहित बनेला आपने नमस्कार थाओ । ते ज क्षणमां (एक ज समयमां) मोक्षस्थानने प्राप्त करनारा एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११० ॥

अस्पृशद् गतिवडे सिद्धस्थानमां गयेल आपने नमस्कार थाओ । सिद्ध, बुद्ध अने पारगत एवा आपने नमस्कार थाओ । सादि-अनन्त स्थितिवडे (सिद्धस्थानमां) स्थिर थयेला आपने नमस्कार थाओ ॥ १११ ॥

संसार संबंधी कथाथी रहित एवा आपने नमस्कार थाओ । जरा, जन्म ने मरणनी व्यथाथी रहित एवा आपने नमस्कार थाओ । शाश्वत, अमल अने अचल एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ ११२ ॥

नमोऽनागतोत्सर्प्पिणीकालभोगे, चतुर्विंशतावेष्यदार्हन्त्यशक्त्यै ।
नमः स्वामिने पद्मनाभादिनाम्ने, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२५ ॥

दशस्वप्यथैवं नमः कर्मभूषु, चतुर्विंशतौ ते नमोऽनन्तमूर्त्यै ।
नमोऽध्यक्षमूर्त्यै विदेहावनीषु, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२६ ॥

नमस्ते प्रभो ! स्वामिसीमन्धराय, नमस्तेऽधुनार्हन्त्यलक्ष्मीवराय ।
नमः प्राग्विदेहावनीमण्डनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२७ ॥

नमस्तेऽधुना द्विग्विदेहोद्गताय, नमस्ते दशद्वैतदेवाद्भुताय ।
नमः सन्ततप्रातिहार्याष्टकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२८ ॥

नमो भूर्भुवः स्वस्त्रयीशाश्वताय, नमस्ते त्रिलोकीस्थिरस्थापनाय ।
नमो देवमर्त्यासुराभ्यर्च्चिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२९ ॥

नमः स्वर्विमानेषु देवार्चिताय, नमो ज्योतिष्केष्विन्दुसूर्यैर्नताय ।
नमोऽथापि नम्रासुरव्यन्तराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३० ॥

अनागत (आवता) उत्सर्पिणी काळ संबंधी चोवीशीमां आर्हन्त्य (अरिहंतपणुं) रूप शक्तिने धारण करनारा श्रीपद्मनाभादि नामवाळा श्री जिनेश्वरोने नमस्कार थाओ ॥ १२५ ॥

ए ज प्रमाणे दशे कर्मभूमि (पांच भरत अने पांच ऐरवत) मां नी चोवीशीओमां अनंत मूर्तिरूप आपने नमस्कार थाओ। महाविदेहनी भूमिओमां अध्यक्ष (प्रत्यक्ष) मूर्तिवाळा विहरमान तीर्थंकरोने नमस्कार थाओ ॥ १२६ ॥

विरहमान तीर्थंकर श्रीसीमंधरस्वामिरूप हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। अत्यारे अर्हंतपणानी लक्ष्मीना स्वामी एवा हे श्रीसीमंधर प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। पूर्व महाविदेहनी भूमिना मंडन हे सीमंधर प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ ॥ १२७ ॥

अत्यारे प्रत्यक्षपणे बन्ने बाजुना विदेहोमां रहेला वीश अद्भुत तीर्थंकररूप आपने नमस्कार थाओ। सदा (सुंदर) अष्ट महाप्रातिहार्य सहित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १२८ ॥

स्वर्ग, मर्त्य ने पाताळ रूप त्रणे लोकमां शाश्वत एवा आपने नमस्कार थाओ। त्रणे लोकमां स्थिर छे स्थापना जेमनी एवा आपने (शाश्वत स्थापना जिनोने) नमस्कार थाओ। मनुष्यो, देवो अने असुरोथी अर्चित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १२९ ॥

स्वर्गलोकना विमानोमां देवोथी पूजित एवा आपने नमस्कार थाओ। ज्योतिष्क विमानोमां सूर्येंद्रो अने चन्द्रेन्द्रोवडे नमस्कार कराता आपने नमस्कार थाओ। असुरो (भवनपति देवो) अने व्यंतरो वडे नमस्कार कराता आपने नमस्कार थाओ ॥ १३० ॥

नमो माङ्गलीयस्फुरन्मङ्गलाय, नमस्ते महःसद्मपद्मप्रभाय ।
नमस्ते सुपार्श्वाय चन्द्रप्रभाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ११९ ॥

नमः पुष्पदन्ताय ते शीतलाय, नमः श्रीजितेन्द्राय ते वैष्णवाय ।
नमो वासुपूज्याय पूज्याय सद्भिः, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२० ॥

नमः श्यामया सुप्रसूताय नेतः, नमोऽनन्तनाथाय धर्मेश्वराय ।
नमः शान्तये कुन्थुनाथाय तुभ्यं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२१ ॥

नमस्तेऽप्यराख्येश ! नम्रामराय, नमो मल्लिदेवाय ते सुव्रताय ।
नमस्ते नमिस्वामिने नेमयेऽर्हन् !, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२२ ॥

नमस्ते प्रभो ! पार्श्वविश्वेश्वराय, नमस्ते विभो ! वर्द्धमानाभिधाय ।
नमोऽचिन्त्यमाहात्म्यचिद्वैभवाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२३ ॥

नमस्तेऽवसर्पिण्यभिख्येऽत्र काले, नमस्ते चतुर्विंशतावञ्चिताङ्घ्रे ।
नमः केवलज्ञानिमुख्याह्वयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२४ ॥

मंगला माताना पुत्र परम मंगलरूप श्रीसुमतिनाथरूप आपने नमस्कार थाओ। तेजना धामरूप श्रीपद्मप्रभप्रभु रूप आपने नमस्कार थाओ। श्रीसुपार्श्वनाथ अने श्रीचन्द्रप्रभ रूप आपने नमस्कार थाओ ॥ ११९ ॥

श्रीपुष्पदंत (सुविधिनाथ) तथा शीतलनाथ रूप आपने नमस्कार थाओ। श्रीविष्णुमाताना पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ रूप आपने नमस्कार थाओ। सज्जनोने पूज्य एवा श्रीवासुपूज्यस्वामी रूप आपने नमस्कार थाओ ॥ १२० ॥

श्यामा माताना सुपुत्र श्रीविमळनाथरूप हे परमनेता ! आपने नमस्कार थाओ। श्रीअनंतनाथ तथा श्रीधर्मनाथरूप आपने नमस्कार थाओ। श्रीशान्तिनाथ तथा श्रीकुंथुनाथरूप आपने नमस्कार थाओ ॥ १२१ ॥

देवोथी वंदित श्री अरनाथ नामक प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। श्रीमल्लिदेव अने श्रीमुनिसुव्रत-रूप आपने नमस्कार थाओ। श्रीनमिनाथ अने श्रीनेमिनाथरूप हे अरिहंत ! आपने नमस्कार थाओ ॥ १२२ ॥

विश्वेश्वर श्रीपार्श्वनाथरूप हे प्रभो आपने नमस्कार थाओ। श्रीवर्द्धमान नामक हे विभो! आपने नमस्कार थाओ। अचिन्त्य माहात्म्य अने अचिंत्य ज्ञानरूप वैभवथी शोभता आपने नमस्कार थाओ ॥ १२३ ॥

अवसर्पिणी नामना आ काळमां थयेली चोवीशीमां पूजायेला चरणकमळवाळा आपने नमस्कार थाओ। (अतीतकाळे थयेला) श्री केवळज्ञानी वगेरे नामवाळा चोवीश तीर्थंकरोने नमस्कार थाओ ॥ १२४ ॥

नमोऽनागतोत्सर्प्पिणीकालभोगे, चतुर्विंशतावेष्यदार्हन्त्यशक्त्यै ।
नमः स्वामिने पद्मनाभादिनाम्ने, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२५ ॥

दशस्वप्यथैवं नमः कर्मभूषु, चतुर्विंशतौ ते नमोऽनन्तमूर्त्यै ।
नमोऽध्यक्षमूर्त्यै विदेहावनीषु, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२६ ॥

नमस्ते प्रभो ! स्वामिसीमन्धराय, नमस्तेऽधुनार्हन्त्यलक्ष्मीवराय ।
नमः प्राग्विदेहावनीमण्डनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२७ ॥

नमस्तेऽधुना द्विग्विदेहोद्गताय, नमस्ते दशद्वैतदेवाद्भुताय ।
नमः सन्ततप्रातिहार्याष्टकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२८ ॥

नमो भूर्भुवः स्वस्त्रयीशाश्वताय, नमस्ते त्रिलोकीस्थिरस्थापनाय ।
नमो देवमर्त्त्यासुराभ्यर्चिताय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १२९ ॥

नमः स्वर्विमानेषु देवार्चिताय, नमो ज्योतिष्केष्विन्दुसूर्यैर्नताय ।
नमोऽथापि नम्रासुरव्यन्तराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३० ॥

अनागत (आवता) उत्सर्पिणी काळ संबंधी चोवीशीमां आर्हन्त्य (अरिहंतपणुं) रूप शक्तिने धारण करनारा श्रीपद्मनाभादि नामवाळा श्री जिनेश्वरोने नमस्कार थाओ ॥ १२५ ॥

ए ज प्रमाणे दशे कर्मभूमि (पांच भरत अने पांच ऐरवत) मां नी चोवीशीओमां अनंत मूर्तिरूप आपने नमस्कार थाओ। महाविदेहनी भूमिओमां अध्यक्ष (प्रत्यक्ष) मूर्तिवाळा विहरमान तीर्थंकरोने नमस्कार थाओ ॥ १२६ ॥

विरहमान तीर्थंकर श्रीसीमंधरस्वामिरूप हे प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। अत्यारे अर्हंतपणानी लक्ष्मीना स्वामी एवा हे श्रीसीमंधर प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ। पूर्व महाविदेहनी भूमिना मंडन हे सीमंधर प्रभो ! आपने नमस्कार थाओ ॥ १२७ ॥

अत्यारे प्रत्यक्षपणे बन्ने बाजुना विदेहोमां रहेला वीश अद्भुत तीर्थंकररूप आपने नमस्कार थाओ। सदा (सुंदर) अष्ट महाप्रातिहार्य सहित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १२८ ॥

स्वर्ग, मर्त्य ने पाताळ रूप त्रणे लोकमां शाश्वत एवा आपने नमस्कार थाओ। त्रणे लोकमां स्थिर छे स्थापना जेमनी एवा आपने (शाश्वत स्थापना जिनोने) नमस्कार थाओ। मनुष्यो, देवो अने असुरोथी अर्चित एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १२९ ॥

स्वर्गलोकना विमानोमां देवोथी पूजित एवा आपने नमस्कार थाओ। ज्योतिष्क विमानोमां सूर्येंद्रो अने चन्द्रेन्द्रोवडे नमस्कार कराता आपने नमस्कार थाओ। असुरो (भवनपति देवो) अने व्यंतरो वडे नमस्कार कराता आपने नमस्कार थाओ ॥ १३० ॥

नमोऽलङ्कृतस्वेष्टभूभृद्वराय, नमो व्याप्तनिश्शेषशस्यास्पदाय ।
नमः सर्वविश्वस्थितिस्थापकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३१ ॥

नमस्तीर्थराजाय तेऽष्टापदाय, नमः स्वर्णरत्नार्हदर्चास्पदाय ।
नमस्ते नतश्राद्धविद्याधराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३२ ॥

नमस्तीर्थसम्मेतशैलाह्वयाय, नमो विंशतिप्राप्तनिःश्रेयसाय ।
नमःश्रव्यदिव्यप्रभावाश्रयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३३ ॥

नमश्चोज्जयन्ताद्रितीर्थोत्तमाय, नमो जातनेमित्रिकल्याणकाय ।
नमः शोभितोद्धारसौराष्ट्रकाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३४ ॥

नमस्तेऽर्बुदायाप्तचैत्यार्बुदाय, नमो भव्यहृत्केकिलोकाम्बुदाय ।
नमः प्राच्यवंशेभ्यकीर्तिध्वजाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३५ ॥

नमस्ते प्रभो ! पार्श्वशङ्खेश्वराय, नमस्ते यशोगौरगोडीधराय ।
नमस्ते वरकाणतीर्थेश्वराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ले नमस्ते ॥ १३६ ॥

जेणे (आर्हन्त्यशक्तिए) पोतानी स्थापनाओ वडे श्रेष्ठ पर्वतो अलङ्कृत कर्या छे एवा आपने नमस्कार थाओ। सर्व प्रशस्त स्थानोमां व्याप्त एवा आपने नमस्कार थाओ। सर्व विश्वस्थितिना स्थापक एवा आपने नमस्कार थाओ ॥ १३१ ॥

तीर्थाधिराज अष्टापदने नमस्कार थाओ। स्वर्ण अने रत्ननी जिन प्रतिमाओथी शोभता ते तीर्थने नमस्कार थाओ। श्रद्धावान विद्याधरो वडे नमस्कृत ते तीर्थने नमस्कार थाओ ॥ १३२ ॥

सम्मेतशैल नामना तीर्थने नमस्कार थाओ। ज्यां वर्तमान चोवीशीना २० तीर्थंकरो मोक्ष पाम्या एवा ते तीर्थने नमस्कार थाओ। सांभळवा योग्य दिव्य प्रभावना आश्रयभूत ते तीर्थने नमस्कार थाओ ॥ १३३ ॥

श्री उज्जयन्तादि (गिरनार) नामना उत्तम तीर्थने नमस्कार थाओ। ज्यां श्री नेमिनाथ प्रभुना त्रण कल्याणक थया छे एवा ते तीर्थने नमस्कार थाओ। सुंदर उद्धारोवडे जे सौराष्ट्रदेशने शोभावी रह्युं छे एवा श्री शत्रुंजय तीर्थाधिराजने नमस्कार थाओ। ॥ १३४ ॥

परम-आप्त श्री जिनेश्वर भगवंतना चैत्यो वडे अर्बुद (शोभित) एवा अर्बुदाचलने नमस्कार थाओ। भव्यजनोना हृदयरूप मयूरोने आह्लादित करनार मेघसमान ए तीर्थने नमस्कार थाओ। प्राच्य (प्राग्वाट) वंशना धनाढ्योनी कीर्तिना ध्वजरूप ए तीर्थने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ १३५ ॥

श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ नामना हे प्रभु ! आपने नमस्कार थाओ। यशवडे उज्ज्वल एवा श्री गोडी पार्श्वनाथने नमस्कार थाओ। वरकाणा तीर्थना स्वामी श्री वरकाणा पार्श्वनाथने नमस्कार थाओ ॥ १३६ ॥

नमस्तेऽन्तरिक्षाय वामाङ्गजाय, नमः सूरतस्थाय ते दिग्गजाय ।
नमो नाथ ! जीराउलीमण्डनाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३७ ॥

नमो देशपूर्यादिनानाह्वयाय, नमो ध्येयनाम्ने महिम्नाऽव्ययाय ।
नमस्ते कृतारिष्टदुष्टक्षयाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३८ ॥

नमो वर्द्धमानप्रभोः शासनाय, नमस्ते चतुर्वर्णसङ्घाय नित्यम् ।
नमो मन्त्रराजाय ते ध्येयपञ्च !, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १३९ ॥

नमो जैनसिद्धान्तदुग्धार्णवाय, नमोऽनेकतत्त्वार्थरत्नाश्रयाय ।
नमो ह्य (हृ)द्यविद्येन्दिरासुन्दराय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १४० ॥

नमो दर्शनज्ञानचारित्रशुद्ध्यै, नमो भव्यसर्वोपधा(पाप) शुद्ध्यै ।
नमो भावनिर्ग्रन्थतथ्यक्रियायै, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १४१ ॥

नमः श्राद्धधर्माय दानोत्तमाय, नमस्ते चतुर्वर्गसिद्धिक्षमाय ।
नमस्ते चतुःशालकल्पद्रुमाय, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १४२ ॥

वामा माताना पुत्र अंतरिक्ष पार्श्वनाथने नमस्कार थाओ। सुरतमां रहेला दिग्गज पार्श्वनाथने नमस्कार थाओ। श्री जीराउली मंडन पार्श्वनाथने नमस्कार थाओ ॥ १३७ ॥

देश, नगर वगेरेने अनुसरता अनेक नामोवाळा आपने नमस्कार थाओ। जेमनुं नाम ध्येय छे अने महिमा वडे अव्यय एवा आपने नमस्कार थाओ। दुष्ट अरिष्टोनो क्षय करनारा आपने वारंवार नमस्कार थाओ ॥ १३८ ॥

श्रीवर्द्धमान प्रभुना शासनने नमस्कार थाओ। श्रीचतुर्विध संघने सदा नमस्कार थाओ। पांच ध्येयवाळा मंत्रराज (नवकार) ने नमस्कार थाओ ॥ १३९ ॥

जैन सिद्धान्तरूपी क्षीरसमुद्रने नमस्कार थाओ। अनेक तत्त्वार्थरूप रत्नना आश्रयभूत ते जैनसिद्धान्तरूप क्षीरसमुद्रने नमस्कार थाओ। मनोहर विद्यालक्ष्मीवडे शोभता ते जैनसिद्धान्तरूप क्षीरसमुद्रने नमस्कार थाओ ॥ १४० ॥

दर्शन ज्ञान अने चारित्रनी शुद्धिने नमस्कार थाओ। भव्य एवां सर्व साधनो वडे यती पापशुद्धिने नमस्कार थाओ। भावनिर्ग्रंथनी तथ्य (यथार्थ) क्रियाने नमस्कार थाओ। (अथवा दर्शन ज्ञान चारित्रनी शुद्धिने करनारी अने भव्य एवां सर्व साधनोवडे पापशुद्धिने करनारी एवी भावनिर्ग्रन्थनी तथ्य क्रियाने नमस्कार हो) ॥ १४१ ॥

दानवडे उत्तम एवा श्राद्धधर्मने नमस्कार थाओ। चारे वर्गनी (पुरुषार्थनी) सिद्धि करवामां समर्थ एवा श्राद्धधर्मने नमस्कार थाओ। दानादि चार प्रकारना धर्मरूप शाखाओवाळा कल्पवृक्ष समान श्रावकधर्मने नमस्कार थाओ ॥ १४२ ॥

। जैनवागीश्वरीदेवतायै, नमो वैनयिक्या सुधीसेवितायै ।
नम। वाङ्मयामोघपीयूषवृष्ट्यै, नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १४३ ॥
नमस्कार एकोऽपि चेत्तीर्थनेतुर्जनांस्तारयत्येव संसारवार्द्धेः ।
तदेतत्सहस्रं पुनः किं न हन्यान्नृणाङ्किल्बिषम्भूरिजन्मान्तरोत्थम् ॥ १४४ ॥

तथा चाहु :—

इक्को वि नमुक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
संसारसागराओ, तारेइ नरं व नारिं वा ॥ १४५ ॥
स्तवोऽयं प्रातरुदित-स्तमस्तोमच्छिदर्हताम् ।
नमस्कारसहस्रेण, सहस्रकिरणायताम् ॥ १४६ ॥
सहस्रकिरणस्येव, स्तवस्यास्य प्रभावतः ।
दूरे दोषाः पलायन्ते, पुण्याहः प्रकटो भवेत् ॥ १४७ ॥
स्थित्वा वर्षारात्रं, गन्धारे, स्वाग्निसंयममितेऽब्दे (१७२१)
श्रीविजयप्रभसूरि-, प्रसादतः स्तोत्रमिदमुदितम् ॥ १४८ ॥

जिनवाणीनी अधिष्ठात्री श्रीवागीश्वरीदेवीने नमस्कार थाओ। विनय वडे बुद्धिमानोए सेवेली एवी ते देवीने नमस्कार थाओ। वाणीमय अमोघ अमृतने वरसावनारी ते देवीने नमस्कार थाओ अथवा वैनयिकी बुद्धि वडे (विनय वडे) बुद्धिमान पुरुषो वडे सेवित अने सुवचनरूप अमोघ अमृतने वरसावनारी एवी श्री जिनवाणी-रूप देवताने नमस्कार थाओ ॥ १४३ ॥

(उपर प्रमाणेना १४३ काव्योमा दरेकमां सात सात वार 'नमः' शब्द आवतो होवाथी एकंदर एक हजारने एक वार नमस्कार थयेल छे।)

तीर्थंकर भगवतने एक वार करेलो नमस्कार पण मनुष्योने संसार-समुद्रथी तारे छे तो पछी आ हजार वार करेल नमस्कार मनुष्योना अनेक जन्मोना करेला पापोनो नाश शुं न करे ! अर्थात् जरूर करे ॥ १४४ ॥

कह्युं छे के—

जिनेश्वरोमा वृषभ समान श्रीवर्द्धमान स्वामीने करायेलो एक पण नमस्कार संसार-सागरथी पुरुष अथवा स्त्रीने तारे छे ॥ १४५ ॥

सवारमां गवायेलुं आ अरिहंतोनुं स्तवन हजार नमस्कार वडे सहस्र (हजार) किरणवाळा सूर्य सदृश अज्ञानांधकारनुं नाशक थाओ ॥ १४६ ॥

सहस्र किरणवाळा सूर्यनी जेम आ स्तवना प्रभावथी सर्व दोष रूप दोषा (रात्रि) दूर थाय छे अने पुण्यरूप दिवस प्रगट थाय छे ॥ १४७ ॥

गंधार नगरमा वर्षारात्र (चातुर्मास) रहीने संवत १७२१ वर्षे गच्छाधिपति श्रीविजयप्रभसूरिनी कृपाथी आ स्तोत्र रचवामां आव्युं छे ॥ १४८ ॥

श्रीहीरहीरविजयाह्वयसूरिशिष्य-
श्रीकीर्तिकीर्तिविजयाभिधवाचकानाम् ।
शिष्येण ढौकितमिदं भगवत्पदाग्रे,
स्तोत्रं सुवर्णरचितं विनयाभिधेन ॥ १४९ ॥

॥ इति महामहोपाध्यायश्रीविनयविजयवाचकपुङ्गवविरचितं श्रीजिनसहस्रनाम स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

हीरला श्रीहीरविजयसूरि[1]ना शिष्य सुंदर कीर्तिवाळा श्रीकीर्तिविजय उपाध्यायना श्रीविनयविजय नामना शिष्ये सुवर्ण (सारा अक्षरो) वडे रचेलुं आ स्तोत्र भगवंतना चरणकमलोमां धर्युं छे ॥ १४९ ॥

इति श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्र सार्थ सम्पूर्ण ।

परिचय

श्री 'जिनसहस्रनामस्तोत्र' (गुजराती अर्थयुक्त) श्रीजैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगर तरफथी वि. सं. १९९४ मां प्रकाशित थयेलुं छे ।

आ स्तोत्रना कर्ता महामहोपाध्याय श्रीविनयविजयजी महाराज छे। तेओ काव्य, व्याकरण, न्याय, आगम वगेरे अनेक शास्त्रोमां निपुण हता। तेमना लोकप्रकाश, कल्पसूत्रसुबोधिका, शान्त-सुधारस, विनयविलास वगेरे अनेक ग्रंथो प्रसिद्ध छे। तेओश्रीए आ स्तोत्र वि. सं. १७३१ मां गांधार नगरमां चातुर्मासमां रचेलुं छे। आवुं स्तोत्र भुजङ्गवृत्तमां होवाथी गेय छे अने तेथी ज कर्णप्रिय, मनोहर अने शुभभाववर्धक छे ।

तेना मुख्य श्लोक १४३ छे। ते दरेकमां सात वार 'नमः' पद आवे छे। ए रीते एकन्दर १००१ वार परमात्माने नमस्कार थाय छे। तेथी 'जिनसहस्रनामस्तोत्र' ए नाम सार्थक छे। वळी 'नम्' धातु उपर भाववाचक नाम 'नाम' पण थई शके छे। ए अपेक्षाए प्रस्तुत ग्रन्थनुं नाम अधिक सार्थक लागे छे.

श्लोक २१ थी ११७ मां श्रीतीर्थंकर भगवंतोनुं स्वर्ग-च्यवनथी मांडीने मोक्षगमन सुधीनुं सामान्य चरित्र क्रमशः अत्यन्त सुन्दर रीते रजु कर्युं छे। त्यार पछी सर्व नमस्करणीय तत्त्वोने सुंदर रीते स्तव्यां छे। आ स्तोत्रमांना केटलांक विशेषणो तो अर्थनी दृष्टिए बहुज गंभीर छे। उच्च प्रकारना आराधक-भाव विना ए विशेषणोनुं सर्जन शक्य नथी।

श्रीतीर्थंकर परमात्मानी भक्ति जेमने अत्यन्त प्रिय छे, एवा मुमुक्षुओ माटे आ स्तोत्र कंठस्थ करवा योग्य छे। कंठस्थ कर्या पछी प्रभु सन्मुख प्रशान्त वातावरणमां ज्यारे एने गावामां आवे छे, त्यारे एनाथी जे चित्तनी प्रसन्नता प्राप्त थाय छे, तेनुं वर्णन अहीं शी रीते करी शकाय ?

'नमस्कार महामन्त्र'ना प्रथम-पदना अर्थने आ स्तोत्र सुंदर रीते व्यक्त करनारुं होवाथी प्रस्तुत ग्रन्थमां अमे एनो संग्रह करेल छे.

---

१ श्री अने ही देवताओ जेमने सुप्रसन्न छे एवा श्री हीरविजयसूरि अने श्री अने कीर्ति जेमने सुप्रसन्न छे एवा श्री कीर्तिविजय उपाध्याय००० एवो अर्थ पण कदाच ग्रंथकर्ताने अभिप्रेत होय ।

[७४–२१]

पण्डित-आशाधरविरचितं
जिनसहस्रनामस्तवनम् ॥

प्रभो भवाङ्गभोगेषु, निर्विण्णो दुःखभीरुकः ।
एष विज्ञापयामि त्वां, शरण्यं करुणार्णवम् ॥ १ ॥
सुखलालसया मोहाद्, भ्राम्यन् बहिरितस्ततः ।
सुखैकहेतोर्नामापि, तव न ज्ञातवान् पुरा ॥ २ ॥
अद्य मोहग्रहावेशशैथिल्यात् किञ्चिदुन्मुखः ।
अनन्तगुणमाप्तेभ्यस्त्वां श्रुत्वा स्तोतुमुद्यतः ॥ ३ ॥
भक्त्या प्रोत्सार्यमाणोऽपि, दूरं शक्त्या तिरस्कृतः ।
त्वां नामाष्ट(ष्टक)सहस्रेण, स्तुत्वाऽऽत्मानं पुनाम्यहम् ॥ ४ ॥
जिन-सर्वज्ञ-यज्ञार्हन्-तीर्थकृन्नाथ-योगिनाम् ।
निर्वाण-ब्रह्म-बुद्धान्तकृतां चाष्टोत्तरैः शतैः ॥ ५ ॥

तद्यथा—

१ अथ जिनशतम्

जिनो जिनेन्द्रो जिनराड्, जिनपृष्ठो जिनोत्तमः ।
जिनाधिपो जिनाधीशो, जिनस्वामी जिनेश्वरः ॥ ६ ॥
जिननाथो जिनपतिर्जिनराजो जिनाधिराट् ।
जिनप्रभुर्जिनविभुर्जिनभर्ता जिनाधिभूः ॥ ७ ॥
जिननेता जिनेशानो, जिनेनो जिननायकः ।
जिनेट् जिनपरिवृढो, जिनदेवो जिनेशिता ॥ ८ ॥
जिनाधिराजो जिनपो, जिनेशी जिनशासिता ।
जिनाधिनाथोऽपि जिनाधिपतिर्जिनपालकः ॥ ९ ॥
जिनचन्द्रो जिनादित्यो, जिनार्को जिनकुञ्जरः ।
जिनेन्दुर्जिनधौरेयो, जिनधुर्यो जिनोत्तरः ॥ १० ॥
जिनवर्यो जिनवरो, जिनसिंहो जिनोद्वहः ।
जिनर्षभो जिनवृषो, जिनरत्नं जिनोरसम् ॥ ११ ॥
जिनेशो जिनशार्दूलो, जिनाग्र्यो जिनपुङ्गवः ।
जिनहंसो जिनोत्तंसो, जिननागो जिनाग्रणीः ॥ १२ ॥
जिनप्रवेकश्च जिनग्रामणीर्जिनसत्तमः ।
जिनप्रवर्हः परमजिनो, जिनपुरोगमः ॥ १३ ॥
जिनश्रेष्ठो जिनज्येष्ठो, जिनमुख्यो जिनाग्रिमः ।
श्रीजिनश्चोत्तमजिनो, जिनवृन्दारकोऽरिजित् ॥ १४ ॥

निर्विघ्नो विरजाः शुद्धो, निस्तमस्को निरञ्जनः ।
घातिकर्मान्तकः कर्ममर्मावित्, कर्महाऽनघः ॥ १५ ॥
वीतरागोऽक्षुद(ध)द्वेषो, निर्मोहो निर्मदोऽगदः ।
वि(वै)तृष्णो निर्ममोऽसंगो, निर्भयो वीतविस्मयः ॥ १६ ॥
अस्वप्नो निःश्रमोऽजन्मा, निःस्वेदो निर्जरोऽमरः ।
अरत्यतीतो निश्चिन्तो, निर्विषादस्त्रिषष्टिजित् ॥ १७ ॥

२ अथ सर्वज्ञशतम्

सर्वज्ञः सर्ववित्सर्वदर्शी सर्वावलोकनः ।
अनन्तविक्रमोऽनन्तवीर्योऽनन्तसुखात्मकः ॥ १८ ॥
अनन्तसौख्यो विश्वज्ञो, विश्वदृश्वाऽखिलार्थदृक् ।
न्यक्षदृग्विश्वतश्चक्षुर्विश्वचक्षुरशेषवित् ॥ १९ ॥
आनन्दः परमानन्दः, सदानन्दः सदोदयः ।
नित्यानन्दो महानन्दः, परानन्दः परोदयः ॥ २० ॥
परमोजः परंतेजः, परंधाम परंमहः ।
प्रत्यग्ज्योतिः परंज्योतिः, परंब्रह्म परंरहः ॥ २१ ॥
प्रत्यगात्मा प्रबुद्धात्मा, महात्माऽऽत्ममहोदयः ।
परमात्मा प्रशान्तात्मा, परात्माऽऽत्मनिकेतनः ॥ २२ ॥
परमेष्ठी महिष्ठात्मा, श्रेष्ठात्मा स्वात्मनिष्ठितः ।
ब्रह्मनिष्ठो महानिष्ठो, निरूढात्मा दृढात्मदृक् ॥ २३ ॥
एकविद्यो महाविद्यो, महाब्रह्मपदेश्वरः ।
पंचब्रह्ममयः सार्वः, सर्वविद्येश्वरः स्वभूः ॥ २४ ॥
अनन्तधीरनन्तात्माऽनन्तशक्तिरनन्तदृक् ।
अनन्तानन्तधीशक्तिरनन्तचिदनन्तमुत् ॥ २५ ॥
सदाप्रकाशः सर्वार्थसाक्षात्कारी समग्रधीः ।
कर्मसाक्षी जगच्चक्षुरलक्ष्यात्माऽचलस्थितिः ॥ २६ ॥
निराबाधोऽप्रतर्क्यात्मा, धर्मचक्री विदांवरः ।
भूतात्मा सहजज्योतिर्विश्वज्योतिरतीन्द्रियः ॥ २७ ॥
केवली केवलालोको, लोकालोकविलोकनः ।
विविक्तः केवलोऽव्यक्तः, शरण्योऽचिन्त्यवैभवः ॥ २८ ॥
विश्वभृद्विश्वरूपात्मा, विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
विश्वव्यापी स्वयंज्योतिरचिन्त्यात्माऽमित(मल)प्रभः ॥ २९ ॥
महौदार्यो महाबोधिर्महालाभो महोदयः ।
महोपभोगः सुगतिर्महाभोगो महाबलः ॥ ३० ॥

३ अथ यज्ञार्हशतम्

यज्ञार्हो भगवानर्हन्महार्हो मघवार्चितः ।
भूतार्थयज्ञपुरुषो, भूतार्थक्रतुपूरुषः ॥ ३१ ॥

पूज्यो भट्टारकस्तत्रभवानत्रभवान् महान् ।
महामहा(होऽ)र्हस्तत्रायुस्ततो दीर्घायुरर्घ्यवाक् ॥ ३२ ॥
आराध्यः परमाराध्यः, पञ्चकल्याणपूजितः ।
दृग्विशुद्धिगणोदग्रो, वसुधारार्चितास्पदः ॥ ३३ ॥
सुस्वप्नदर्शी दिव्यौजाः, शचीसेवितमातृकः ।
*स्याद्रत्नगर्भः श्रीपूतगर्भो गर्भोत्सवोच्छ्रितः ॥ ३४ ॥
दिव्योपचारोपचितः, पद्मभूर्निष्कलः स्वजः ।
[illegible]

नृत्यदैरावतासीनसर्वशक्रनमस्कृतः ।
हर्षाकुलामरखगचारणर्षिमनोत्सवः ॥ ३७ ॥
व्योमविष्णुपदा(द)रक्षा,-स्नानपीठायिताद्रिराट् ।
तीर्थेशंमन्यदुग्धाब्धि,-स्नानाम्बुस्नातवासवः ॥ ३८ ॥
गन्धाम्बुपूतत्रैलोक्यो, वज्रसूचीशुचिश्रवाः ।
कृतार्थितशचीहस्तः,-शक्रोद्घुष्टेष्टनामकः ॥ ३९ ॥
शक्रारब्धानन्दनृत्यः, शचीविस्मापिताम्बिकः ।
इन्द्रनृत्यन्तपितृको, रैदपूर्णमनोरथः ॥ ४० ॥
आज्ञार्थीन्द्रकृतासेवो, देवर्षीष्टशिवोद्यमः ।
दीक्षाक्षणक्षुब्धजगद् भूर्भुवःस्वःपतीडितः ॥ ४१ ॥
कुबेरनिर्मितास्थानः, श्रीयुग्योगीश्वरार्चितः ।
ब्रह्मेड्यो *ब्रह्मविद् वेद्यो, याज्यो यज्ञपतिः क्रतुः ॥ ४२ ॥
यज्ञाङ्गममृतं यज्ञो, हविः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
भावो महामहपतिर्महायज्ञोऽग्रयाजकः ॥ ४३ ॥
दयायागो जगत्पूज्यः, पूजार्हो जगदर्चितः ।
देवाधिदेवः शक्रार्च्यो, देवदेवो जगद्गुरुः ॥ ४४ ॥
संहूतदेवसंघार्च्यः, पद्मयानो जयध्वजी ।
भामण्डली चतुःषष्टिचामरो देवदुन्दुभिः ॥ ४५ ॥
वागस्पृष्टासनः छत्रत्रयराट् पुष्पवृष्टिभाक् ।
दिव्याशोको मानमर्दी, सङ्गीतार्होऽष्टमङ्गलः ॥ ४६ ॥

४ अथ तीर्थकृच्छतम्

तीर्थकृत्तीर्थसृट् तीर्थकरस्तीर्थंकरः सुदृक् ।
तीर्थकर्ता तीर्थभर्ता, तीर्थेशस्तीर्थनायकः ॥ ४७ ॥
धर्मतीर्थकरस्तीर्थप्रणेता तीर्थकारकः ।
तीर्थप्रवर्त्तकस्तीर्थवेधास्तीर्थविधायकः ॥ ४८ ॥
सत्यतीर्थकरस्तीर्थसेव्यस्तीर्थिकतारकः ।
सत्यवाक्याधिपः सत्यशासनोऽप्रतिशासनः ॥ ४९ ॥

स्याद्वादी दिव्यगीर्दिव्यध्वनिरव्याहतार्थवाक् ।
पुण्यवागर्थ्यवागर्धमागधीयोक्तिरिद्धवाक् ॥ ५० ॥
अनेकान्तदिगेकान्तध्वान्तभिद् दुर्णयान्तकृत् ।
सार्थवागप्रयत्नोक्तिः प्रतितीर्थमदघ्नवाक् ॥ ५१ ॥
स्यात्कारध्वजवागीहापेतवागचलौष्ठवाक् ।
अपौरुषेयवाक्छास्ता, रुद्धवाक् सप्तभङ्गिवाक् ॥ ५२ ॥
अवर्णगीः सर्वभाषामयगीर्व्यक्तवर्णगीः ।
अमोघवागक्रमवागवाच्यानन्तवागवाक् ॥ ५३ ॥
अद्वैतगीः सूनृतगीः, सत्यानुभयगीः सुगीः ।
योजनव्यापिगीः क्षीरगौरगीस्तीर्थकृत्त्वगीः ॥ ५४ ॥
भव्यैकश्रव्यगुः सद्गुश्चित्रगुः परमार्थगुः ।
प्रशान्तगुः प्राश्निकगुः, सुगुर्नियतकालगुः ॥ ५५ ॥
सुश्रुतिः सुश्रुतो याज्यश्रुतिः सुश्रुन्महाश्रुतिः ।
धर्मश्रुतिः श्रुतिपतिः, श्रुत्युद्धर्ता ध्रुवश्रुतिः ॥ ५६ ॥
निर्वाणमार्गदिग्मार्गदेशकः सर्वमार्गदिक् ।
सारस्वतपथस्तीर्थपरमोत्तमतीर्थकृत् ॥ ५७ ॥
देष्टा वाग्मीश्वरो धर्मशासको धर्मदेशकः ।
वागीश्वरस्त्रयीनाथस्त्रिभङ्गीशो गिरांपतिः ॥ ५८ ॥
सिद्धाज्ञः सिद्धवागाज्ञासिद्धः सिद्धैकशासनः ।
जगत्प्रसिद्धसिद्धान्तः, सिद्धमन्त्रः सुसिद्धवाक् ॥ ५९ ॥
शुचिश्रवा निरुक्तोक्तिस्तन्त्रकृन्न्यायशास्त्रकृत् ।
महिष्ठवाग्महानादः, कवीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः ॥ ६० ॥

५ अथ नाथशतकम्

नाथः पतिः परिवृढः, स्वामी भर्ता विभुः प्रभुः ।
ईश्वरोऽधीश्वरोऽधीशोऽधीशानोऽधीशितेशिता ॥ ६१ ॥
ईशोऽधिपतिरीशान इन इन्द्रोऽधिपोऽधिभूः ।
महेश्वरो महेशानो महेशः परमेशिता ॥ ६२ ॥
अधिदेवो महादेवो, देवस्त्रिभुवनेश्वरः ।
विश्वेशो विश्वभूतेशो विश्वेड् विश्वेश्वरोऽधिराट् ॥ ६३ ॥
लोकेश्वरो लोकपतिर्लोकनाथो जगत्पतिः ।
त्रैलोक्यनाथो लोकेशो जगन्नाथो जगत्प्रभुः ॥ ६४ ॥
पिताः परः परतरो, जेता जिष्णुरनीश्वरः ।
कर्ता प्रभूष्णुर्भ्राजिष्णुः, प्रभविष्णुः स्वयंप्रभः ॥ ६५ ॥
लोकजिद्विश्वजिद्विश्वविजेता विश्वजित्वरः ।
जगज्जेता जगज्जैत्रो, जगज्जिष्णुर्जगज्जयी ॥ ६६ ॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता, भूर्भुवःस्वरधीश्वरः ।
धर्मनायक ऋद्धीशो, भूतनाथश्च भूतभृत् ॥ ६७ ॥

गतिः पाता वृषो वर्यो, मन्त्रकृच्छुभलक्षणः ।
लोकाध्यक्षो दुराधर्षो, भव्यबन्धुर्निरुत्सुकः ॥ ६८ ॥
धीरो जगद्धितोऽजय्यस्त्रिजगत्परमेश्वरः ।
विश्वासी सर्वलोकेशो, विभवो भुवनेश्वरः ॥ ६९ ॥
त्रिजगद्वल्लभस्तुङ्गस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः ।
धर्मचक्रायुधः सद्योजातस्त्रैलोक्यमङ्गलः ॥ ७० ॥
वरदोऽप्रतिघोऽच्छेद्यो, दृढीयानभयङ्करः ।
महाभागो निरौपम्यो, धर्मसाम्राज्यनायकः ॥ ७१ ॥

६ अथ योगिशतम्

योगी प्रव्यक्तनिर्वेदः, साम्यारोहणतत्परः ।
सामायिकी सामयिको, निःप्रमादोऽप्रतिक्रमः ॥ ७२ ॥
यमः(मी)प्रधाननियमः, स्वभ्यस्तपरमासनः ।
प्राणायामचणः सिद्धप्रत्याहारो जितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥
धारणाधीश्वरो धर्मध्याननिष्ठः समाधिराट् ।
स्फुरत्समरसीभाव, एकीकरणनायकः ॥ ७४ ॥
निर्ग्रन्थनाथो योगीन्द्रः, ऋषिः साधुर्यतिर्मुनिः ।
महर्षिः साधुधौरेयो, यतिनाथो मुनीश्वरः ॥ ७५ ॥
महामुनिर्महामौनी, महाध्यानी महाव्रती ।
महाक्षमो महाशीलो, महाशान्तो महादमः ॥ ७६ ॥
निर्लेपो निर्भ्रमस्वान्तो, धर्माध्यक्षो दयाध्वजः ।
ब्रह्मयोनिः स्वयंबुद्धो, ब्रह्मज्ञो ब्रह्मतत्त्ववित् ॥ ७७ ॥
पूतात्मा स्नातको दान्तो, भदन्तो वीतमत्सरः ।
धर्मवृक्षायुधोऽक्षोभ्यः, प्रपूतात्माऽमृतोद्भवः ॥ ७८ ॥
मन्त्रमूर्त्तिः स्व(सु)सौम्यात्मा, स्वतन्त्रो ब्रह्मसंभवः ।
सुप्रसन्नो गुणाम्भोधिः, पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥ ७९ ॥
सुसंवृत्तः सुगुप्तात्मा, सिद्धात्मा निरुपप्लवः ।
महोदर्को महोपायो, जगदेकपितामहः ॥ ८० ॥
महाकारुणिको गुण्यो, महाक्लेशाङ्कुशः शुचिः ।
अरिञ्जयः सदायोगः, सदाभोगः सदाधृतिः ॥ ८१ ॥
परमौदासिताऽनाश्वान्, सत्याशीः शान्तनायकः ।
अपूर्ववैद्यो योगज्ञो, धर्ममूर्त्तिरधर्मध(मु)क् ॥ ८२ ॥
ब्रह्मेड् महाब्रह्मपतिः, कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
गुणाकरो गुणोच्छेदी, निर्निमेषो निराश्रयः ॥ ८३ ॥
सूरिः सुनयतत्त्वज्ञो, महामैत्रीमयः शमी ।
प्रक्षीणबन्धो निर्द्वन्द्वः, परमर्षिरनन्तगः ॥ ८४ ॥

७ अथ निर्वाणशतम्

निर्वाणः सागरः प्राज्ञैर्महासाधुरुदाहृतः ।
विमलाभोऽथ शुद्धाभः, श्रीधरो दत्त इत्यपि ॥ ८५ ॥
अमलाभोऽप्युद्धरोऽग्निः, संयमश्च शिवस्तथा ।
पुष्पाञ्जलिः शिवगुण, उत्साहो ज्ञानसंज्ञकः ॥ ८६ ॥
परमेश्वर इत्युक्तो, विमलेशो यशोधरः ।
कृष्णो ज्ञानमतिः शुद्धमतिः श्रीभद्रशान्तयुक् ॥ ८७ ॥
वृषभस्तद्वदजितः, संभवश्चाभिनन्दनः ।
मुनिभिः सुमतिः पद्मप्रभः प्रोक्तः सुपार्श्वकः ॥ ८८ ॥
चन्द्रप्रभः पुष्पदन्तः, शीतलः श्रेयसाह्वयः ।
वासुपूज्यश्च विमलोऽनन्तजिद्धर्म इत्यपि ॥ ८९ ॥
शान्तिः कुन्थुररो मल्लिः सुव्रतो नमिरप्यतः ।
नेमिः पार्श्वो वर्धमानो, महावीरः सुवीरकः ॥ ९० ॥
सन्मतिश्चाकथि महति महावीर इत्यथ ।
महापद्मः सूरदेवः, सुप्रभश्च स्वयंप्रभः ॥ ९१ ॥
सर्वायुधो जयदेवो, भवेदुदयदेवकः ।
प्रभादेव उदङ्कश्च, प्रश्नकीर्तिर्जयाभिधः ॥ ९२ ॥
पूर्णबुद्धिर्निष्कषायो, विज्ञेयो विमलप्रभः ।
बहलो निर्मलश्चित्रगुप्तः समाधिगुप्तकः ॥ ९३ ॥
स्वयम्भूश्चापि कन्दर्पो, जयनाथ इतीरितः ।
श्रीविमलो दिव्यवादोऽनन्तवीरोऽप्युदीरितः ॥ ९४ ॥
पुरुदेवोऽथ सुविधिः, प्रज्ञापारमितोऽव्ययः ।
पुराणपुरुषो धर्मसारथिः शिवकीर्त्तनः ॥ ९५ ॥
विश्वकर्माऽक्षरोऽछद्मा, विश्वभूर्विश्वनायकः ।
दिगम्बरो निरातङ्को, निरारेको भवान्तकः ॥ ९६ ॥
दृढव्रतो नयोत्तुङ्गो, निःकलङ्कोऽकलाधरः ।
सर्वक्लेशापहोऽक्षय्यः, क्षान्तः श्रीवृक्षलक्षणः ॥ ९७ ॥

८ अथ ब्रह्मशतम्

ब्रह्मा चतुर्मुखो धाता, विधाता कमलासनः ।
अब्जभूरात्मभूः स्रष्टा, सुरज्येष्ठः प्रजापतिः ॥ ९८ ॥
हिरण्यगर्भो वेदज्ञो, वेदाङ्गो वेदपारगः ।
अजो मनुः शतानन्दो, हंसयानस्त्रयीमयः ॥ ९९ ॥
विष्णुस्त्रिविक्रमः शौरिः, श्रीपतिः पुरुषोत्तमः ।
वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षो, हृषीकेशो हरिः स्वभूः ॥ १०० ॥
विश्वम्भरोऽसुरध्वंसी, माधवो बलिबन्धनः ।
अधोक्षजो मधुद्वेषी, केशवो विष्टरश्रवाः ॥ १०१ ॥

श्रीवत्सलाञ्छनः श्रीमानच्युतो नरकान्तकः।
विष्वक्सेनश्चक्रपाणिः, पद्मनाभो जनार्दनः ॥ १०२ ॥
श्रीकण्ठः शङ्करः शम्भुः, कपाली वृषकेतनः।
मृत्युञ्जयो विरूपाक्षो, वामदेवस्त्रिलोचनः ॥ १०३ ॥
उमापतिः पशुपतिः, स्मरारिस्त्रिपुरान्तकः।
अर्धनारीश्वरो रुद्रो, भवो भर्गः सदाशिवः ॥ १०४ ॥
जगत्कर्त्ताऽन्धकारातिरनादिनिधनो हरः।
महासेनस्तारकजिद्गणनाथो विनायकः ॥ १०५ ॥
विरोचनो वियद्रत्नं, द्वादशात्मा विभावसुः।
द्विजाराध्यो बृहद्भानुश्चित्रभानुस्तनूनपात् ॥ १०६ ॥
द्विजराजः सुधारोचिरोषधीशः कलानिधिः।
नक्षत्रनाथः शुभ्रांशुः, सोमः कुमुदबान्धवः ॥ १०७ ॥
लेखर्षभोऽनिलः पुण्यजनः पुण्यजनेश्वरः।
धर्मराजो भोगिराजः, प्रचेता भूमिनन्दनः ॥ १०८ ॥
सिंहिकातनयश्चाथानन्दनो बृहतीपतिः।
पूर्वदेवोपदिष्टा च, द्विजराजसमुद्भवः ॥ १०९ ॥

९ अथ बुद्धशतम्

बुद्धो दशबलः शाक्यः, षडभिज्ञस्तथागतः।
समन्तभद्रः सुगतः, श्रीधनो भूतकोटिदिक् ॥ ११० ॥
सिद्धार्थो मारजिच्छास्ता, क्षणिकैकसुलक्षणः।
बोधिसत्त्वो निर्विकल्पदर्शनोऽद्वयवाद्यपि ॥ १११ ॥
महाकृपालुर्नैरात्म्यवादी सन्तानशासकः।
सामान्यलक्षणचणः, पंचस्कन्धमयात्मदृक् ॥ ११२ ॥
भूतार्थभावनासिद्धश्चतुर्भूमिकशासनः।
चतुरार्यसत्यवक्ता निराश्रयचिदन्वयः ॥ ११३ ॥
योगो वैशेषिकस्तुच्छाभावभित् षट्पदार्थदृक्।
नैयायिकः षोडशार्थवादी पञ्चार्थवर्णकः ॥ ११४ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानी, ज्ञानचैतन्यभेददृक् ॥ ११६ ॥
अस्वसंविदितज्ञानवादी सत्कार्यवादसात्।
त्रिःप्रमाणोऽक्षप्रमाणः, स्याद्वाहंकारिकाक्षदिक् ॥ ११७ ॥
क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषो, नरो ना चेतनः पुमान्।
अकर्त्ता निर्गुणोऽमूर्त्तो, भोक्ता सर्वगतोऽक्रियः ॥ ११८ ॥
द्रष्टा तटस्थः कूटस्थो, ज्ञाता निर्बन्धनोऽभवः।
बहिर्विकारो निर्मोक्षः, प्रधानं बहुधानकम् ॥ ११९ ॥

प्रकृतिः ख्यातिरारूढप्रकृतिः प्रकृतिप्रियः ।
प्रधानभोज्योऽप्रकृतिर्विरम्यो विकृतिः कृती ॥ १२० ॥
मीमांसकोऽस्तसर्वज्ञः श्रुतिपूतः सदोत्सवः ।
परोक्षज्ञानवादीष्टपावकः सिद्धकर्मकः ॥ १२१ ॥
चार्वाको भौतिकज्ञानो, भूताभिव्यक्तचेतनः ।
प्रत्यक्षैकप्रमाणोऽस्तपरलोको गुरुश्रुतिः ॥ १२२ ॥
पुरन्दरविद्धकर्णो, वेदान्ती संविदद्वयी ।
शब्दाद्वैती स्फोटवादी, पाखण्डघ्नो नयौघयुक् ॥ १२३ ॥

१० अथ अन्तकृच्छतम्

अन्तकृत्पारकृत्तीरप्राप्तः पारेतमःस्थितः ।
त्रिदण्डी दण्डितारातिर्ज्ञानकर्मसमुच्चयी ॥ १२४ ॥
संहृ(ह्र)तध्वनिरुच्छन्नयोगः सुप्तार्णवोपमः ।
योगस्नेहापहो योगकिट्टिनिर्लेपनोद्यतः ॥ १२५ ॥
स्थितस्थूलवपुर्योगो, गीर्म्मणोयोगकार्श्यकः ।
सूक्ष्मवाक्चित्तयोगस्थः सूक्ष्मीकृतवपुःक्रियः ॥ १२६ ॥
सूक्ष्मकायक्रियास्थायी, सूक्ष्मवाक्चित्तयोगहा ।
एकदण्डी च परमहंसः परमसंवरः ॥ १२७ ॥
नैःकर्म्यसिद्धः परमनिर्जरः प्रज्वलत्प्रभः ।
मोघकर्मा त्रुटत्कर्मपाशः शैलेश्यलंकृतः ॥ १२८ ॥
एकाकाररसास्वादो, विश्वाकाररसाकुलः ।
अजीवन्नमृतोऽजाग्रदसुप्तः शून्यतामयः ॥ १२९ ॥
प्रेयानयोगी चतुरशीतिलक्षगुणोगुणः ।
निःपीतानन्तपर्यायो विद्यासंस्कारनाशकः ॥ १३० ॥
वृद्धोऽनिर्वचनीयोऽणुरणीयाननणुप्रियः ।
प्रेष्ठः स्थेयान् स्थिरो निष्ठः, श्रेष्ठो ज्येष्ठः सुनिष्ठितः ॥ १३१ ॥
भूतार्थशूरो भूतार्थदूरः परमनिर्गुणः ।
व्यवहारसुषुप्तोऽतिजागरूकोऽतिसुस्थितः ॥ १३२ ॥
उदितोदितमाहात्म्यो, निरुपाधिरकृत्रिमः ।
अमेयमहिमात्यन्तशुद्धः सिद्धिस्वयंवरः ॥ १३३ ॥
सिद्धानुजः सिद्धपुरीपान्थः सिद्धगणातिथिः ।
सिद्धसङ्गोन्मुखः सिद्धालिङ्ग्यः सिद्धोपगूहकः ॥ १३४ ॥
पुष्टोऽष्टादशसहस्रशीलाङ्गपुण्यशास्वलः ।
वृत्ताग्रयुग्मः परमशुक्ललेश्योऽपचारकृत् ॥ १३५ ॥
क्षेपिष्ठोऽन्त्यक्षणसखा पञ्चलघ्वक्षरस्थितिः ।
द्वासप्ततिप्रकृत्यासी त्रयोदशकलिप्रणुत् ॥ १३६ ॥
अवेदोऽयाजकोऽयज्योऽयाज्योऽनग्निपरिग्रहः ।
अनग्निहोत्री परमनिःस्पृहोऽत्यन्तनिर्दयः ॥ १३७ ॥

अशिष्योऽशासकोऽदीक्ष्योऽदीक्षकोऽदीक्षितोऽक्षयः।
अगम्योऽगमकोऽरम्योऽरमको ज्ञाननिर्भरः ॥ १३८ ॥
महायोगीश्वरो द्रव्यसिद्धोऽदेहोऽपुनर्भवः।
ज्ञानैकचिज्जीवघनः, सिद्धो लोकाग्रगामुकः ॥ १३९ ॥

जिनसहस्रनामस्तवनफलम्

इदमष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्रं भक्तितोऽर्हताम्।
योऽनन्तानामधीतेऽसौ, मुक्त्यन्तां भक्तिमश्नुते ॥ १४० ॥
इदं लोकोत्तमं पुंसामिदं शरणमुल्बणम् ॥
इदं मङ्गलमग्रीयमिदं परमपावनम् ॥ १४१ ॥
इदमेव परं तीर्थमिदमेवेष्टसाधनम्।
इदमेवाखिलक्लेशसङ्क्लेशक्षयकारणम् ॥ १४२ ॥
एतेषामेकमप्यर्हन्नाम्नामुच्चारयन्नघैः।
मुच्यते किं पुनः सर्वाण्यर्थज्ञस्तु जिनायते ॥ १४३ ॥

॥ इति जिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ॥

परिचय

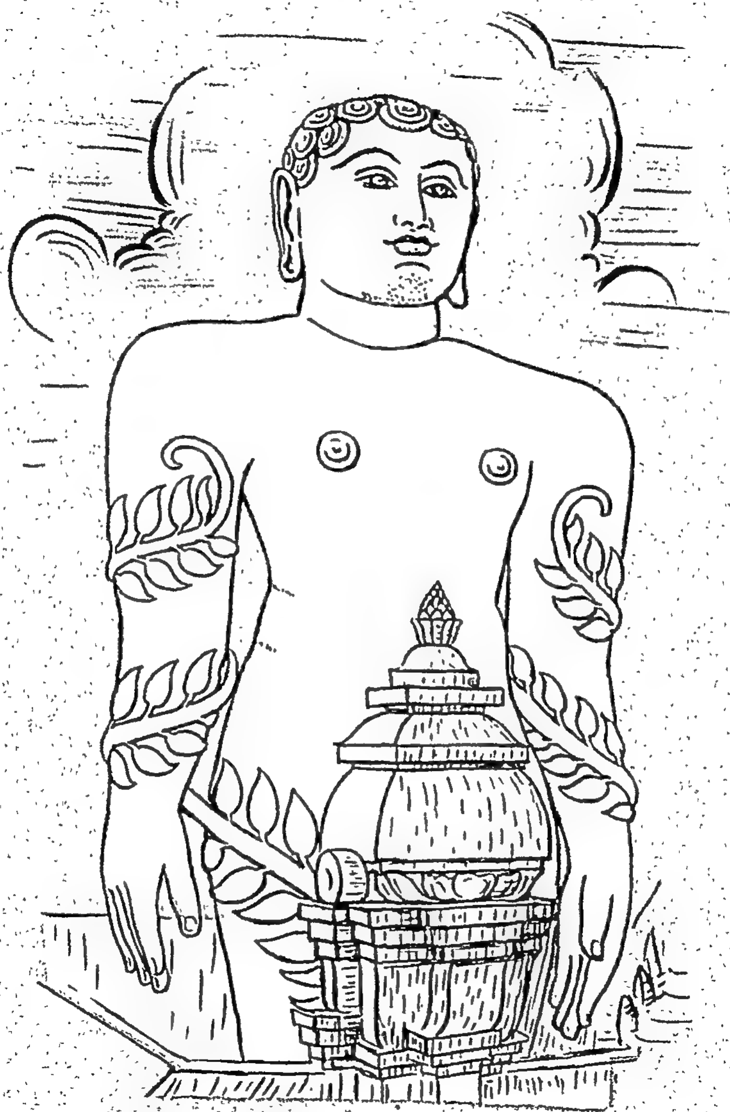
दिगम्बर संप्रदायना श्रेष्ठ विद्वान् पं. आशाधर कृत प्रस्तुत 'जिनसहस्रनाम स्तवन' भारतीय ज्ञानपीठ काशी तरफथी वि० सं० २०१० मां प्रकाशित थयेल छे। जेना आधारे अमोए अहीं मूलमात्र उद्धृत कर्युं छे।

पं. आशाधर विक्रमनी तेरमी शताब्दिमां थया छे। पं. नाथूराम प्रेमी 'जैन साहित्य और इतिहास' नामक पोताना पुस्तकमां लखे छे के "शायद दिगम्बर सम्प्रदाय में उनके बाद उन जैसा प्रतिभाशाली, प्रौढ ग्रन्थकर्ता और जैन धर्म का उद्योतक दूसरा नहीं हुआ।....वे अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे।" तेमणे 'प्रमेय रत्नाकर', 'धर्मामृत' आदि अनेक ग्रन्थोनी रचना करी छे। अनेक विद्वानो तेमनी पासे अध्ययन करता हता।

उपरनी वातनी साक्षि पूरतुं तेमनुं आ जिनसहस्रनाम स्तवन छे, जे तेमणे जिन, सर्वज्ञ, यज्ञार्ह, तीर्थकृत्, नाथ, योगि, निर्वाण, ब्रह्म, बुद्ध, अन्तकृत् शब्दोथी शरु थता दस शतकोमां विभक्त कर्युं छे। तेमां श्री जिनेश्वरनां १००८ नामो १४३ श्लोकोमां आप्या छे।

आचार्य श्री जिनसेने महापुराणना २५मा पर्वना ९९ श्लोकमां कह्युं छे के अरिहंत भगवान १००८ लक्षणोथी युक्त होय छे, तेथी तेमनी एक हजार ने आठ नामोथी स्तुति करवामां आवे छे।





श्रीगोमटेश्वर बाहुबलिः (कायोत्सर्गमुद्रायां)

[૭૫-૩૦]

याकिनीमहत्तरासूनु-भवविरहाङ्क-भगवत्-श्रीहरिभद्रसूरिकृत-
'षोडशकप्रकरण' संदर्भः

अस्मिन् हृदयस्थे सति, हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनीन्द्र इति ।
हृदयस्थिते च तस्मिन्, नियमात्सर्वार्थसंसिद्धिः ॥ २ ॥ १४ ॥

चिन्तामणिः परोऽसौ, तेनैव भवति समरसापत्तिः ।
सैषेह योगिमाता, निर्वाणफलप्रदा प्रोक्ता ॥ २ ॥ १५ ॥

× × × ×

एतदिह भावयज्ञः, सद्गृहिणो जन्मफलमिदं परमम् ।
अभ्युदयाव्युच्छित्त्या, नियमादपवर्गबीजमिति ॥ ६ ॥ १४ ॥

× × × ×

अनुवाद

आ जिन प्रवचन ज्यारे हृदयमां स्वाध्यायादि द्वारा प्रतिष्ठित थाय छे त्यारे परमार्थथी श्रीजिनेश्वर परमात्मा ज हृदयमां प्रतिष्ठित थाय छे अने ज्यारे श्रीजिनेश्वर भगवंत हृदयमां प्रतिष्ठित थाय छे त्यारे अवश्यमेव सर्वप्रयोजनोनी सिद्धि थाय छे ॥ २-१४ ॥

सर्व प्रयोजनोनी सिद्धि थवानुं कारण ए छे के आ श्रीजिनेश्वर भगवंत परम चिन्तामणि छे, तेओ हृदयमां प्रतिष्ठित थतां तेमनी साथे ध्यातानी समरसापत्ति थाय छे। आ समरसापत्ति योगीओनी माता छे अने निर्वाणफलनी प्रसाधक छे। [आत्मा ज्यारे सर्वज्ञना स्वरूपमां उपयोगवाळो बने छे त्यारे तेनो अन्यत्र उपयोग न होवाथी ते स्वयं सर्वज्ञरूप थाय छे। नयविशेष एम माने छे के जे जे वस्तुना उपयोगमां आत्मा वर्ते छे ते ते वस्तुना स्वरूपने ते धारण करे छे. जेम निर्मल स्फटिकमणिमां उपाधि (जेनुं मणिमां प्रतिबिम्ब पडे ते वस्तु) प्रतिबिम्बित देखाय छे अने ते मणि उपाधिना वर्णादिने धारण करे छे, तेम निर्मल आत्मा पण ध्यान वडे परमात्मरूपताने धारण करे छे। ए ज समापत्ति। अथवा ध्याता, ध्यान अने ध्येयनी एकता पण समापत्ति कहेवाय छे.] ॥ २-१५ ॥

× × × ×

आ जिनभवननुं कराववुं ते सद्गृहस्थनी भावपूजा छे, आ जन्मनुं परमफळ छे। अने अनुक्रमे अविच्छिन्न रीते स्वर्गादि सुखोने आपीने अंते मोक्षने आपनारुं छे ॥ ६-१४ ॥

× × × ×

मुक्त्यादौ तत्त्वेन, प्रतिष्ठितायाः न देवतायास्तु ।
स्थाप्ये न च मुख्येयं, तदधिष्ठानाद्यभावेन ॥ ८ ॥ ६ ॥
भवति च खलु प्रतिष्ठा, निजभावस्यैव देवतोद्देशात् ।
स्वात्मन्येव परं यत्, स्थापनमिह वचननीत्योच्चैः ॥ ८ ॥ ४ ॥
न्याससमये तु सम्यक्, सिद्धानुस्मरणपूर्वकमसंगम् ।
सिद्धौ तत्र स्थापनमिव, कर्तव्यं स्थापनं मनसा ॥ ८ ॥ १२ ॥
बीजमिदं परमं यत्, परमाया एव समरसापत्तेः ।
स्थाप्येन तदपि मुख्या, हन्तैषैवेति विज्ञेया ॥ ८ ॥ ५ ॥

मुक्तिमां रहेला एवा श्रीऋषभादि परमात्मानी मुख्य प्रतिष्ठा जिनबिंबमां थवी शक्य नथी, कारण के ते बहु दूर छे अने मंत्रादि संस्कारोथी तेमनु मूर्तिमां अधिष्ठान के संनिधान संभवित नथी। एवी ज रीते सांसारिक इन्द्रादि देवताओनी पण प्रतिष्ठा मुख्य नथी कारण के मंत्रादिवडे ते देवता मूर्तिमां आवे ज एवो नियम नथी (आवे अथवा न पण आवे) ॥ ८–६ ॥

तेथी अहीं ते प्रतिष्ठा मुख्य देवताने उद्देशीने करेला प्रतिष्ठा करावनारना पोताना भावनी ज समजवी। अहीं (प्रतिष्ठाना विषयमां) 'मुक्तिमां रहेला श्रीऋषभादि परमात्मा ते ज हुं छुं,' एवो भाव आत्मामां उत्पन्न थवो जोईए। आ तात्त्विक प्रतिष्ठा थई। पछी ए भावनो (बाह्य) जिनबिंबादिमां उपचार करवामां आवे छे। आ बाह्य प्रतिष्ठा थई। अहीं बाह्य प्रतिष्ठा वखते 'ते (परमात्म विषयक भाव) ज आ (बिंब) छे,' एवो *भावोपचार होय छे ॥ ८–४ ॥

बिंबमां 'ॐ नमः ऋषभाय' वगेरे मंत्रोनो न्यास करवानो होय छे। ते पूर्वे परमपदे रहेला एवा श्रीसिद्ध परमात्मानु सारी रीते स्मरण करवुं जोईए। ए वखते शारीरिक अने मानसिक संगनो त्याग करीने केवलज्ञानादि गुणो वडे सहित श्रीसिद्ध परमात्मा सिद्धशिला पर जेवी रीते रहेला छे, तेवी ज रीते पोताना मनमां लावीने मनना शुभव्यापार वडे भावरूपे बिंबमां स्थापवा जोईए। ए रीते श्रीसिद्धस्मरणरूप जे पोतानो भाव तेनी ज अहीं प्रतिष्ठा छे। तात्पर्य के बिंबमां पोताना भाव द्वारा श्रीसिद्धपरमात्माना गुणोनो आरोप करवामां आवे छे, तेथी ते बिंबने जोतां ज जोनारने 'आ मूर्ति प्रतिष्ठित छे' एवो ख्याल आवता सर्व गुणो वडे 'ते (सिद्ध ज) हु छुं' ए प्रकारे पोताना आत्मामां परमात्मानुं स्थापन थाय छे ॥ ८–१२ ॥

आवी जे निजभावनी प्रतिष्ठा ते स्थाप्य–श्री सर्वज्ञ परमात्मा साथेनी परम समरसापत्तिनु बीज छे। ए ज प्रधान प्रतिष्ठा छे ॥ ८–५ ॥

---

* सूक्ष्म दृष्टिए विचारता एम लागे छे के–आ भावोपचारना प्रभावथी ज दर्शन करवा आवनार बुद्धिमान पुरुषना भावनो प्रतिष्ठापकना ए भावनी साथे अभेद उत्पन्न थाय छे, तेथी तेना (दर्शन करनारना) हृदयमां पण बिंबने जोता "ते (परमात्मा) ज आ (बिंब) छे" एवो भाव जागे छे अने अंते ए भावना प्रभावे "ते (परमात्मा) ज हुं छुं" एवो भाव तेना आत्मामा उत्पन्न थाय छे। ए रीते ते पण परमात्मानी साथे समरसापत्ति अनुभवे छे अने अचिंत्य लाभ ते मेळवे छे। प्रतिष्ठापकने प्रथम बाह्यालंबन विना सिद्धभावने आत्मामा स्थापवो पडे छे, ज्यारे दर्शन करनारने प्रतिष्ठित जिनबिंबना आलंबनथी ए भाव उत्पन्न थाय छे, ए अहीं विशेष समजवो।

भावरसेन्द्रात्तु ततो, महोदयाज्जीवताम्र(म्र)रूपस्य ।
कालेन भवति परमाऽप्रतिबद्धा सिद्धकाञ्चनता ॥ ८ ॥ ८ ॥

× × × ×

स्नानविलेपनसुगन्धिपुष्पधूपादिभिः शुभैः कान्तम् ।
विभवानुसारतो यत्, काले नियतं विधानेन ॥ ९ ॥ १ ॥
अनुपकृतपरहितरतः, शिवदस्त्रिदशेशपूजितो भगवान् ।
पूज्यो हितकामानामिति भक्त्या पूजनं पूजा ॥ ९ ॥ २ ॥
इति जिनपूजां धन्यः, शृण्वन् कुर्वंस्तदोचितां नियमात् ।
भवविरहकारणं खलु, सदनुष्ठानं द्रुतं लभते ॥ ९ ॥ १६ ॥

× × × ×

सालम्बनो निरालम्बनश्च, योगः परो द्विधा ज्ञेयः ।
जिनरूपध्यानं खल्वाद्यस्तत्तत्त्वगस्त्वपरः ॥ १४ ॥ १ ॥
अष्टपृथग्जनचित्तत्यागाद्योगिकुलचित्तयोगेन ।
जिनरूपं ध्यातव्यं, योगविधावन्यथा दोषः ॥ १४–२ ॥

× × × ×

आवो भाव ('सर्वै गुणैः स एवाहम्' वगेरे भाव) ते परम रसेन्द्र (पारो–पारसमणि) छे। एना वडे अनुक्रमे जीवरूप ताम्र श्रेष्ठ एवी सिद्धरूपी कांचनताने पामे छे. ॥ ८–८ ॥

× × × ×

मुमुक्षुओए, स्नात्र, विलेपन, सुगन्धिपुष्प, धूप वगेरे वडे करीने पोताना वैभव, नियतकाळे, आगमोक्तरीते, भक्तिभावपूर्वक – निष्कारण वत्सल, मोक्षने आपनार कल्याणना अभिलाषीओने पूज्य अने देवेन्द्रोथी पूजाएला श्रीतीर्थंकर परमात्माना बिंबनी पूजा करवी जोईए. ॥ ९–१/२ ॥

अहीं कहेली जिनपूजाने सांभळीने जे धन्य पुरुष शास्त्रोक्त रीते सर्व औचित्य सहित श्रीजिनेश्वर भगवंतनी पूजा करे छे ते संसारना उच्छेदक एवा सदनुष्ठानने शीघ्रतः नियमा पामे छे ॥ ९–१६ ॥

× × × ×

योग सालम्बन अने निरालम्बन एम बे प्रकारनो छे। समवसरणमां विराजमान एवा श्रीजिनेश्वर परमात्मानुं ध्यान ते सालंबन योग छे, मुक्तिगत परमात्माना स्वरूपनुं ध्यान ते निरालंबन योग छे। आ मुक्तिगत रूप ते सिद्धात्माना जीवप्रदेशोना संघातरूप छे अने केवलज्ञान वगेरे तेनो स्वभाव छे ॥ १४–१ ॥

सामान्य माणसोनुं चित्त खेदादि* आठ दोषोथी सहित होय छे। एवा चित्तनो त्याग करीने योगी सदृश निर्मल चित्तवडे योग क्रिया समये श्रीजिनरूपनुं ध्यान करवुं। एथी बीजी रीते (चित्तना दोषो सहित) करातुं ध्यान ते दोषरूप छे ॥ १४–२ ॥

× × × ×

---

* विशेष वर्णन माटे जुओ—षोडशक १४, गा. ३/११.

एतद्दोषविमुक्तं, शान्तोदात्तादिभावसंयुक्तम् ।
सततं परार्थनियतं, संक्लेशविवर्जितं चैव ॥ १४–१२ ॥

सुस्वप्नदर्शनपरं, समुल्लसद्गुणगणौघमत्यन्तम् ।
कल्पतरुबीजकल्पं, शुभोदयं योगिनां चित्तम् ॥ १४–१३ ॥

× × × ×

शुद्धे विविक्ते देशे, सम्यक्‌संयमितकाययोगस्य ।
कायोत्सर्गेण दृढं, यद्वा पर्यङ्कबन्धेन ॥ १४–१५ ॥

साध्यागमानुसाराच्चेतो विन्यस्य भगवति विशुद्धम् ।
स्पर्शविघातरसिद्धयोगिसंस्मरणयोगेन ॥ १४–१६ ॥

× × × ×

सर्वजगद्धितमनुपममतिशयसन्दोहमृद्धिसंयुक्तम् ।
ध्येयं जिनेन्द्ररूपं, सदसि गदत्परं चैव ॥ १५–१ ॥

सिंहासनोपविष्टं, छत्रत्रयकल्पपादपस्याधः ।
सत्त्वार्थसंप्रवृत्तं, देशनया कान्तमत्यन्तम् ॥ १५–२ ॥

योगीओनुं चित्त खेदादि आठ दोषोथी रहित, शान्त, उदात्त (उदार, गभीर, धीर) वगेरे भाववाळुं, सतत परोपकारमां निरत, संक्लेशथी रहित, श्वेत तथा सुगन्धि पुष्प, वस्त्र, छत्र, चामर वगेरेना शुभ स्वप्न जेने आवे छे एवुं, प्रवर्धमान अनेक गुणोवाळुं, कल्पवृक्षना बीज सदृश अने शुभ उदयवाळुं होय छे ॥ १४–१२/१३ ॥

× × × ×

पवित्र एकान्त प्रदेशमां प्रथम कायानी चेष्टाओने सारी रीते नियन्त्रित करवी । पछी कायोत्सर्गमुद्रा अथवा पर्यङ्कासनमां स्थिर थवुं । पछी तत्त्वज्ञानना संस्कार वडे जेओए ध्यानमां रहीने आत्मस्वरूपने प्राप्त कर्युं छे, एवा सिद्धयोगी पुरुषोनुं स्मरण करवुं । पछी आगमोक्त रीते सम्यक् प्रकारे परमात्मामां विशुद्ध चित्तने स्थापवुं । पछी श्रीजिनरूपनुं ध्यान करवुं । ए रीते ध्यान शीघ्र. सिद्ध थाय छे ॥ १४–१५/१६ ॥

× × × ×

ते सालंबन ध्यान आ रीते करवुं :—

सर्व प्राणीओने हितकर, जेना शरीरादिना सौन्दर्यने कोई उपमा नथी एवा अनुपम, अनेक अतिशयोथी सम्पन्न, आमर्षौषधि वगेरे नाना प्रकारनी लब्धिओथी सहित, समवसरणमां सातिशय वाणीवडे देशना आपता, देवनिर्मित सिंहासन पर विराजमान, छत्रत्रय अने कल्पवृक्ष नीचे रहेला, देशना द्वारा सर्व सत्त्वोना परम अर्थ–मोक्ष माटे प्रवृत्त, अत्यन्त मनोहर, शारीरिक अने मानसिक

आधीनां परमौषधमव्याहतमखिलसम्पदां बीजम् ।
चक्रादिलक्षणयुतं, सर्वोत्तमपुण्यनिर्माणम् ॥ १५–३ ॥

निर्वाणसाधनं भुवि, भव्यानामग्र्यमतुलमाहात्म्यम् ।
सुरसिद्धयोगिवन्द्यं, वरेण्यशब्दाभिधेयं च ॥ १५–४ ॥

तनुकरणादिविरहितं, तच्चाचिन्त्यगुणसमुदयं सूक्ष्मम् ।
त्रैलोक्यमस्तकस्थं, निवृत्तजन्मादिसङ्क्लेशम् ॥ १५–१३ ॥

ज्योतिः परं परस्तात्तमसो यद्गीयते महामुनिभिः ।
आदित्यवर्णममलं, ब्रह्माद्यैरक्षरं ब्रह्म ॥ १५–१४ ॥

नित्यं प्रकृतिवियुक्तं, लोकालोकावलोकनाभोगम् ।
स्तिमिततरङ्गोदधिसममवर्णमस्पर्शमगुरुलघु ॥ १५–१५ ॥

सर्वाबाधरहितं, परमानन्दसुखसङ्गतमसङ्गम् ।
निःशेषकलातीतं, सदाशिवाद्यादिपदवाच्यम् ॥ १५–१६ ॥

× × × ×

पीडाओनुं परम औषध, सर्व संपत्तिओनुं अनुपहत–अवन्ध्य बीज, चक्रादि लक्षणोथी युक्त, सर्वोत्तम पुण्यना परमाणुओथी बनेला, पृथ्वी पर भव्योने माटे निर्वाणनुं परम साधन, असाधारण माहात्म्यवाळा, देवो अने सिद्धयोगिओ (विद्यामंत्रादिसिद्धो) ने पण वंदनीय अने 'वरेण्य' शब्द वडे वाच्य एवा श्रीजिनेन्द्र-रूपनुं ध्यान करवुं (ए सालंबन योग छे) ॥ १५–१/४ ॥

श्रीसिद्धरूपनुं निरालंबन ध्यान आ रीते छे:—ते सिद्धरूप–शरीर, इन्द्रियो अने मन विनानुं, अचिन्त्य एवा केवलज्ञानादि गुणोवाळुं, केवलज्ञान विना सम्पूर्ण रीते न जाणी शकाय एवुं, त्रणे लोकना मस्तकरूप सिद्धशिला पर विराजमान, जन्म-जरादि संक्लेशोथी रहित, ज्ञानसंपन्न एवा ब्रह्मादि महामुनिओ जेने परंज्योति, अन्धकारथी पर–अस्पृष्ट, आदित्यवर्ण कहे छे एवुं अत्यन्त निर्मल, अक्षर, ब्रह्म, नित्य, ज्ञानावरणीयादि कर्मप्रकृतिथी रहित, लोकालोकना अवलोकनना उपयोगवाळुं, निस्तरङ्ग–प्रशान्त महासागर सदृश, अवर्ण, अस्पर्श, अगुरुलघु, अमूर्त्त, सर्व बाधाओथी रहित, परमानंदवाळा सुखथी युक्त, असंग, सर्वकलाओ (तथाभव्यत्व, असिद्धत्व, वगेरे संसारि–जीव–स्वभावो) थी रहित अने 'सदाशिव' वगेरे पदोवडे वाच्य छे ॥ १५–१३/१६ ॥

× × × ×

---

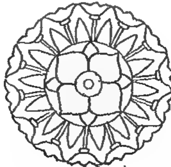
१ टीका:—परम आनन्दो यस्मिन् सुखे तेन संगतम् ।

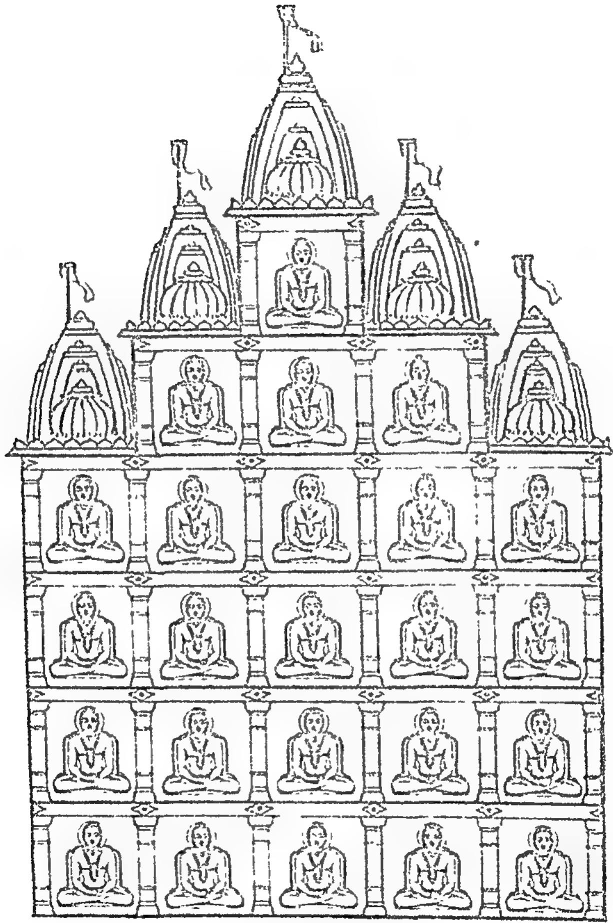
एतद् दृष्ट्वा तत्त्वं, परममनेनैव समरसापत्तिः।
सञ्जायतेऽस्य परमा, परमानन्द इति यामाहुः ॥ १६–१ ॥
सैषाऽविद्यारहिताऽवस्था परमात्मशब्दवाच्येति।
एषैव च विज्ञेया, रागादिविवर्जिता तथता ॥ १६–२ ॥
वैशेषिकगुणरहितः, पुरुषोऽस्यामेव भवति तत्त्वेन।
विध्यातदीपकल्पस्य, हन्त जात्यन्तराप्राप्तेः ॥ १६–३ ॥
एवं पशुत्वविगमो, दुःखान्तो भूतविगम इत्यादि।
अन्यदपि तन्त्रसिद्धं, सर्वमवस्थान्तरेऽत्रैव ॥ १६–४ ॥

एवा (उपर कहेल) परम तत्त्वने जोईने अयोगी केवलीने ए परम तत्त्व (सिद्धरूप) नी साथे परम समरसापत्ति थाय छे। आ समरसापत्तिने वेदान्तिओ 'परमानन्द' कहे छे। परमात्म शब्दथी वाच्य ए पर तत्त्वने केटलाक 'अविद्यारहित अवस्था' कहे छे। केटलाक एने रागादिरहित तथता (तथ्य–सत्यरूप) कहे छे। वैशेषिक दर्शनवाळाओ एने वैशेषिक गुण रहित पुरुष कहे छे। बौद्धो एने विध्यातदीप–निर्वाण कहे छे। पशुत्वविगम, दुःखान्त, भूतविगम वगेरे अनेक शब्दो वडे ते ते तन्त्रोमां ते कहेवाय छे। आ बधा नामोनो परमार्थ 'आत्माने परिणामि नित्य मान्या विना घटतो नथी, तेथी एकान्त मतोमां ते नामो नाममात्र ज रहे छे ॥ १६–१/४ ॥

परिचय

श्री 'षोडशक प्रकरण'ना कर्ता श्रीहरिभद्रसूरिनो संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत प्रथना प्राकृत विभागना 'संशोध प्रकरण संदर्भ' (क्रि. न. ३२) मां आपेल छे। 'षोडशक प्रकरण' मां जुदा जुदा सोळ विषयो पर गंभीर विचारणा छे। तेमांथी श्रीअरिहंत परमात्मा विषयक समरसापत्ति, भावप्रतिष्ठा, पूजा, सालंबन–निरालंबन योग, योगिचित्त, ध्येयनुं स्वरूप, वगेरेने दर्शावता श्लोकोने तात्पर्यार्थ अनुवाद सहित अहीं रजू करेल छे।





श्रीचतुर्विंशतिजिनराजपटः





[७६–३१ (अ)]

श्रीजयतिलकसूरिविरचित-
श्रीहरिविक्रमचरितान्तर्गतसंदर्भः

श्रीतीर्थाय नमस्तस्मै, पंचशाखश्रिये सदा।
पंचैते वितता यस्य, शाखाः श्रीपरमेष्ठिनः ॥ १ ॥
अर्हंतस्ते जयन्त्यत्र, निःस्नेहाः रत्नदीपकाः।
स्पर्धां करोत्यलोकेन, येषां ज्ञानमयं महः ॥ २ ॥
सिद्धेभ्योऽपि नमस्तेभ्यो, मुक्तेभ्यो कर्मकश्मलैः।
मूर्ध्नि चूडामणीयन्ते, लोकपुंसः सदैव हि ॥ ३ ॥
शिवंगतेषु सार्वेषु, शासनं धारयन्ति ये।
पंचधाचारधारिभ्य, आचार्येभ्यो नमः सदा ॥ ४ ॥
उपाध्याया जयन्त्यत्र, सूत्रार्थजलराशयः।
गृहीत्वा (च) जलं येभ्यो, घना वर्षन्ति साधवः ॥ ५ ॥
मूलोत्तरगुणैः शुद्धं, चारित्रं पालयन्ति ये।
सर्वेभ्योऽपि त्रिधा तेभ्यः, साधुभ्यो भुवने नमः ॥ ६ ॥

अनुवाद

जेनी आ पांच परमेष्ठि भगवंतो पांच विशाळ शाखाओ छे एवा ते जगप्रसिद्ध श्रीतीर्थने हुं मतिज्ञानादि पांच शाखाओवाळी ज्ञानलक्ष्मीनी प्राप्ति माटे सदा नमस्कार करुं छुं ॥ १ ॥

तेल विनाना रत्नदीप जेवा ते (वीतराग) अरिहंतो आ विश्वमां सदा जय पामे छे के जेमनो ज्ञानमय प्रकाश अलोकाकाश साथे स्पर्धा करे छे (तात्पर्य के ते ज्ञानप्रकाश अलोकाकाशने पण प्रतिक्षण पोतानो विषय बनावे छे) ॥ २ ॥

ते सिद्धोने पण सर्वदा नमस्कार हो के जेओ कर्ममलथी मुक्त छे अने जेओ लोकरूप महापुरुषना मस्तक उपर सर्वदा चूडामणिनी जेम शोभी रह्या छे ॥ ३ ॥

श्रीतीर्थंकर भगवंतोना निर्वाण पछी जेओ श्री जिनशासनने धारण[1] करे छे, ते पांच प्रकारना आचारने धारण करनारा श्री आचार्य भगवंतोने सर्वदा नमस्कार हो ॥ ४ ॥

सूत्रार्थरूपजलना महासागर एवा ते उपाध्याय भगवंतो पण आ लोकमां जय पामे छे के जेमनी पासेथी साधुरूप वादळांओ जल ग्रहण करीने वरसे छे—लोकमां श्री जिनवाणीरूप जलनी सदा वर्षा करे छे ॥ ५ ॥

जेओ मूल अने उत्तर गुणोथी शुद्ध चारित्रने पाळे छे, लोकमां रहेला ते सर्व साधु भगवंतोने हुं त्रिकरणशुद्ध नमस्कार करुं छुं ॥ ६ ॥

---

१ धारण = धारण, रक्षण, प्रचार वगेरे.

परिचय

ग्रन्थकर्ता श्री जयतिलकसूरिजीना विषयमां खास माहिती उपलब्ध नथी। तेओ आगमिक गच्छना हता। श्रीचारित्रप्रभसूरिजीना शिष्य हता। श्री अमरकीर्ति गणीना बन्धु हता। मुनिश्री जिनेन्द्र प्रमुख तेमना शिष्यो हता। ग्रन्थकर्ता व्याकरण, काव्य, कोश, साहित्य, अलंकार, तर्क, आगम वगेरे अनेक विषयोना पारगामी हता, ए हकीकत तो स्वयं ग्रन्थ ज कही आपे छे। तेओए रचेलो 'मलयसुंदरीचरित्र' ग्रन्थ पण चरित्रनी दृष्टिए सुंदर अने मनोहर छे।

'श्री हरिविक्रमचरित्र'नी प्रथम आवृत्ति सं. १९७२ मां जामनगरना पं. श्री हीरालाल हंसराजे बहार पाडी हती। ते पछी सं. १९११ मां शा. मणिलाल देवचंद, महेसाणा तरफथी प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित करवामां आव्यो हतो। ए ग्रन्थमांथी प्रस्तुत संदर्भ अहीं अनुवाद सहित आपेल छे।

[७६–३१ (ब)]

श्री नवतत्त्वसंवेदनान्तर्गतसंदर्भः

अर्हं यत्प्राणिभिः पुण्यै-रुपायैरुपयाच्यते ।
तस्मै कल्याणकन्दाय, स्वानन्दाय नमो नमः ॥ १ ॥

व्याख्या—अर्हमिति अर्हं योग्य यद्वा पूज्यं अथवा परममन्त्राक्षरबीजं नादबिन्दुकलाज्योति रूलितं, यदि वा (यद्वा) अकारादिहकारपर्यन्त वाङ्मय आहोस्विद् अर्हमित्यक्षरस्य पञ्चपरमेष्ठिवाचकत्वेन अर्हदादिरूप यत्परमतत्त्वं प्राणिभिः पुण्यैः पवित्रैः पुण्यहेतुत्वेन वा पुण्यैरुपायैर्गुरूपासना[दि]भिः कारणैरुपयाच्यते तस्मै परमतत्त्वाय कल्याणकन्दाय श्रेयःप्रभवाय स्वानन्दाय नमो नम इति सम्बन्ध ॥ १ ॥

अनुवाद

प्राणिओवडे (श्री जिनबिंबादि) पवित्र उपायोवडे जे नी उपासना कराय छे ते मोक्षना उद्गम स्थानभूत अने परमानंदमय एवा अर्हं ने पुनः पुनः नमस्कार करुं छुं ॥ १ ॥

परिचय

नवतत्त्वसंवेदन प्रकरणमांथी 'नमस्कार स्वाध्याय' ने उपयोगी प्रस्तुत श्लोक, टीका अने अनुवाद सहित अहीं प्रगट करेल छे।

[७७–३२]

श्रीसिद्धसेनदिवाकरविरचितः
शक्रस्तवः

ॐ नमोऽर्हते भगवते परमात्मने परमज्योतिषे परमपरमेष्ठिने परमवेधसे परमयोगिने परमेश्वराय तमसःपरस्तात् सदोदितादित्यवर्णाय समूलोन्मूलितानादिसकलक्लेशाय ॥ १ ॥

ॐ नमोऽर्हते भूर्भुवःस्वस्त्रयीनाथमौलिमन्दारमालार्चितक्रमाय सकलपुरुषार्थयोनि-निरवद्यविद्याप्रवर्तनैकवीराय नमःस्वस्तिस्वधास्वाहावषडर्थैकान्तशान्तमूर्तये भवद्भाविभूतभावावभासिने कालपाशनाशिने सत्त्वरजस्तमोगुणातीताय अनन्तगुणाय वाङ्मनोऽगोचरचरित्राय पवित्राय करणकारणाय तरणतारणाय सात्त्विकदैवताय तात्त्विकजीविताय निर्ग्रन्थपरमब्रह्महृदयाय योगीन्द्रप्राणनाथाय त्रिभुवनभव्यकुलनित्योत्सवाय विज्ञानानन्दपरब्रह्मैकात्म्यसात्म्यसमाधये हरिहरहिरण्यगर्भादिदेवतापरिकलितस्वरूपाय सम्यक्श्रद्धेयाय सम्यग्ध्येयाय सम्यक्शरण्याय सुसमाहितसम्यक्स्पृहणीयाय ॥ २ ॥

ॐ नमोऽर्हते भगवते आदिकराय तीर्थङ्कराय स्वयंसम्बुद्धाय पुरुषोत्तमाय पुरुषसिंहाय पुरुषवरपुण्डरीकाय पुरुषवरगन्धहस्तिने लोकोत्तमाय लोकनाथाय लोकहिताय लोकप्रदीपाय लोकप्रद्योतकारिणे अभयदाय दृष्टिदाय मुक्तिदाय मार्गदाय बोधिदाय जीवदाय शरणदाय धर्मदाय धर्मदेशकाय धर्मनायकाय धर्मसारथये धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिने व्यावृत्तच्छद्मने अप्रतिहत-सम्यग्ज्ञानदर्शनसद्मने ॥ ३ ॥

ॐ नमोऽर्हते जिनाय जापकाय तीर्णाय तारकाय बुद्धाय बोधकाय मुक्ताय मोचकाय त्रिकालविदे पारङ्गताय कर्माष्टकनिषूदनाय अधीश्वराय शम्भवे जगत्प्रभवे स्वयम्भुवे जिनेश्वराय स्याद्वादवादिने सार्वाय सर्वज्ञाय सर्वदर्शिने सर्वतीर्थोपनिषदे सर्वपाषण्डमोचिने सर्वयज्ञफलात्मने सर्वज्ञकलात्मने सर्वयोगरहस्याय केवलिने देवाधिदेवाय वीतरागाय ॥ ४ ॥

ॐ नमोऽर्हते परमात्मने परमाप्ताय परमकारुणिकाय सुगताय तथागताय महाहंसाय हंसराजाय महासत्त्वाय महाशिवाय महाबोधाय महामैत्राय सुनिश्चिताय विगतद्वन्द्वाय गुणाब्धये लोकनाथाय जितमारबलाय ॥ ५ ॥

ॐ नमोऽर्हते सनातनाय उत्तमश्लोकाय मुकुन्दाय गोविन्दाय विष्णवे जिष्णवे अनन्ताय अच्युताय श्रीपतये विश्वरूपाय हृषीकेशाय जगन्नाथाय भूर्भुवःस्वःसमुत्ताराय मानंजराय कालंजराय ध्रुवाय अजाय अजेयाय अजराय अचलाय अव्ययाय विभवे अचिन्त्याय असंख्येयाय आदिसंख्याय आदिकेशवाय आदिशिवाय महाब्रह्मणे परमशिवाय एकानेकानन्त-

स्वरूपिणे मायामानविवर्जिताय अग्निनाग्निद्रयावर्जिताय पुण्यपापविवर्जिताय सुखदुःखविविक्ताय व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय अनादिमध्यनिधनाय नमोऽस्तु मुक्तीश्वराय मुक्तिस्वरूपाय ॥ ६ ॥

ॐ नमोऽर्हते निरातङ्काय निःसङ्गाय निःशङ्काय निर्मलाय निर्द्वन्द्वाय निस्तरङ्गाय निरूर्मये निरामयाय निष्कलङ्काय परमदैवताय सदाशिवाय महादेवाय शङ्कराय महेश्वराय महाव्रतिने महायोगिने महात्मने पञ्चमुखाय मृत्युञ्जयाय अष्टमूर्तये भूतनाथाय जगदानन्दाय जगत्पितामहाय जगद्देवाधिदेवाय जगदीश्वराय जगदादिकन्दाय जगद्भास्वते जगत्कर्मसाक्षिणे जगच्चक्षुषे त्रयीतनवे अमृतकराय शीतकराय ज्योतिश्चक्रचक्रिणे महाज्योतिर्द्योतिताय महातमःपारे सुप्रतिष्ठिताय स्वयंकर्त्रे स्वयंहर्त्रे स्वयंपालकाय आत्मेश्वराय नमो विश्वात्मने ॥ ७ ॥

ॐ नमोऽर्हते सर्वदेवमयाय सर्वध्यानमयाय सर्वज्ञानमयाय सर्वतेजोमयाय सर्वमन्त्रमयाय सर्वरहस्यमयाय सर्वभावाभावजीवाजीवेश्वराय अरहस्यरहस्याय अस्पृहस्पृहणीयाय अचिन्त्यचिन्तनीयाय अकामकामधेनवे असङ्कल्पितकल्पद्रुमाय अचिन्त्यचिन्तामणये चतुर्दशरज्ज्वात्मकजीवलोकचूडामणये चतुरशीतिलक्षजीवयोनिप्राणिनाथाय पुरुषार्थनाथाय परमार्थनाथाय अनाथनाथाय जीवनाथाय देवदानवमानवसिद्धसेनाधिनाथाय ॥ ८ ॥

ॐ नमोऽर्हते निरञ्जनाय अनन्तकल्याणनिकेतनकीर्तनाय सुगृहीतनामधेयाय (महिमामयाय) धीरोदात्तधीरोद्धतधीरशान्तधीरललितपुरुषोत्तमपुण्यश्लोकशतसहस्रलक्षकोटिवन्दितपादारविन्दाय सर्वगताय ॥ ९ ॥

ॐ नमोऽर्हते सर्वसमर्थाय सर्वप्रदाय सर्वहिताय सर्वाधिनाथाय कस्मैचन क्षेत्राय पात्राय तीर्थाय पावनाय पवित्राय अनुत्तराय उत्तराय योगाचार्याय संप्रक्षालनाय प्रवराय आग्रेयाय वाचस्पतये माङ्गल्याय सर्वात्मनीनाय सर्वार्थाय अमृताय सदोदिताय ब्रह्मचारिणे तायिने दक्षिणीयाय निर्विकाराय वज्रर्षभनाराचमूर्तये तत्त्वदर्शिने पारदर्शिने परमदर्शिने निरुपमज्ञानबलवीर्यतेजःशक्त्यैश्वर्यमयाय आदिपुरुषाय आदिपरमेष्ठिने आदिमहेशाय महाज्योतिःस(त्त्व)ाय महार्चिघनेश्वराय महामोहसंहारिणे महासत्त्वाय महाज्ञामहेन्द्राय महालयाय महाशान्ताय महायोगीन्द्राय अयोगिने महामहीयसे महाहंसाय हंसराजाय महासिद्धाय शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्ति महानन्दं महोदयं सर्वदुःखक्षयं कैवल्यं अमृतं निर्वाणमक्षरं परब्रह्म निःश्रेयसमपुनर्भवं सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तवते चराचरं अवते नमोऽस्तु श्रीमहावीराय त्रिजगत्स्वामिने श्रीवर्धमानाय ॥ १० ॥

ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिने (भक्तिमार्गयोगिने) विशालशासनाय सर्वलब्धिसम्पन्नाय निर्विकल्पाय कल्पनातीताय कलाकलापकलिताय विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मङ्गलवरदाय अष्टादशदोषरहिताय संसृतविश्वसमीहिताय स्वाहा ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं नमः ॥ ११ ॥

लोकोत्तमो निष्प्रतिमस्त्वमेव, त्वं शाश्वतं मङ्गलमप्यधीश ! ।
त्वामेकमर्हन् ! शरणं प्रपद्ये, सिद्धर्षिसद्धर्ममयस्त्वमेव ॥ १ ॥

त्वं मे माता पिता नेता, देवो धर्मो गुरुः परः ।
प्राणाः स्वर्गोऽपवर्गश्च, सत्त्वं तत्त्वं गतिर्मतिः ॥ २ ॥

जिनो दाता जिनो भोक्ता, जिनः सर्वमिदं जगत् ।
जिनो जयति सर्वत्र, यो जिनः सोऽहमेव च ॥ ३ ॥

यत्किञ्चित् कुर्महे देव !, सदा सुकृतदुष्कृतम् ।
तन्मे निजपदस्थस्य, हुं क्षः[1] क्षपय त्वं जिन ! ॥ ४ ॥

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं, गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिः श्रयति मां येन, त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थितम् ॥ ५ ॥

इति श्रीवर्धमानजिननाममन्त्रस्तोत्रम् । प्रतिष्ठायां शान्तिकविधौ पठितं महासुखाय स्यात् ।

इति शक्रस्तवः ।

१ इतीमं पूर्वोक्तमिन्द्रस्तवैकादशमन्त्रराजोपनिषद्गर्भं अष्टमहासिद्धिप्रदं सर्वपापनिवारणं सर्वपुण्यकारणं सर्वदोषहरं सर्वगुणाकरं महाप्रभावं अनेकसम्यग्दृष्टिभद्रकदेवताशतसहस्रशुश्रूषितं भवान्तरकृतासंख्यपुण्यप्राप्यं सम्यग् जपतां पठतां गुणयतां शृण्वतां समनुप्रेक्षमाणानां, भव्यजीवानां चराचरेऽपि (जीवलोके) सद्वस्तु तन्नास्ति यत् करतलप्रणयि न भवतीति । किं च—

२ इतीमं० पूर्वोक्तमिन्द्रस्तवैकादशमन्त्रराजोपनिषद्गर्भं इत्यादि यावत्सम्यग्समनुप्रेक्षमाणानां भव्यजीवानां भवनपतिव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकवासिनो देवाः सदा प्रसीदन्ति । व्याधयो विलीयन्ते ।

३ इतीमं० भव्यजीवानां पृथिव्यप्तेजोवायुगगनानि भवन्त्यनुकूलानि ।

४ इतीमं० भव्यजीवानां सर्वसंपदां मूलं जायते जिनानुरागः ।

५ इतीमं० भव्यजीवानां साधवः सौमनस्येनानुग्रहपरा जायन्ते ।

६ इतीमं० भव्यजीवानां खलाः क्षीयन्ते ।

७ इतीमं० भव्यजीवानां जल-स्थल-गगनचराः क्रूरजन्तवोऽपि मैत्रीमया जायन्ते ।

८ इतीमं० भव्यजीवानां अधमवस्तून्यपि उत्तमवस्तुभावं प्रपद्यन्ते ।

९ इतीमं० भव्यजीवानां धर्मार्थकामा गुणाभिरामा जायन्ते ।

---

१ हुं क्षः अे क्षपणमाटेना मंत्राक्षरो होय, एम लागे छे ।



१० इतीमं० भव्यजीवानां ऐहिक्यः सर्वा अपि शुद्धगोत्रकलत्र-पुत्र-मित्र-धन-धान्य-जीवित-यौवन-रूपाऽऽरोग्य-यशःपुरस्सराः सर्वजनानां संपदः परभागजीवितशालिन्यः सदुदर्काः सुसंमुखीभवन्ति । किं बहुना ?

११ इतीमं० भव्यजीवानां आमुष्मिक्यः सर्वमहिमास्वर्गापवर्गश्रियोऽपि क्रमेण यथेष्टं(च्छं) स्वयं स्वयंवरणोत्सवसमुत्सुका भवन्तीति । सिद्धिः(द्धः) श्रेयः समुदयः ।

यथेन्द्रेण प्रसन्नेन, समादिष्टोऽर्हतां स्तवः ।
तथाऽयं सिद्धसेनेन, प्रपेदे संपदां पदम् ॥ १ ॥

इति शक्रस्तवः ॥

परिचय

श्री जैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगर तरफथी प्रकाशित 'श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्र' नामक पुस्तकमां अंते श्री सिद्धसेन दिवाकर कृत 'शक्रस्तव' आपवामा आव्युं छे, ए पुस्तकमांथी प्रस्तुत संदर्भ अहीं आपेल छे ।

आ रचना अर्थनी दृष्टिए परम गंभीर होवाथी एनो अनुवाद विशेष प्रयत्न मागे छे, अत्यारे केवळ मूल ज अहीं प्रगट करीए छीए, भविष्यमा तेने अर्थ सहित अलग पुस्तक तरीके प्रगट करवानी भावना राखीए छीए ।

श्री अरिहंत परमात्मानुं स्वरूप शब्दोथी पर छे । शब्दो ते रूपने संपूर्णरीते व्यक्त करी शके तेम नथी । पूर्वना महर्षिओए ते रूपने शब्दोवडे समजाववा माटे स्तोत्रादिरूपे अनेक प्रयत्नो कर्या छे । ए शब्दोना आलम्बन वडे ए महान् रूपनी काइक झांखी थाय छे । पछीनुं स्वरूप तो केवळ अनुभव वडे गम्य छे । शब्दरूपे अरिहन्तना स्वरूपने व्यक्त करनारां भक्ति प्रधान स्तोत्रोमा 'शक्रस्तव' नुं स्थान मोखरे छे । ग्रंथकारे ते दिव्यरूपने शब्दोमां लाववानो सर्वश्रेष्ठ प्रयत्न कर्यो छे ।

आ स्तोत्र मन्त्राजगर्भित छे । एना अगिआर आलावा ए अगिआर मंत्रो छे । ए स्तोत्रना जपन, पठन, गुणन अने अनुप्रेक्षणनु फळ पण ग्रन्थकारे बहु ज सुंदर रीते बताव्यु छे ।

आ स्तोत्र अद्भुत छे, प्रत्येक मुमुक्षुमाटे ते अत्यंत उपयोगी छे । एनु रहस्य अने एनाथी प्राप्त थता लाभो एनी आराधनाथी वधु स्पष्ट थाय तेम छे ।

अंतिम श्लोक उपरथी एम लागे छे के इन्द्रे प्रसन्न थईने श्रीसिद्धसेनसूरिने आ स्तोत्र आप्युं हशे।

श्रीसिद्धसेन दिवाकर पछीना स्तोत्रकारोए आ स्तोत्रनुं ओछा वत्ता अंशे अनुकरण कर्युं छे ।

कलिकालसर्वज्ञकृत योगशास्त्रना बीजा श्लोकनी टीकामां आ स्तोत्रना केटलांक विशेषणो अनुष्टुप् छदमां गूंथवामां आवेला छे ।

[७८–३३]

आचार्यश्रीपूज्यपादविरचितः सिद्धभक्त्यादिसंग्रहः

(स्रग्धरा)

सिद्धानुद्धूतकर्म्मप्रकृतिसमुदयान् साधितात्मस्वभावान्,
वन्दे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः ।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणो(णा)च्छादि दोषापहारा-
द्योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः ॥ १ ॥
नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः सुकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी ।

अनुवाद

जेम भट्ठी, धमण वगेरे योग्य कारणोनी युक्तिपूर्वक योजना करवाथी सुवर्णपाषाणमांथी मेल दूर थई जाय छे अने शुद्ध सुवर्णनी प्राप्ति थाय छे, तेम आत्माना ज्ञानादिक सर्वोत्कृष्ट गुणोना समुदायने आच्छादन करनारा ज्ञानावरणीयादि दोषोने ध्यानरूपी अग्निवडे दूर करवाथी शुद्ध आत्मज्ञाननी प्राप्ति थाय छे, ते सिद्धि कहेवाय छे। ते आत्म-सिद्धि जेमणे प्राप्त करी छे— अथवा जेओने ते शुद्ध आत्म-स्वरूपनी प्राप्ति थई छे अने जेओ कर्मोनी प्रकृतिना समुदायथी रहित छे एवा सिद्ध भगवंतोने तेमना अनुपम गुणरूप सांकळना आकर्षणथी तुष्ट थयेलो हुं शुद्ध आत्मस्वरूपनी सिद्धि माटे वंदन करुं छुं ॥ १ ॥

बौद्धो मोक्षनुं स्वरूप अभावरूप माने छे। आ श्लोकमां एनुं निरसन करतां आचार्य कहे छे के—मोक्षनुं स्वरूप अभावरूप नथी। कारण के एवो कोण बुद्धिमान पुरुष होय के जे पोतानो नाश करवा प्रयत्न करे ?

वैशेषिक दर्शनकार कहे छे के—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म अने संस्कार आ आत्माना विशेष गुणो छे। ए गुणोनो नाश थई जवो तेनुं नाम मोक्ष छे। तेनुं निरसन करतां आचार्य कहे छे के—मोक्षनुं स्वरूप आत्माना गुणोनो नाश थवा रूप नथी। कारण के जो एम मानवामां आवे तो तेओनुं तप अने व्रतपालन पण नहीं घटी शके। कारण के आत्मगुणोना नाश माटे कोई तप के व्रत पालन करतुं नथी।

चार्वाको कहे छे के आत्मा जेवी कोई चीज ज नथी। केटलाक आत्माने माने छे परन्तु भूत अने भविष्यत्काल साथे तेनो संबन्ध मानता नथी। ते बन्नेनुं निरसन करतां आचार्य कहे छे के आत्मा छे अने ते अनादिकालथी चाल्यो आवे छे। अर्थात् अनादि कालथी आत्मा कर्मोथी बंधायेलो चाल्यो आवे छे।

ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तारधर्मा,
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥ २ ॥

॥ स्त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या,
संपद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया, व्यञ्जिताचिन्त्य सारः (सारैः) ।

सांख्य दर्शनकार माने छे के आत्मा कर्मोनो कर्ता नथी । तेनुं निरसन करतां आचार्य कहे छे के आत्मा स्वयं ज पोताना कर्म करे छे अने तेनुं शुभाशुभ फल भोगवे छे अने कर्मोनो सर्वथा नाश करी मोक्षमां जाय छे । तथा आ आत्मा ज्ञाता अने द्रष्टा छे—ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोगथी युक्त छे।

सांख्य, मीमांसा, वेदान्त अने योग मतवाळाओ आत्माने सर्व-व्यापक माने छे । तेना निरसनमां आचार्य कहे छे के—आत्मानुं परिमाण पोताना शरीर प्रमाण ज होय छे ।

सांख्य, मीमांसक, वेदान्ती अने वैशेषिक आत्माने सर्वथा नित्य माने छे । बौद्धो आत्माने उत्पाद अने विनाशमय माने छे । तेना निरसनमां आचार्य कहे छे के आत्मा उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य स्वरूप छे।

आत्मा पोताना ज्ञानादि गुणोथी युक्त छे । पोताना गुणोथी सुशोभित होवाना लीधे ज तेने पोताना स्वरूपनी प्राप्ति अर्थात् मोक्षनी प्राप्ति थाय छे । ओ रीते पूर्वोक्त गुणोवाळो आत्मा मानवामां आवे तो ज मोक्षरूप साध्यनी सिद्धि थाय, अन्यथा नहि ॥ २ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मनो उपशम, क्षय अने क्षयोपशम थवो ए सम्यग्दर्शन उत्पन्न करवा माटे अंतरङ्ग कारण छे, तथा गुरुनो उपदेश, जिनबिंब दर्शन, जातिस्मरण वगेरे बाह्य कारण छे। आ अंतरङ्ग अने बाह्य कारण मळवाथी सम्यग्दर्शन प्रगट थाय छे। सम्यग्ज्ञान उत्पन्न थवा माटे दर्शनमोहनीय अने ज्ञानावरण कर्मनो क्षयोपशमादिक थवो अंतरङ्ग कारण छे अने गुरुनो उपदेश, स्वाध्याय, वगेरे बाह्य कारण छे। सम्यक्चारित्र उत्पन्न थवा माटे मोहनीय कर्मनो क्षयोपशमादिक थवो अंतरङ्ग कारण छे अने गुरुनो उपदेश, स्वाध्याय, वगेरे बाह्य कारण छे। आ अंतरंग अने बहिरंग कारणोना मळवाथी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्र प्रगट थाय छे। अने कर्मोनो विशेष क्षय के क्षयोपशम थवाथी आ सम्यग्दर्शन, ज्ञान अने चारित्र अत्यन्त निर्मल थाय छे। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान अने चारित्र आत्मानी संपत्ति छे। कर्मोने नाश करवा माटे आ ज रत्नत्रयरूप संपत्ति आत्मानुं शस्त्र* छे। आ रत्नत्रयरूप शस्त्रना प्रबल प्रहारथी घाति कर्मरूपी पाप अतिशीघ्र नष्ट थई जाय छे।

---

* बीजो अर्थ—

रत्नत्रयरूप संपत्ति ते (आत्मसूर्यना) किरणोनो समूह छे। ते वडे दुरितांधकारनो नाश करेल होवाथी आत्मा देदीप्यमान अचिन्त्य सूर्य (सदृश) छे। ते केवलज्ञान, केवलदर्शन, श्रेष्ठ सुख, महावीर्य, क्षायिक सम्यक्त्वलब्धि, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग (ज्योतिर्वातायनादि !) आदि स्थिर (क्षायिक) अने अद्भुत एवा परम गुणोवडे (सदा) प्रकाशे छे।

कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ॥ ३ ॥

जानन् पश्यन् समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन्वितन्वन् ,
धून्वन् ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावं ।
कुर्व्वन् सर्व्वप्रजानामपरमभिभवं ज्योतिरात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन् स स्वयम्भूः प्रवृत्तः ॥ ४ ॥

छिंदन् शेषानशेषान्निगलवलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः ।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धप्र(स्व)भावै-
रूर्द्धं व्रज्या स्वभावात् समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये ॥ ५ ॥

ए आत्मा पोताना रत्नत्रयरूप शस्त्रना प्रवल प्रहारथी जे वखते घातिकर्मोने नष्ट करी दे छे ते ज वखते ए आत्माने केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अत्यन्त निर्मल सम्यक्त्व, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, यथाख्यात चारित्र, भामण्डल, चामर, छत्रत्रय वगेरे अनेक अनुपम विभूतिओ प्राप्त थाय छे । आ विभूतिओमांथी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व वगेरे विभूतिओ तो आत्म-स्वभावरूप होवाथी शाश्वत छे अने भामण्डल, चामर, छत्र, सिंहासन, वगेरे विभूतिओ देवोपनीत छे अने ते शरीरना संबंध सुधी रहे छे । आ बधी विभूतिओ अद्भुत छे अने एमनुं अचिंत्य माहात्म्य स्पष्ट देखाय छे ।

ज्यारे आ आत्मा घातिकर्मोनो नाश करवाथी उपर लखेला अचिन्त्य अने परम गुणोथी देदीप्यमान बने छे त्यारे ए आत्मा स्वयम्भू अथवा अरिहंत कहेवाय छे ।

ए आत्मा समस्त लोकालोकने एकी साथे निरंतर जाणे छे अने जूए छे, कृतकृत्य बनेलो होवाथी निरंतरपणे पूर्ण तृप्तिने अनुभवे छे, ज्ञान–प्रकाशने विस्तारे छे, मोहरूपी घोर निबिड अंधकारनो नाश करे छे, समवसरणरूप सभामां अमृत समान दिव्य ध्वनिरूप वचनोथी कल्याणमय उपदेश आपीने भव्य जीवोने अत्यन्त संतुष्ट करे छे, तेमने अत्यन्त आनंदित करे छे, सर्व प्रजाओना ईशभाव (शासन)ने करे छे, सूर्यादि अन्य ज्योतिओ करतां अधिक तेजस्वी छे, तथा स्वयं पोतामां ज पोतावडे पोताने क्षणवार उत्पन्न करतो ए स्वयम्भू प्रवर्त्ते छे ॥ ३–४ ॥

अंते वेडीओनी समान अत्यन्त कठीन एवा वेदनीय, नाम, गोत्र अने आयुः आ चार अवशेष अघाती कर्मोनी मूल अने उत्तर समस्त कर्मप्रकृतिओने छेदीने अनन्त स्वभाववाळा सूक्ष्मत्व, लोकाग्रावगाह, अगुरुलघु वगेरे परम गुणोथी पण ते भगवान् मुक्तिमां शोभे छे । ए सिवाय समस्त कर्म प्रकृतिओनो नाश थवाथी (?) प्राप्त थयेला (अथवा अन्य व्यपोह'नेति नेति' वडे वर्णवाता) अनेक अन्य गुणोथी पण ते सिद्ध भगवंत शोभे छे । शुद्ध आत्मानो स्वभाव ऊर्ध्वगमन करवानो होवाथी समस्त कर्मोनो नाश थया पछी ते ज समयमां भगवान् लोकाकाशना अग्रभाग उपर जईने विराजित थाय छे ॥ ५ ॥

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः,
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्त्तः।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह-
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥ ६ ॥
आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं,
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावं।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममसितं शाश्वतं सर्वकालं,
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥ ७ ॥

सिद्ध अवस्थामां आत्मानुं परिमाण केटलुं रहे छे, अंतिम शरीरथी ओछुं रहे छे के अधिक! ते बतावे छेः—

जे मनुष्यशरीरथी आ जीव मुक्त थाय छे, तेने ज चरम शरीर कहे छे। मुक्त थया पछी आ जीवनो आकार चरम शरीरना आकारथी भिन्न आकारनो न होई शके, अथवा न तो ते समस्त लोकमां व्यापक होई शके छे, अथवा न तो वटवृक्षना बीजनी माफक अणुमात्र होई शके छे, कारण के त्यां आकार बदलवानुं कोई कारण नथी। परन्तु अंतिम शरीरना परिमाणथी कंइक ओछो आकार होवामां कारण छे अने ते ए के संसार परिभ्रमणमां आ जीवनो आकार कर्मोने कारणे बदलतो रहेतो हतो। हवे कर्मोना नष्ट थवाथी आकार फेरववानुं कोई कारण नथी। तेथी मुक्त अवस्थामां जीवनो आकार अंतिम शरीरना आकारे ज रहे छे। तेनुं परिमाण अंतिम शरीरथी कंइक ओछुं ज रहे छे, कारण के शरीरना जे जे भागोमां आत्माना प्रदेशो नथी तेटलुं परिमाण घटी जाय छे। शरीरनी अंदर पेट, नाक, कान वगेरे पोला भागोमां जीव प्रदेशो होता नथी। तेथी ए सिद्ध थाय छे के मुक्त जीवोनुं परिमाण अंतिम शरीरना परिमाणथी कंइक ओछुं छे। आ ओछापणुं आकारनी अपेक्षाए नथी परन्तु घनफलनी अपेक्षाए छे। तथा मुक्त अवस्थामां जीवनो आकार अंतिम शरीरना आकार समान अत्यन्त देदीप्यमान रहे छे। तथा मुक्त अवस्थामां आत्मा अमूर्त होय छे। सिद्धोमां स्पर्शादिरूप मूर्तत्व नथी, तेथी ते अमूर्तस्वरूप कहेवाय छे।

तथा क्षुधा, तृषा, श्वास, कास (दम), ताव, मरण, वृद्धावस्था, अनिष्टयोग, मोह, अनेक प्रकारनी आपत्तिओ अने बीजा पण दारुण दुःखो जेथी उत्पन्न थाय छे एवा भव (राग–द्वेष) नो भगवाने नाश कर्यो छे। आ भव नष्ट थवाथी सिद्ध भगवंतोने जे अनन्त सुखनी प्राप्ति थई छे, ते सुखना परिमाणने कोण मापी शके ! अर्थात् कोई न मापी शके ॥ ६ ॥

सिद्धोनुं सुख केवुं होय छे ते बतावे छेः—

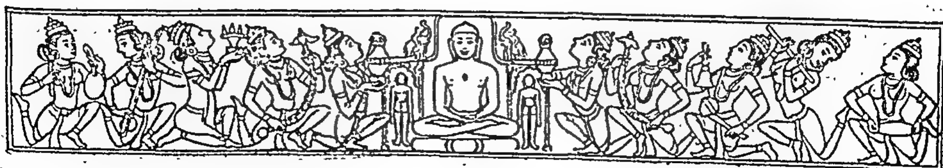
सिद्ध परमात्माने जे सुख होय छे ते केवळ आत्माथी ज उत्पन्न थयेलुं होय छे; अन्य कोई प्रकृति आदिथी उत्पन्न थयेलुं नथी, तेथी ते अनित्य नथी। ते सुख स्वयं अतिशय युक्त होय छे, समस्त बाधाओथी रहित होय छे, अत्यन्त विशाल–अनन्त होय छे अने आत्माना समस्त प्रदेशोमां व्याप्त थईने रहे छे। ते सुख न क्यारेय ओछुं थाय छे के न तो वधे छे। सांसारिक सुख विषयोथी उत्पन्न थाय छे, सिद्धोनुं सुख विषयोथी उत्पन्न थतुं नथी, परन्तु स्वाभाविक होय छे। सुखनुं प्रतिद्वन्द्वि दुःख छे। ते दुःखथी तेओ सर्वथा रहित छे। संसारी जीवोनुं सुख दुःखोथी मिश्रित छे, परन्तु

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद् विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्याः,
न स्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ।
आतंकार्त्तेरभावे तदुपशमनसद्भेपजानर्थतावद्,
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥ ८ ॥
तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपःसंयमज्ञानदृष्टि-
चर्य्याः सिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः ।
भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः,
तान् सर्वान् नौम्यनन्तान् निजिगमिपुरहं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥ ९ ॥

सिद्धोनुं सुख हंमेशा सुखरूप ज होय छे । संसारिक सुख वेदनीय कर्मना उदयथी थाय छे । तथा पुष्पमाला, चन्दन, भोजन वगेरे बाह्य सामग्रीनी अपेक्षावाळुं छे। परन्तु सिद्धोनुं सुख बीजा कोई द्रव्यनी अपेक्षा विनानुं होय छे । ते सिद्धोनुं सुख उपमा रहित छे, अपरिमित छे, शाश्वत छे अने सर्व समय रहेनारुं छे। ते सुखनुं सामर्थ्य परमोत्कृष्ट छे अने अनन्त छे। ते सुख परमसुख कहेवाय छे। आवुं सुख सिद्धोने होय छे ॥ ७ ॥

जेम कोई जीवने प्राणांत व्याधिनी कोई पीडा अथवा दुःख न होय तो तेने माटे पीडाने शान्त करवा माटे कोई औषधिनी जरूर नथी, अथवा जे वखते अंधकारनो सर्वथा अभाव होय अने बधी वस्तुओ स्पष्ट देखाती होय तो ते वखते दीपकनी कोई जरूर नथी, ते ज प्रमाणे ते सिद्ध भगवंतोनी भूख अने तरस चाली गई छे तेथी तेमने अनेक प्रकारना रसोथी परिपूर्ण एवा अन्नजलनुं कोई प्रयोजन नथी । तथा सिद्धोने कोई पण जातनी अपवित्रतानो स्पर्श नथी होतो तेथी तेमने केसर, चन्दन अथवा पुष्पमाला वगेरेनुं पण प्रयोजन नथी । तेवी ज रीते ते सिद्ध भगवंतोने ग्लानि, निद्रा, वगेरेनो सर्वथा अभाव होय छे, तेथी तेमने कोमल शय्यानुं पण कोई प्रयोजन नथी ॥ ८ ॥

ते सिद्ध भगवंतो अनन्तज्ञान वगेरे अनेक उत्तम संपत्तिओथी सहित छे अने सर्व नयोनी दृष्टिए विशुद्ध एवा तप, संयम, ज्ञान, दर्शन अने चारित्रथी युक्त छे। तेमनो यश चारे तरफ फेलायेलो छे। तेओ विश्वना देवाधिदेव छे। त्रणे लोकना समस्त भव्य जनो तेओनी सदा स्तुति करे छे। ते भूतकालमां थयेला, भविष्यत् कालमां थनारा अने वर्त्तमान कालमां थता समस्त अनन्त सिद्धोने हुं सिद्ध स्वरूपने बहु जल्दी ज प्राप्त करवानी इच्छाथी त्रिसन्ध्य नमस्कार करुं छुं ॥ ९ ॥



✓आचार्यभक्तिः

सिद्धगुणस्तुतिनिरतानुद्धूतरुषाग्निजालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसम्पूर्णान्, मु(यु)क्तियुतसत्यवचनलक्षितभावान् ॥ १ ॥
मुनिमाहात्म्यविशेषान्, जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो, बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान् ॥ २ ॥
गुणमणिविरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातॄन् सततं ।
रहितप्रमादचर्यान्, दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टिकरान् ॥ ३ ॥
मोहच्छिदुग्रतपसः प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशुभव्यवहारान् ।
प्रासुक्यनिलयाननघानाशाविध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ॥ ४ ॥

अनुवाद

जे आचार्यो सिद्धोना क्षायिक सम्यक्त्व आदि गुणोनी स्तुति करवामां सदा लीन रहे छे। क्रोध, मान, माया, लोभरूपी अग्निना समूहना जे अनन्तानुबंधि वगेरे अनेक भेदो छे अर्थात् कषायोना भेदो छे ते बधा जेओए नष्ट करी नाख्या छे, जे मनोगुप्ति, वचनगुप्ति अने कायगुप्तिनुं पालन करे छे, अने जेओ निरुहना (युक्ति) थी युक्त एवा सत्य वचनवडे जगतना पदार्थोने ओळखावे छे, एवा आचार्योने हुं नमस्कार* करु छु ॥ १ ॥

मुनिओमां जेमनुं माहात्म्य विशेष छे, जेमनी मूर्ति जिनशासनने प्रकाशित करवा माटे दीपक समान देदीप्यमान छे, जेमना मनमां सिद्धिपद प्राप्त करवानी इच्छा छे अने जेओ ज्ञानावरणीय आदि कर्मोने बंधाववाना कारणरूप तत्प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य आदि कारणोने नाश करवामां अत्यन्त कुशल छे, एवा आचार्योने हुं नमस्कार करु छु ॥ २ ॥

जेओनु शरीर सम्यग्दर्शन वगेरे गुणरूपी मणिओथी सुशोभित छे, जेओ जीवादिक छए द्रव्यना निश्चयने जन्म आपनारा छे अर्थात् जेओ स्वयं षड्द्रव्य विषयक निश्चयवाळा छे अने बीजाओने निश्चय करावनारा छे, जेमनु चारित्र विकथा आदि प्रमादथी रहित छे, जेमनुं सम्यग्दर्शन शंकादिक दोषोथी रहित छे अने जेओ गच्छनी सतुष्टिने करनारा छे, एवा आचार्योने हुं सदा नमस्कार करुं छुं ॥ ३ ॥

जेमनु उग्र तपश्चरण मोह अने अज्ञाननो नाश करनारुं छे, जेमनुं हृदय प्रशस्त अने परिशुद्ध छे, तथा व्यवहार सुंदर–स्वपरकल्याणकर छे, जेमनुं रहेवानुं स्थान समूर्च्छिमादि जीवोथी रहित होय छे, जेओ पाप रहित होय छे, जेमनुं हृदय आशा–स्पृहाथी सर्वथा रहित होय छे अने मिथ्यादर्शनरूपी कुमार्गनो सदा नाश करनारा होय छे, एवा आचार्योने हु सदा नमस्कार करु छुं ॥ ४ ॥

---

* आ श्लोकमा तथा आगळना श्लोकमां नमस्कारसूचक कोई वाक्य नथी। ते वाक्य दसमा श्लोकमां छे। अने त्या सुधी बधा श्लोकोनो सम्बन्ध छे। तेथी 'नमस्कार करु छुं' आ वाक्य त्यांथी लेवामां आव्यु छे। आगळ पण एम ज समजवुं।

धारितविलसन्मुण्डान् , वर्जितबहुदण्डपिण्डमण्डलनिकरान् ।
सकलपरिषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान् ॥ ५ ॥

अचलान् व्यपेतनिद्रान्, स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्याहीनान् ।
विधिनानाश्रितवासानलिप्तदेहान् विनिर्जितेन्द्रियकरिणः ॥ ६ ॥

अतुलानुत्कुटिकासान् , विविक्तचित्तानखण्डितस्वाध्यायान् ।
दक्षिणभावसमग्रान् व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ॥ ७ ॥

भिन्नार्त्तरौद्रपक्षान् संभावितधर्म्मसुनिर्म्मलहृदयान् ।
नित्यं पिनद्धकुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्य्यान् ॥ ८ ॥

जेमनां मन, वचन अने काया, पांचे इन्द्रियो, अने हाथ-पग वगेरेनो व्यापार बधा पापोथी रहित होय छे अने तेथी जेओ अत्यन्त शोभे छे। जे मुनिओनो समुदाय अधिक दंडनो भागीदार बहुदोषवाळो आहार ग्रहण करे छे एवा मुनि-समुदायथी जेओ सर्वथा अलग रहे छे (?)। जे तपश्चर्यादि विशेष-अनुष्ठानोथी अनेक प्रकारना परीषहोने सदा जीतता रहे छे अने जेओ प्रमादथी सर्वथा रहित होय छे, एवा आचार्योने हुं सदा नमस्कार करुं छुं ॥ ५ ॥

जेओ अनेक परीषहो आववा छतां पोतानां अनुष्ठानो अने व्रतोथी क्यारेय चलायमान थता नथी, जेओ विशेषे करीने निद्राथी रहित होय छे, जेओ प्रायः कायोत्सर्गमां रहे छे, जेओ अनेक प्रकारनां दुःख अने दुर्गतिने आपनारी दुष्ट लेश्याओथी सदा रहित होय छे, जेओए विधिपूर्वक घरनो त्याग कर्यो छे, अथवा जेओना आगमानुसार कंदरा, वसतिका वगेरे अनेक प्रकारनां रहेवानां स्थान छे, जेओ तेल वगेरेथी मालीश करावता नथी अने जेओ इन्द्रियरूपी हाथीओने हंमेशा पोताना वशमां राखे छे, एवा आचार्योने हुं सदा नमस्कार करुं छुं ॥ ६ ॥

संसारमां जेमनी कोई उपमा नथी, जेओ उत्कटिकासन वगेरे कठण आसनोथी तपश्चरण करे छे, जेमनुं हृदय हंमेशा परभावोथी रहित छे, जेमनो स्वाध्याय सदा अखंडित रहे छे, जेमनुं दाक्षिण्य परिपूर्ण छे अने जेमना मद, राग, लोभ, अज्ञान अने मत्सरता चाल्या गया छे, एवा आचार्योने हुं सदा नमस्कार करुं छुं ॥ ७ ॥

जेओए आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यान रूपी पक्षोनो सर्वथा नाश कर्यो छे, धर्मध्याननी शुभ भावनाथी जेमनुं हृदय निर्मल बन्युं छे, जेओए नरकादिक दुर्गतिओने सदाने माटे रोकी छे, जेओ अत्यन्त पवित्र छे, जेमनी ऋद्धिओ अने तपश्चरणनुं माहात्म्य अत्यन्त प्रशंसनीय छे अने जेओ गारव युक्त प्रवृत्तिओथी सर्वथा रहित होय छे, एवा आचार्योने हुं सदा नमस्कार करुं छुं ॥ ८ ॥

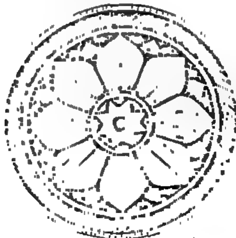
तरुमूलयोगयुक्तानवकाशातापयोगरागसनाथान् ।
बहुजनहितकरचर्यानभयाननघान् महानुभावविधानान् ॥ ९ ॥

ईदृशगुणसंपन्नान् युष्मान् भक्त्या विशालया स्थिरयोगान् ।
विधिनानारतमग्र्यान् मुकुलीकृतहस्तकमलशोभितशिरसा ॥ १० ॥

अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदयजन्मजरामरणबंधनमुक्तान् ।
शिवमचलमनघमक्षय्यव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम् ॥ ११ ॥

जे आचार्यो वर्षाकालमां वृक्ष आदिनी नीचे योगसाधनामां रहे छे, ग्रीष्मकालमां आतापना योग धारण करे छे अने शीतकालमां अभ्रावकाशयोग (खुल्ली जग्यामां रहेवुं) धारण करे छे, जेमनी मन, वचन अने कायानी प्रवृत्ति हंमेशा अनेक जीवोना हितने करनारी होय छे, जेओ सात प्रकारना भयथी सर्वथा रहित होय छे, जेओ पापथी रहित छे, जेमना अनुभाव (प्रभाव) अने विधान (कार्यो) महान छे, एवा आचार्योने हुं सदा नमस्कार करुं छु ॥ ९ ॥

जे आचार्यो उपर कहेला गुणोथी संपन्न छे, जेमनां मन, वचन अने काया अनेक परिषहो आववा छतां पण निरंतर विधिपूर्वक स्थिर रहे छे, अनेक गुणोने धारण करवाथी जेओ सदा अग्र-प्रधान छे। अने अशुभ कर्मोना उदयथी प्राप्त थनार जन्म, मरण, जरा वगेरे सर्व दोषोना संबंधथी जेओ रहित छे, एवा आचार्योने हुं अति भक्तिथी विधिपूर्वक अंजलिबद्ध करकमलथी शोभता मस्तक वडे नमुं छुं। जेथी मने शिव, अचल, निष्पाप, अक्षय, बाधाओथी रहित एवुं मुक्तिसुख प्राप्त थाओ ॥ १०-११ ॥



पञ्चगुरुभक्तिः

श्रीमदमरेन्द्रमुकुटप्रघटितमणिकिरणवारिधाराभिः ।
प्रक्षालितपदयुगलान् प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या ॥ १ ॥
अष्टगुणैः समपेतान् प्रणष्टदुष्टाष्टकर्मरिपुसमितीन् ।
सिद्धान्सततमनन्तान्नमस्करोमीष्टतुष्टिसंसिद्ध्यै ॥ २ ॥
साचारश्रुतजलधीन्प्रतीर्य शुद्धोरुचरणनिरतानाम् ।
आचार्याणां पदयुगकमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ॥ ३ ॥
मिथ्यावादिमदोग्रध्वान्तप्रध्वंसिवचनसंदर्भान् ॥
उपदेशकान्प्रपद्ये मम दुरितारिप्रणाशाय ॥ ४ ॥
सम्यग्दर्शनदीपप्रकाशका मेयबोधसंभूताः ।
भूरिचरित्रपताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु ॥ ५ ॥
जिनसिद्धसूरिदेशकसाधुवरानमलगुणगणोपेतान् ।
पञ्चनमस्कारपदैस्त्रिसन्ध्यमभिनौमि मोक्षलाभाय ॥ ६ ॥

अनुवाद

जेओना चरणकमल इन्द्रोना सुशोभित मुकुटोमां जडेला मणिओना किरणरूपी जलधाराथी प्रक्षालित करवामां आव्या छे, एवा श्रीजिनेश्वर भगवंतो(–अरिहंतो)ने हुं भक्ति पूर्वक प्रणाम करुं छुं ॥ १ ॥

जेओ अनंतज्ञानादि आठ गुणोथी अलंकृत छे, अने जेओए अत्यन्त दुष्ट–दुःख देवावाळा आठ कर्मरूपी शत्रुओना समूहने नष्ट करी नाख्यो छे, एवा अनन्त सिद्धोने हुं अत्यन्त इष्ट एवी मोक्षलक्ष्मीने प्राप्त करवा नमस्कार करुं छुं ॥ २ ॥

आचार अने श्रुत समुद्रोने तरीने जेओ शुद्ध अने पराक्रमवाळा चारित्रनुं पालन करवामां सदा तत्पर छे, एवा आचार्योना चरण-कमलोने हुं मस्तक पर धारण करुं छुं ॥ ३ ॥

जेओना वचनोनी रचना मिथ्यावादिओना अहंकाररूपी अंधकारने नाश करवावाळी छे, एवा उपाध्यायोनुं हुं मारा पापरूपी शत्रुओनो नाश करवा शरण लउं छुं अर्थात् तेओनाः शरणे जाउं छुं ॥ ४ ॥

जेओ सम्यग्दर्शनरूपी दीपकथी भव्यजीवोना मननो अन्धकार दूर करी तेओना मनने प्रकाशित करनारा छे, जीवादिक समस्त पदार्थोना ज्ञानथी सुशोभित छे अने विविध चारित्रनी पताका जेओए फरकावी छे, एवा साधुसमुदायो मारी रक्षा करे ॥ ५ ॥

जेओ अनेक निर्मल गुणोना समूहथी सहित छे, एवा अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने उत्तम साधुओने हुं मोक्ष प्राप्त करवानी इच्छाथी पंच-नमस्कार मंत्रना पदोवडे त्रिसन्ध्य नमस्कार करुं छुं ॥ ६ ॥

एष पञ्चनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः ।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं भवति मङ्गलम् ॥ ७ ॥
श्रीमदर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः ।
कुर्वन्तु मंगलाः(लं) सर्वे, निर्वाणपरमश्रियम् ॥ ८ ॥
सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्, सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून् ।
रत्नत्रयं च वन्दे, रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ॥ ९ ॥
पान्तु श्रीपादपद्मानि, पञ्चानां परमेष्ठिनाम् ।
लालितानि सुराधीश-चूडामणिमरीचिभिः ॥ १० ॥
प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगाङ्गैरष्टभिः स्तुवे ॥ ११ ॥

आ पंच-नमस्कार मंत्र बधा पापोने नाश करनार छे अने सर्व मंगलोमां मुख्य मंगल छे ॥ ७ ॥

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने सर्व साधु आ पांचे परमेष्ठी मंगलरूप छे। तेओ मने मोक्षरूपी परम लक्ष्मी आपे ॥ ८ ॥

हुं रत्नत्रय प्राप्त करवा माटे भक्तिथी बधा अरिहंतोने, सिद्धोने, आचार्योने, उपाध्यायोने साधुओने अने रत्नत्रयने नमस्कार करुं छुं ॥ ९ ॥

इन्द्रोना मुकुटोमां जडेलां रत्नना किरणोथी रंजित एवां पांचे परमेष्ठिओना चरण-कमल मारी रक्षा करे ॥ १० ॥

आठ प्रातिहार्योथी सहित अरिहंतो, अनन्तज्ञानादि आठ गुणोथी सहित सिद्धो, अष्टप्रवचनमाताथी सहित आचार्यो, विनयथी सहित उपाध्यायो अने आठ योगांगोथी सहित साधुओनी हुं स्तुति करुं छुं ॥ ११ ॥

परिचय

आचार्यवर्य श्रीपूज्यपाद विरचित 'दशभक्त्यादि संग्रह' सरल दि० जैन पचायत, अजमेरथी वीर सं० २४७३ मां प्रकाशित थयेल, तेमांथी सिद्धभक्ति, आचार्यभक्ति तथा पंचगुरुभक्ति आ त्रण स्तोत्रो, अत्रे लेवामां आव्यां छे।

श्री पूज्यपादस्वामी दिगम्बर जैन परंपरामां एक प्रौढ अने प्रचण्ड विद्वान् आचार्य थई गया छे। तेओ विक्रमनी छट्ठी शताब्दिमां थया छे। तेमना 'सर्वार्थसिद्धि' 'समाधितंत्र' वगेरे ग्रंथो बहुज प्रसिद्ध छे।



[७१-३४]

श्रीरत्नशेखरसूरिविरचितः

'श्राद्धविधि'प्रकरणान्तर्गतसन्दर्भः

एवं श्राद्धस्य स्वरूपमुक्त्वा प्रागुक्ते दिनरात्र्यादिकृत्यपट्के प्रथमं दिनकृत्यविधिमाह—

नवकारेण विबुद्धो, सरेइ सो सकुलधम्मनियमाई ।
पडिकमिअ सुई पूइअ, गिहे जिणं कुणइ संवरणं ॥ ५ ॥

व्याख्या—'नमो अरिहंताणं' इत्यादिना विबुद्धः स श्राद्धः सकुलधर्मनियमादीन् स्मरेत्। अयमर्थः श्रावकेण तावत् स्वल्पनिद्रेण भाव्यम्। पाश्चात्यरात्रौ च यामादिसमये सकाले उत्थातव्यं तथा सति यथा विलोक्यमानैहलौकिकपारलौकिककार्यसिद्ध्यादयोऽनेकगुणाः, अन्यथा तत् सीदनादयो दोषाः।

लोकेऽप्युक्तम्—

"कम्मीणां धणसंपडइ, धम्मीणां परलोअ ।
जिहिं सुत्तां रवि उग्गमइ, तिहिं नरआयो न ओय ॥ १ ॥

निद्रापारवश्यादिना यदि तथोत्थातुं न शक्नोति तदा पञ्चदशमुहूर्त्ता रजनी तस्यां जघन्यतोऽपि चतुर्दशे ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्, द्रव्याद्युपयोगं करोति—

द्रव्यतः—कोऽहं श्राद्धोऽन्यो वा ?
क्षेत्रतः—किं स्वगृहेऽन्यत्र वा ? उपरितलेऽधस्तले वा ?
कालतो—रात्रिर्दिनं वा ?
भावतः—कायिक्यादिना पीडितोऽहं न वा ?

एवमुपयोगे दत्ते निद्रानुपरमे नासानिःश्वासं निरुणद्धि। ततोऽपनिद्रः सन् द्वारं दृष्ट्वा कायिक्यादिचिन्तां करोति। उक्तं च साधुमाश्रित्यौघनिर्युक्तौ—

"दव्वाइ उवओगं ऊसासनिरुंभणा लोअंति।

रात्रौ च यदि किञ्चित् कार्याद्यन्यस्मै ज्ञापयति, तदा मन्दस्वरादिनैव, उच्चैः स्वरं तु शब्दकासितखुंकारहुंकाराद्यपि न कुर्यात्। रात्रौ तत्करणे जागरितैर्गृहगोधादिहिंस्रजीवैर्मक्षिकोपद्रवाद्यारम्भः, प्रातिवेश्मिकैर्वा स्वस्वारम्भः प्रवर्त्येत। तथा च पानीयाहारिकारन्धनकारिकावाणिज्यकारकशोककारकपथिककर्षकारामिकारघट्टिकघरट्टादियन्त्रप्रवाहकशिलाकुट्टकचाक्रिकरजककुम्भकारलोहकारसूत्रधारद्यूतकारशस्त्रकारमद्यकारमात्स्यकसौनिकवागुरिकलुब्धकघातकपारदारिकतस्करावस्कन्ददायकादीनामपि परम्परया कुव्यापारप्रवृत्तिरिति निरर्थकमनेके दोषाः।

तदुक्तं श्रीभगवत्यङ्गे—

जागरिआ धम्मीणं, अहम्मीणं तु सुत्तया सेया।
वच्छाहिव भइणीए, अकहिंसु जिणो जयन्तीए ॥ १ ॥

निद्राच्छेदे च तज्ज्ञेन भूजलाग्निवायुव्योमसु किं तत्त्वमित्याद्यन्वेष्यं यतः—

अम्भोभूतत्त्वयोर्निद्रा-, विच्छेदः शुभहेतवे।
व्योमवाय्वग्नितत्त्वेषु, स पुनर्दुःखदायकः ॥ १ ॥

वामा शस्तोदये पक्षे, सिते कृष्णे तु दक्षिणा।

उदये रविणा त्वस्य, शशिनास्तं शुभावहम् ॥ ४ ॥

केषाञ्चिन्मते वारक्रमेण सूर्यचन्द्रोदयः, तत्र रविभौमगुरुशनिषु सूर्योदयः सोमबुधशुक्रेषु चन्द्रोदयः। केषाञ्चित् संक्रान्तिक्रमाद्यथा 'मेसविसे रविचन्दा' इत्यादि। केषाञ्चिच्चन्द्रराशिपरावर्त्तक्रमेण—

"सार्द्धं घटीद्वयं नाडिरेकैकार्कोदयाद्वहेत्।
अरघट्टघटीभ्रान्ति-न्यायो नाड्यः पुनः पुनः ॥ ५ ॥
षट्त्रिंशद् गुरुवर्णानां, या वेला भणने भवेत्।
सा वेला मरुतो नाड्या, नाड्यां संचरतो लगेत् ॥ ६ ॥

पञ्चतत्त्वानि चैवं—

"ऊर्ध्वं वह्निरधस्तोयं, तिरश्चीनः समीरणः।
भूमिर्मध्यपुटे व्योम, सर्वगं वहते पुनः ॥ ७ ॥
वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या, व्योम्नस्तत्त्वं वहेत् क्रमात्।
वहन्त्योरुभयोर्नाड्यो-, र्ज्ञातव्योऽयं क्रमः सदा ॥ ८ ॥
पृथ्व्याः पलानि पञ्चाश-, च्चत्वारिंशत्तथाम्भसः।
अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायो-, र्विंशतिर्नभसो दश ॥ ९ ॥
तत्त्वाभ्यां भूजलाभ्यां स्या-, च्छान्तेः कार्ये फलोन्नतिः।
दीप्ता स्थिरादिके कृत्ये, तेजो-वाय्वम्बरैः शुभम् ॥ १० ॥
जीवितव्ये जये लाभे, सस्योत्पत्तौ च वर्षणे।
पुत्रार्थे युद्धप्रश्ने च, गमनागमने तथा ॥ ११ ॥
पृथ्व्यप्तत्त्वे शुभे स्यातां, वह्निवातौ च नो शुभौ।
अर्थसिद्धिः स्थिरोर्व्यां तु, शीघ्रमंभसि निर्दिशेत् ॥ १२ ॥ युग्मम् ॥
पूजाद्रव्यार्जनोद्वाहे, दुर्गादिसरिदाक्रमे।
गमागमे जीविते च, गृहे क्षेत्रादिसंग्रहे ॥ १३ ॥
क्रयविक्रयणे वृष्टौ, सेवाकृषिद्विषज्जये।
विद्यापट्टाभिषेकादौ, शुभेऽर्थे च शुभः शशी ॥ १४ ॥ युग्मम् ॥
प्रश्ने प्रारंभणे वापि, कार्याणां वामनासिका।
पूर्णा वायोः प्रवेशश्चेत्, तदा सिद्धिरसंशयम् ॥ १५ ॥
बद्धानां रोगितानां च, प्रभ्रष्टानां निजात्पदात्।
प्रश्ने युद्धविधौ वैरि-, संगमे सहसा भये ॥ १६ ॥
स्नाने पानेऽशने नष्टा-, न्वेषे पुत्रार्थमैथुने।
विवादे दारुणार्थे च, सूर्यनाडिः प्रशस्यते ॥ १७ ॥ युग्मम् ॥

क्वचिच्चैवम्—

"विद्यारम्भे च दीक्षायां, शास्त्राभ्यासविवादयोः।
राजदर्शनगीतादौ, मन्त्रयन्त्रादिसाधने ॥ १८ ॥ सूर्यनाडी शुभा।

दक्षिणे यदि वा वामे, यत्र वायुर्निरन्तरम् ।
तं पादमग्रतः कृत्वा, निस्सरेत् निजमन्दिरात् ॥ १९ ॥
अधमर्णादिचौराद्या, विग्रहोत्पातिनोऽपि च ।
शून्याङ्गे स्वस्य कर्तव्याः, सुखलाभजयार्थिभिः ॥ २० ॥
स्वजनस्वामिगुर्वाद्या ये चान्ये हितचिन्तकाः ।
जीवाङ्गे ते ध्रुवं कार्याः, कार्यसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ २१ ॥
प्रविशत्पवनापूर्ण-, नासिकापक्षमाश्रितम् ।
पादं शय्योत्थितो दद्यात् , प्रथमं पृथिवीतले ॥ २२ ॥

एवं विधिना त्यक्तनिद्रः श्रावक आत्यन्तिकबहुमानः परममङ्गलार्थं नमस्कारं स्मरेदव्यक्तवर्णं यदाह—

"परमिट्ठिचिंतणं, माणसंमि सिज्जागएण कायव्वं ।
सुत्ताऽविणयपवित्ती, निवारिआ होइ एवं तु ॥ १ ॥"

अन्ये तु न सा काचिदवस्था यस्यां पञ्चनमस्कारस्यानधिकार इति मन्वाना अविशेषेणैव नमस्कारपाठमाहुः । एतन्मतद्वयमाद्यपञ्चाशकवृत्त्यादावुक्तं । श्राद्धदिनकृत्ये त्वेवमुक्तम्—

"सिज्जाठाणं पमुत्तूणं, चिट्ठिज्जा धरणीयले ।
भाववंधुं जगन्नाहं, नमोकारं तओ पढे ॥ १ ॥"

यतिदिनचर्यायां चैवम्—

"जामिणिपच्छिमजामे, सव्वे जग्गंति बालवुड्ढाई ।
परमिट्ठिपरममन्तं, भणन्ति सत्तट्ठवाराओ ॥ १ ॥"

एवं च नमस्कारं स्मरन् सुप्तोत्थितः पल्यंकादि मुक्त्वा पवित्रभूमौ ऊर्ध्वं स्थितो निविष्टो वा पद्मासनादिसुखासनासीनः पूर्वस्यां उत्तरस्यां वा सम्मुखो जिनप्रतिमाद्यभिमुखो वा चित्तैकाग्रताद्यर्थं कमलबन्धकरजापादिना नमस्कारान् परावर्त्तयेत्, तत्राष्टदले कमले कर्णिकायामाद्यं पदं, द्वितीयादिपदानि चत्वारि पूर्वादिदिक्चतुष्के, शेषाणि चत्वार्याग्नेय्यादिविदिक्चतुष्के न्यसेदित्यादि ।
उक्तं चाष्टमप्रकाशे[1] श्रीहेमसूरिभिः—

अष्टपत्रे सिताम्भोजे, कर्णिकायां कृतस्थितिम् ।
आद्यं सप्ताक्षरं मन्त्रं, पवित्रं चिन्तयेत्ततः ॥ १ ॥
सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमम् ।
चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रेषु चिन्तयेत् ॥ २ ॥
त्रिशुद्ध्या चिन्तयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ।
भुञ्जानोऽपि लभेतैव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

करजापो नन्द्यावर्त्तशङ्खावर्त्तादिना इष्टसिद्ध्यादिबहुफलः ।

प्रोक्तं च—

"करआवत्ते जो पञ्चमङ्गलं साहुपडिमसंखाए ।
नववारा आवत्तइ छलंति तं नो पिसायाई ॥ १ ॥

१ योगशास्त्रे ।

बन्धनादिकष्टे तु विपरीतशङ्खावर्तादिनाक्षरैः पदैर्वा विपरीतं नमस्कारं लक्षाद्यपि जपेत्, क्षिप्रं क्लेशनाशादि स्यात्। करजापाद्यशक्तस्तु सूत्ररत्नरुद्राक्षादिजपमालया स्वहृदयसमश्रेणिस्थया परिधानवस्त्रचरणाद्यलगन्त्या मेर्वनुल्लङ्घनादिविधिना जपेत्। यतः—

अङ्गुल्यग्रेण यज्जप्तं, यज्जप्तं मेरुलङ्घने।
व्यग्रचित्तेन यज्जप्तं, तत्प्रायोऽल्पफलं भवेत्॥ १॥
सङ्कुलाद्विजने भव्यः, सशब्दान्मौनवान् शुभः।
मौनजान्मानसः श्रेष्ठो, जापः श्लाघ्यः परः परः॥ २॥
जपश्रान्तो विशेद् ध्यानं, ध्यानश्रान्तो विशेज्जपम्।
द्वयश्रान्तः पठेत् स्तोत्र-, मित्येवं गुरुभिः स्मृतम्॥ ३॥

श्रीपादलिप्तसूरिकृतप्रतिष्ठापद्धतावप्युक्तम्—

"जापस्त्रिविधो मानसोपांशुभाष्यभेदात् तत्र मानसो मनोमात्रप्रवृत्तिनिर्वृत्तः स्वसंवेद्यः, उपांशुस्तु परैरश्रूयमाणोऽन्तः सञ्जल्परूपः, यस्तु परैः श्रूयते स भाष्यः, अयं यथाक्रममुत्तममध्यमाधमसिद्धिषु शान्तिपुष्ट्यभिचारादिरूपासु नियोज्यः, मानसस्य प्रयत्नसाध्यत्वाद् भाष्यस्याधमसिद्धिफलत्वादुपांशुः साधारणत्वान्नियोज्यः इति।" नमस्कारस्य पञ्चपदीं नवपदीं वाऽनानुपूर्व्यापि चित्तैकाग्र्यार्थं गुणयेत्, तस्य च प्रत्येकमेकैकाक्षरपदाद्यपि यथायथम्।

यदुक्तमष्टमप्रकाशे—

"गुरुपञ्चकनामोत्था, विद्या स्यात् षोडशाक्षरा।
जपन् शतद्वयं तस्याः, चतुर्थस्याप्नुयात् फलम्॥ १॥

गुरुपञ्चकं परमेष्ठिपञ्चकं षोडशाक्षरा—"अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसाहु" रूपा। तथा—

शतानि त्रीणि षड्वर्णं, चत्वारि चतुरक्षरम्।
पञ्चावर्णं जपन् योगी, चतुर्थफलमश्नुते॥ २॥

षड्वर्णं 'अरिहंत सिद्ध' इति, चतुरक्षरं 'अरिहंत' इति, अवर्णं 'अकार' मेव मन्त्रं—

"प्रवृत्तिहेतुरेवैतदमीषां कथितं फलम्।
फलं स्वर्गापवर्गौ तु, वदन्ति परमार्थतः॥ ३॥"

तथा—

नाभिपद्मे स्थितं ध्याये-, दकारं विश्वतोमुखम्।
सिवर्णं मस्तकाम्भोजे, आकारं वदनाम्बुजे॥ ४॥
उकारं हृदयाम्भोजे, साकारं कण्ठपञ्जरे।
सर्वकल्याणकारीणि, बीजान्यन्यान्यपि स्मरेत्॥ ५॥"

'असिआउसा' इति बीजान्यन्यान्यपि 'नमः सर्वसिद्धेभ्य' इति।

मन्त्रः प्रणवपूर्वोऽयं, फलमैहिकमिच्छुभिः।
ध्येयः प्रणवहीनस्तु, निर्वाणपदकाङ्क्षिभिः॥ ६॥
एवं च मन्त्रविद्यानां, वर्णेषु च पदेषु च।
विश्लेषं क्रमशः कुर्या-, ल्लक्ष्यभावोपपत्तये॥ ७॥

जापादेश्च बहुफलत्वं, यतः—

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमो जपः।
जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो लयः॥ १॥

ध्यानसिद्धये च जिनजन्मादिकल्याणकभूम्यादिरूपं तीर्थमन्यद्वा स्वास्थ्यहेतुं विविक्तं स्थानाद्याश्रयेत्। यद् ध्यानशतके—

"निच्चं चिअ जुवइपसूनपुंसगकुसीलवज्जियं जइणो।
ठाणं विअणं भणिअं, विसेसओ झाणकालंमि ॥ १ ॥
थिरकयजोगाणं पुण, मुणीण झाणेसु निच्चलमणाणं।
गामंमि जणाइन्ने, सुन्ने रन्ने व न विसेसो ॥ २ ॥
तो जत्थ समाहाणं, होइ मणोवयणकायजोगाणं।
भूओवरोहरहिओ, सो देसो झायमाणस्स ॥ ३ ॥
कालो वि सुच्चिअ जहिं, जोगसमाहाणमुत्तमं लहइ।
नउ दिवसनिसावेलाइनियमणं झाइणो भणिअं ॥ ४ ॥
जच्चिअ देहावत्था, जिआण झाणोवरोहिणी होइ।
साइज्जा तद्‌वत्थो, ठिओ निसन्नो निवन्नो वा ॥ ५ ॥
सव्वासु वट्टमाणा, मुणओ जं देसकालचिट्ठासु।
वरकेवलाइलाभं, पत्ता बहुसो समिअपावा ॥ ६ ॥
तो देसकालचिट्ठा, निअमो झाणस्स नत्थि समयंमि।
जोगाण समाहाणं, जह होइ तहा पयइअव्वं ॥ ७ ॥ इत्यादि।

नमस्कारश्चात्रामुत्राप्यत्यन्तं गुणकृत्। उक्तं हि महानिशीथे—

"नासेइ चोरसावय-, विसहरजलजलणबंधणभयाइं।
चिंतिज्जंतो रक्खस—रणरायभयाइं भावेण ॥ १ ॥"

अन्यत्रापि—

"जाए वि जो पढिज्जइ, जेणं जायस्स होइ फलरिद्धि।
अवसाणे वि पढिज्जइ, जेण मओ सुग्गइं जाइ ॥ १ ॥
आवईहिंपि पढिज्जइ, जेण य लंघेइ आवइसयाइं।
रिद्धीए वि पढिज्जइ, जेण य सा जाइ वित्थारं ॥ २ ॥
नवकारइक्कअक्खर, पावं फेडेइ सत्त अयराणं।
पन्नासं च पएणं, पञ्चसयाइं समग्गेणं ॥ ३ ॥
जो गुणइ लक्खमेगं, पूएइ विहीइ जिणनमुक्कारं।
तित्थयरनामगोअं, सो बन्धइ नत्थि संदेहो ॥ ४ ॥
अट्ठेवय अट्ठसया, अट्ठसहस्सं च अट्ठकोडीओ।
जो गुणइ अट्ठलक्खे, सो तइअभवे लहइ सिद्धिं ॥ ५ ॥"

नमस्कारमाहात्म्ये—

इह लोके श्रेष्ठिपुत्रशिवादयो दृष्टान्ताः यथा—स द्यूताद्यासक्तो 'विषमे नमस्कारं स्मरेरिति' पित्रा शिक्षितः पितरि मृते व्यसननिर्धनो धनार्थी दुष्टत्रिदण्डिगिरोत्तरसाधकीभूतः कृष्णचतुर्दशी-रात्रौ श्मशाने खड्गपाणिः शवस्याङ्घ्री म्रक्षयन् भीतो नमस्कारं सस्मार। त्रिरुत्थितेनापि शवेन तं प्रत्यप्रभूष्णुना त्रिदण्ड्येव हतः स्वर्णनरः सिद्धस्तस्य ततो महर्द्धिः शिवश्चैत्याद्यचीकरत्, इत्यादि। परलोके तु वटशमलिकादयः, यथा सा म्लेच्छवाणविद्धा साधुदत्तनमस्कारात्सिंहलेशस्य मान्यपुत्री-त्वेनोत्पन्ना श्रुतसमयमहेभ्योक्तनमस्काराद्यपदश्रुतेर्जातिस्मरा पञ्चशत्या पोतैरागत्य भृगुपुरे शमलिका-विहारोद्धारमकारयदित्यादि। तस्मात् सुप्तोत्थितेन पूर्वं नमस्कारः स्मर्तव्यस्ततो धर्मजागर्या कार्या।

अनुवाद

आ प्रमाणे श्रावकनुं स्वरूप कहीने हवे पहेलां कहेल दिनकृत्य, रात्रिकृत्य आदि छ कृत्योमांथी प्रथम दिवसकृत्यनी विधि कहे छे :—

अर्थ—नवकार गणीने जागृत थवुं पछी पोताना कुल नियमादिने संभारवा। त्यारबाद प्रतिक्रमण करी पवित्र थई जिनमंदिरमां जिनेश्वरने पूजी पच्चक्खाण करवुं।

व्याख्या—"नमो अरिहंताणं" इत्यादि नवकार गणीने जागृत थयेलो श्रावक पोताना कुल-धर्म, नियम इत्यादिकनुं चिंतवन करे।' इत्यादि प्रथम गाथार्थनुं विवरण आ प्रमाणे छे :—

उठवानो समय अने वहेला उठवाथी लाभ

श्रावके निद्रा थोडी लेवी। पाछली रात्रे पहोर रात्रि बाकी रहे ते वखते उठवुं। तेम करवामां आलोक संबंधी तथा परलोक संबंधी कार्यनो बराबर विचार थवाथी ते कार्यनी सिद्धि तथा बीजा पण घणा फायदा छे। अने तेम न करवामां आवे तो आलोक अने परलोक संबंधी कार्यनी हानि वगेरे घणा दोषो छे। लोकमां पण कह्युं छे के :—

अर्थ—कर्मकर लोको जो वहेलां उठीने कामे वळगे तो, तेमने धन मळे छे; धर्मीपुरुषो वहेला उठीने धर्मकार्य करे तो, तेमने परलोकनुं सारुं फल मळे छे; परन्तु जेओ सूर्योदय थया छतां पण उठता नथी, तेओ बल, बुद्धि, आयुष्य अने धनने हारी जाय छे ॥ १ ॥

निद्रावश थवाथी अथवा बीजा कोई कारणथी जो पूर्वे कहेला वखते न उठी शके तो, पंदर मुहूर्तनी रात्रिमां जघन्यथी चौदमे ब्राह्ममुहूर्ते (अर्थात् चार घडी रात्रि बाकी रहे त्यारे) तो जरूर उठवुं जोईए।

द्रव्य-क्षेत्र-काल अने भावनो उपयोग

उठ्यांनी साथे श्रावके द्रव्यथी, क्षेत्रथी, काळथी तथा भावथी उपयोग करवो। ते आ प्रमाणे :—

"हुं श्रावक छुं, के बीजो कोई छुं?" वगेरे विचार करवो ते द्रव्यथी उपयोग।

"हुं पोताना घरमां छुं के बीजाना घेर? मेडा उपर छुं के भोंयतळीये?" इत्यादि विचार करवो ते क्षेत्रथी उपयोग।

"रात्रि छे के दिवस छे?" इत्यादि विचार करवो ते काळथी उपयोग।

"मन, वचन अथवा कायाना दुःखथी हुं पीडायेलो छुं के नहीं?" वगेरे विचार करवो ते भावथी उपयोग।

एम चार प्रकारे विचार कर्या पछी निद्रा बराबर दूर न थई होय तो, नासिका पकडीने निःश्वासने रोके। तेथी निद्रा तद्दन दूर थाय त्यारे द्वार (बारणुं) जोईने कायिकी चिंता वगेरे करे। साधुनी अपेक्षाथी ओघनिर्युक्तिमां कह्युं छे के—"द्रव्यादिनो उपयोग करे, निःश्वासनो निरोध करे अने बारणां तरफ जुए।"

रात्रे कार्य प्रसंगे केवी रीते बोलवुं या बोलावतुं.

रात्रे जो कांई बीजा कोईने कामकाज जणाववुं पडे तो, ते बहु ज धीमा सादे जणाववुं। ऊंचा स्वरथी खांसी, खुंखार, हुंकार अथवा कोई पण शब्द न करवो। कारण के तेम करवाथी गरोळी वगेरे हिंसक जीव जागे अने माखी प्रमुख क्षुद्र जीवोने उपद्रव करे, तथा पडोशना लोको पण जागृत थई पोत पोताना कार्यनो आरंभ करवा लागे। जेमके, पाणी लावनारी तथा रांधनारी स्त्री, वेपारी,

शोक करनार, मुसाफर, खेडुत, माळी, रहेंट चलावनार, घंटी प्रमुख यंत्रने चलावनार, सलाट, घांची, धोबी, कुंभार, लुहार, सूयार, जुगारी, शस्त्र तैयार करनार, कलाल, माछी, कसाई, शिकारी, घातपात करनार, परस्त्रीगमन करनार, चोर, धाड पाडनार, इत्यादि लोकोने परंपराए पोतपोताना निंद्य व्यापारने विषे प्रवृत्ति करावावानो तथा बीजा पण निरर्थक अनेक दोष लागे छे। श्रीभगवती सूत्रमां कह्युं छे के— "धर्मी पुरुषो जागता अने अधर्मी पुरुषो सूता होय ते सारा जाणवा। एवी रीते वत्स देशना राजा शतानिकनी बहेन जयंतीने श्रीमहावीर स्वामीए कह्युं छे।"

कई नाडी अने क्या तत्त्वथी शुं लाभ थाय तेनो विचार—

निद्रा जती रहे त्यारे स्वरशास्त्रना जाण पुरुषे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु अने आकाश ए पांचे तत्त्वोमां कयुं तत्त्व श्वासोच्छ्वासमां चाले छे, ते तपासवुं। कह्युं छे के :—"पृथ्वीतत्त्व अने जलतत्त्वने विषे निद्रानो त्याग करवो शुभकारी छे, पण अग्नि, वायु अने आकाश तत्त्वोने विषे तो ते दुःखदायक छे। शुक्लपक्षना प्रातःकालमां चन्द्रनाडी अने कृष्णपक्षना प्रातःकालमां सूर्यनाडी सारी जाणवी। शुक्लपक्षमां अने कृष्णपक्षमां त्रण दिवस—एकम, बीज अने त्रीज सुधी प्रातःकालमां अनुक्रमे चन्द्रनाडी अने सूर्यनाडी शुभ जाणवी। अजवाळी पडवेथी मांडीने पहेला त्रण दिवस (त्रीज) सुधी चन्द्रनाडीमां वायुतत्त्व वहे, ते पछी त्रण दिवस (चोथ, पांचम अने छठ) सुधी सूर्यनाडीमां वायुतत्त्व वहे; ए रीते आगळ चाले तो शुभ जाणवुं, पण एथी उलटुं एटले पहेला त्रण दिवस सूर्यनाडीमां वायुतत्त्व अने पाछला त्रण दिवसमां चन्द्रनाडीमां वायुतत्त्व ए प्रमाणे चाले तो दुःखदायी जाणवुं। चन्द्रनाडीमां वायुतत्त्व चालतां छतां जो सूर्यनो उदय थाय तो सूर्यना अस्त समये सूर्यनाडी शुभ जाणवी तथा जो सूर्यने उदये सूर्यनाडी वहेती होय तो अस्तने समये चन्द्रनाडी शुभ जाणवी।"

वार, संक्रांति अने चन्द्रराशिमां रहेल नाडीनुं फल

केटलाकनां मते वारने अनुक्रमे सूर्य चन्द्रनाडीना उदयने अनुसरी फल जणावेल छे ते आ रीते :—'रवि, मंगल, गुरु अने शनि आ चार वारने विषे प्रातःकालमां सूर्यनाडी तथा सोम, बुध अने शुक्र ए त्रण वारने विषे प्रातःकालमां चन्द्रनाडी वहेती होय ते सारी'। केटलाकना मते संक्रांतिना अनुक्रमथी सूर्य अने चन्द्रनाडीनो उदय कहेलो छे। ते आ रीते :— 'मेष संक्रान्ति विषे प्रातःकालमां सूर्यनाडी अने वृषभ संक्रांतिने विषे चन्द्रनाडी सारी इत्यादि।' केटलाकना मते चन्द्रराशिना परावर्त्तनना क्रमथी नाडीनो विचार छे, जेम के—'सूर्यना उदयथी मांडीने एकेक नाडी अढी घडी निरंतर वहे छे। रहेंटना घडा जेम अनुक्रमे वारंवार भराय छे अने खाली थाय छे तेम नाडीओ पण अनुक्रमे फरती रहे छे। छत्रीश गुरु वर्ण (अक्षर) नो उच्चार करतां जेटलो काळ लागे छे, तेटलो काल प्राणवायुने एक नाडीमांथी बीजी नाडीमां जतां लागे छे।'

पांच तत्त्वोनुं स्वरूप, क्रम, काल, तथा तेनुं फल

एवी रीते पांच तत्त्वोनुं पण स्वरूप जाणवुं, ते आ प्रमाणेः—"अग्नितत्त्व ऊंचुं, जलतत्त्व नीचुं, वायुतत्त्व आडुं, पृथ्वीतत्त्व नासिकापुटनी अंदर अने आकाशतत्त्व सर्व बाजु वहे छे। वहेती सूर्य अने चन्द्रनाडीमां अनुक्रमे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, अने आकाश ए पांच तत्त्वो वहे छे अने ए क्रम हरहंमेशनो जाणवो। पृथ्वी तत्त्व पचास, जलतत्त्व चालीस, अग्नितत्त्व त्रीस, वायुतत्त्व वीस अने आकाशतत्त्व दस पळ वहे छे। पृथ्वी अने जलतत्त्व वहेता होय त्यारे शान्त्यादि कार्योमां सुंदर फळ प्राप्त थाय छे।

क्रूर तथा अस्थिरादि कार्यने विषे अग्नि, वायु अने आकाश ए त्रण तत्त्वोथी सारु फल थाय छे। आयुष्य, जय, लाभ, धान्यनी उत्पत्ति, वृष्टि, पुत्र, संग्राम, प्रश्न, जवुं अने आववुं एटला कार्यमां पृथ्वीतत्त्व अने जलतत्त्व शुभ छे, अग्नितत्त्व अने वायुतत्त्व शुभ नथी। पृथ्वीतत्त्व होय तो कार्यसिद्धि धीरे धीरे अने जलतत्त्व होय तो तरत ज जाणवी।"

चन्द्र-सूर्य-नाडी वहे त्यारे क्या करवा योग्य कार्यो छे?

"पूजा, द्रव्योपार्जन, विवाह, किल्लादिनुं अथवा नदीनुं उल्लंघन, जवुं, आववुं, जीवित, घर-क्षेत्र इत्यादिकनो संग्रह, खरीदवुं, वेचवुं, वृष्टि, राजादिकनी सेवा, खेती, शत्रुनो जय, विद्या, पट्टाभिषेक इत्यादि शुभ कार्यमां चन्द्रनाडी वहेती होय तो शुभ छे। तेम ज कोई कार्यनो प्रश्न अथवा कार्यनो आरंभ करवाने समये डाबी नासिका वायुथी पूर्ण होय, अथवा तेनी अंदर वायु प्रवेश करतो होय, तो निश्चे कार्यसिद्धि थाय।" बंधनमां पडेला, रोगी, पोताना अधिकारथी भ्रष्ट थयेला पुरुषोना प्रश्न, संग्राम, शत्रुनो मेलाप, सहसा आवेलो भय, स्नान, पान, भोजन, गई वस्तुनी शोधखोळ, पुत्रने अर्थे स्त्रीनो संयोग, विवाद तथा कोई पण क्रूर कर्म एटली वस्तुमां सूर्यनाडी सारी छे।"

सूर्य तथा चन्द्र बन्ने नाडीमां करवा योग्य विशिष्ट कार्यो

कोई ठेकाणे एम कहेल छे के "विद्यानो आरंभ, दीक्षा, शास्त्रनो अभ्यास, विवाद, राजानुं दर्शन, गीत इत्यादि तथा मन्त्रयन्त्रादिकनुं साधन एटला कार्यमां सूर्यनाडी शुभ छे। जमणी अथवा डाबी जे नासिकामां प्राणवायु एकसरखो चालतो होय, ते बाजुनो पग आगळ मूकीने पोताना घरमांथी बहार नीकळवुं। सुख, लाभ अने जयना अर्थी पुरुषोए पोताना देवादार, शत्रु, चोर, झगडाखोर इत्यादिकने पोताना शून्यांगे (डाबी बाजु!) राखवा। कार्यसिद्धिनी इच्छा करनार पुरुषोए स्वजन, पोतानो स्वामी, गुरु तथा बीजा पोताना हितचिंतक ए सर्व लोकोने पोतानां जीवांगे (जमणी बाजु!) राखवा। पुरुषे बिछाना उपरथी ऊठतां जे नासिका पवनना:प्रवेशथी परिपूर्ण होय, ते नासिकाना भागनो पग प्रथम भूमि उपर मूकवो।"

नवकार गणवानो विधि

श्रावके उपर्युक्त विधिथी निद्रानो त्याग करीने परम मंगलने अर्थे अत्यंत बहुमानपूर्वक नवकार मंत्रना वर्णोनुं कोई न सांभळे एवी रीते (मनमां) स्मरण करवुं। कह्युं छे के:—'शय्यामां रह्या रह्या नवकार गणवो होय तो, सूत्रनो अविनय निवारवाने माटे मनमां ज गणवो।' बीजा आचार्यो तो एम कहे छे के—'एवी कोई पण अवस्था नथी के जेनी अंदर नवकार मन्त्र गणवानो अधिकार न होय, एम मानीने "नवकार हमेशा माफक गणवो। आ बन्ने मतो **प्रथम** पंचाशकनी वृत्तिमां कह्या छे। **श्राद्धदिनकृत्यमां** तो एम कह्युं छे के 'शय्यानुं स्थानक मूकीने नीचे भूमि उपर बेसी भावबंधु तथा जगतना नाथ नवकार मंत्रनुं स्मरण करवुं।' **यतिदिनचर्यामां** आ रीते कह्युं छे के, 'रात्रिने पाछले पहोरे बाल, वृद्ध इत्यादि सर्व साधुओ जागे छे अने सात आठ वार नवकार मंत्र गणे छे।' एवी रीते नवकार गणवानो विधि जाणवो।

जपना प्रकार—कमलबंधजप, हस्तजप वगेरे

निद्रा करीने उठेलो पुरुष मनमां नवकार गणतो शय्यानो त्याग करे, पवित्र भूमि उपर उभो रही अथवा पद्मासन के सुखासने बेसी पूर्व दिशाए के उत्तर दिशाए मुख करी अथवा जिनप्रतिमा के स्थापनाचार्य संमुख चित्तनी एकाग्रता वगेरे करवाने अर्थे (१) कमलबंधथी अथवा (२) हस्तजपथी नवकार

मन्त्र गणे। (१) तेमां कल्पित आठ पत्रवाळा कमळनी कर्णिकामां प्रथम पद स्थापन करवुं। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाना दळ उपर अनुक्रमे बीजुं, त्रीजुं चोथुं अने पांचमुं पद स्थापन करवुं अने नैऋत्य, वायव्य, अग्नि अने ईशान ए चार कोण दिशामां बाकी रहेलां चार पद अनुक्रमे स्थापन करवां।

श्रीहेमचन्द्रसूरिजीए **योगशास्त्रना** आठमा प्रकाशमां कह्युं छे के "आठ पांखडीना श्वेतकमलनी कर्णिकाने विषे चित्त स्थिर राखीने त्यां पवित्र सात अक्षरनो मंत्र—'नमो अरिहंताणं' नुं चिंतवन करवुं। पूर्वादि चार दिशानी चार पांखडीने विषे अनुक्रमे सिद्धादि चार पदनुं अने विदिशाने विषे बाकीना चार पदनुं चिंतवन करवुं। मन, वचन अने कायानी शुद्धिथी जो ए रीते एकसो आठ वार मौन राखीने नवकारनुं चिंतवन करे, तो तेने भोजन करवा छतां पण उपवासनुं फल अवश्य मळे छे।" नंद्यावर्त, शंखावर्त इत्यादि प्रकारथी हस्तजप करे तो पण इष्टसिद्धि आदिक घणा फलनी प्राप्ति थाय छे। कह्युं छे के—"जे भव्य हस्तजपने विषे नंद्यावर्त बार संख्याए नव वार एटले हाथ उपर फरतां रहेलां बार स्थानक (वेढाओ) ने विषे नव वखत अर्थात् एक सो ने आठ वार नवकार मन्त्र जपे, तेने पिशाचादि व्यन्तरो उपद्रव करे नहीं। बंधनादि संकट होय तो विपरीत (उलटा) शंखावर्त्तथी अक्षरोना के पदोना विपरीत क्रमथी नवकार मंत्रनो लक्षादि संख्या सुधी पण जप करवो, जेथी क्लेशनो नाश वगेरे तरत ज थाय।

उपर कहेलो कमलबंध जप अथवा हस्तजप करवानी शक्ति न होय तो, सूत्र, रत्न, रुद्राक्ष इत्यादिकनी नोकारवाळी पोताना हृदयनी समश्रेणिमां राखी पहेरेला वस्त्रने के पगने स्पर्श करे नहि, एवी रीते धारण करवी अने मेरुनुं उल्लंघन न करतां विधि प्रमाणे जप करवो। केम के—"अंगुलिना अग्रभागथी, व्यग्र चित्तथी तथा मेरुना उल्लंघनथी करेलो जप प्रायः अल्प फलने आपनारो थाय छे। लोकसमुदायमां जप करवा करतां एकान्तमां जप करवो ते, मन्त्राक्षरनो उच्चार करीने करवा करतां मौनपणे करवो ते अने मौनपणे करवा करतां पण मननी अंदर करवो ते श्रेष्ठ छे।" ए त्रणे जपमां पहेलां करतां बीजो अने बीजां करतां त्रीजो श्रेष्ठ जाणवो। "जप करतां थाकी जाय तो ध्यान करवुं अने ध्यान करतां थाकी जाय तो जप करवो तेमज बन्नेथी थाकी जाय तो स्तोत्रनो पाठ करवो एम गुरुमहाराजे कह्युं छे।"

श्रीपादलिप्तसूरिजीए रचेली **प्रतिष्ठापद्धतिमां** पण कह्युं छे के :—"मानस, उपांशु अने भाष्य एम जापना त्रण प्रकार छे। केवल मनोवृत्तिथी उत्पन्न थयेलो अने मात्र पोते ज जाणी शके तेने **मानसजाप** कहे छे। बीजी व्यक्ति सांभळे नही तेवी रीते मनमां बोलवा पूर्वक जे जाप करवामां आवे तेने **उपांशु जाप** कहे छे। तथा बीजा सांभळी शके तेवी रीते जाप करवामां आवे तेने **भाष्यजाप** कहेवामां आवे छे। पहेलो मानस जाप शान्ति वगेरे उत्तम कार्यो माटे, बीजो उपांशु जाप पुष्टि वगेरे मध्यम कोटिना कामोने माटे अने त्रीजो भाष्य जाप जारण, मारण वगेरे अधम कोटिना कार्यो माटे साधक तेनो उपयोग करे छे। मानस जाप अति प्रयत्नवडे साध्य छे अने भाष्य जाप हलका फलने आपनारो छे, तेथी सौने माटे साधारण एवा उपांशु जापनो उपयोग करवो जोईए।

नवकारना सोळ, छ, चार अने एक अक्षरनो विचार—

चित्तनी एकाग्रता माटे साधके नवकारनां पांच अथवा नव पदोने अनानुपूर्वीथी पण गणवां जोईए अने साधक तो त्यांसुधी करे के नवकारना प्रत्येक पद अने अक्षरने पण फेरवीने गणे। **योगशास्त्रना** आठमा प्रकाशमां कह्युं छे के:—"अरिहंत–सिद्ध–आयरिअ–उवज्झाय–साहु" ए पंच परमेष्ठिना नामरूप सोळ अक्षरनी विद्यानो बसो वार जाप करे तो उपवासनुं फल मळे, तेम ज 'अरिहंत–सिद्ध' ए छ अक्षरनो मंत्र त्रणसो वार, 'अरिहंत' ए चार अक्षरनो मंत्र चारसो वार अने 'अ' ए एक

अक्षरना मन्त्रने पांचसो वार जाप करनार उपवासनुं फल मेळवे छे।" आ फल जापमां जीवनी सत्प्रवृत्ति थाय ए माटे ज जणावेल छे, बाकी तो वास्तविक रीते नवकारना जपनुं फल स्वर्ग अने मोक्ष छे। ते उपरांत 'असिआउसा नमः' ने अंगे जणाव्युं छे के 'अ' नाभिकमलने विषे, 'सि' मस्तकने विषे, 'आ' मुखकमलमां, 'उ' हृदयकमलमां अने 'सा' कंठने विषे स्थापीने पण ध्यान करवु। आ उपरांत सर्वकल्याणकर एवा 'नमः सिद्धेभ्यः' वगेरे बीजा मंत्रोनुं पण स्मरण करी चित्तनी एकाग्रता करवी।

ऐहिक फलनी इच्छावाळा पुरुषोए 'ॐ नमो अरिहंताणं' इत्यादि ॐकारपूर्वक आ नवकार मन्त्र गणवो। पण जेमने केवल निर्वाणपद—मोक्षपद प्राप्तिनी ज कामना होय तेओए ॐकार रहित नवकारनुं ध्यान करवु। आवी रीते वर्ण, पद वगेरे जुदां जुदां पाडी अरिहंतादिकना ध्यानमा लीन थवा माटे अनेक रीतिओ क्रमश. योजवी। जापादिक बहु फलने आपनारां छे। कह्युं छे के:—

'क्रोडो पूजा समान एक स्तोत्र छे, क्रोडो स्तोत्र समान एक जाप छे, क्रोडो जाप सरखुं एक ध्यान छे अने क्रोडो ध्यान समान एक लय एटले चित्तनी एकाग्रता छे।' —

ध्यानना स्थल अने कालादिकनो विचार

ध्याननी सिद्धि माटे जिनेश्वर भगवंतोना जन्म वगेरे कल्याणकनी भूमिओ, तीर्थस्थानो तेम ज पवित्र तथा एकान्त स्थलनो साधके उपयोग करवो जोईए। ते माटे ध्यानशतकमां कह्युं छे के:—"स्त्री, पशु, नपुंसक तथा कुशील (वेश्यादि) थी रहित मुनिनुं स्थान होवुं जोईए अने ध्यान अवस्थामां पण आवु ज स्थान आवश्यक छे।" आ स्थाननी अपेक्षा सामान्य साधको माटे छे पण जेमणे मन, वचन अने कायाना योग स्थिर कर्या होय अने ध्यानमां निश्चल रही शकता होय तेवा मुनिओ तो गमे तेवा माणसोथी भरपूर स्थलमां, रणमां, अरण्यमां, स्मशानमां के शून्य स्थलमां एक सरखी रीते चित्तनी स्थिरता केळवी शके छे। आथी ज्यां मन, वचन अने कायानी स्थिरता रहे अने कोई पण जीवने पोतानाथी हरकत न थाय तेवुं स्थान ध्यान माटे योग्य छे। जेवी रीते स्थान माटे कह्युं तेवी ज रीते काल माटे पण जाणवुं। जे समये मन, वचन, कायाना योग उत्तम समाधिमां रहेता होय ते समये ध्यान करवुं। ध्यान माटे रात्रि के दिवसनो कोई जातनो कालभेद नथी। साधके एटलुं खास विचारवुं के जे समय पोताना देहने पीडाकारी न होय, ते समय ध्यान माटे योग्य समजवो। ध्यान पद्मासने करवुं, उभा रहीने करवुं, बेसीने करवुं के कई रीते करवुं तेनो पण खास नियम नथी। कारण के सर्व काळमां, सर्व देशमां अने भिन्न भिन्न सर्व अवस्थामां साधक मुनिओ केवलज्ञान पाम्या छे; माटे ध्यानना संबंधमां देशनो, कालनो अने देहनी अवस्थानो कोई पण नियम सिद्धान्तमां कह्यो नथी। अर्थात् मन, वचन अने कायाना योग समाधिमां रहे तेवो प्रयत्न करवो जोईए।

दरेक अवस्थामां नवकारनी उपकारकता

नवकार मंत्रनु स्मरण आ लोक अने परलोक बन्नेमां घणुं ज उपकारक छे। महानिशीथ सूत्रमां कह्युं छे के—'नवकार मन्त्रनु मावथी चिंतन कर्यु होय तो चोर, जंगली प्राणी, सर्प, पाणी, अग्नि, बंधन, राक्षस, संग्राम अने राजानो भय नाश पामे छे। तेम ज अन्य ग्रंथोमां पण कह्युं छे के:—बालकनो जन्म थाय त्यारे नवकार गणवो, कारण के तेथी उत्पन्न थनार जीवने भविष्यमां सारा फलनी प्राप्ति थाय, अने मरण समये पण तेने नवकार संभळाववो, जे संभळाववाथी शुभ अध्यवसाय थतां सद्गति मळे। आपत्तिओमां नवकार गणवाथी आपत्तिओ नाश पामे छे। ऋद्धि-सिद्धिना प्रसंगमां पण हरहंमेश नवकार-मंत्रनुं स्मरण करवु। तेथी ऋद्धि स्थिर रहेवा पूर्वक वृद्धि पामे छे।'

नवकार गणवाथी केटलुं पाप खपे तेनो विचार

शास्त्रमां जणाव्युं छे के नवकारनो एक अक्षर गणवाथी सात सागरोपमनुं पाप खपे,[1] तेनुं एक पद गणवामां आवे तो पचास सागरोपमनुं पाप ओछुं थाय। तेम ज एक संपूर्ण नवकार पांचसो सागरोपमनुं पाप खपावे। जे भव्य जीव विधिपूर्वक श्रीजिनेश्वर भगवंतनी पूजा करीने एक लाख नवकार मन्त्र गणे तो ते शंका रहित तीर्थंकर नामकर्म बांधे छे। जे जीव आठ क्रोड, आठ लाख, आठ हजार, आठ सो अने आठ (८०८०८८०८) वार नवकार मन्त्र गणे ते त्रीजे भवे मुक्ति पामे छे।

नवकार स्मरणथी आ लोक अने परलोक फल संबन्धी दृष्टान्त

नवकार माहात्म्य उपर आ लोकना फल संबन्धमां श्रेष्ठिपुत्रक शिवकुमारनुं दृष्टान्तः—

'शिवकुमार जुगटुं वगेरे रमवाथी भयंकर दुर्व्यसनी बन्यो हतो तेथी, पिताए तेने शिखामण आपी के ज्यारे तुं कोई भयङ्कर मुश्केलीमां आवी पडे त्यारे नवकार मन्त्र गणजे। समय जतां पिता मृत्यु पाम्या। शिवकुमार धन खोई बेठो, अने धननी लालचे कोई सुवर्ण पुरुष साधतां त्रिदंडीनो उत्तर साधक थयो। अंधारी चौदसनी रात्रिए श्मशानमां त्रिदंडीए तेने शबना पग घसवानुं काम भळाव्युं। त्रिदंडीनी गोठवण एवी हती के शब मंत्रविधि पूर्ण थये उत्तर साधकने हणे अने तेमांथी सुवर्णपुरुष थाय, ते मेळवी अखण्ड सुवर्ण निधान प्राप्त करवुं। शबनो पग घसतां शिवकुमारना मनमां भयनो संचार थयो। तेने पितानुं वचन याद आव्युं, आथी तेणे मनमां नवकार मंत्रनो जाप शरु कर्यो। शब उभुं थयुं पण उत्तरसाधकने नवकार मंत्रनी शक्तिना प्रतापे हणी शक्युं नहि। शबे क्रोधित थई त्रिदंडीने हण्यो अने तेमांथी सुवर्णपुरुष थयो, आ सुवर्णपुरुष शिवकुमारे ग्रहण कर्यो। त्यार पछी शिवकुमार सुखी गयो, धर्ममां स्थिर थयो अने तेणे लक्ष्मीनो उपयोग जिनमंदिर बंधाववा वगेरे सारा कार्यमां कर्यो।'

परलोकना फल संबंधमां वड उपर रहेल समळीनुं दृष्टान्त छे—'सिंहलाधिपति राजानी पुत्री पिता साथे सभामां बेठी हती, तेवामां एक पुरुषने सभामां छींक आवी। छींक पछी तुर्त ते पुरुषे 'नमो अरिहंताणं' कह्युं। आ पद सांभळतां राजकुमारीने मूर्छा आवी अने तेने जातिस्मरण ज्ञान थयुं। मूर्छा वळ्या पछी राजकुमारीए पिताने पोताना पूर्व भवनी वात कही अने जणाव्युं के हुं पूर्वभवमां समळी हती। एक पारधीए मने बाण मार्युं। हुं मूर्छा खाईने नीचे पडी तरफडती हती तेवामां एक मुनिराजे मने नवकार मंत्रनुं स्मरण कराव्युं। आ स्मरणथी हुं आपने त्यां पुत्रीरूपे अवतरी छुं। त्यारपछी राजकुमारी पचास वहाण भरी पोताना समळीपणानो देह ज्यां आगल पड्यो हतो ते भरूचमां आवी अने त्यां समलिकाविहार कराव्यो।

आ रीते उठतां नवकार मन्त्र गणवो जोईए तेनी व्याख्या थई।

धर्मजागरिका

नवकारमन्त्रना स्मरण पछी धर्मजागरिका करवी।

---

१ नारकीनो जीव सात सागरोपम प्रमाण काळमां दुःख भोगवीने जेटलां पापकर्मो खपावे, तेटलुं पाप नवकारना एक अक्षरना स्मरणथी खपे।

परिचय

युगप्रधान तपागच्छीय श्रीसोमसुन्दरसूरिजीना शिष्य अने 'संतिकरं' स्तोत्रना कर्त्ता श्रीमुनिसुन्दरसूरिजीनी ५४ मी पाटे थयेला श्रीरत्नशेखरसूरि विरचित अने शेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार सस्थायी वीर सं. २४६६ मां प्रकाशित 'श्रीश्राद्धविधिप्रकरण' नामक ग्रन्थथी आ सन्दर्भ तारवेलां आवेल छे। आ ग्रन्थनी रचना वि. सं. १५०६ मां थई छे एम तेओश्रीए मूलग्रन्थ उपर स्वोपज्ञ ६७६१ श्लोक प्रमाण 'श्राद्धविधि कौमुदी' नामक वृत्तिनी प्रशस्तिमां स्पष्ट रीते जणाव्युं छे।

गुजराती अनुवाद पं. मफतलाल झवेरचंद द्वारा संपादित 'श्राद्धविधिप्रकरण'मांथी अल्प फेरफार साथे अहीं रजू करेल छे।



[८०–३५]

उपा० श्रीयशोविजयजीकृत–
'द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिका' संदर्भः

अर्हमित्यक्षरं यस्य, चित्ते स्फुरति सर्वदा ।
परं ब्रह्म ततः शब्द-, ब्रह्मणः सोऽधिगच्छति ॥ २८ ॥

परःसहस्राः शरदां, परे योगमुपासताम् ।
हन्तार्हन्तमनासेव्य, गन्तारो न परं पदम् ॥ २९ ॥

आत्मायमर्हतो ध्यानात्, परमात्मत्वमश्नुते ।
रसविद्धं यथा ताम्रं, स्वर्णत्वमधिगच्छति ॥ ३० ॥

पूज्योऽयं स्मरणीयोऽयं, सेवनीयोऽयमादरात् ।
अस्यैव शासने भक्तिः, कार्या चेच्चेतनास्ति वः ॥ ३१ ॥

सारमेतन्मया लब्धं, श्रुताब्धेरवगाहनात् ।
भक्तिर्भागवती बीजं, परमानन्दसंपदाम् ॥ ३२ ॥

अनुवाद

अर्हं एवो अक्षर जेना चित्तमां सदा स्फुरे छे; ते अर्हँ रूप शब्दब्रह्मथी परब्रह्म (मोक्ष) ने प्राप्त करे छे ॥ २८ ॥

अन्य लोको हजारो वर्ष सुधी योगनी उपासना करो, परन्तु अरिहंतनी उपासना कर्या विना तेओ मोक्षने प्राप्त करी शकता नथी ॥ २९ ॥

जेम रसथी विद्ध एवुं तांबु सुवर्ण बनी जाय छे तेम अरिहंतना ध्यानथी आ आत्मा परमात्मा बनी जाय छे ॥ ३० ॥

आ अरिहंत पूज्य छे, स्मरणीय छे अने आदर पूर्वक सेववा योग्य छे । अने जो तमारामां चेतना-बुद्धि होय तो आ अरिहंतना ज शासनमां भक्ति राखवी जोईए ॥ ३१ ॥

शास्त्रसमुद्रनुं अवगाहन करतां मने आ ज सार प्राप्त थयो छे के परम आनन्दरूपी संपत्तिनुं मूळ कारण अरिहंतदेवनी भक्ति ज छे ॥ ३२ ॥

परिचय

उपा. श्री यशोविजयजीकृत 'द्वात्रिंशद्–द्वात्रिंशिका' ग्रंथनी 'जिनमहत्त्वद्वात्रिंशिका' नामनी चोथी द्वात्रिंशिका (बत्रीशी) मांथी प्रस्तुत संदर्भ अहीं लेवामां आव्यो छे । सत्तरमी शताब्दिमां थयेल महोपाध्याय श्रीयशोविजयजीनो विशेष परिचय 'यशोविजयस्मृतिग्रंथ'मांथी जाणी शकाय छे ।

प्रकीर्ण-श्लोकाः

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता-
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ १ ॥

प्रापदैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं,
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥ २ ॥

✓मन्त्रं संसारसारं त्रिजगदनुपमं सर्वपापारिमन्त्रं,
संसारोच्छेदमन्त्रं विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम्।
मन्त्रं सिद्धिप्रधानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्रं,
मन्त्रं श्रीजैनमन्त्रं जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥ ३ ॥

अनुवाद

इन्द्रो वडे पूजायेला अरिहंत भगवंतो, सिद्धि स्थानमां रहेला सिद्ध भगवंतो, जिनशासननी उन्नति करनारा पूज्य आचार्य भगवंतो, श्रीसिद्धान्तने सारी रीते भणावनारा उपाध्याय भगवंतो, अने रत्नत्रयीनुं आराधन करनारा मुनि भगवंतो, ए पाचे परमेष्ठिओ प्रतिदिन तमारुं मंगल करो ॥ १ ॥

(हे जिनवर !) पापी एवो कुतरो पण जीवक (महाराजा सत्यन्धरना पुत्र) वडे संभळावेला आपना नमस्कार (पंचनमस्कार)नां पदोने मरण समये सांभळीने देवताई सुखने पाम्यो। तो पछी जप माटे वपराता निर्मल मणिओनी माळावडे नमस्कारचक्रने जपतो सुरेन्द्रनी संपत्तिनुं स्वामीपणुं मेळवे तेमा शो संदेह ! ॥ २ ॥

संसारमा सारभूत, त्रणे जगतमां अनुपम, सर्व पापरूपी शत्रुओने वशमा करनार, संसारनो उच्छेद करनार, कालकूट झेरनो नाश करनार, कर्मोने निर्मूलन करनार, मोक्षने माटे प्रधान मन्त्र, शिवसुखने उत्पन्न करनार तथा केवल ज्ञानने आपनार जिनभाषित श्री नमस्कार मन्त्रनो तुं जाप कर, जाप कर। जाप करायेलो आ मन्त्र सिद्धिने आपनारो छे ॥ ३ ॥

आकर्षन् मुक्तिकान्तां सुरपतिकमलां दुर्विधस्यापि वश्यं,
कुर्वन्नुच्चाटयंश्चाशुभमथ रचयन् द्वेषमन्तर्द्विषां च ।
तन्वानः स्तम्भमुच्चैर्भवभवविपदां किञ्च मोहस्य मोहं,
पुंसस्तीर्थेशलक्ष्मीमुपनयति नमस्कारमन्त्राधिराजः ॥ ४ ॥

अर्हन्तो ज्ञानभाजः सुरवरमहिताः सिद्धिसिद्धाश्च सिद्धाः,
पञ्चाचारप्रवीणाः प्रवरगुणधराः पाठकाश्चागमनाम् ।
लोके लोकेशवन्द्याः प्रवरयतिवराः साधुधर्माभिलीनाः,
पञ्चाप्येते सदा नः विदधतु कुशलं विघ्ननाशं विधाय ॥ ५ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽथवा ।
ध्यायेत् (यन्) पञ्च-नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

अनादिमूलमन्त्रोऽयं, सर्वव्याधिविनाशकः ।
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मङ्गलं मतः ॥ ७ ॥

मुक्तिरूपी स्त्रीनुं आकर्षण करनार, देवेन्द्रोनी लक्ष्मीने पण वश करनार, अशुभनुं उच्चाटन करनार, अंतरंग शत्रुओ प्रत्ये द्वेष पेदा करनार, संसारनी विपत्तिओनुं स्तंभन करनार अने मोहनुं पण मोहन करनार आ नमस्कार मन्त्राधिराज मनुष्यने तीर्थंकरनी लक्ष्मी भेट आपे छे ॥ ४ ॥

केवल ज्ञानने धारण करनारा अने इन्द्रोथी पण पूजित एवा अरिहंत भगवंतो, सिद्धिपदने जेओ वर्या छे एवा सिद्धो भगवंतो, पांच प्रकारना आचारमां कुशल एवा आचार्य भगवंतो, श्रेष्ठ गुणोने धारण करनार अने आगमोनुं अध्ययन करावनार श्री उपाध्याय भगवंतो तथा साधु धर्मनुं पालन करवामां लीन अने देवेन्द्रोने पण वंदनीय एवा श्रेष्ठ मुनि भगवंतो—आ पांचे परमेष्टिओ अमारा विघ्नोनो नाश करीने अमारुं सदा कुशल करो ॥ ५ ॥

अपवित्र होय के पवित्र होय अथवा सुखी होय के दुःखी होय, पंच-नमस्कारनुं जे ध्यान करे ते सर्व पापोथी मुक्त बने छे ॥ ६ ॥

आ (नमस्कार) मंत्र अनादि मूल-मंत्र छे, सर्व व्याधिओनो नाश करनार छे अने सर्व मंगलोमां प्रथम-उत्कृष्ट मंगल छे ॥ ७ ॥

[८२-३७]

अज्ञातकर्तृकः—
श्रीपञ्चपरमेष्ठिस्तवः

भक्तिव्यक्तिपुरस्सरं प्रणिदधे विस्तीर्णमोहोदधे-
र्निस्तीर्णान् परमेष्ठिनः स्तुततमश्वासान् प्रकाशात्मनः।
पञ्चाऽप्युच्चतरान् क्षमाधरवरान् निस्तुल्यकल्याणकान्,
प्रीतिस्फीतिनिबंधनं सुमनसां तन्मन्दरागोत्तमान् ॥ १ ॥

अर्हन्तः स्वपरार्थसम्पदुदयप्रादुर्भवद्वैभवाः,
स्तोतव्या जगतां गतान्धतमसः प्राणिप्रमाणीकृताः।
सन्मार्गे प्रथमप्रधानवचनव्याप्लुतमिथ्यापथा,
भूयांसुर्भविनां भवाधिशमना देवाधिदेवाः श्रिये ॥ २ ॥

आदुर्यान् गुरुतस्य सर्वकृतिनामैकान्तिकात्यन्तिकं,
सिद्धानन्तचतुष्टयं फलमपव्याधिच्छिन्नाधिध्रुवं।
××××विशेषशेखरसमं व्याबाधया बाधितं[1],
सिद्धाः सिद्धिपदं सतां विदधतां ते संगतं सन्ततम् ॥ ३ ॥

आचाराचरणं सतां वितरणं सद्दोमुषीसम्पदां,
दोषाणां विनिवर्त्तनं गुणततेर्निर्वर्त्तनं निःस्पृहं।
तीर्थाधीशकृतपृथुप्रवचनप्रोद्भासनं प्रत्यहं,
कुर्वाणाः स्मरबाणभङ्गनिपुणास्ते सूरिसूराः श्रिये ॥ ४ ॥

सम्यग्दर्शनबोधसंयमसमाधानप्रधानप्रभा-
भूयः शिष्यसमूहसंगतमतिव्युत्पत्तिसद्विक्रमाः।
श्रीमद्वाचकपुंगवाः शुभतरोदर्काः कुतर्कातिगाः,
सूत्रार्थोभयवेदिनः प्रतिदिनं पुष्णन्तु पुण्योदयम् ॥ ५ ॥

ज्ञानाद्यैः शिवसाधकाः प्रतिपदं व्यापादका विद्विषां,
सग्रन्थाः श्रुतसम्पदां प्रतिपदा पापापदानन्ददाः।
गङ्गातुङ्गतरङ्गसंगनगुणश्रेणिप्रणीसिन्धवः,
सान्निध्यं शुभसंयमाध्वनि सदा तन्वन्तु वः साधवः ॥ ६ ॥

पञ्चाचाररमाविलासरसिकाः पञ्चप्रमादद्विषः,
पञ्चज्ञानमयाः प्रपञ्चविमुखाः पञ्चव्रतासोदयाः।
दप्यन् पञ्चहृषीककुञ्जरघटा पञ्चत्वपञ्चाननाः,
पञ्च श्रीपरमेष्ठिनः प्रणमतां पुष्णन्तु नः संपदम् ॥ ७ ॥

---

१ आ पाद संपूर्ण मळ्युं नथी।

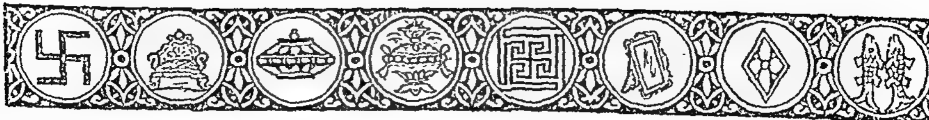
सम्यग्ध्येयशिरोमणिं दिनमणिं विश्वकृतमख्यासने,
सर्वाभीष्टपरम्परावितरणे चिन्तामणिं प्राणिनाम् ।
श्रुत्वा श्रीपरमेष्ठिपञ्चकमहं सिद्ध्यर्थमभ्यर्थये,
भूयो भक्तिः भवे भवे मम भवेत् तद्ध्यानलीनं मनः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीपञ्चपरमेष्ठिस्तवः ॥

परिचय

आ पञ्चपरमेष्ठि स्तव श्रीलालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबादना हस्तलिखित प्रतोना संग्रहमांथी उपलब्ध थयुं छे । जेनो पोथी नं. ४५७०, जनरल नं. ११५० (१) छे आ प्रत एक पानानी छे । आ स्तवना कर्त्ता विषे माहिती मळी नथी ।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥



शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०१	१४	पद्दशी	पापद्दशी
११२	५	मती	मतिः
११२	२९	अशोक	अशोका
११४	१३	परथी	घरथी
११५	२२	पद्मना पानानी माला	पद्म अने अक्षमालादि
११८	१६	जडूँनां	जाडूँनां
११९	१९	शरीरनुं	किन्तु शरीरनुं
११९	२८	(इहलौकिक)	(पारलौकिक)
१२१	१	सरस्ती	सरस्वती
१२१	९	त्रिभुवचन्द्र	त्रिभुवनचन्द्र
१२२	५	पट्टनु	पट्टनुं
१२६	७	इन्स्टयूटनी	इन्स्टिटयूटनी
१२९	४	निशे	निशं
१२९	११	स्वगनेमह०	स्वर्णनेमिह०
१२९	२२	शाली	शालि
१२९	२४	दुष्ट	दुष्ट मनुष्यो के
१३०	१४	गायनुं छाण	×
१३०	१९	गोरोचना, गायनुं छाण	गोरोचना
१३०	१९	जुई वगेरेनी	जाई वगेरेनी
१३४	७	एतदूर्णं	एतच्चूर्णं
१३४	१०	पर्भास्कुरवै	प्रभास्कुरवै
१३५	७	स्फुरच्च०	स्फुरच्चन्द्र०
१३६	१७	जडूंनां	जाडूंनां
१३७	७	[:१]	×
१३७	१९	चारे	ईशानादि चारे
१३८	४	आसिविसं	आसीविसं
१३८	१४	पूर्वोत्तराद (शा)°	पूर्वोत्तरा(रे)शा०
१३८	१९	मुंचामि	मुञ्चामि
१३९	१७	हृदवयां	हृदयमां
१४२	१६	०	अनुवाद
१४३	२४	वर्णां	वर्णोनी
१४६	१२	सकर्णाना	सकर्णानां
१४६	१९	शानवाळा	कीर्तिवाळा
१४६	२३	योगथी...उत्पन्न	योगथी उत्पन्न
१४७	२३	संकोच	संकोच (!)
१५०	३	रिष्टे	रि(दु)ष्टे
१५२	२१	भय के त्रास	भय
१५६	२६	सगांवहालांओ	सगांवहालांओनी जेम
१५९	१९	शाकिनीओ	द्रोहकारक शाकिनीओ
१६२	२७	मोक्षनी सोपान पंक्तिसमान	कल्याणनी परंपराने करनार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शु
१६४	१७	जीवो अनंत अेवा	अनंत जीवो
१६६	६	सीमान्धराद्या	सीमन्धराद्या
१६६	१२	मागदायिनः	मार्गदायिनः
१७०	५	ऽमृताञ्जुना	ऽमृतांशुना
१७०	२२	जूगार	जुगार
१७८	१७	अरिहंतादिनुं	अरिहंतादिनो
१८०	९	प्राभृतीकृताः	प्राभृतीकृताः (ताम्)
१८०	२१	ध्यानमा...गया	ध्यानने विशे भेट करायली तिनो स्वीकार करीने नि
१८२	२	सुवर्णात्मता	सुवर्णात्मता
,,	१६	वागवादकत्व	वाग्वादकत्वं
१८६	१२	युगलेऽ	युगलेऽ (लम)
१८६	१४	तालु	तालु
१९३	२४	जीवसदृश असमूद बने छे (!)	बृहस्पति जेवी बने
१९९	५	ह्रीँ	ह्रीँ
,,	,,	ह्रौँ	ह्रीँ
२०१	८	हूँ	हूँ
,,	१९	मगल	मंगल
,,	२२	साहु	साहू
२०२	२३	भिवा	भिया
,,	२६	निरान्तरा	निरन्तरा
२०३	८	'सोलङ'	'सोल'
,,	१६	'परश्चलोपम्'	'परश्च लोपम्'
२०४	१५	पद्मनामा°	पद्मानामा°
२०८	२१	प्रतिदिन	प्रतिदिनं
२१२	१७	छ छ	छ
२१२	३०	जणावेल्याछे	जणावेला छे
२१३	३	वर्णोवाळो	वर्णोवाळा
२१३	२२	दीवेट	रेखा
२१३	३०	ॐ	ॐ
२१४	२६	सनो	उनो
,,	३०	क्या	कया
२१५	२	ह्रीकार	ह्रींकार
२१७	११	स्तोत्रम-	स्तोत्रमा
,,	१५	मूल पाठां	मूलपाठ
२१८	४	योणा°	योग°
२२१	१७	रम	■
२३०	३१	हूँ	हूँ

शुद्ध

अर्हंत जीवो
सीमन्धराया
[illegible]
[illegible]
दुष्कर
अरिहंतादिनो
[illegible] (तान्)
[illegible] विशे भेट करायली आ पवित्र [illegible]
तिनो स्वीकार करीने तिर्यंचो पण [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] (स्म)
तातु
बृहस्पति जेवी
[illegible]
ह्रीं
ह्रीं
[illegible]
मंगलं
बाहू
भिया
निरन्तरा
'शोल'
'परम्र लोरम्'
पद्मानाम्°
प्रतिदिनं
छ
जणावेला छे
वर्णोवाळा
रेखा
ॐ
उनो
कृपा
ह्रींकार
स्तोत्रमां
मूलपाठ
[illegible]°

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३१	२८	चरमशरीरीनी	चरमशरीरनी
२३१	२९	अचरमशरीरी	अचरमशरीर
२३२	१४	स्वय	स्वयं
२३३	८	साध्यत्येव	साधयत्येव
२३५	१६	ध्यानां	ध्याननां
२३८	९	स्व	स्वु°
२३८	१६	विजृम्मते	विजृम्भन्ते
२४०	२७	तेना	ते
२४२	८	त्वमीक्षणाम्	त्वमीक्षणम्
२४३	२	तरंगिण्या°	तरंगिण्य°
२५०	४	ह्र अ म् स् अ	ह्र अ म् स् अ स्
२५०	५	"याक्षीयम्" ॥ स् ॥	याक्षीयम् ॥
२५३	१	क्रतक्रतुः	कृतक्रतुः
२५३	३६	अतीन्द्रियो	अती(नि)न्द्रियो
२५८	४	महार्हत्य	महार्हन्त्य
२५८	१३	आर्हत्यलक्ष्मी	आर्हन्त्यलक्ष्मी
२६०	२३	अपने	आपने
२६१	६	धर्मसम्य	धर्मसम्यक्
२६२	३	दिक्मारी०	दिक्कुमारी°
२६४	९	°गाम्भीयर्वया°	°गाम्भीर्यवर्या°
२६८	१९	अपाने	आपने
२७५	२३	जणावणारा	जणावनारा
२७८	११	ताङ्घ्रि	ताङ्घ्रे
२७९	१८	विरहमान	विहरमान
२८३	२७	काय ?	शकाय ?
२८६	२९	°सनः छत्र°	°सनश्छत्र°
२८७	३२	पिताः	पिता
२९०	१५	बृहतीपतिः	बृहतां पतिः
,,	१६	°देवोपदिष्टा	°देवोपदेष्टा
,,	२२	°गुणोगुणः	गुणोऽगुणः
,,	२३	विद्या	ऽविद्या
,,	३३	वृत्ताग्रयुग्मः	वृत्ताग्रयुग्यः
२९२	४	°विजीवधनः	चिज्जीवधनः
,,	४	°सुगन्धि°	°सुसुगन्धि°
२९५	१५	वैभव	वैभव सुजन्न
२९६	६	विविक्ते देशे	विविक्तदेशे
३०७	३	संम°	सम°
३१०	५	°मूल्धातन°	°मूल्धातन°
३१०	८	मोहनछिद्रुम्र°	मोहच्छिद्रुम्र°
३१०	२७	हु	हुं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१०	३०	समज्ञतु	समज्जतुं
३१२	६	°क्षयव्याहत°	°क्षयमव्याहत°
३१२	८	याग	योग
३१४	११	पापोने	पापोनो
३१६	२२	वर्पणे	कर्पणे
३१९	११	०हेतु	°हेतु
३१९	१३	झणोवरोहिणी	झाणोवरोहिणी



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१०	२०	समक्त्तु	समज्वुं
३१२	६	°क्षयन्व्याहृत°	°क्षयमव्याहत°
३१२	७	याग	योग
३१४	११	पापोने	पापोनो
३१६	२२	वर्पणे	कर्पणे
३१९	११	०हेतुं	°हेतु
३१९	१३	क्षणोवरोहिणी	क्षाणोवरोहिणी

